



तमसो मा ज्योतिर्गमय

SANTINIKETAN
VISWA BHARATI
LIBRARY

22.131

68

V. :

15452

ॐ

श्रीबृहदारण्यकोपनिषत्

पंडित श्रीपीतांबरशर्मकृत

समूल सटीक संपूर्ण शंकरभाष्यानुसार

वेदांतदीपिका

नामक भाषा टीकासहित

ताका

द्वितीयतृतीयाध्यायहप द्वितीयभाग

वर्तमान सुमुमुक्षुनके द्वितीय

मुंबईमें

जावजी दादार्जा इलाके

“निर्णयसागर” आश्रमनेसे प्रकाशित किया

“श्लोकार्थेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकारिभिः ।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः” ॥ १ ॥

संवत् १९४८

इप्रेजा मन १८९२.

(सर्व हक कर्त्ताने स्वाधीन रखे ह)

॥ श्लोकः ॥

दृग्दृश्यौ द्वौ इदार्थौ साः परस्परविलक्षणौ ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्वत्रेदांतडिडिमः ॥ १-॥

अथ श्री बृहदारण्यकोपनिषदो द्विती- याध्यायस्यानुक्रमणिका ॥ २ ॥



प्रथम अजातशत्रु-ब्राह्मण ॥ १ ॥

अजातशत्रु औ गार्ग्य (बा- लाकि)का प्रसंग.	१	७६१
गार्ग्यकरि केईक भेदसैं १ सूर्य्य २ चंद्र ३ विद्युत् ४ प्र- काश ५ वायु ६ अग्नि ७ जल ८ आदर्श ९ प्राण १० दिशा ११ छाया १२ आत्मा (समस्त) इन ब्रह्मोंके उपासनके कथन किये- हुये । अजातशत्रुकरि तहां तहां प्रत्येक ब्रह्मविषै संवादके नि- षेधपूर्वक तिस तिस ब्रह्मके गु- णसहित उपासनके फलकी उ- क्तिकरि स्वज्ञानके अतिशयका प्रदर्शन । फेर गार्ग्यका तूष्णीं- भाव	२-१३	७६२

. १ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

इतनाहीं [ब्रह्म तुजनै जा-
न्या है किंवा अधिक]? ऐसैं
राजाकरि पूंछेहुये । इतनाहीं
[जान्या]ऐसैं गार्ग्यकरि स्वीकार
किये “इतने [जानने] करि
[ब्रह्म] विदित नहीं होवैहै”
ऐसैं राजाकरि कहेहुये “मैं तेरे-
प्रति शरण होताहूं” ऐसैं गा-
र्ग्यकरि कथन.

१४ ७८४

राजाकरि क्षत्रियकेप्रति ब्रा-
ह्मणकी उपसत्ति (शरणजाने)-
के निषेधपूर्वक तिसविना ब्र-
ह्मोपदेशकी प्रतिज्ञाकरि स्वपा-
णिमें गार्ग्यके पाणिका ग्रहण-
करिके किसी सुप्त पुरुषकेप्रति
गमन औ अनेक विशेषणोंद्वारे
बुलाये ताके प्राणके अजागर-
णतैं पाणिके पेषणसैं तिस प्रा-
णतैं अन्य ज्ञाताका प्रबोधन.

१५ ७८९

२ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

अजातशत्रुकरि “ यह तब
कहां था ” औ “कहांतैं आया”
ऐसैं पूंछेहुये । “ मैं नहीं जा-
नता ” ऐसैं गार्ग्यकरि कथन. १६ ७९२

अजातशत्रुकरि “यह तब
कहां था ” इस प्रथम प्रश्नका
स्वप्नसुषुप्तिविषै ताकी स्थितिका
वर्णनरूप उत्तर १७-१९ ८१९

“ यह कहांतैं आया ” इ-
स द्वितीय प्रश्नका ऊर्णनाभि
औ अग्निके दृष्टांतपूर्वक आत्मातैं
सर्वभूतनकी उत्पत्तिके कथन-
करि औ आत्माकी उपनिषद्
औ सत्यकी सत्यताका कथन. २० ८४२

द्वितीय शिशु-ब्राह्मण ॥ २ ॥

आधान प्रत्याधान स्थूणा
अरु धाम सहित शिशुके ज्ञा-
नके फलपूर्वक शिशु (प्राण)
औ ताके आधानआदिकका
कथन १ ९२३

	३-४ ब्राह्मण-विषय.	कंडिकांक.	पृष्ठांक.
सप्त अक्षिति औ ताके ज्ञा- नका फल	२	९३३
शिरविषैसप्तऋषिआदिकके बोधक मंत्रका विवरण	३-४	९३७
तृतीय मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मण ॥ ३ ॥			
ब्रह्मके दो रूप मूर्त्त अमूर्त्तके कथनपूर्वक तिनके अंतर्गत विशेषणनका प्रदर्शन	१	९४५
अधिदैवतरूप मूर्त्त अमू- र्त्तका कथन	२-३	
अध्यात्मरूप मूर्त्त अमूर्त्तका विभाग	४-५	९५९
लिंगात्मा पुरुषके वासना भेदतैं विविधरूपके अनेक दृ- ष्टांतकरि कथनपूर्वक “ नेति- नेति ” ऐसा ब्रह्मका निर्देश औ “सत्यका सत्य” ऐसा नाम.		६	९६४

चतुर्थ मैत्रेयी-ब्राह्मण ॥ ४ ॥

याज्ञवल्क्य औ मैत्रेयीके प्र-
संगपूर्वक धनकूं मोक्षकी असा-

	४ ब्राह्मण-विषय.	कंडिकांक.	पृष्ठांक.
धनता सुनिके मैत्रेयीकरि ध- नकी उपेक्षाकरिके मोक्षसाध- नका प्रश्न		१-४	९९१
याज्ञवल्क्यकरि पतिआ- दिक सर्वकी आत्मार्थतापूर्वक आत्माकी प्रियतमता औ ताके दर्शन श्रवण मनन निदिध्या- सनकी कर्त्तव्यता अरु तिन- करि सर्वका विज्ञानरूप फल.		५	१००८
आत्मातें भिन्न ब्राह्मण- त्वादि जाति आदिकनके ज्ञान- वालेका तिसतिसकरि तिरस्का- रपूर्वक ब्रह्मात्माकी सर्वरूपता.		६	१०१६
स्थितिकालविषै चित्स्वरू- पके अनुगमकरि सर्वत्र चिद्रू- पताके निश्चयविषै दुंदुभि शं- ख औ वीणाका दृष्टांत		७-९	१०२०
उत्पत्तिकालविषै सर्व चि- द्रूपहीं है । इस निश्चयअर्थ आग्नि धूमका दृष्टांत		१०	१०२६

४ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

प्रलयविषै सर्व चिद्रूपहीं
है । इस निश्चय अर्थ । अनेक
दृष्टांतनसैं एकायनप्रक्रियाका
कथन ११ १०३२

ज्ञानतैं बाधरूप आत्यंतिक
गन्त्यके दिखावने अर्थ सैंधव-
क' म्नांतपूर्वक विद्वान्कूं
वि ज्ञाके अभावका क-
अ.. १२ १०४१

संज्ञाके अभावके कथनसैं
मैत्रेयीकरि मोह करनेका उपा-
लंभ औ याज्ञवल्क्यकरि मो-
हके अभावके कथनपूर्वक उ-
क्तवस्तुकी ज्ञानविषयता (ज्ञे-
यता) १३ १०५२

अविद्याकल्पित खिल्यभा-
वविषै भिन्नव्यवहाररूप संज्ञाके
कथनपूर्वक सर्वात्मभावविषै भे-
दव्यवहाररूप संज्ञाका अभाव
औ ज्ञाता आत्माकी अविषयता १४ १०५७

द्वितीयाध्यायस्यानुक्रमणिका ॥ २ ॥ १९

५ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

पंचम मधु-ब्राह्मण ॥ ५ ॥

पृथिवी आदिक जगत्की
परस्पर कार्यकारणभावकरि प-
रस्पर उपकार्योपकारकता. १-१४ १०६७

सर्वात्मभूत ब्रह्मवेत्ताकी स-
र्वकरि उपास्यताके अर्थ सर्वभू-
तनका अधिपतिपना राजापना
औ तिस विद्वान्विषै सर्वके
समर्पितपनैका दृष्टांतकरि प्र-
दर्शन. १५ १०९६

प्रवर्ग्यकर्मरूप अर्थवाले म-
हले दो अध्यायनके अर्थका
दध्यङ् अथर्वा औ दो अश्विनी
कुमारोंकी आख्यायिकाभूत दो
मंत्रनकरि प्रकाश. १६-१७ ११०२

ब्रह्मविद्यारूप अर्थवाले पी-
छले दो अध्यायनके अर्थका पी-
छली दो ऋचाओंकरि प्रकाश
(परमात्माकी पुरुषता औ इं-
द्रताका कथन.) १८-१९ ११२१

	७ ब्राह्मण-विषय.	कंडिकांक.	पृष्ठांक.
करि अंतर्यामीके कथनकी प्रे- रणा.....	२	१३१८

पृथ्वी । जल । अग्नि । अंत- रिक्ष । वायु । स्वर्गलोक । आ- दित्य । दिशा । चंद्र । तारक । आ- काश । अंधकार । तेज । देवता- ओंविषै अधिदैवतरूप अंतर्या- मीविषयक दर्शनका याज्ञव- ल्क्यकरि कथन.	३-१४	१३८२
---	-------	------	------

ब्रह्मादि-स्तंबपर्यंत सर्वभूत- नविषै अधिभूतरूप-अंतर्या- मीके दर्शनका याज्ञवल्क्यकरि कथन.	१५	१३९१
--	-------	----	------

प्राण (प्राणवायुसहित घ्रा-
ण) वाक् । चक्षु । श्रोत्र । मन ।
त्वक् । विज्ञान । रेत । इन अ-
ध्यात्मरूप पदार्थनविषै अध्या-
त्मरूप-अंतर्यामीके दर्शनके
कथनपूर्वक याके दृष्टि । श्रुति ।
मति । अरु विज्ञातिके अवि-

८ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

षय द्रष्टा श्रोता मंता अरु वि-
ज्ञाता भाव सहित । इसतैं अन्य
द्रष्टा श्रोत्रा मंता अरु विज्ञा-
ताके अभावका कथन औ अ-
व्यवहित अमृत आत्मारूप
अंतर्भावके पूर्व पर्यायोंकी
न्यांई अपरोक्ष भावका कथन
अरु इसतैं अन्यकी आर्त्तरूपता
कहिके उत्तरकी समाप्ति औ
तदनंतर उद्दालककी प्रश्नतैं
उपरामता. १६-२३ १३९२

अष्टम अक्षर-ब्राह्मण ॥ ८ ॥

गार्गीकरि ब्राह्मणोंकूं संबो-
धन देके तिनकेतांई याज्ञव-
ल्क्यके प्रति दो प्रश्नोंके पूंछ-
नेकी प्रार्थना अरु तिनके प्र-
त्युत्तर प्रदत्ताके पक्षत्रिषै याज्ञव-
ल्क्यकी अजितताकी प्रतिज्ञा
औ ब्राह्मणोंकरि पूंछनेकी आज्ञा
गार्गीकरि याज्ञवल्क्यके

१ १४००

८ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

- प्रति दो बाणोके दृष्टान्तपूर्वक
दो प्रश्नोंके पूंछनेकी प्रार्थना औ
याज्ञवल्क्यकरि पूंछनेकी आज्ञा २ १४०२
- अंडकपालतैं उपरि नीचे
औ तिन दोनूके मध्य जो भूत
वर्त्तमान अरु भविष्यतरूप द्वै-
तका समूह जिसविषै एक हो-
वैहै सो पूर्वउक्त सूत्रसंज्ञक
वस्तु किसविषै ओत औ प्रोत
है । ऐसा गार्गीका प्रथम प्रश्न ३ १४०४
- आकाशविषै ओत. प्रोत है
(अव्याकृत आकाशकरि व्याप्त
है) ऐसा याज्ञवल्क्यकरि उत्तर. ४ १४०६
- प्रथम प्रश्नके उत्तरके श्र-
वणकरि प्रसन्न भई गार्गीकरि
द्वितीय प्रश्नकेअर्थ ताकूं साव-
धान करनेका कथन औ या-
ज्ञवल्क्यकरि पूंछनेकी आज्ञा. ५ १४०७
- गार्गीकरि प्रथम प्रश्नका
अरु मुनिकरि कहेताके उत्तरका

८ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

अनुवाद करिके “ अव्याकृत
आकाश । किसविषै ओतप्रोत
है” ॥ ऐसा गार्गीका द्वितीय
प्रश्न.....

६-७ १४०९

याज्ञवल्क्यकरि ब्राह्मणोंक-
रि उच्यमान अस्थूल अनणु
इत्यादि स्वरूपलक्षणभूत वि-
शेषणोंकरि विशिष्ट अक्षर (अ-
विनाशि निरूपाधिक ब्रह्म)का
कथन.

८ १४११

अक्षरके स्वरूपलक्षणविषै
प्रवेशार्थ उपलक्षणभूत वि-
शेषणनका कथन.

९ १४१५

इस अक्षरकूं न जानिके
किये यजन तपकी विनाशिफ-
लवान्ता औ ऐसैं मृतभयेकी
रूपणता पूर्वक । इस अक्षरकूं
जातिदे, मृतभयेकी ब्राह्मणता-
का कथन.

१० १४२९

इस अक्षरकी अद्रष्टता आ-

९ ब्राह्मण-विषय. कंडिकांक. पृष्ठांक.

दिकके होते द्रष्टाभाव आदिकके
औ तिसतैं अन्य द्रष्टाआदिकके
अभावके कथनपूर्वक । तिस अ-
क्षरविषै अव्याकृतरूप आका-
शके ओतप्रोतभाव (तिस-
करि व्याप्तभाव)का कथन. ११ १४३२

गार्गीकरि ब्राह्मणोंकेताई
याज्ञवल्क्यकी ब्रह्मवादकेप्रति
अजितताका कथन औ ताकी
प्रश्नतैं उपरामता. १२ १४३५

नवम शाकल्य-ब्राह्मण ॥ ९ ॥

शाकल्यकरि देवनकी सं-
ख्याके प्रश्न औ याज्ञवल्क्यकरि
संकोच विकाससैं देवनकी सं-
ख्या अरु स्वरूपका कथन.... १-९ १४४५

तिसीहीं प्राण (सूत्रात्मा)
रूप ब्रह्मके ध्यानअर्थ त्रिविध-
तापूर्वक अष्ट प्रकारके भेदका
उपदेश. १-११ १४६३

दुरुक्तिपूर्वक दिशाओंके वि-

९ ब्राह्मण-विषय. (पू. १०-१७) कंडिकांक. पृष्ठांक.
भागकरि पांचप्रकारसैं विभक्त
सर्व जगत्के हृदयविषै उप-
संहारअर्थ प्रश्नोत्तरका कथन. १८-२५ १४८०

शरीर हृदय अरु प्राणादि
वायुनकी परस्परविषै प्रतिष्ठा-
पूर्वकनिरुपाधिकब्रह्मका निर्देश
औ याज्ञवल्क्यकरि शाकल्यके
प्रति औपनिषद पुरुषका प्रश्न
अरु शाकल्यका निरुत्तरताकरि
मूर्द्धपात अरु ताके देहकी दुर्गति. २६ १५०५

याज्ञवल्क्यकरि ब्राह्मणोंके
प्रति यथेच्छ प्रश्न अरु उत्तरकी
आज्ञा औ ब्राह्मणोंका पूंछनेका
असामर्थ्य. २७ १५१५

याज्ञवल्क्यकरि ब्राह्मणोंके
प्रति संसा को वृक्षसमताके क-
थनपूर्वक । नष्ट शरीरके पुन-
र्जन्मके मूलका प्रश्न औ ब्रह्मकी
व्यक्त आनंदादिरूपता. (१-७)-२८ १५१७

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्या-

नुक्रमणिका समाप्ता ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

द्वितीयतार्त्तियाध्याययोरनुक्रमणी शुभ ।
समाप्तिमगमच्चत्र सत्प्रसंगप्रदर्शिनी ॥ २ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीद्वितीयाध्यायारंभः २

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य प्रथममजातशत्रुब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

दृष्ट्वा बालाकिर्हानूचानो गार्ग्य आ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य प्रथममजातशत्रुब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—दृष्ट (गर्वित) बालाकि ऐसा

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य प्रथम मजातशत्रुब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

आत्माः—आत्मां ऐसैहीं उपासना करै । औ

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषत् द्वितीयाध्यायगत प्रथमब्राह्मणस्य टिप्पणम् ॥ १ ॥

द्वितीयाध्याय (उक्त प्रथमाध्याय)विषै सूत्रित जे विद्या

स ॥ स होवाचाजातशत्रुं काश्यं । ब्रह्म
प्रसिद्ध अनूचान् (अनुवचनविषै समर्थ,
वक्ता) गार्ग्य होताभया ॥ सो काशिपति

ताके अन्वेषण (खोजने) के हुये सर्व अन्विष्ट
(खोज्या) होवैहै । औ सोई आत्मतत्व सर्वतैं
अतिशय प्रिय होनेतैं खोजनेकूं योग्य है ।
“ आत्माकूंहीं जाने । अहं ब्रह्मास्मि ” ऐसैं आ-
त्मतत्व । एक विद्याका विषय है ॥ औ जो भेद-

अरु अविद्या । तिनमें अविद्या प्रपंचनकरी । अब विद्याकूं
प्रपंचन करनेवास्ते चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायकूं आरंभ करते
हुये आचार्य । वृत्तकूं कीर्त्तन करै हैं ॥

२ ननु अन्य अर्थोंके होते आत्मतत्वहीं अनुसंधान कर-
नेकूं योग्य है । ऐसैं क्यूं कहते हो ? तहां कहैहैं ॥

३ तिसी (आत्मतत्व)की हीं खोजनेकी योग्यताके विषै
परम प्रेमका आस्पद होनेकरि परमानंदतारूप अन्य हेतुकूं
कहैहैं ॥

४ आत्मतत्वके ज्ञानकूं सर्वभाव (सर्वात्मता)की प्राप्तिरूप
फलवाला होनेतैंबी । सोई (आत्मतत्वहीं) खोजनेकूं योग्य
है । ऐसैं कहैहैं ॥

५ उक्त परिपाटी (रीति) करि प्रसिद्ध अर्थकूं संक्षेपकरि
कहैहैं ॥

६ उक्त अर्थांतरकूं अनुवाद करै हैं ॥

ते प्रवाणीति ॥ स होवाचाजातशत्रुः
 अजातशत्रुकेप्रति कहताभयाः—“ ब्रह्म तेरे
 तां कहताहूँ ” ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु
 वृष्टिका विषय है सो “अन्य यह है। अन्य मैं हूँ
 ऐसैं। सो नहीं जानता है” ॥ यह अविद्याका वि-
 षय है । “ एक प्रकारसैहीं देखनेकूं योग्य है ।
 सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावता है । जो इस (अ-
 नानाभूत ब्रह्म)विषै नानाकीन्यांई देखताहै”
 इत्यादि वाक्यनकरि सर्व उपनिषदनविषै वि-
 द्या अविद्याके विषय प्रविभक्त (विभागकूं
 प्राप्त किये)हैं ॥ तिनमें जो अविद्याका विषय

मनु भेददृष्टिके विषयकूं अविद्याकी विषयता कैसें है ?
 तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जो पुरुष भेददृष्टिके परा-
 यण बुधा जानता है । ऐसैं अविद्या तिस (भेद) दृष्टिकी
 सख सचन करी । तिस हेतुकरि ता (अविद्या)का जो विषय ।
 सो भेददृष्टिका विषय है ॥

मनु उक्त प्रकारके विद्या अरु अविद्याके विषय असं-
 मिलित (अभिलित) माननेकूं कैसें शक्य होवै हैं ? तहां कहैहैं ॥

सप्तान्नब्राह्मणविषै वृत्त (उक्त) अर्थकूं कथन करै हैं ॥
 साध्य आदिपद जो है । सो साध्य अरु साधनके अवांतर
 साध्यके संप्रह अर्थ है । उक्त प्रकारका भेदहीं विशेष है । ति-
 साध्यविषै विनियोग कहिये व्यघ्रस्थापन । तिसकरि । यह अर्थ है ॥

सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥

कहताभयाः—इस वाक्विषै गौअनके सहस्रकूं देतेहैं । जनक जनक । ऐसैं प्रसिद्ध जन धावन करैहैं । ऐसैं ॥ १ ॥

है ॥ सर्वहीं साध्य साधनादि भेदरूप विशेष विषै विनियोग (व्यवस्थापन) करि तृतीयाध्याय (प्रथमाध्याय) की समाप्तिपर्यंत व्याख्यान किया ॥ औ सो व्याख्यान किया अविद्याका विषय सर्वहीं दो प्रकारका है । भीतर प्राण जो है सो गृहके स्तंभादि रूप उपटंभकीन्यांई उपटंभक

१० उपसंहार ब्राह्मणके अंतविषै वृत्तकूं अनुवाद करैहैं ॥

११ अथवा उक्त जे विद्या अरु अविद्याके विषय । वे असंकीर्ण (विभक्त) कैसैं माननेकूं योग्य हैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१२ तहां उत्तर ग्रंथके विषयके परिशेष अर्थ पुरुषविध (चतुर्थ) ब्राह्मणके शेषकूं आरंभ करिके उक्तकूं दिखावैहैं ॥

१३ तब अविद्याके विषयकूं समाप्त होनेतैं अविद्वान् गार्ग्यकी प्रवृत्ति कैसैं भयी ? यह आशंका करिके । तिसके अर्थ अर्वांतर विभागकूं अनुवाद करै हैं ॥

१४ तिनहीं दोनूं प्रकारोंकूं दिखावते हुये आदिविषै सूक्ष्म शरीरकूं उपन्यास करै हैं ॥

अप्रकाशक अमृत है औ बाह्य कार्यलक्षण अप्रकाशक जन्म नाशरूप धर्मवाला गृहके तृण तुल्य सृष्टिकाकेसम सत्य शब्दका वाच्य मर्त्य है। औ तिसंकरि अमृत शब्दका वाच्य प्राण छन्न (आच्छादित) है। इस रीतिसँ उपसंहार किया है। औ सोइ प्राण बाह्य आधारनके भेदनविषै अ-

१५ ताकी बाह्यकरणद्वारा स्थूलविषयोविषै प्रकाशकता औ अमृतरूपता व्युत्पादन करी। द्वितीय प्रकारक कहते हुये स्थूलरूपकं दिखावै हैं ॥

१६ ताके किसीवी प्रकारसँ सूक्ष्मदेहकं अरु सत्यके प्रकाशक होनेतँ अप्रकाशकपनैकं अरु आगमापायी होनेकरि अवश्यपनैकं (तंडुलके तुपाकी न्याईं। अवहनन करनेके योग्यपनैकं) सूचन करै हैं ॥

१७ जैसे गृहका तृणादि बाहिरका अंग है। तैसें सूक्ष्मदेहका स्थूलदेह बाहिरका अंग हे। तथापि तृणादिकसँ विना स्थूलदेहके व्यवहारके अयोग्यताकी न्याईं तिस (सूक्ष्मदेह)कीवी स्थूलदेहविना व्यवहारकी योग्यता नहीं हैं। ऐसें मानिके - ६ ॥

१८ तिस (स्थूलदेह)का पूर्वप्रकरणके अंतविषै “ नाम-सत्य है ” इस ठिकाने प्रस्तुतपना है। ऐसें कहैहें ॥

१९ सर्वथा बाधसँ रहिततारूप सत्यता है। इस शंकाके निपट करनेकं विशेषण देते हैं ॥

२० ताके कार्यकं दिखावै हैं ॥

२१ घुत्तकं अनुवाद करिके अजातशत्रु-ब्राह्मणकं अवतार तं इहां आदित्य अरु चंद्रआदिक बाह्य आधारके भेद

नेक प्रकारसँ विस्तृत है ॥ प्राणरूप एक देव है
 ऐसँ कहियेहै । तिसीहीका वाह्यपिंड । एक ।
 साधारण । विराट् । वैश्वानर । आत्मा । पुरुष-
 विध । प्रजापति । क । हिरण्यगर्भ । इत्यादि पिं-
 डप्रधान (उपाधिविषयक) शब्दोंकरि कहिये
 है । सो सूर्यादि प्रविभक्त करणोंकरि युक्त होवै
 है ॥ औ ऐकरूप औ अनेकरूप ब्रह्म इतनाहीं
 है । इसतँ पर (अन्य) नहीं है । औ प्रत्येक
 शरीर भेदनविषै परिसमाप्त चेतनवाला कर्त्ता
 हैं औ याका अनेकप्रकारपना “अतिष्ठाः (उल्लंघन करिके व-
 र्तनेवाला) है । मूर्द्धा (सर्व भूतनका मस्तक) है” इत्यादि
 वक्ष्यमाण गुणोंके वशतँ देखनेकू योग्य है ॥

२२ तब तिसकी एकता किसप्रकारसँ है ? तहां कहैहैं ॥

२३ प्राणका नानात्व औ एकत्व कहा । तिनमें एकत्वकू
 विवरण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—प्राणकाहीं स्वभावभूत
 अनात्मरूप समष्टिरूप पिंड है । सो उपाधिकू विषय करने-
 वाले हिरण्यगर्भादि शब्दोंकरि तहां श्रुति स्मृतिनविषै कहिये
 है औ सो “अग्नि मूर्द्धा है । चंद्र अरु सूर्य चक्षु हैं” इत्यादि
 श्रुतितँ सूर्य आदिक प्रविभक्त करणोंकरि युक्त होवै है ॥

२४ जो ब्रह्म समस्त अरु व्यस्तरूप है । सो यह हिरण्य-
 गर्भमात्रही है । तिसतँ अधिक नहीं है । ऐसँ हिरण्यगर्भकू
 स्तुतिका विषय करै हैं ॥

२५ एकताकू स्पष्ट करिके प्राणके नानात्वकू स्पष्ट करै हैं ॥

२६ गोत्वआदिक जातिकी तुल्यताकू निषेध करैहैं ॥

२७ सांख्यमतकी न्याई केवल भोक्तापनैके पक्षकू निवा-

औं भोक्ता है ॥ इस अविद्याके विषयकूहीं आत्मभावकरि प्राप्तभया गार्ग्य ब्राह्मण । वक्ता (पूर्वपक्षवादी) स्थापन करियेहै । तिस (अमुख्यब्रह्म) तें विपरीत (मुख्यब्रह्म)विषै आत्मदृष्टिवाला अजातशत्रु नामका राजा । श्रोता (सिद्धांतवादी) स्थापन करियेहै ॥ ऐसैहीं जातैं पूर्वपक्ष अरु सिद्धांतकी आख्यायिकारूपकी सम्यक् वर्णन किया अर्थ । श्रोताके चित्तकूं वश होवेहै । यातैं आख्यायिकाकरि युक्त होना चाहिये ॥ जातैं विपर्ययके हुये तर्कशास्त्रकीन्यांई के-

रण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिस अमुख्यब्रह्मतैं विपरीत जो मुख्यब्रह्म । तिसविषै आत्मदृष्टिवाला राजारूप अजातशत्रु सिद्धांतवादी है ॥

२८ ननु वक्ता अरु श्रोतारूपसैं आख्यायिका क्यूं रचिये है तहां कहैहैं ॥

२९ एवंशब्दके अर्थकूहीं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां यातैं आख्यायिकाकरि होने योग्य है ॥

३० आख्यायिकाके अनंगीकारविषै दोषकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं तर्कशास्त्रकरि प्रतिपादन किया जो समझनेकूं नहीं शक्य होवै है । काहेतैं उत्प्रेक्षाके निरंकुश होनेतैं । तैसैं प्रश्न उत्तर अरु भावसैं वाक्योंकरि केवल अर्थ जाननेमें आवता है । जब तिनहीं आश्रय करिये है । तब तिन वाक्योंकरि

वल अर्थके अनुसारी वाक्योंकरि सम्यक् वर्णन किया अर्थ दुर्ज्ञेय होवैहै । वस्तु^{३१}कूं अत्यंत सूक्ष्म होनेतैं ॥ तैसैं कठवल्लीविषै “ जो (परमात्मा) बहुत पुरुषनकरि श्रवणके अर्थवी प्राप्त होनेकूं योग्य नहीं है” इत्यादि वाक्यनकरि सुन्दर संस्कारवाली (शुद्ध) देवबुद्धि (सात्विकीबुद्धि) करि गम्यता औ सामान्यमात्रबुद्धि (तामसी अरु राजसी बुद्धि) करि अगम्यता सविस्तर दिखाई है ॥ औ “ आचार्यवान् पुरुष जानता है । आचार्यतैंहीं विद्या ” ऐसैं छांदोग्यविषै ॥ औ “ वे ज्ञानी अरु तत्त्वदर्शी ज्ञानकूं उपदेश करैहैं ” ऐसैं गीताविषै औ इहांवी शाकल्यअरु याज्ञवल्क्यके संवादसैं महत् तात्पर्यकरि ब्रह्मकी अत्यंत गंभीरता आगे कहियेगी ॥ तैतैं आख्या-

प्रतिपादन कियावी अर्थ दुर्विज्ञेय होवै है । तिस हेतुकरि सो (आख्यायिका) सुखकरि समजने अर्थ अनुसरनेकूं योग्य है ॥

३१ ननु याकी दुर्विज्ञेयता काहेतैं है ? तहां कहैहैं ॥

३२ उक्त प्रकारके वस्तुकी दुर्विज्ञेयताविषै श्रुति स्मृतिके संवादकूं दिखावै हैं ॥ इहां सुष्ठुसंस्कारवाली परिशुद्ध देवबुद्धि सात्विकी बुद्धि है औ सामान्यमात्र जो बुद्धि । सो तामसी औ राजसी बुद्धि है ॥

३३ ब्रह्मके दुर्विज्ञेयपनैविषै फलितकूं कहैहैं ॥

यिकारूपसँ पूर्वपक्ष अरु सिद्धांतरूपकू आपादान करिके । ऐसँ वस्तुके समर्पण अर्थ आँचारविधिके उपदेशअर्थ । इस (द्वितीय अध्याय)का आरंभ श्लिष्ट (उभय अर्थयुक्त) है ॥ ईसरीतिसँ आचारवाले वक्ता औ श्रोताके मध्य आख्यायिकाविषै अनुगतअर्थ निश्चित होवै है । औ केवल

३४ आख्यायिकाके सुखसँ प्रतिपत्ति अर्थ उक्त अर्थांतरकू कहैहैं ॥ इहाँ यह अर्थ है:—उत्तम पुरुषतँ अधम पुरुषकरि प्रणिपात अरु उपसदन (उपसत्ति) आदिकद्वारा विद्या ग्रहण करनेकू योग्य है औ अधम पुरुषतँ (क्षत्रियादिकतँ) उत्तम पुरुष (ब्राह्मणादिक) करि तिस (प्रणिपात आदिक) विना श्रद्धाआदिक मात्रसँ सो (विद्या) प्राप्त होवै है । इस आचार प्रकारके ज्ञापनरूप अर्थवालावी यह अर्थ है ॥

३५ आख्यायिकाके उक्त प्रकारके अर्थविषै नित्यताकू कथन करै हैं ॥ इहाँ यह अर्थ है:—वक्ता अरु श्रोताके मध्य उक्त प्रकारके आचारवाले श्रोताकरि विद्या प्राप्त करनेकू योग्य है औ तिस प्रकारके वक्ताकरि सो (विद्या) उपदेश करनेकू योग्य है । ऐसा यह अर्थ । इस आख्यायिकाविषै अनुगत जानीये है । तातँ आचारविशेषके दिखावनेकू यह आख्यायिका युक्त है ॥

३६ आगम (वेद)के अनुसारी गुरुके संप्रदायतँहीं तत्वज्ञान प्राप्त होवै है औ जो केवल तर्क है । तिसके वशतँ यह बुद्धि नहीं सिद्ध होवै है । तिसप्रकार हुये केवल तर्कसँ करी हुयी तत्वबुद्धि होवै है । इस संभावना (निश्चय)के निषेध अर्थ आख्यायिका है । एसरीतिके पक्षांतरकू कहैहैं ॥

तर्कबुद्धिसे निषेधार्थ आख्यायिका है औ “यैह मति तर्ककरि प्राप्त होनेकूं योग्य नहीं है । तर्कशास्त्रसैं दग्धपुरुषके अर्थ [मति देना] नहीं” ऐसैं श्रुतिस्मृतिकरि श्रद्धा जो है सो ब्रह्मविज्ञानविषै परमसाधन है । यह आख्यायिकाका अर्थ है ॥ ॥ तिसै प्रकारहीं गार्ग्य अरु अजातशत्रुवृत्ती अतीव श्रद्धालुसैं आख्यायिकाविषै देखियेहै औ “श्रद्धावान् ज्ञानकूं पावताहै” ऐसैं गीता स्मृति है ॥ ॥ तैंहां पूर्वपक्षवादी अविद्याके विषय ब्रह्मका वेत्ता असम्यक् ब्रह्मका वेत्ता होनेतैंहीं दृप्त (गर्वित) अरु बलाकाका अपत्य (संतान) होनेतैं बालाकि ऐसा प्रसिद्ध आख्यायिकाविषै अनूचान कहिये अनुवचनविषै स-

३७ केवल तर्कसैं तत्त्वबुद्धि नहीं सिद्ध होवै है । इस अर्थविषै श्रुति स्मृतिकूं दिखावै हैं ॥

३८ प्रकारांतरसैं आख्यायिकाकूं अवतार देके तिसविषै आख्यायिकाकी अनुसारिताकूं दिखावै हैं ॥

३९ श्रद्धा जो है । सो ब्रह्मज्ञानविषै परम साधन है । इस अर्थविषै भगवत्कीबी संमतिहूं कहैहैं ॥

४० आख्यायिकाके अर्थके बहु प्रकारसैं स्थित हुये ताके अक्षरोंकूं व्याख्यान करै हैं ॥

४१ बालाकिकी पूर्वपक्षवादिताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

४२ ताके गर्वितपनैविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

मर्थ वक्ता वाग्मी (वाचालु) गोत्रतैं गार्ग्य हो-
 ताभया ॥ सोई किसी कालविशेषविषै अजात-
 शत्रु नामवाले काश्य (काशिराज)केप्रति
 समीप जायके “ तेरेताईं ब्रह्मकूं कहताहूं ”
 ऐसैं कहताभया ॥ ऐसैं उक्तिका विषय भया
 जो अजातशत्रु । सो कहताभया कि:—गौअ-
 नका सहस्र देतेहैं ॥ इस वाक्विषै जो तूं
 मेरेकूं “ तेरेताईं ब्रह्मकूं कहताहूं ” ऐसैं कहता-
 भया । तितनामात्रहीं गोसहस्रके प्रदानविषै
 निमित्त है । यह अभिप्राय है ॥ ॥ ननु साक्षात्
 ब्रह्मका कथनहीं गोसहस्रदानविषै काहेतैं नि-
 मित्तकूं अपेक्षा करता नहीं औ “ तेरेताईं ब्रह्मकूं
 कहता हूं ” इसरीतिकी यह वाक्हीं तो गोस-
 हस्र दानविषै काहेतैं निमित्तकूं अपेक्षा करती है ?
 यातैं “तेरेताईं ब्रह्मकूं कहताहूं” यह वाक्हीं गोस-
 हस्रके दानविषै निमित्तकूं अपेक्षा करै है ? तहां
 कहियेहै:—जातैं श्रुतिहीं राजाके अभिप्रायकूं कह-
 तीहै:—जैनक दाता है । जनक श्रोता है । ऐसैं

४३ श्रुतिकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां प्रसिद्ध जनकके दा-
 तापनै आदिकका प्रकाशक “ वै ” ऐसा निपात है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवासावादित्ये

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई

प्रसिद्ध है ॥ इन दोनूं वाक्यनविषै “ जनक । जनक ” ऐसैं दोनूं पद । अभ्यास (आवृत्ति) के विषय करियेहैं औ “ वै ” शब्द जो है सो प्रसिद्धिके प्रकाशने अर्थ है । जनक दित्सु (दाता) है औ जनक शुश्रूषु (श्रोता) है । ऐसैं जानिके ताकेतांई ब्रह्मके श्रोता वक्ता औ प्रतिजिघृक्षु (धनादिकके लेनेकी आशावाले) जन दौडते (अभिगमन करते) हैं । तातैं (मुक्तकी प्रसिद्धिके अतिक्रमणतैं) सो सर्व (दातापना आदिक) मेरेविषैबी तूं संभावना करताभयां हैं । यह राजाके अभिप्रायकी समाप्ति है ॥ १ ॥

टीकाः—इस प्रकारसैं श्रवणकी इच्छावाले अभिमुखीभूत (सन्मुख भये) राजाकेप्रति सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह आदित्य-विषै औ चक्षुविषै एक अभिमानी चक्षुरूपदा-

पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स
होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा

यह आदित्यविषै पुरुष है । याहीकूं में ब्रह्म
उपासताहूं । ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कह-
ताभयाः—इस (विज्ञेयब्रह्म)विषै संवादकूं

रकरि इस हृदयविषै प्रविष्ट औ मैं भोक्ता अरु
कर्ता हूं । ऐसैं अवस्थित पुरुष है । याहीकूं में
ब्रह्म देखताहूं कहिये इस कार्यकरणके संघा-
तविषै उपासना करताहूं ॥ ताँतैं मैं तिस पु-
रुषरूप ब्रह्मकूं तेरेताँई कहताहूं । उपासना कर ।
ऐसैं ॥ ॥ उक्त (उक्तिका विषय) जो अजात-
शत्रु सो माँ मा (मति कहो मति कहो) ऐसैं
हस्तसंज्ञासैं निवारण करता हुया प्रत्युत्तर क-

४५ हृदयविषै प्रविष्ट भोक्ता मैं हूं । इत्यादि प्रत्यक्ष अनु-
भवकूं प्रमाण करै हैं ॥

४६ दृष्टिके फलरूप निरंतरताकरि अभ्यासकूं दिखावैहैं ॥

४७ तितनेकरि मुजकूं क्या आया ? तहां कहैहैं ॥

४८ “ मा मा (मति मति) ” इस प्रतीककूं लेके अभ्या-
सके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां निवारण करताहुया कहताभया ।
ऐसैं संबंध है ॥

अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजेति
वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेव-

मति कर ॥ सर्व भूतनका अतिष्ठा (उल्लं-
घन करिके स्थित होनेवाला) मूर्धा (शिर)
औ राजा है । ऐसैं निश्चयकरि मैं याकूं उ-
पासताहूं । ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपास-

हताभयाः—इस जानने योग्य ब्रह्मविषै संवा-
दकूं मति कर । इहां “मां मा” ऐसा जो द्वि-
वचन है । सो आबाधन (च्यारी ओरतैं बाध
करने)के अर्थ है ॥ ऐसैं (तेरेकरि उक्त प्रका-
रसैं) जो विज्ञानका विषयरूप अर्थ है तिसविषै
हम दोनूंकूं विज्ञानके सम होनेतैंहीं विज्ञान-
वान्ताके समान हुयेबी हमकूं अविज्ञानवाले-
कीन्याई स्वीकारकरिके तिसीहीं अर्थकूं हमारे-
प्रति उपदेशसैं दिखावनेवाले (जनावने शरे)

४९ एक “ मा ” का निवारकरूप अर्थ है औ द्वितीय
“ मा ” का संवादके साथि संगतिरूप अर्थ है । ऐसैं वि-
भागके संभव हुये द्विवचन (तिन दोनूं मा शब्दनका सा-
थिहीं कथन) काहेतैं हैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५० ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

मुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्द्धा
राजा भवति ॥ २ ॥

ताहै । सो सर्व भूतनका अतिष्ठा मूर्द्धा
राजा होवैहै ॥ २ ॥

तुजकरि हम बाधित होवैंगे । यीतैं इस ब्रह्मविषै
संवादकूं मति कर ॥ जब अन्य जानताहैं तब
सो ब्रह्म कहनेकूं योग्य हैं औ जो (ब्रह्म) मु-
जकरि जानियेहीं है । सो कहनेकूं योग्य नहीं
हैं ॥ ॥ औ जब जानताहैं कि:-तूं ब्रह्ममात्रकूं
जानताहैं । परंतु ताके विशेषकरि उपासनके फ-
लनकूं नहीं जानताहैं ऐसैं ? सो माननेकूं योग्य
नहीं है । जातैं सर्व इसकूं मैं जानताहूं । जो तूं
कहताहैं ॥ कैसैं कि:-अतिष्ठाः कहिये सर्व भू-
तनकूं अतिक्रमणकरिके स्थित होवैहै औ सर्व
भूतनका मूर्द्धा (शिर)है औ प्रसिद्ध राजनेतैं

५१ तथापि गार्ग्यका किंचित् बाधन कैसैं भया ? तहां
कहैहैं ॥

५२ “सर्व भूतनका अतिष्ठा है” इत्यादि वाक्यकूं शंका-
द्वारा अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां इतिशब्द जो
है । सो गुणोंकी उपासनाकी समाप्ति अर्थ है ॥

स होवाच गाग्यो य एवासौ चन्द्रे

अर्थः—सो गाग्य कहताभयाः—जोई यह

(दीप्तिरूप गुणकरि युक्त होनेतैं) राजा है ॥
 ऐसैं इन विशेषणोंकरि विशिष्ट यह ब्रह्म । इस
 कार्यकरणके संघातविषै कर्त्ता औ भोक्ता है ।
 ऐसैं में प्रसिद्ध इस पुरुषकूं उपासताहूं इति
 (ऐसैं) ॥ फलवी इस प्रकारके उपासककूं हो-
 वैहै ॥ इहां इतिशब्द जो है सो गुणोंके उपा-
 सनाकी समाप्ति अर्थ है ॥ ॥ “जो इस पुरुषकूं
 ऐसैं (उक्तप्रकारसैं) उपासताहै । सो अ-
 तिष्ठा औ सर्वभूतनका मूर्द्धा औ राजा होवै-
 है ॥ जैसे गुणका उपासनहीं है । तैसाहीं फल
 होवैहै “ तौ (परमेश्वर) कूं जैसे जैसे उपास-
 ताहै । सोई होवैहै ” इस श्रुतितैं ॥ २ ॥

टीकाः—अजातशत्रुकरि संवादसैं आदित्य-
 रूप ब्रह्मके निषेध किये हुये । सो गाग्य चंद्र-

५३ पूर्वोक्त रीतिसैं तिन गुणोंकरि विशिष्ट ब्रह्मके उपा-
 सकके फलकूंवी जानताहूं । ऐसैं कहिके फलवाक्यकूं ग्रहण
 करै हैं ॥

५४ उक्त प्रकारका फल क्यूं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स
होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा
बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अ-

चंद्रविषै पुरुष है । यहींकूं मैं ब्रह्म उपा-
सताहूं ऐसैं । सो अजातशत्रु कहताभयाः—
इसविषै संवादकूं मतिकर । बडा शुक्लवस्त्र-
वाला सोमराजा है । ऐसा निश्चय करिके

माविषै अन्य ब्रह्मकूं प्राप्त होताभया ॥ ॥
जोइ यह चंद्रविषै औ मनविषै अरु बुद्धिविषै
एक पुरुष भोक्ता औ कर्ता है । ऐसैं पूर्वकी-
न्याई विशेषण है ॥ कहिये याहिकूं मैं ब्रह्म
उपासताहूं । औ तूं ऐसैं उपासना कर ॥ ऐसैं
कहे हुये सो अजातशत्रु कहताभया किः—इ-
सविषै मा मा (मति मति) संवादकूं कर ॥

५५ एक पुरुष है ताहीकूं मैं ब्रह्म ऐसैं उपासताहूं औ
तूंवी ऐसैं उपासना कर । ऐसैं कहे हुये “मा मा (मति मति)”
इत्यादि वाक्यकरि अजातशत्रु कहता भया । ऐसैं कहैहैं ॥

हमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते-
ऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति । नास्यान्नं
क्षीयते ॥ ३ ॥

मैं इनकूं उपासताहूं ऐसैं ॥ सो जो याकूं
ऐसैं उपासताहै । ताका दिनदिनविषै सुत
(अग्निहोत्ररूप यज्ञविषै सोमवल्लीका रस)
है । सो प्रसुत (सोमयागादि विकृतिन-
विषै प्रसृत) होवैहै ॥ औ याका अन्न क्ष-
यकूं पावता नहीं ॥ ३ ॥

बृहत् (महान्) । अरु पाण्डर (शुक्ल) है वस्त्र जिस-
का सो यह पाण्डरवासा है । प्राणकूं जलरूप
शरीरवाला होनेतैं ॥ “ औ जो अन्नभूत अरु यज्ञ

५६ भानुमंडलतैं द्विगुण चंद्रमंडल है । इस प्रसिद्धिकूं
आश्रय करिके कहैहैं ॥

५७ चंद्रके अभिमानी प्राणका पांडर (शुक्ल) वस्त्र कैसें
संभवै है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थहै :—
जातैं पुरुष शरीरसैं वस्त्रकी न्यांई वेष्टित होवै है औ जलोंका
शुक्लपना प्रसिद्ध है औ “ जल प्राणके वस्त्र हैं ” यह श्रुति
है । यातैं प्राणका शुक्लवस्त्रवान्पना युक्त है ॥

५८ सोम शब्दकरि केवल चंद्रमा नहीं ग्रहण करियेहै ।

(प्रकृति)विषै लतास्वरूप उपजता है । ऐसा सोमराजा है । ऐसैं प्रसिद्ध तिस चंद्रमारूप औ बुद्धिनिष्ठ लतास्वरूप पुरुषकूं एकरूप करिके याहींकूं “मैं ब्रह्महूं” ऐसैं उपासता (अहंग्रह उपासना करता) हूं ॥ “जो उक्तप्रकारके गुणवाले ब्रह्मकूं उपासताहै । ताकूं दिनदिनमें यज्ञ (अग्निहोत्ररूप प्रकृति)विषै जो सोमरूप सोमलताका रस है । सो विकारन (सोमयागादि विकृतिन)विषै प्रसवकूं प्राप्त होवैहै । औ इस अन्नस्वरूप उपासकका अन्न क्षयकूं पावता नहीं ॥ ३ ॥

किंतु लतावी ग्रहण करिये है । काहेतैं समान धर्मवाली होनेतैं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—लतास्वरूप चंद्रमाकूं औ बुद्धिनिष्ठ पुरुषकूं एककी न्याईं करिके ताकी अहंग्रहकरि उपासना है ॥

५९ अब उपासनाके फलकूं कहैहैं ॥ इहां यज्ञशब्दकरि प्रकृति कही है औ विकार शब्दकरि विकृतियां ग्रहण करिये हैं । यातैं उक्त प्रकारके उपासककूं प्रकृति अरु विकृतिके अनुष्ठानका सामर्थ्य लीलाकरि प्राप्त होने योग्य है ॥

६० अन्नके अक्षयकी उपासनाकी अनुसारी होनेतैं । घटितपनैकूं अभिप्रायका विषय करिके उपासककूं विशेषण देते हैं ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ विद्यु-
ति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स
होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा-
स्तेजस्वीति वा अहमेतमुपास इति ॥ स
य एतमेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति ।
तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ॥ ४ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह
विद्युत्विषै पुरुष है याहींकूं मैं ब्रह्म उपास-
ताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—
इसविषै संवादकूं मतिकर । तेजस्वि है ।
ऐसा निश्चयकरिके मैं इसकूं उपासताहूं
ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो तेज-
स्वीहीं होवैहै ॥ तेजस्विनीहीं याकी प्रजा
होवैहै ॥ ४ ॥

टीकाः—तैसैं विद्युत्विषै त्वचाविषै औ हृ-
दयविषै एक देवता है । ताका तेजस्वी ऐसा
विशेषण है । ताका फलः—निश्चयकरि तेज-

६१ संवाद (विवाद)रूप दोषकरि चंद्ररूप ब्रह्मकेबी नि-
षेध कीये हुये बालाकि अन्य ब्रह्मकूं कहैहैं ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमाकाशे
पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स हो-
वाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टाः पू-
र्णमप्रवर्त्तीति वा अहमेतमुपास इति ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह
आकाशविषै पुरुष है । याहीकूं मैं ब्रह्म उ-
पासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहता
भयाः—इसविषै संवादकूं मतिकर । पूर्ण अ-
प्रवर्त्ति है । ऐसा निश्चय करिके मैं इसकूं
स्वी होवैहै । या(उपासक)की प्रजा तेजस्वि-
नी होवैहै ॥ इहां विद्युतनकी बहुलताके अंगी-
कारतैं आत्मा (आप उपासक)विषै औ प्रजा-
विषै फलकी बहुलता है ॥ ४ ॥

टीकाः—तैसैं आकाशविषै कहिये हृदया-
काशविषै औ हृदयविषै एक देवता है ॥ पूर्ण
औ अप्रवर्त्ति है । ये दोनूं विशेषण हैं । तिनमें
पूर्णतारूप विशेषणका फल यह हैः—निश्चित प्र-

६२ ननु एक उपासन अनेक फलवाला कैसें है ? यह
आशंका करिके कहैहैं ॥

स य एतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया प-
शुभिर्नास्यास्माल्लोकात्प्रजोद्वर्तते ॥ ५॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं वायौ
पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स हो-

उपासताहूं ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासता
है सो प्रजाकरि अरु पशुनकरि पूर्ण होता
है । याकी प्रजा इस लोकतैं उद्वर्तन (वि-
च्छेद) कूं पावती नहीं ॥ ५ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह
वायुविषै पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं

जाकरि औ पशुनकरि पूर्ण होवैहै ॥ अप्र-
वर्त्ति विशेषणका फलः—याकी प्रजा इस लो-
कतैं उद्वर्तन (विच्छेद) कूं प्राप्त होती नहीं
कहिये प्रजाके संतानका अविच्छेद होवैहै ॥ ५ ॥

टीकाः—तैसैं वायुविषै प्राणविषै औ हृदय-
विषै एक है । ताका विशेषणः—इंद्र (परमेश्वर) ।
वैकुण्ठ (अप्रसह्य) । औ नपरोंकरि जित पूर्वा

वाचाजातशत्रु मां मैतस्मिन्संवदिष्टा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते जिष्णुर्हापराजिष्णुर्भवत्यन्यतस्त्यजायी ॥ ६ ॥

ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इस-विषै संवादकूं मतिकर ॥ इंद्र परमेश्वर वैकुंठ (अप्रसह्य) अपराजिता सेना है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो जिष्णु अपराजिष्णु अरु अन्यतस्त्यजायी होवैहै ॥ ६ ॥

होनेतैं अपराजिता ऐसी सेना । मँरुतन (वायुन)के गणरूपताकी प्रसिद्धितैं ॥ उपासनका फलबीः—निश्चयकरि जिष्णु (जयनशील) औ अपराजिष्णु (अन्योंकरि अजित स्वभाव-

६३ एक वायुविषै अपराजिता सेना है । ऐसा गुण कैसें संभवै है ? तहां कहैहैं ॥

६४ तीन विशेषणके तीन फलकूं क्रमसैं व्युत्पादन करै हैं ॥ इहां जो हवि फेंकियेहै । तिस सर्वकूं भस्मी करनेकरि संहारता है । तिसकरि अग्नि “ विषासहि ” है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ
 पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स
 होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा
 विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति ॥
 स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भव-
 ति । विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥ ७ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह
 अग्निविषै पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपास-
 ताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—
 इसविषै संवादकूं मतिकर । विषासहि है ।
 ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ॥
 जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो विषासहि
 होवैहै । विषासहि याकी प्रजा होवैहै ॥७॥
 वाला) होवैहै औ अन्यतस्त्यन (अन्यमा-
 तातैं उत्पन्न सपत्नों)का जायी (जयनशील)
 होवैहै ॥ ६ ॥

टीकाः—अग्निविषै वाचाविषै औ हृदयविषै
 एक है । ताका विशेषण विषासहि (अन्योन्ना

स होवाच गाग्यो य एवायमप्सु
पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स
होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः
प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति ॥

अर्थः—सो गाग्य कहताभयाः—जोई यह
जलोंविषै पुरुष है याहीकूं में ब्रह्म उपास-
ताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—
इसविषै संवादकूं मतिकर । प्रतिरूप है ।
ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं

मर्षयिता) है । अग्नि^{६५}की बहुलतातैं फलकी ब-
हुलता पूर्वकीन्यांई है ॥ ७ ॥

टीकाः—जलोंविषै रेतविषै औ हृदयविषै ए-
क है । ताका विशेषणः—प्रतिरूप (अर्नुरूप) है ।
अर्थ यह जो श्रुति स्मृतिसैं अप्रतिकूल है ॥ ताके

६५ जैसें पूर्व विद्युतनकी बहुलताकरि आत्माविषै औ
प्रजाविषै फलकी बहुलता कृही । तैसें इहांबी अग्नि^{६५}की बहुल-
तातैं उपासकके आत्माविषै औ प्रजाविषै प्रदीप्त अग्निवान्पना
सिद्ध होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

६६ प्रतिकूलतारूप प्रतिरूपता (प्रतिविबता) होवैगी ।
यह निषेध करै हैं ॥

स य एतमेवमुपास्ते प्रतिरूपं ह्येवैनमु-
पगच्छति नाप्रतिरूपमथो प्रतिरूपो-
ऽस्माज्जायते ॥ ८ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमादर्श
पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स

ऐसैं । सो जो याकूं ऐसैं उपासताहै । प्र-
तिरूपहीं याकूं प्राप्त होवैहै । अप्रतिरूप
नहीं ॥ औ यातैं प्रतिरूप जन्मताहै ॥८॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह
आदर्शविषै पुरुष है । याहीकूं मैं ब्रह्म

उपासनका फलः—प्रतिरूप (श्रुति स्मृतिकी
आज्ञासैं अनुरूप) हीं या (उपासक)केतांई
प्राप्त होवैहै । औ यातैं विपरीत अन्य फल
नहीं होवैहै ॥ इस (उपासक)तैं तिस प्र-
कारका (श्रुति स्मृतिसैं अनुकूल) हीं [पुत्र]
उपजता है ॥ ८ ॥

टीकाः—आदर्शविषै औ प्रसाद (प्रसन्नता)

होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा
रोचिष्णुरिति वा अहमेतमुपास इति ॥
स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुर्ह भवति ।
रोचिष्णुर्हास्य प्रजा भवत्यथो यैः स-
न्निगच्छति सर्वाःस्तानतिरोचते ॥ ९ ॥

उपासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहता-
भयाः—इसविषै संवादकूं मतिकर । रोचिष्णु
है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपास-
ताहूं ऐसैं । जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो
रोचिष्णुहीं होवैहै । रोचिष्णुहीं याकी प्रजा
होवैहै । औ जिनोंकेसाथि सम्यक् निर्गमन
करैहै तिन सर्वकूं अतिक्रमण करिके रोचता
(प्रकाशता) है ॥ ९ ॥

के स्वभाववाले अन्य खड्गआदिकविषै औ सत्त्व-
गुणकरि शुद्धि स्वभाववाले हार्द (हृदयसंबन्धि
मन)विषै एक देवता है । ताका विशेषणः—

६७ “ औ हार्दविषै ” याहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां सर्वत्र
“ एका ” इस विशेषणकी “ देवता ” ऐसैं विशेष्यताकरि
संबन्धकूं पावती है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं यन्तं
पश्चाच्छब्दोऽनूदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास
इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मि-
न्सवंदिष्टा असुरिति वा अहमेतमु-

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—गमन
करनेवालेके पीछेतैं जोई यह शब्द अनं-
तर उदय होवैहै । याहीकूं मैं ब्रह्म उपास-
ताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—
इसविषै संवादकूं मतिकर । असु (जीवन

रोचिष्णु (दीप्तिस्वभाववाला) है ॥ औ फल ।
सोई (रोचिष्णुपना) है ॥ इहां रोचनके आधारकी
बहुलतातैं फलकी बहुलता है ॥ ९ ॥

टीकाः—जिस तिस गमन करनेवालेकेतांई
जोई यह शब्द प्रष्टतैं पीछे उदय होवैहै
औ अध्यात्मरूप जीवनका हेतु प्राण है । ताकूं
एकरूप करिके कहैहैंः—याहीकूं मैं ब्रह्म ऐसैं
उपासताहूं । इत्यादि ॥ असु जो प्राण । जीव-
नका हेतु है । यह गुण है । ता (गुणवाले उ-

पास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते सर्व्वं
हैवास्मिँल्लोक आयुरेति । नैनं पुरा
कालात्प्राणो जहाति ॥ १० ॥

स होवाच गाग्यो एवायं दिक्षु पुरुष
हेतु प्राण) है । ऐसा निश्चय करिके में
याकूं उपासताहूं ऐसैं । जो याकूं ऐसैं उ-
पासताहै सो इस लोकविषै सर्व्वहीं आयुकूं
पावताहै । याकूं कालतैं पूर्व प्राण छोडता
नहीं ॥ १० ॥

अर्थः—सो गाग्य कहताभयाः—जोई यह
पासन)का फलः—सर्व आयुकूं इस लोकविषै
पावताहै । कर्मकरि यथाप्राप्त जो आयु है
ताकूं कहिये कर्मफलकरि परिच्छिन्नकालतैं पूर्व
रोगआदिककरि पीड्यमानवी या (उपासक)
कूं प्राण त्यागता नहीं ॥ १० ॥

टीकाः—दश दिशाओंविषै । दोनूं कर्णों-
विषै औ हृदयविषै एक देवता है । औ अवि-

एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचा-
जातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा द्विती-
योऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति ॥
स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान् ह भ-
वति नास्माद्गणश्छिद्यते ॥ ११ ॥

दिशाओंविषै पुरुष है याहीकूं में ब्रह्म उपा-
सताहूं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इस
विषै संवादकूं मतिकर । द्वितीय अनपग है ।
ऐसा निश्चय करिके में याकूं उपासताहूं
ऐसैं । जो याकूं ऐसैं उपासताहै । द्विती-
यवान्हीं होवैहै । या (उपासक) तें गण
विच्छेदकूं पावता नहीं ॥ ११ ॥

युक्त (वियोगरहित) स्वभाववाले अश्विन
(अश्विनिकुमार) नामक दो देव हैं सो । तिस
(देव) का गुणः—द्वितीयवान्पना औ अनपगत्व
(परस्पर अवियुक्तता) है । दश दिशाओंकूं औ
अश्विनिकुमारोंकूं इस प्रकारके धर्मकरि युक्त

६९ कौन फेर यह एक देवता है ? तहां कहैहैं ॥

७० उक्त फलवाले दोनूं गुणोंकूं उपपादन करैहैं ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं छाया-
मयः पुरुषः एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥
स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदि-
ष्टा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह
छायामय पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपा-
सताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभ-
याः—इसविषै संवादकूं मतिकर । मृत्यु है ।
ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं

होनेतैं ताके उपासककूं सोई कहिये गणका अ-
विच्छेद औ द्वितीयवान्पना (साधु भृत्योंकरि
परिवृत्तपना) फल होवैहै ॥ ११ ॥

टीकाः—छाया (बाह्य अंधकार)विषै अरु
अध्यात्म (आंतरीय) आवरणस्वरूप अज्ञान-
विषै औ हृदयविषै एक देवता है । ताका वि-
शेषण (उपमा) मृत्यु है । ताके उपासनका

७१ शब्दब्रह्मके उपासककी न्याई तमोब्रह्मके उपास-
ककूंबी फल होवै है । ऐसैं कहैहैं ॥

स य एतमेवमुपास्ते सर्वं० हैवास्मिं-
ल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालान्मृत्यु-
गच्छति ॥ १२ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमात्म-

ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो इस
लोकविषै सर्वहीं आयुकूं पावताहै । याकूं
कालतैं पूर्व मृत्यु आवता नहीं ॥ १२ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जो यह

फल सर्व पूर्ववत् जानिलेना । मृत्युके अनागम
हुये रोगादि पीडाका अभाव विशेष है ॥ १२ ॥

टीकाः—आत्मा (प्रजापति) विषै बुद्धिविषै
औ हृदयविषै एक देवता है ॥ ताका उपासक
निश्चयकरि आत्मन्वी (आत्मवान्) होवैहै
औ याकी प्रजा निश्चयकरि आत्मन्विनी

७२ औ फल भेदके हुये उपासनका भेद कैसें होवै है ?
यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७३ व्यस्तब्रह्मोंकूं उपन्यास करिके । अब समस्तब्रह्मोंकूं उ-
पदेश करै हैं ॥ आत्मवान्ता कहिये वश्यात्मकता ॥

नि पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स
होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा
आत्मन्वीति वा अहमेतमुपास इति ॥
स य एतमेवमुपास्ते आत्मन्वीह भ-

आत्मा(बुद्धि)विषै पुरुष है । याहीकूं मैं
ब्रह्म उपासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु क-
हताभयाः—इस (उक्तब्रह्म)विषै संवादकूं
मतिकर । आत्मन्वी (आत्मवान्) है । ऐसा
निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसैं ॥ जो
याकूं ऐसैं उपासताहै । सो आत्मन्वी (आत्म-

(आत्मावाली) होवैहै । बुँद्धिकी बहुलतातैं प्र-
जाविषै [फलका] संपादन है ॥ ॥ आपहीं प-
रिज्ञात होनेकरि आदित्यादि वस्तुरूप ब्रह्मोंके
उक्त प्रकारके क्रमकरि प्रत्याख्यात (निषिद्ध)
भये क्षीण भया है । ब्रह्मविज्ञान जिसका औ अ-
प्रतिभासमान (अप्रतीयमान) है उत्तर जि-

७४ फलकूं आत्मगामी होनेतैं प्रजाविषै तिसका कथन
उचित नहीं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

वत्यात्मन्विनी हास्य प्रजा भवति ॥
स ह तूष्णीमास गार्ग्यः ॥ १३ ॥

स होवाचाजातशत्रुरेतावन्नू ३ इत्ये
वान्) होवैहै । आत्मन्विनी याकी प्रजा हो-
वैहै ॥ सो गार्ग्य तूष्णी होता भया ॥ १३ ॥

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—क्या
[ब्रह्म जान्या] है ? [तब] गार्ग्य कहता-
भयाः—] इतनाहीं [जान्या] है । [तब
अजातशत्रु कहताभयाः—] इतने [विदित]

सकूं ऐसा जो गार्ग्य (बालाकि) । सो तूष्णी
(नीचे मस्तकवाला) होताभया ॥ १३ ॥

टीकाः—तिस गार्ग्यकूं तिसप्रकारका च्यारीं
ओरतैं लखिके (जानिके) सो अजातशत्रु कह-
ताभयाः—“क्या इतनाहीं है” ऐसैं । कहिये
कैंया इतनाहीं ब्रह्म तेरेकरि निर्ज्ञात (जान्या)
है अथवा अधिकबी है ॥ इस रीतिसैं कहा ।
तब इतर (गार्ग्य) कहताभयाः—“ इतनाहीं

तावद्धीति ॥ नैतावता विदितं भवतीति ।
 स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति ॥ १४ ॥
 करि [ब्रह्म] विदित नहीं होवैहै ऐसैं ॥
 सो गार्ग्य कहताभयाः—उपगमन करताहूं
 (तेरेप्रति शरण होताहूं) ॥ १४ ॥

है ” ऐसैं ॥ ॥ इतने विदित (जानने) करि
 ब्रह्म विदित (विज्ञात) नहीं होवैहै । इस अ-
 भिप्रायकरि अजातशत्रु कहताभयाः—तूं किसैं
 अर्थ “ ब्रह्म तेरेतांई कहता हूं ” ऐसैं गर्वित
 (गर्वयुक्त भया) हैं ॥ ॥ ननु. क्या इतना जो
 विदित है सो विदितहीं नहीं होवैहै ? तहां क-
 हियेहैः—फलवाले विज्ञानके श्रवणतैं [इतनाहीं
 विदित विदितहीं होवै] नहीं ॐ वाक्यनकी
 अर्थवादताहीं (स्तुतिमात्रकी बोधकताहीं)
 जाननेकूं शक्य नहीं है । जातैं “ सर्व श्रुतनका

७६ वाक्यार्थकूं शंका समाधानकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७७ आदित्यआदिकके अविदितपनैके निषेधकूं प्रतिज्ञा
 करिके हेतुकूं कहैहैं ॥

७८ ये वाक्य । फलवाले विज्ञानके परायण नहीं हैं । अर्थ
 वादरूप नहीं होनेतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

अतिष्ठाः (अतिक्रमणकरिके वर्तनेवाला) हैं ”
 इत्यादिक अपूर्वविधिके परायण वाक्य । प्रति
 उपासनाके उपदेशकेताईं लखियेहैं ॐ तिन
 (उपासनाओं)के अनुसारि फल विभक्त (न्यारे
 न्यारे) सर्वत्र (सर्वठिकाने) सुनिये हैं । उक्त
 वाक्यनकी अर्थवादताके हुये यह असमञ्जस
 (असमीचीन) होवैगा ॥ ॥ ननु तब इतनेकरि
 विदित नहीं होवैहै । इस प्रकार तुम कैसे कहते
 हो ? तहां अजातशत्रु कहैहैः—यह दोष नहीं है ।
 काहेतैं ज्ञानके निषेधकूं अधिकारीकी अपेक्षा-
 वाला होनेतैं ॥ जातैं श्रवणकी इच्छावाले अ-
 जातशत्रुकेताईं ब्रह्मके उपदेश अर्थ अमुख्य ब्र-

७९ औ फलवाले होनेतैं अपूर्वविधिके परायण ये वाक्य
 हैं । ऐसैं कहैहैं ॥

८० अर्थवादताके हुयेबी तिन वाक्यनकूं अपूर्वविधिरूप
 अर्थवानता क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

८१ वाक्यनकी फलवाले विज्ञानविषै तत्परताकूं अंगीकार
 करिके । निषेध वाक्यकी गतिकूं प्रतिवादी पूछताहै ॥

८२ तिस (निषेध वाक्य)की व्यर्थताकूं सिद्धांती । परि-
 हार करै हैं ॥

८३ वेदन (जानने)के निषेधकूं अधिकारीकी अपेक्षावाला
 होनेतैं । ऐसैं कथन किये अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

ब्रह्मका वेत्ता गार्ग्य प्रवृत्त भयाहै । तातैं मुख्य ब्रह्मके वेत्ता अजातशत्रुकरि अमुख्य ब्रह्मका वेत्ता जो गार्ग्य । सो “ जिस मुख्य ब्रह्मकूं तूं कहनेकूं प्रवृत्त भया हैं । ताकूं नहीं जानताहैं ” ऐसैं कहनेकूं युक्तहीं है ॥ जैब (जो) अमुख्य ब्रह्मका विज्ञानबी अजातशत्रुनैं निषेधका विषय किया होवै । तब (तो) ता (अमुख्यब्रह्मज्ञान) कूं “ इतनेकरि ” ऐसैं नहीं कहता । किंतु “ तुजने कलुबी जान्या नहीं ” ऐसैं कहता । तातैं ये (उक्त प्रकारके) ब्रह्म । अविद्याके विषयविषै होवैहैं “ औ परब्रह्मके विज्ञानकूं इस (अमुख्य ब्रह्मके) विज्ञानरूप द्वारवाला होनेतैं “ इतनेकरि विदित नहीं होवैहै ” ऐसैं कहनेकूं

८४ ननु “ इतनेकरि विदित नहीं होवै है ” ऐसैं अविशेष (सामान्य) करि अमुख्य ब्रह्मका ज्ञानबी अजातशत्रुनैं निषेध किया होवैगा ? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै । सो बने नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

८५ किंवा:—निष्काम पुरुषकरि जब ये (उक्त प्रकारके) उपासन । अनुष्ठान करिये हैं । तब इन (उपासनों) कूं ब्रह्मज्ञानरूप अर्थवाले होनेतैं अमुख्य ब्रह्मज्ञानके निषेधविना तिनके निषेधका संभव है । ऐसैं कहैहैं ॥

युक्तहीं है ॥ अविद्याके विषयविषै इन (आदि-
त्यादिकन)का विज्ञेयपना (ज्ञानका विषयपना)
औ नाम रूप कर्म स्वरूपपना तृतीय (प्रथम)
अध्यायविषै दिखाया । तौतैं “ इतनेकरि वि-
दित नहीं होवैहै ” ऐसैं कहनेवाले अजातशत्रु-
करि “ अधिक ब्रह्म जाननेकूं योग्य है ” ऐसैं
दिखाया होवैहै ॥ “ औ सो (ब्रह्म) अनुपसन्न
(उपसत्तिरहित) पुरुषकेताई कह्योहैं योग्य
नहीं है । इस आचारविधिका जाननेवाला
गार्ग्य । आपहीं कहताभयाः—जैसैं अन्य शिष्य
गुरुकेप्रति होताहै । तैसैं मैं तेरेप्रति उपसन्न
(शरणागत) होताहूं ऐसैं ॥ १४ ॥

८६ ननु आदित्यआदिकहीं मुख्य ब्रह्म हैं । यातैं निषे-
धकी व्यर्थता तिस अवस्थावाली है ? यह आशंका करिके ।
कहैहैं ॥

८७ आदित्यआदिककी मुख्यब्रह्मताके असंभवतैं निषे-
धकूं घटित होनेतैं तिस (निषेध)के सामर्थ्यतैं सिद्ध अर्थकूं
उपन्यास करै हैं ॥

८८ उपगमन (गुरुसमीपजाने)के वाक्यकूं उठायके व्या-
ख्यान करै हैं ॥ यह आचार विधिरूप शास्त्रवचन हैः—आ-
पत्कालविषै अब्राह्मणतैं अध्ययन विधान करियेहै औ जहां
लगी अध्ययन होवै । तहां लगी गुरुकी अनुसारी वर्तनेरूप

स होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमं चैत-
द्यद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद्ब्रह्म मे वक्ष्यती-

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—सो
प्रतिलोम (विपरीत) है । जो ब्राह्मण हुया
क्षत्रियकेप्रति “ ब्रह्म मेरेतांई कहैगा ”

टीकाः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—सो
प्रतिलोम (विपरीत) है ॥ सो क्या कि ?

जोः—ब्राह्मण (उत्तमवर्ण) है । सो आचार्य-
ताविषै अधिकारी हुया अनाचार्यस्वभाववाले
क्षत्रियकेप्रति “ मेरेतांई ब्रह्मकूं कहैगा (उ-
पदेश करैगा)” ऐसैं शिष्यकीं वृत्तिकरि समीप
जावै (उपसत्तिपूर्वक शरणागत होवै) । यह
(ऐसैं करना) आचारकी विधिरूप शास्त्रनविषै
निषिद्ध है ॥ तातैं तूं आचार्य हुयाहीं स्थित-
हो । तेरेकूं मैं विज्ञापन (सूचन) करूंगाहीं ॥
जिसके विदित भये ब्रह्म विदित होवैहै । ऐसा

सुश्रूषा कर्त्तव्य है । अब्राह्मणरूप गुरुविषै (गुरुकेपास) शिष्य
अत्यंतवास जैसैं होवै तैसैं वसै नहीं ॥

८९ आदित्यआदिक ब्रह्मतैं मुख्यब्रह्मकी विलक्षणताकूं
कहैहै ॥

ति । व्येव । त्वा ज्ञपयिष्यामीति । तं पा-
 णावादायोत्तस्थौ ॥ तौ ह पुरुषः सुप्तमा-
 जग्मतुस्तमेतैर्नामभिरामन्त्रयाञ्चक्रे ।
 बृहन् पाण्डरवासः सोम राजन्निति । स
 ऐसैं जानिके उपगमन करै ॥ तूं स्थित हो ।
 तेरेताईं विज्ञापन करूंगा (ब्रह्म जनावूंगा)
 ऐसैं । ता (गार्ग्य) कूं हस्तविषै लेके ऊठ-
 ताभया ॥ वे दोनूं सुप्त पुरुषकेप्रति गमन
 करतेभये । ताकूं इन नामोंकरि [अजात-
 शत्रु] आमंत्रण करताभयाः—हे बृहन् ! शुक्ल
 वस्त्रवाला ! सोम । राजन् ! ऐसैं सो ऊठता न
 जो मुख्य ब्रह्म । सो जाननेकूं योग्य है ॥ फेर
 तिस गार्ग्यकूं लज्जासहित जानिके । विश्वासके
 जननअर्थ हस्तविषै ग्रहण करिके ऊठता-
 भया ॥ वे गार्ग्य अरु अजातशत्रु कहींक रा-
 जगृहके प्रदेशविषै सुप्त (सोये) पुरुषकेपास
 आवतेभये । औ ता सुप्त पुरुषकूं प्राप्त होयके ।
 हे बडा ! अरु शुक्लवस्त्रवाला ! हे सोम !

नोत्तस्थौ । तं पाणिना पेषं बोधयाञ्च-
कार । स होत्तस्थौ ॥ १५ ॥

भया ॥ ताकूं हस्तसैं मरोडीके बोधन कर-
ताभया । [तव] सो ऊठताभया ॥१५॥

हे राजन् ! ऐसैं इन (पूर्वउक्त) नामोंकरि
आमंत्रण करताभया (बुलावताभया) ॥ ऐसैं
बुलाया हुआबी सो सुप्त पुरुष नहीं उठाता-
भया । तव तिस अप्रतिबुद्धयमान (नहीं जगे)
पुरुषकूं हस्तसैं मरोडीके बोधन करताभया (ज-
गावता भया) । तिसकरि सो (सुप्त पुरुष) ऊ-
ठताभया ॥ ताँतैं जो गार्ग्यकरि अभिप्रेत (अ-
भिप्रायका विषय किया) पुरुष है । यह इस
शरीर छिऌै कर्त्ता भोक्ता ब्रह्म नहीं है ॥ १५ ॥

९० व्याप्रियमाण (शरीरके बाहिरभीतर जाने आनेरूप
व्यापारवाले) प्राणकेहीं संबोधन अर्थ पृथक् उक्त नामके
अश्रवणतैं औ आपेषण (हस्तके मरोडने) करि उत्थानतैं
तिस (प्राण)का अभोक्तापना सिद्ध होवै है । ऐसैं फलि-
तकूं कहैहैं ॥

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तो-
ऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषः केष त-

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—जि-
स (काल)विषै यह (पुरुष) यह (सोवना)
जैसें होवै तैसें सुप्त होताभया । जो यह
विज्ञानमय (बुद्धिबहुल) पुरुष है । यह

टीकाः—नेनु फेर सुप्त पुरुषकेपास गमन अरु
ताके संबोधन औ उत्थापनकरि गार्ग्य अभिमत
ब्रह्मका अब्रह्मपना जनाया । यह कैसें जानियेहै ?
जागरित कालविषै गार्ग्यकरि अभिप्रेत (अभि-
मत) पुरुषरूप ब्रह्म है । सो जैसें करणोंविषै स-
न्निहित (समीपविषै प्राप्त) है । तैसें अजात-
शत्रुकरि अभिप्रेत पुरुषवी भृत्यन (किंकरन)

९१ “ वे (अजातशत्रु अरु गार्ग्य) दोनूं सुप्तपुरुषके
प्रति गमन करते भये ” इत्यादि सुप्त पुरुषके प्रति गतिकी
उक्तिके तांई प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥ इहां यह अर्थ हैः—
गार्ग्य (बालाकि) अरु काश्य (अजातशत्रु) करि अभिमत
दोनूं पुरुषनके जागरितमें करणोंविषै सन्निधानके अविशेषतैं
तहांहीं विवेक क्यूं न दिखाया ॥

९२ जागरित करणोंविषै दोनूंकें सन्निधानके हुयेवी मि-
श्रभावतैं विवेचन दुष्कर है । ऐसें सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

दाऽभूत्कुत एतदागादिति । तदु ह न
मेने गार्ग्यः ॥ १६ ॥

तब कहाँथा ? कहाँतैं यह (आगमन) जैसें
होवै तैसें आवताभया ? ऐसें ॥ सो (उभय)
बी गार्ग्य (मैं) नहीं जानताहूँ ॥ १६ ॥

विषै तिनके स्वामीकीन्यांई राजाके सन्निहितहीं
है । किंतुँ भृत्य अरु स्वामीरूप गार्ग्य अरु अ-
जातशत्रुकरि अभिप्रेत पुरुषनके जो विवेक (भे-
दज्ञान)के निश्चयका कारण है । सो संकीर्ण
(मिलित) होनेतैं अनिश्चित विशेषवाला है ।
°जो भोक्ताका द्रष्टापना हीं है °औ जो अभोक्ताका
दृश्यपनाहीं है द्रष्टापना तो नहीं है । औ सो दोनूं
(द्रष्टापना अरु दृश्यपना) इहां (जाग्रत् का-
लविषै) संकीर्ण (मिलित) होनेतैं विवेचन
करिके दिखावनेकूं अशक्य हैं । यातैं सुषुप्तपुरु-

९३ ननु तब स्वामी अरु भृत्यके दृष्टांतकरि तिन दोनूंक
विवेकबी सुकर होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

९४ तिन दोनूंकें विवेकके निश्चयका जो कारण है । ताकूं
कहैहैं ॥

९५ ननु सो (विवेकके निश्चयका कारण) अनिश्चित
विशेषवाला कैसें है ? यह शंका भयी । यातैं सो कहैहैं ॥

षकेप्रति गमन है ॥ ॥ ननु सुप्तपुरुषविषैबी विशिष्ट (श्रेष्ठ) नामोंकरि बुलाया भोक्ताहीं सन्मुख देखताहै अभोक्ता नहीं । यह निर्णय नहीं होवैगा ? यह कथन बने नहीं:-काहेतैं जोई सत्य (पंचभूत)करि ढांप्या प्राणात्मा अमृतरूप है औ वाक् आदिकनके अस्तकूं प्राप्त हुये जो अस्तकूं पावता नहीं औ जाका जल शरीर है औ जो शुक्लवस्त्रवाला है औ जो शत्रुरहित है औ जो बडा है औ जो षोडशकलावाला सोम राजा है । सो स्वव्यापार (मूल शब्दादिक)विषै आरूढ जान्या हुयाहीं अस्तकूं अप्राप्तभये स्वभाववाला है । औ ताके विरोधी

९६ यद्यपि जागरितकूं छोडीके सुप्तपुरुषविषैविवेकके अर्थ तिन दोनूँका उपभवन है । तहां जो भोक्ताहीं स्वनामोंकरि संबोधनका विषय किया । सो तिस शब्दकूं सुनेगा । अचेतन नहीं । तथापि इष्ट विवेककी सिद्धि नहीं होवै है । काहेतैं गार्ग्य अरु अजातशत्रुके अभीष्ट दोनूं आत्माके मध्य उत्थितके संशयतैं ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै हे ॥

९७ सिद्धांती संशयकूं निराकरण करै हैं ॥

९८ विशेष अवधारणकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

९९ उक्त विशेषणवाले प्राणके निद्राविषै अवस्थानके हुयेबी ताकूं तब भोगका अभाव है । काहेतैं तहां अन्य भोक्ताके अंगीकारतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

अन्य किसीकाबी व्यापार तिस कालविषै गार्ग्य करि अभिप्रायका विषय नहीं करियेहै । ताँतैं स्वनामोंकरि आमंत्रित (बुलाये) हुये तिसकरि प्रबोधकूं पावना योग्य था ^{१००}औ प्रबोधकूं पावता नभया । ताँतैं परिशेषतैं गार्ग्यकरि अभिप्रेत ब्रह्म (प्राण)का अभोक्तापना है । ^{१०३}जो तिसका भोक्ता स्वभाव होवै तो प्राप्तभये स्वविषयकूं भोगेगाहीं । औ भोगतानहीं । तातैं अभोक्ता है ॥ ^{१०४}जाँतैं दाहक स्वभाववाला अरु प्रकाशक स्वभाववाला हुया वह्नि (अग्नि) प्राप्तभये तृण अरु उलप (फैलनेवाली वेल वा बाल तृण) आदिक दाह्य (जलावने योग्य) स्वविषयकूं नहीं जलावताहै औ प्रकाशने योग्य स्वविषयकूं नहीं प्रकाशताहै ऐसैं नहीं है ॥ ^{१०५}जँब प्राप्त भये स्वविषयकूं जलावता

१०० तिसीके भोक्तापनैविषै फलितकूं कहैहैं ॥

१०१ ननु तब तिस (प्राण)कूं प्राप्त शब्दका श्रवण होहू ? तहां कहैहैं ॥

१०२ परिशेषतैं सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

१०३ प्राणके अभोक्तापनैकूं व्यतिरेकद्वारा साधतेहैं ॥ इहां प्राण जातैं नहीं भोगता है । तातैं अभोक्ता है । यह शेष है ॥

१०४ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥

१०५ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

नहीं औ प्रकाशता नहीं । तब यह वह्नि दग्धा (दाहक) औ प्रकाशयिता (प्रकाशक) है । यह नहीं निश्चय करियेहै ॥ जैसेँ यह गार्ग्य-करि अभिप्रेत प्राण जब प्राप्त शब्दादि विषयकी उपलब्धि (अनुभवरूप भोग)के स्वभाववाला होवैहै । तब बृहत् (बडा) अरु शुक्ल वस्त्रवाला इत्यादि शब्दरूप स्वविषयकूं प्राप्त होवै (ग्रहण करै) । जैसेँ प्राप्त त्पण अरु उलप-आदिककूं वह्नि अव्यभिचारकरि (नियमकरि) दाहकरै औ प्रकाश करै । ताकीन्यांई । [जातैं ग्रहण करता नहीं] तातैं प्राप्त शब्दादिकनके अप्रतिबोधतैं (अनुभवके अभावतैं) प्राण अभोक्ता स्वभाववाला है । ऐसेँ निश्चय करियेहै ॥ जातैं जाका जो स्वभाव निश्चित है । सो ता (स्वस्वभाव)केतांई कदाचित्त्वी व्यभिचारकूं पावता नहीं । यातैं (संबोधनरूप शब्दके अश्रव-

१०६ उक्त अर्थकूं संक्षेप करिके कहैहैं ॥

१०७ प्राणके उक्त अभोक्तापनैकूं उपसंहार करै हैं ॥

१०८ यद्यपि प्राण निद्राविषै शब्दादिकनकूं नहीं जानता है । तथापि भोक्ता स्वभाववाला होवैगा ? यह कथन बने नहीं । ऐसेँ कहैहैं ॥

णतैं) प्राणका अभोक्तापना सिद्ध भया ॥ ॥ ननु^{१११}
 संबोधनरूप अर्थवाले नामविशेषकरि संबंध
 (शक्तिवृत्ति)के अग्रहणतैं प्राणका अप्रतिबोध
 (अजागरण) होवैगा ऐसैं जो कहै । ^{१११}कहिये
 जैसैं बहुतनके बैठे हुये स्वनामविशेषकरि सं-
 बंधके अग्रहणतैं सुनता हुयाबी संबोधनका वि-
 षय किया जो पुरुष सो “ यह मुजकूं संबोधन
 करैहै (बुलावताहै) ” ऐसैं विशेषकरि जानता
 नहीं । तैसैं प्राण “ ये वृहत् (बडा) । इत्यादिक
 मेरे नाम हैं ” ऐसैं अग्रहीत संबंधवाला होनेतैं
 संबोधनरूप अर्थवाले शब्दकूं ग्रहण करता नहीं ।
 परंतु अविज्ञाता होनेतैंहीं नहीं । यातैं यह (प्रा-
 णका भोक्तापना) होवैगा ? इसप्रकार जो प्र-
 तिवादी कहै । ^{१११}सो बनै नहीं:—काहेतैं देवताके
 अंगीकार किये हुये स्वनामोंकेसाथि स्वसंबंधके

१०९ ननु तिस (प्राण) कूं स्वनामका जो अग्रहण है ।
 सो संबंधके अग्रहणका किया है । अनात्मताका किया नहीं ?
 इसप्रकार प्रतिवादी । शंकां करै है ॥

११० शंकाकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करै है ॥

१११ देवताकूं संबंधका अग्रहण अयुक्त है । काहेतैं स-
 र्वज्ञ होनेतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती । उत्तर कहैहैं ॥

अग्रहणके असंभवतैं ॥ जातैं जाकी चंद्रआदिक अभिमानिनी देवता है अरु अध्यात्मरूप प्राण भोक्ता अंगीकार करियेहै । ताका तिस (ग्रहणकर्त्ता देवता) करि सम्यक् व्यवहारअर्थ विशेषनामसैं संबोध अवश्य ग्रहण करनेकूं योग्य है । अन्यथा आह्वानआदिक (संबोधन याग स्तुति नमस्कारआदिक) विषयविषै संव्यवहार (अभिज्ञा भोग अरु प्रसादआदिक) अघटित होवैगा ॥ ॥ ननु प्राणतैं व्यतिरिक्त भोक्ताके पक्षविषैवी अप्रतिपत्ति (संबंधके अग्रहण)तैं ताकाबी भोक्तापना अयुक्त है? ऐसैं जो कहै । कहिये जाका प्राणतैं व्यतिरिक्त भोक्ता है ता-

११२ ताहीकूं प्रपंचन करै हैं ॥ इहां “ तया (तिसके साथि) ” इस शब्दकरि ग्रहणकर्त्ताका निर्देश है ॥

११३ “ अवश्य ” ऐसैं सूचनाकरी अनुपपत्तिकूं कहैहैं ॥ इहां आदिशब्दकरि याग स्तुति अरु नमस्कार आदिक ग्रहण करिये हैं । औ संव्यवहार कहिये अभिज्ञा भोग अरु प्रसाद आदिक ॥

११४ ननु संबोधनरूप नामका औ तिसका किया अनात्म दोष तुह्यारेकूं इष्ट (प्राणतैं भिन्न) जो आत्मा है । ताकूंवी तुल्य है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

११५ संक्षेपकरि उक्त शंकाकूं प्रतिवादी । वर्णन करैहै ॥

कूंबी वृहत्आदिक नामोंकरि संबोधनके हुये वृहत्आदिक नामोंकी तब (सुषुप्तिदशाविषै) प्रतिपत्ति (अनुभूति) युक्त है। तिस (प्राणतैं अतिरिक्त आत्मा)कूं विषय करनेवाले होनेतैं औ कँदाचित्त्वी वृहत्आदिक शब्दोंकरि संबोधनकूं प्राप्त किया पुरुष जागरणकूं प्राप्त भया नहीं देखीयेहै। तातैं (तुज सिद्धांतीकरि इष्ट आत्माकूं संबोधनरूप शब्दके अग्रहण हुयेवी भोक्तापनैके अंगीकारतैं) यातैं संबोधनकी अप्रतिपत्ति (अग्रहण) प्राणके अभोक्तापनैविषैवी अकारण है। इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै।
^{११७}सो बनै नहीं:—काहेतैं तिस (प्राण)वालेकूं तिस

११६ ननु प्राणतैं अतिरिक्त आत्माकूं संबोधनका श्रवण हैही ? ऐसैं जो सिद्धांती कहैं सो बनै नहीं। इसप्रकार प्रतिवादी कहैहै ॥ इहां “ तातैं ” इस तत् शब्दका तुहारेकूं इष्ट जो आत्मा। ताकूं संबोधनरूप शब्दकी अप्रतिपत्तिके हुयेवी भोक्तापनैके अंगीकारतैं यह अर्थ है। यातैं प्राणके भोक्तापनैविषैवी संबोधनका अग्रहण अकरण है ॥

११७ जैसे हस्त। पाद्। अंगुली। इत्यादि नामके कथन किये हुये मैत्र (पुरुषविशेष) ऊठता नहीं काहेतैं ताकूं सर्व (सारे) देहका अभिमानी होनेकरि तन्मात्र (हस्त-आदिमात्र)का अनभिमानी होनेतैंहीं ॥ तैसैं काशीपति अजातशत्रुकूं इष्ट जो आत्मा। ताकूं सर्व कार्यकरणका अ-

(प्राण)मात्रके अभिमानके असंभवतैं । ताका प्राणतैं व्यतिरिक्त भोक्ता है । सो प्राणादि करणवान् प्राणी है जाँकूं प्राण देवतामात्रविषै अभिमान नहीं है । जैसे हस्तविषै ॥ तैंतैं प्राण नामकरि संबोधनके हुये संपूर्ण अभिमानीकी अप्रतिपत्ति युक्तहीं है । परंतु प्राणके असाधारण (स्वकीय) नामके संयोगके हुये अप्रतिपत्ति (अप्रतिबोध) युक्त नहीं । औ विशिष्ट (बु-

भिमानी होनेतैं अंगुलि स्थानीय प्राणमात्र है तिस (सारे कार्य करणके अभिमान)के अभावतैं । ताके नामका अग्रहण है । अचेतनभावतैं नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

११८ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

११९ प्राणमात्रविषै प्राणादि करणवाले आत्माके अभिमानके अभावहुये फलितकूं कहैहैं ॥

१२० चंद्रकूंबी प्राणका एकदेशरूप होनेतैं तिनके नामोंकरि संबोधनके हुये संपूर्ण अभिमानी हुया ऊठता है । इहांबी अंगुलिआदिक दृष्टांतके संभवतैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१२१ गोत्व जातिकी न्यांइ । ताकी सर्व वस्तुविषै समाप्तितैं “मैं हूं” ऐसैं सर्वत्र अभिमानकी सिद्धितैं । बोध अरु अबोध तुल्य होवेंगे ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विशिष्ट आत्माकूं देवताविषै आत्मभावके अभिमानके अभावतैं औ इतर (चेतनमात्र)कूं कूटस्थज्ञप्तिमात्र

द्विविशिष्ट प्राणतैँ भिन्न) आत्माकूँ देवताविषै
 आत्मभावके अभिमानके अभावतैँ अरु इतर
 (शुद्ध आत्मा) कूँ कूटस्थ ज्ञप्तिमात्रताकरि ता
 (अभिमान) के अयोगतैँ प्राणकी औ तिस व्य-
 तिरिक्त आत्माके बोध अरु अबोधकी तुल्यता नहीं
 है ॥ ॥ ^{१२३}स्वनामके प्रयोगके हुयेबी अप्रतिपत्ति
 (अजागरण) के देखनेतैँ प्राणतैँ इतर आत्माका
 भोक्तापना अयुक्त है ? ऐसैँ जो कहै । ^{१२३}कैहिये
 सुषुप्त पुरुषका जो लौकिक देवदत्तादि नाम है ।
 तिसकरिबी संबोधनकूँ प्राप्त किया (जगाया)
 सुषुप्त (सोया) पुरुष कदाचित् नहीं जागता
 है । तैसैँ प्राण । भोक्ता हुयाबी नहीं जागता
 है ॥ इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । ^{१२४}सो बने
 नहीं:—काहेतैँ आत्मा अरु प्राणकी सुप्तता अरु

(अविकारी ज्ञानस्वरूप) होनेकरि ताके (उक्त अभिमानके)
 अयोगतैँ तिन दोनूँकी तुल्यता नहीं है ॥

१२२ प्रकारांतरकरि ता (प्राण) के अभोक्तापनैकूँ निवा-
 रण करता हुया प्रतिवादी कहैहै ॥ इहां प्राणसैँ इतर आ-
 त्माका भोक्तापना अयुक्त है । यह शेष है ॥

१२३ ताहीकूँ वर्णन करै है ॥

१२४ अब विशेषकूँ दिखावते हुये सिद्धांती उत्तरकूँ कहैहैं ॥

असुप्तताके विशेष (भेद)के संभवतैं ॥ सुप्त होनेतैं प्राणसैं ग्रस्त होनेकरि उपरत करणोंवाला आत्मा उच्चारण कियेबी स्वनामकूं ग्रहण करता नहीं । ^{१२६}परंतु असुप्त प्राणकी भोक्तृताके हुये ताकूं सो उपरत करणवान्पना वा संबोधनका अग्रहण युक्त नहीं है ॥ ॥ ननु अप्रसिद्ध नामोंकरि संबोधन अयुक्त है ? ऐसैं जो कहै । ^{१३}कहिये जातैं प्राणकूं विषय करनेवाले प्रसिद्ध प्राणादि नाम हैं । तिनकूं छोडीके अप्रसिद्ध वृहत्तादि नामोंकरि संबोधन अयुक्त है । लौकिक

१२५ अजातशत्रुकूं अभीष्ट आत्माके सुप्तपनै (सोवने) करि युक्त फलकूं कहैहैं ॥

१२६ ननु प्राणकूंबी संहत (उपरत) करणवाला होनेतैं स्वनामका अग्रहण है ? यह आशंका करिके ता (प्राण)के असुप्तपनैके किये कार्यकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:— करणोंके स्वामीके व्यवहार करते हुये करणोंका उपरम नहीं संभवै है औ अनुपरत करणोंवाले तिस (प्राण)कूं स्वनामका अग्रहण अयुक्त है ॥

१२७ ननु प्राणके नाम होनेकरि अप्रसिद्ध नामोंकरि संबोधनतैं ता (प्राण)का अनुत्थान है । अनात्मा होनेतैं नहीं ? इसप्रकार प्रतिवादी । शंका करै है ॥

१२८ ताहीकूं प्रतिवादी स्पष्ट करै है ॥ इहां प्रसिद्धकूं अनुवाद करिके । अप्रसिद्ध विधेय (कहने योग्य) है । यह लौकिक न्याय है ॥

न्यायके अपोह (निराकरण)तैं ॥ तैं भो-
 क्ताहीं हुये प्राणकूं अप्रतिपत्ति (अजागरण)है ?
 इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं:-
 काहेतैं अप्रसिद्ध नामोंकरि प्राणके संबोधनकूं
 चंद्रदेवताके प्रत्याख्यान (निषेध)रूप अर्थ-
 वाला होनेतैं कहिये केवल संबोधनमात्रकी
 अप्रतिपत्तिकरिहीं असुप्त अध्यात्मिक प्राणकी
 अभोक्तृताके सिद्धभये जो चंद्रदेवताकूं विषय
 करनेवाले नामोंकरि संबोधन है सो “ चंद्रदेव-
 तारूप प्राण इस शरीरविषै भोक्ता है” इस
 गार्ग्यकी विशेष प्रतिपत्तिके निराकरण अर्थ है ॥
 जैं सो (उक्त प्रतिपत्तिका निराकरण) लौ-
 किक नामकरि संबोधनके हुये करनेकूं शक्य

१२९ अप्रसिद्ध नामोंकरि संबोधनकी अयुक्तताविषै फ-
 लितकूं कहैहैं ॥

१३० चंद्रदेवता । इस देहविषै कर्त्ता अरु भोक्ता आत्मा
 है । इस गार्ग्यके अभिप्रायके निषेधविषै देवता नाम ग्रहणके
 तात्पर्यतैं तिन (चंद्रदेवताके नामों)का ग्रहण अर्थवान् है ।
 ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

१३१ ताहीकूं प्रपंचन करै हैं ॥

१३२ प्राणादिकनकेबी संबोधनके हुयेबी ताका निरा-
 करण करनेकूं शक्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां
 लौकिक नामकूं देवताविषयताके अभावतैं । यह अर्थ है ॥

नहीं है । तातैं इहां अलौकिक नामोंकरि । प्राणका संबोधन है ॥ प्राणके निषेध करनेकरि प्राणसैं ग्रस्त होनेतैं अन्य करणों (इंद्रियन)की प्रवृत्तिके असंभवतैं तिनके भोक्तापनैकी शंकाका असंभव है ^{१३३}औ अन्य देवताके अभावतैं ॥ अन्य देवताके भोक्तापनैकी शंकाका असंभव है ॥ ॥ नैनु “अतिष्ठाः (अतिक्रमणकरिके वर्तनेवाला)” इससैं आदिलेके । “आत्मन्वी (आत्मवान्)” इस अंतवाले ग्रंथके भागकरि गुणवाली देवताके भेदकूं दिखाया होनेतैं । चंद्र-देवतातैं अन्यदेवताका अभाव नहीं है । यातैं तुह्यारा कथन अयुक्त है ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । ^{१३६}सो बनै नहीं—काहेतैं तिस (दे-

१३३ प्राणके अभोक्तापनैके हुयेबी इंद्रियनकूं भोक्तापना है ? ऐसैं केइक कहते हैं । तिनके प्रति सिद्धांती कहैहैं ॥

१३४ प्राणरूप करणवाले चंद्र देवताओंकी अभोक्तृताके हुयेबी अन्य देवता इहां भोक्ता होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१३५ तहां उपक्रमके विरोधकूं प्रतिवादी शंका करैहै ॥ इहां पूर्व दिखाया होनेतैं अन्य देवताका अभाव नहीं है । यह शेष है ॥

१३६ स्वतंत्र देवताका भेद नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती समाधान करै हैं ॥

वताभेद)की प्राणविषैहीं एकताके अंगीकारतैं ॥ औ सर्व श्रुतिनविषै अरु नाभिके दृष्टांतकरि “सत्यकरि छन्न (ढांप्या) प्राण वा अमृत है ॥” ऐसैं प्राणतैं बाह्य अन्य भोक्ताके अनंगीकारतैं ॥ औ “यहैं (प्राण)हीं सर्व देव हैं । औ कौन एक देव है ? प्राण है ॥ इस रीतिसैं सर्व देवनकी प्राणविषैहीं एकताके उपपादनतैं ॥ तैसैं करणोंके भेदनविषै अदेवताके भेदोंकीन्यांई भोक्तापनैकी अनाशंका है । देहके हस्त-

१३७ प्राणविषै देवताभेदकी एकतामें युक्तिकूं कहैहैं ॥ इहां अन्य देवताका भोक्तापना नहीं है । काहेतैं गार्ग्यकूं स्वपक्षके विरोधतैं । यह शेष है ॥

१३८ “सर्व श्रुतिनविषै ” ऐसैं कहा । तिन श्रुतिनकूं संक्षेपतैं दिखावै हैं ॥

१३९ “हे याज्ञवल्क्य ! कितने देव हैं” इत्यादि वाक्यसैं संक्षेप अरु विस्तारकरि सर्व देवनकी प्राणात्माविषैहीं एकता उपपादन करियेहै । यातैं देवताका भेद नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां:—प्राणतैं पृथक् भूत देवके आत्मातैं अतिरेक (भिन्नता)के हुये असद्भावकी प्राप्तितैं । सर्व देवताके भेदका प्राणविषै अंतर्भाव है । ऐसैं कहनेकूं “च” शब्द है ॥

१४० करणोंकी अभोक्तृताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

१४१ तहां अन्य उदाहरणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं हस्तआदिकविषै प्रत्येकका भोक्तापना नहीं अंगीकार क-

पादादि भेदनविषै जैसें है तैसें । काहेतें स्मृ-
ति ज्ञान अरु इच्छा आदिक वृत्तिनके प्रतिसंधान
(अनुसंधान)के असंभवतैं ॥ जाँतैं अन्यकरि
दृष्ट वस्तुकूं अन्य । स्मरता । जानता । इच्छता ।
वा प्रतिसंधान करता नहीं । तातैं करणोंके भे-
दोंविषै भोक्तापनैकी आशंका युक्त नहीं है ।^{१४१}वीं
विज्ञानमात्रकूं विषयकरनेवाली भोक्तापनैकी आ-
शंका कदाचित्बी नहीं संभवै है ॥ ॥ ननु^{१४२} संघात
(भूतचतुष्टयका समुदायरूप स्थूलदेह)हीं भोक्ता

रियेहै । तातैं श्रोत्र अरु नेत्रादिकविषैबी भोक्तापनैकी आ-
शंका युक्त नहीं है । काहेतैं तिनविषै स्मृतिरूप ज्ञानकी इ-
च्छाके औ “ जो मैं रूपकूं देखता भया । सो मैं शब्दकूं सु-
नताहूं ” इत्यादि प्रतिसंधानके अयोगतैं ॥

१४२ अनुपपत्ति (अयोग) कूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

१४३ निराश्रय (निरधिष्ठान) क्षणिक विज्ञानके भोक्ता-
पनैकी आशंकाबी प्रतिसंधानके असंभवतैंहीं निषेधकरी ।
ऐसें कहैहैं ॥

१४४ प्राणादिकनके अनात्मभावकूं कहिके । स्थूलदेहके
तिस (अनात्मभाव)के कहनेकूं प्रतिवादी पूर्व पक्ष करैहै ॥
इहां संघात कहिये भूत चतुष्टयका समाहार (समुदाय)रूप
स्थूलदेह । औ “ मैं गौर हूं । देखताहूं ” इत्यादि प्रत्यक्षकरि
ता (स्थूलदेह)के आत्मभावके दर्शनतैं । यह भाव है ॥

होहू । व्यतिरिक्त (संघातसँ भिन्न भोक्ता)की कल्पनासँ क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो ^{१४६}बनै नहीं:—काहेतँ आपेषण (मरोडने)के हुये विशेषके दर्शनतँ ॥ जँब प्राण अरु शरीरका संघातमात्र भोक्ता होवै । तब संघातमात्रके अविशेषतँ सदा पिष्ट औ अपिष्ट पुरुषके प्रतिबोध (जागरण)के विषै विशेष नहीं होवैगा औ फेरँ संघाततँ व्यतिरिक्त भोक्ताके

१४५ प्रमाणके अभावतँ स्थूलदेहतँ अतिरिक्त आत्माकी कल्पना युक्त नहीं है । ऐसँ प्रतिवादी कहैहै ॥

१४६ संघातकी आत्मताकू सिद्धांती दूषण देतेहँ ॥

१४७ विशेष दर्शनकू व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहँ ॥

१४८ हे सिद्धांती ! तुह्यारे पक्षविषैबी हस्तके पेषण अरु अपेषणके हुये उत्थानविषै कैसँ विशेष होवै है ? यह आशंका करिके कहैहँ ॥ इहां यह अर्थ है:—ता (व्यतिरिक्त भोक्ता) के संघातके साथि संबंधविशेष जे:—स्वकर्मोंकरि आरंभ करनेकी योग्यता । आत्मता । आत्मीयता (स्वकीयत्व) अरु स्वप्राणोंकी परिपालन करनेकी योग्यता आदिक हैं । तिन (संबंध विशेषन)की अनेकतातँ हस्तके पेषण अरु अपेषण-विषै इंद्रियनके उद्भव अरु अभिभव (तिरोभाव)करि कृत वेदनाकी स्पष्टता अरु अस्पष्टतास्वरूप विशेष युक्त है औ उत्तम मध्यम अरु अधम कर्मोंके फलरूप सुख दुःख अरु मोहके कर्मोंके उद्भव अरु अभिभवकृत विशेष (भेद)के संभवतँ उक्त प्रकारका विशेष संभवै है ॥

हुये ताके संघातके साथि संबंधविशेषकरि अनेकतातैं पेषण अरु अपेषणकृत वेदनातैं सुख दुःख मोह अरु मध्यम अधम उत्तम कर्मफलके भेदके संभवतैं विशेष (विलक्षणता) युक्त है ।

^{१४९}परंतु संघातमात्रविषै संबंधकरि कर्मफलभेदके असंभवतैं विशेष युक्त नहीं है ॥ औ तैसैं शब्द स्पर्शादिकनकी पटुता अरु मंदताआदिकका किया जो विशेष है । सो संघातवादविषै अयुक्त है ॥ औ ^{१५१}यह विशेष है । जातैं स्पर्शमात्रकरि अ-

१४९ ननु परपक्ष (संघातमात्र भोक्ता) विषैबी तैसाहीं विशेष होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं तहां (संघातमात्रविषै) स्वकर्मोंकरि आरंभ करनेकी योग्यताआदिक संबंधविशेष वा कर्मफलका भेद नहीं घटता है । काहेतैं संघातवादीकरि अतीन्द्रिय (संस्काररूप) कर्मोंके अनंगीकारतैं । यातैं संघातमात्र भोक्ताके हुये प्रतिबोध (जागरण) विषै विशेषकी असिद्धि है ॥

१५० शब्द अरु स्पर्श आदिकनकी पटुता । अतिपटुता । मांघ । अतिमांघ । इत्यादिककरि किया विशेष । बोधविषै देखीये है । सोबी संघातवादविषै नहीं सिद्ध होवै है । इस आशयकरि कहैहैं ॥ इहां चकार जो है । सो विशेषशब्दके अनुकर्ष (पीछेसैं ग्रहण) अर्थ है ॥

१५१ ननु तब प्रतिबोधविषै विशेष मति होइ ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

प्रतिबुद्धयमान (नहीं जागे) सुप्तपुरुषकूं अजात-
शत्रु हस्तसैं मरोडीके मरोडीके जगावताभया ।
तातैं ^{१५२} जो मरोडनेकरि स्फुरत् होतेकीन्यांई
कहींतैंबी आये हुयेकीन्यांई औ पूर्व विपरीत
पिंडकूं बोध चेष्टा आकारविशेष आदिक (गुणा-
दिक)वान्ताकरि आपादान करताहुया जागता
भया । सो संघाततैं अन्य औ गार्ग्य अभिमत
ब्रह्मोंतैं व्यतिरिक्त है । यह सिद्ध भया ॥ औ ^{१५३}
प्राणकूं संहत (संघातरूप) होनेतैं ताकी परा-
र्थताका संभव है ॥ गृह्णके स्तंभआदिककीन्यांई
शरीरके भीतर उपष्टंभक (आश्रय) जो प्राण ।
सो शरीर आदिकके साथि संहत (मिलित)है ।
ऐसैं हम कहतेहैं ! ^{१५४} औ अर अरु नेमिकी-

१५२ विशेष दर्शनके फलकूं कहैहैं ॥ इहां आदिशब्दकरि
गुणआदिक ग्रहण करिये हैं ॥

१५३ देहादिककी अनात्मताकूं कहिके । प्राणकी अना-
त्मताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥

१५४ हेतुकूं साधते हैं ॥

१५५ जैसेँ रथचक्रकी नेमि (परिधि) औ अर (चक्रगत
काष्ठविशेष) परस्पर मिलित होवै हैं । तैसेँहीं प्राणकी सं-
हति (मिलौनी) है । ऐसैं कहैहैं ॥

न्यांई नाभिस्थानीय इस प्राणविषै सर्व अर्पित-
है । ऐसैं सुनियेहै । तातैं त्रहादिककान्यांई
अवयवनेके समुदायके जातिवालेतैं व्यतिरिक्त
(आत्मा)के अर्थ मिलित होवैहै । इस प्रका-
रसैं हम जानते हैं ॥ स्तंभ भित्ति तृण काष्ठआ-

१५६ किंवा:—“ रथचक्रकी नाभिस्थानीय प्राणविषै
सर्व समर्पित है ” ऐसैं सुनिये है । तातैं ता (प्राण)का
संहतपना (मिलितपना) युक्त है । ऐसैं कहैहैं ॥

१५७ प्राणके संहतपनैके फलकूं कहैहैं ॥

१५८ ननु प्राणकी ग्रहादिककी न्यांई परार्थताके हुयेबी
संहतकी शेषिता अंगीकार करनेकूं योग्य है । काहेतैं ग्रहा-
दिकनकूं तैसैं देखनेतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां:—
स्वरूपकरि स्तंभआदिकनके जन्म । वृद्धि । ञ्हास । विनाश ।
नाम । आकृति । औ कार्य । ये धर्म हैं । तिनकी निरपे-
क्षताकरि प्राप्त करी है सत्ता अरु स्फुरण जिसनैं । सो तिन
स्तंभादिक विषयनविषै द्रष्टा औ श्रोता औ मंता औ विज्ञाता
है । तिनकी औ तिनके संघातकी तदर्थता (द्रष्टाके अर्थ हो-
नैपना) देखिके प्राणादिकनकीबी तिस प्रकारता (तदर्थता)
होनेकूं योग्य है । ऐसैं हम मानते हैं । इसरीतिसैं संबंध है ॥
औ प्राणआदिक जो है सो । स्वातिरिक्त (अपनेसैं भिन्न)
द्रष्टाका शेष (उपकारक) है । संहत होनेतैं । ग्रहादिककी
न्यांई । इस अनुमानतैं सत्ताविषै औ तिनकी प्रतीतिविषै
प्राणादिककी विक्रियाकी निरपेक्षताकरि सिद्ध द्रष्टा । निर्वि-
कार युक्त है । ताकी विकारवान्ताविषै हेतुके अभावतैं । यह
भाव है ॥

दिक गृहके अवयवके औ तिनके संघात (गृह) के स्वात्मा (स्वरूप) करि जन्म वृद्धि अपक्षय विनाश नाम आकृति अरु कार्यरूप जे धर्म हैं । तिनकी निरपेक्षतासैं लब्ध (प्राप्त किये) हैं सत्ता स्फुरण जिसनैं औ तिन स्तंभादि विषय-नविषै द्रष्टा औ श्रोता औ मंता औ विज्ञाता है । तिसकी अर्थता तिन (स्तंभादिकन) की औ तिनके संघातकी देखीके । तैसैं प्राणादिक अवयवकी औ तिनके संघातकीबी तिनके स्वात्माकरि जन्म वृद्धि अपक्षय विनाश नाम आकृति अरु कार्य-रूप धर्मोंकी निरपेक्षतासैं प्राप्त सत्ता स्फुरण-वाले औ तिन (प्राणादिक) विषयनविषै द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाताकी अर्थता होनेकूं योग्य है । ऐसैं हम मानते हैं ॥ ॥ ननु देवता होनेकरि चेतनावान्ताके हुये सम होनेतैं गुणभाव (शेषभाव) का अनुपगम है ? ऐसैं जो कहै । कहिये प्राणकी विशिष्ट नामोंकरि आमंत्रणके दे-

१५९ ननु प्राणदेवताकी परार्थताका अनुमान अन्य व्याप्तिसैं विरुद्ध है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

१६० ननु प्राणदेवताकी चेतनताहीं कैसें अंगीकार करी है ? तहां प्रतिवादी कहै है ॥

खनेतैं चेतनावान्ता अंगीकार किया है ^{१६१}औ चेतनावान्ताके हुये सम होनेतैं परार्थताकी प्राप्ति अघटित है ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै ^{१६२}नहीं:—काहेतैं निरुपाधिक केवलकूं जनावनेकूं इच्छित होनेतैं । जातैं आत्माकूं क्रिया कारक अरु फलस्वरूपता जो है सो नाम रूप उपाधिसैं जनित है औ अविद्याकरि आरोपित है । तिस निमित्तवाला जो लोककूं क्रिया कारक अरु फलका अभिमानरूप संसार है । सो निरुपाधिक आत्मस्वरूपकी विद्याकरि निवर्त्त करनेकूं योग्य है । यातैं तिस स्वरूपके जनावनेकी इच्छाकरि उपनिषद्का आरंभ है ॥ “^{१६३}ब्रह्म तेरेताई कहता

१६१ तथापि प्रकृत अनुमानविषै अन्य व्याप्तिसैं विरोध कैसेँ है ? तहां प्रतिवादी कहै है ॥ इहां यह अर्थ है:—जो जिसकरि सम है । सो तिसका शेष नहीं होवै है । जैसेँ दीपांतरकरि तुल्य दीपक तिसका शेष नहीं होवै है । इस व्याप्तिसैं विरोध होवैगा ॥

१६२ यह विरोध समाधान करनेकूं योग्य नहीं है । काहेतैं शेषशेषिभावकूं इहां अप्रतिपाद्य होनेतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

१६३ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

१६४ उपनिषद्का आरंभ निरुपाधिक स्वरूपकूं जनावने वास्ते है । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहै हैं ॥

हूँ । औ इतनेकरि विदित नहीं होवैहै ” ॥ ऐसैं उपक्रमकरिके । औ “ अरे ! इतना निश्चयकरि अमृतपना है ” ऐसैं उपसंहारतैं ^{१६५} औ इस (निरुपाधिक ब्रह्म) तैं अन्य (सोपाधिक ब्रह्म) अंतराल (मध्य) विषै कहनेकूं वांछित वा उक्त नहीं है । ^{१६६} तातैं “ सम होनेतैं गुणभाव (शेषभाव) का अनुपगम (प्राप्तिका अभाव) है ” इस प्रश्नका अनवसर है ॥ ^{१६७} जातैं विशेषवाले सोपाधिक वस्तुका संव्यवहारअर्थ गुणगुणीभाव है । विपरीत (निरुपाधिक) का नहीं ।

१६५ “ दो प्रसिद्ध ब्रह्मके रूप हैं । मूर्त्त अरु अमूर्त्त ” इत्यादि देखनेतैं । इस उपनिषद्विषै सोपाधिक ब्रह्मबी कहनेकूं वांछित है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—द्वित्ववादकूं कल्पित विषयवाला होनेतैं “ नेति (नहीं ऐसैं) ” निर्विशेष वस्तुके समर्पणतैं औ “ यातैं अन्य आर्त्त है ” इसरीतिकी उक्तितैं । इहां निरुपाधिकहीं ब्रह्म प्रतिपादन करनेकूं योग्य है ॥

१६६ शेषशेषिभावकी प्रतिपादन करनेकी अयोग्यताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

१६७ ननु तब शेषशेषिभाव तहां तहां किस अर्थ कहा है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सोपाधिक वस्तुका शेषशेषिभाव कहनेकूं वांछित है औ तहां तहां स्वामी अरु भृत्यके न्यायकरि विशेष (विलक्षणता) के संभवतैं तिन दोनूकी समता असिद्ध है ॥

ज्ञातैं निरुपाख्य (शेषशेषिभाव आदिक सकल विशेष शून्य) परमात्मा । सर्व (सारी) उप-
 निषद्विषै जनावनेकूं वांछित है । “सो यह
 नेति नेति ” ऐसैं उपसंहारतैं । तातैं इने अवि-
 ज्ञानमय आदित्यादि ब्रह्मोंतैं विलक्षण अन्य
 विज्ञानमय है । यह सिद्ध भया ॥ ॥ ^{१७०}सो यह
 अजातशत्रु ऐसैं संघाततैं व्यतिरिक्त आ-
 त्माके सद्भावकूं प्रतिपादन करिके गार्ग्य (बा-
 लाकि)कूं कहताभयाः—जिस कालविषै यह
 (विज्ञानमय पुरुष) हस्तके मरोडनेकरि प्रति-
 बोध (जागरण)तैं पूर्व यह शयन जैसैं होवै
 तैसैं सुप्त होताभया । जो यह विज्ञानमय

१६८ औ तिसतैं विपरीत निरुपाधिक वस्तुका शेषशेषि-
 भाव नहीं है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां निरुपाख्य
 शब्दका शेषशेषिभावआदिक संपूर्ण विशेषकरि शून्य । यह
 अर्थ है ॥

१६९ अब हस्तके मरोडनेके वाक्यके अर्थकूं संक्षेप क-
 रिके उपसंहार करै हैं ॥

१७० वृत्तकूं अनुवाद करिके अनंतरके ग्रंथकूं अवतरण
 देके व्याख्यान करै हैं ॥

१७१ “ जहां (जिसकालविषै) ” ऐसैं कथन किये का-
 लकूं विशेषण देते हैं ॥

पुरुष है । यह तब कहांथा । ऐसैं संबंध है ॥
 जिं^{१७३}सं करि जानियेहै ऐसा जो अंतःकरण (बुद्धि) ।
 सो विज्ञान कहियेहै । तिसमय (तिसप्राय) वि-
 ज्ञानमय है ॥ ॥ ननु^{१७३} फेर तिस प्रायपना (बु-
 द्धिरूप विज्ञानका बहुलपना) क्या है? तहां
 कहियेहैः—तिसविषै^{१७४} उपलभ्यपना (ज्ञानकी वि-
 षयतारूप) औ तिसकरि उपलभ्यपना औ उ-
 पलब्धा (ज्ञाता)पना है ॥ ॥ ननु^{१७५} फेर विज्ञान-
 मय शब्दविषै जो “मयद्” प्रत्यय है तिसकूं

१७२ “विज्ञानमय” इस ठिकाने विज्ञान जो परब्रह्म ।
 ताका विकार जीव है । तिस हेतुकरि विकाररूप अर्थविषै
 “मयद्” प्रत्यय है । ऐसैं केईक कहते हैं । ताकूं निराकरण
 करते हैं ॥

१७३ ननु आत्माकूं अंतःकरणप्रायता (अंतःकरणकी
 बहुलता) नहीं कल्पना करियेहै । काहेतैं असंगरूप तिस
 (आत्मा)के तिस (अंतःकरण)के साथि असंबंधतैं? इस-
 प्रकार प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥

१७४ असंगकेबी धाविद्यक (अविद्या कल्पित) बुद्धि आ-
 दिकसैं संबंधकूं अंगीकार करिके सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

१७५ तिस (अंतःकरण) का साक्षी होनेतैंबी आत्माकूं
 तिस प्रायता है । ऐसैं कहैहैं ॥

१७६ नियामकके अर्थ कूं शंका करिके । सिद्धांती प-
 रिहार करै हैं ॥

अनेक अर्थवान्ताके हुये प्रायरूप अर्थवान्ताहीं कैसेँ निश्चय करियेहै? तहां कहियेहै:—“सो प्रसिद्ध यह आत्मा ब्रह्म विज्ञानमय है। मनोमय है” इत्यादि प्रायरूप अर्थविषैहीं प्रयोगके देखनेतैं औ परब्रह्मरूप विज्ञानकी विकारताअप्रसिद्ध होनेतैं औ “जो यह विज्ञानमय है” ऐसेँ प्रसिद्धकीन्यांई अनुवादतैं औ अवयव अरु

१७७ “पृथिवीमय” इत्यादिरूप एकहीं वाक्यविषै प्रायरूप अर्थताके उपलंभ (प्रतीति)तैं “विज्ञानमय” इस वाक्यविषैबी “मयट्” प्रत्ययका सोई अर्थ निश्चित है। ऐसेँ कहा। अब परमात्मारूप विज्ञानके विकार जीवकूं श्रुति स्मृतिविषै अप्रसिद्ध होनेतैंबी प्रायरूप अर्थवान्ताहीं है। ऐसेँ कहैहैं ॥

१७८ ननु अप्रसिद्धबी विज्ञानकी विकारता श्रुतिके वशतैं अंगीकार करी चाहीये? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“जो यह विज्ञानमय है” इस वाक्यविषै विज्ञानमयके “यह” ऐसेँ प्रसिद्धकी न्यांई अनुवादतैं अप्रसिद्ध विज्ञानकी विकारता सर्वनामश्रुतिनसैं विरुद्ध है ॥

१७९ ननु जीव ब्रह्मका अवयव है वा तिसके सदृश है। तिस अर्थवाला “मयट्” प्रत्यय होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ब्रह्मके निरवयवताकी श्रुतितैं औ ताहीके जीवरूपसैं प्रवेशके श्रवणतैं प्रकृत वाक्यविषै “मयट्” प्रत्ययके अवयवआदिक अर्थके अयोगतैं। औ उक्त प्रत्ययकी निर्विषयता (निरर्थकता)के असंभवतैं प-

उपमारूप दोनूँ अर्थनके इहां असंभवतैं परिशेषतैं प्रायरूप अर्थवान्ताहीं है । तातैं संकल्पविकल्पादि स्वरूप जो अंतःकरण है । तिसमय (तिसकी बहुलतावाला) विज्ञानमय है । यह अर्थ है ॥ औ सो शरीररूप पुरीविषै शयन (निवास) करनेतैं पुरुष है ॥ यैह तब (सुषुप्तिकालविषै) कहांथा ? यह प्रश्न है ॥ स्वभाव (स्वरूप)के जनावनेकी इच्छाकरि 'प्रतिबोध (जागरण)तैं पूर्व क्रिया कारक औ फलतैं विपरीत स्वभाववाला आत्माथा । ऐसैं कार्यके अभावकरि दिखावनेकुं इच्छित है ॥ जातैं प्रतिबोधतैं पूर्व कर्मआदिकका कार्य सुखादिक कलुबी नहीं ग्रहण करियेहै । तातैं कहिये कर्मकरि अप्रयुक्त

रिशेषतैं ता (मयट् प्रत्यय)की प्रायरूप अर्थताहीं माननेकुं योग्य है ॥

१८० विज्ञानमय पदके अर्थकुं उपसंहार करै हैं ॥

१८१ “ यत्र (जहां) ” इत्यादिवाक्यकुं व्याख्यान करिके । अब वाक्यशेषकुं प्रगट करिके ताके तात्पर्यकुं कहैहैं ॥

१८२ स्वरूपके जनावने अर्थ प्रश्नकी प्रवृत्ति है । यह प्रकट करै हैं ॥

१८३ “कार्यके अभावकरि” ऐसैं कहै अर्थकुं स्पष्ट करैहैं ॥

१८४ “ तातैं ” इस पदके अर्थकुं कहैहैं ॥

(अप्रेरित) होनेतैं [कार्यके अभावकरि दिखा-
वनेकूं इच्छित] ॥ तैसा आत्माका स्वभावहीं
निश्चय करियेहै । जिस^{१८६} स्वभावविषै होताभया
(सुष्ठुतिकालविषै था) औ^{१८६} जिस स्वभावतैं प्र-
च्युत (प्रचलित) हुया संसार^{१८६} स्वभाव (स्व-
रूप)तैं विलक्षण होवैहै । ईस^{१८६} अर्थके कहनेका
इच्छाकरि बुद्धि (ज्ञान)के विशेषकरि उत्पादन
अर्थ प्रतिभानरहित गार्ग्यकेप्रति अजातशत्रु
“यह तब कहांथा । औ कहांतैं यह (आगमन)
जैसैं होवै तैसैं आवताभया ? ऐसैं पूछताहै ॥ ॥
यद्यपि र्यह^{१८६} प्रश्नका युगल गार्ग्यकरिहीं पूछनेकूं

१८५ क्या तिस प्रकारका स्वभाव है ? तहां कहैहैं ॥

१८६ मूल श्रुतिगत द्वितीय प्रश्नके अर्थकूं प्रक्षेप करै हैं
(भीतर डालते है) ॥

१८७ उक्त अर्थविषै दो प्रश्नोंकूं उत्थापन करै हैं ॥ इहां
तैसा स्वभावहीं है । ऐसैं संबंध है ॥

१८८ “एतत् (यह)” ऐसैं अधिकरण अरु अपादान
ग्रहण करिये है । यातैं ता (गार्ग्य)के प्रति उभय क्यूं पू-
छता है ? तहां अपनी प्रतिज्ञाकूं निर्वाह करनेवास्ते अजात-
शत्रु पूछता है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

१८९ ननु शिष्य होनेतैं गार्ग्यकरिहीं पूछनेकूं योग्य है ।
सो जब अज्ञ होनेतैं नहीं पूछता है । तब राजाकूं तिसविषै
उदासीन होनाहीं युक्त है ? तहां कहैहैं ॥

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तो-
ऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्रा-

अर्थः—सो अजातशत्रुकहताभयाः—जिस
(काल)विषै यह (पुरुष) यह (शयन)
जैसें होवै तैसें सुप्त होताभया । जो यह
विज्ञानमय पुरुष है । तब (तिस कालविषै)
योग्य था ? तथापि गार्ग्यनें पूछया नहीं । यह
जानिके अजातशत्रु उदासीन होता नहीं किंतु
बोधन करनेकूं योग्यहीं है ऐसें प्रवर्त्त होवैहै ।
काहेतैः—“बोधन करूंगाहीं” ऐसें प्रतिज्ञात
होनेतैं ॥ ॥ ईसंप्रकार बोधन कियावी यह गार्ग्य
प्रतिबोधतैं पूर्व जहां यह आत्मा था औ जहांतैं
यह आगमन (आवताभया) है । तिन दोनूंकूं क-
हनेकूं वा पूछनेकूं नहीं जानताभया । में गार्ग्य
नहीं जानताहूं ॥ १६ ॥

टीकाः—सो अजातशत्रु कहनेकूं वांछित

१९० “तदुह (तिस दोकूं)” इत्यादि वाक्यके भागकूं
व्याख्यान करै हैं ॥ इहां यह आगमन जैसें होवै तैसें । यह
अर्थ है । औ तहां श्रुतिगत दोनूं क्रियापदोंका क्रमतैं क-
हनेकूं वा पूछनेकूं इन दोनूं पदोंके साथि संबंध है ॥

णानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषो-
 ऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते । ता-
 इन (वाक्आदिक) प्राणोंके विज्ञानकरि
 विज्ञानकूं लेके । जो यह हृदयके मध्य आ-
 काश है । तिसविषै सोवताहै ॥ तिन (वा-
 अर्थके समर्पणअर्थ कहताभयाः—“ जैहां यह
 (पुरुष) यह (शयन) जैसें होवै तैसें सुप्त होता-
 भया । जो यह विज्ञानमय पुरुष है । यह तब
 कहां था । कहांतैं यह (आगमन) जैसें होवै तैसें
 आवता भया ? इस प्रकार जो हम पूछते भये ।
 सो हमोंकरि कथन करीता है तूं श्रवण कर !
 जहां यह (पुरुष) यह (शयन) जैसें होवै तैसें

१९१ कूटस्थ चिदेकरस यह आत्मा है । तिसविषै क्रिया
 कारक अरु फलका व्यवहार वस्तुतैं नहीं है । यह विवक्षित
 अर्थ है । ताके प्रकट करने अर्थ प्रस्तुत दो प्रश्नोंकूं अनुवाद
 करै हैं ॥ इहां उपाधि जो अंतःकरण । ताका स्वभाव कहिये
 तिसका उपादान अज्ञान । तिसकरि जनित जो अंतःकरण-
 गत अभिव्यक्त चैतन्यका आभासरूप विशेष विज्ञान । तिस
 करणकरि । यह अर्थ है ॥ औ वाक्आदिकनका अपने अपने
 विषयगत प्रतिनियत प्रकाश करनेरूप विज्ञानका सामर्थ्य
 है ॥ ताकूं । यह अर्थ है ॥

नि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति
 नाम ॥ तद्गृहीत एव प्राणो भवति । गृ-
 क्आदिक विज्ञानों) कूं जब ग्रहण करताहै
 तबहीं पुरुष “सोवताहै” यह नाम होवैहै ॥
 तहां सुषुप्तिकालविषै गृहीतहीं प्राण(घ्राण)
 सुप्त होताभया । तब (तिस कालविषै) इन
 वाक्आदिक प्राणोंके अंतःकरणगत अभिव्यक्त
 विशेष विज्ञानकरि (उपाधिके स्वभावसैं ज-
 नित विज्ञानकरि) वाक्आदिकनके स्वस्वविषय-
 गत सामर्थ्यवाले विज्ञानकूं ग्रहण करिके जो
 यह हृदयके मध्य (हृदयविषै स्थित) आका-
 श है । जो आकाशशब्दकरि परमात्मारूपहीं
 स्व आत्मा कहियेहै । तिस स्वाभाविक असांसा-
 रिक स्व आत्मारूप आकाशविषै शयन कर-

१९२ “ जो यह भीतर ” इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान
 करै हैं ॥

१९३ आकाशशब्दकी भूताकाशरूप विषयवान्ताकूं आ-
 शंका करिके “ अन्य अर्थवान्ता आदिकके व्यपदेशतैं आकाश
 है ” इस न्यायकरि कहैहैं ॥

हीता वाग् गृहीतश्चक्षुर्गृहीत* श्रोत्रं गृ-
हीतं मनः ॥ १७ ॥ .

होवैहै । गृहीत वाक् । गृहीत चक्षु । गृहीत
श्रोत्र ॥ गृहीत मन [होवैहै] ॥ १७ ॥

ताहै (रहताहै) केवल आकाशविषैहीं नहीं ।
काहेतैं अँन्य (छांदोग्य) श्रुतिके सामर्थ्यतैं ॥ “हे
सोम्य (प्रियदर्शन) ! तब सुषुप्तिकालविषै सत्
(ब्रह्म) के साथि संपन्न (एकताकूं प्राप्त) होवैहै”
इसरीतिसैं लिंगशरीररूप उपाधिके संबंधके किये
विशेष आत्मस्वरूपकूं छोडिके अविशेष केवल
स्वाभाविक आत्माविषैहीं वर्तताहै । यह अ-
भिप्राय है ॥ ॥ नँनु जब शरीर अरु इंद्रियन-

१९४ सत् रूप ब्रह्मविषैहीं सुषुप्त पुरुषका शयन है ।
भूताकाशविषै तो नहीं होवै है । इस अर्थविषै छांदोग्यकी
श्रुतिकूं कहैहैं ॥

१९५ इहां कैसा शयन विवक्षित है ? यह आशंका क-
रिके कहैहैं ॥ इहां निद्राके अधिकारविषै स्वाभाविकपना जो
है सो अविद्यामात्रकरि मिश्रितपना है । काहेतैं “ संततिकूं
संपादन करिके नहीं जानते हैं ” इत्यादि श्रुतितैं ऐसैं दे-
खनेकूं योग्य है ॥

१९६ “ तिनकूं जब ” इत्यादि वाक्यकूं आकांक्षापूर्वक
ग्रहण करै हैं ॥ इहां:—विज्ञान पदका तिस (विज्ञान) के

की अध्यक्षता (स्वामिता)कूं छोडताहै । तब यह (पुरुष) स्वात्माविषै वर्त्तताहै । इस नामकी प्रसिद्धि कैसी निश्चय करियेहै ? यह कहै हैं:— तिन वाक्आदिक विज्ञानों (विज्ञानके साधनों) कूं जब (जिस कालविषै) ग्रहण करता है । तब यह पुरुष (इस पुरुषका) “सोवताहै” यह नाम प्रसिद्ध होवैहै । याका गौणहीं नाम होवैहै । सो स्वआत्माकूंहीं अपीति (अपिगच्छति) कहिये प्राप्त होवैहै । यातैं “ स्वपिति (सोवता है)” ऐसैं कहियेहै ॥ सैंत्य “स्वपिति” इस नामकी प्रसिद्धिकरि आत्माका संसार धर्मोंतैं विलक्षणरूप निश्चय करियेहै ॥ ॥ ननु इहां युक्ति नहीं है ? यह आशंकाकरिके कहै हैं:—तिस

साधन । यह अर्थ है औ “ पुरुष ” यह जो प्रथमाविभक्ति है । सो षष्ठीविभक्तिरूप अर्थवाली है । यातैं आगे कहेंगे “ इस पुरुषका ” ऐसैं ॥

१९७ अश्वकर्ण आदिक नामतैं विशेषकूं कहैहैं ॥

१९८ गौणताकूं व्युत्पादन करै हैं ॥

१९९ नामके अर्थके व्यभिचारकूंवी देख्या होनेतैं ताके वशतैं निद्रामैं स्वरूपविषै अवस्थान नहीं होवै है ? या शंकाकूं अनुवाद करिके “तिसकरि ग्रहीतहीं” इत्यादि वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करै हैं ॥

सुषुप्तिकालविषै गृहीत (ग्रहणकिया)हीं प्राण होवैहै ॥ इहां “प्राण” इस शब्दकरि घ्राणें-द्रिय कहियेहै । वाँक् आदिक इंद्रियनके प्रकरणतैं ॥ जातैं वाक् आदिकके साथि संबंधके होते तिस उपाधिवाला होनेतैं इस (आत्मा)कूं संसारका धर्मी (आश्रय)पना देखीयेहै औ तब (सुषुप्ति अवस्थाविषै) तिस (आत्माके अचैतन्या-भासरूप हेतु)करि वाक्आदिक उपसंहारकूं प्राप्तहीं होवै हैं ॥ कैसें कि:-गृहीता वाक् गृहीत चक्षु । गृहीत श्रोत्र । औ गृहीत मन होवैहै ॥ तैंतैं वाक् आदिकनके उपसंहारकूं प्राप्त हुये क्रिया कारक अरु फल स्वरूपताके अभावतैं स्वात्मस्थ (स्वस्वरूपविषै स्थित)हीं आत्मा होवैहै । ऐसें निश्चय करियेहै ॥ १७ ॥

२०० ननु फेर आत्माका सुषुप्ति अवस्थाविषै असंसारी स्वरूपमें अवस्थान है । इस अर्थविषै कौन युक्ति इहां कथनकरी होवै है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तब सुषुप्ति अवस्थाविषै तिस आत्माके चैतन्याभासरूप हेतुकरि ॥

२०१ सुषुप्तिविषै करणोंके उपसंहारकूं विवरण करै हैं ॥

२०२ तिस उपसंहारकूं फलकूं कथन करै हैं ॥

स यत्रैतत्स्वप्नयया चरति । ते हास्य
लोकास्तदुतेव महाराजो भवत्युत्येव म-

अर्थः—सो जब (जिसकालविषै) स्वप्न-
वृत्तिकरि वर्तताहै [तब] वे प्रसिद्ध याके
लोक (कर्मफल) हैं ॥ तहांबी महाराजकी

टीकाः—नेनुं दर्शन (प्रतीति) रूप स्वप्न अव-
स्थाविषै कार्य अरु करणोंके वियोगके हुयेबी
इस (आत्मा) कूं संसारका धर्मीपना देखीये
है । जैसे जागरितविषै सुखी दुःखी अरु बंधुनसैं
वियुक्त हुआ शोककूं करताहै अरु मोहकूं पा-
वताहै ॥ ताँतैं शोक अरु मोहरूप धर्मवालाहीं
यह (आत्मा) है । याके शोक मोह आदिक
औ सुख दुःख आदिक । कार्य अरु करणोंके
संयोगसैं जनित भ्रांतिकरि आरोपित नहीं है ?
इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बने

२०३ अन्वयव्यतिरेककरि वाक्आदिक उपाधिवाला आ-
त्माका संसारीपना कहा । तहां व्यतिरेककी असिद्धिके ताँई
प्रतिवादी आशंका करै है ॥

२०४ व्यतिरेककी असिद्धिके हुये प्रतिवादी फलितकूं
कहैहै ॥

२०५ स्वप्नकूं रज्जुसर्पकी न्याँई मिथ्या होनेकरि वस्तु

हाब्राह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति । स
 यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे
 न्यांई होवैहै । महाब्राह्मणकीन्यांईवी । उच्च
 अरु अवच (नीच)कीन्यांई निर्गमन क-
 रैहै ॥ सो जैसे महाराज । जानपदोंकूं
 (स्वदेशविषै होनेवाले भृत्यादिकनकूं) ग्र-
 नहीं:-काहैतैं मृषा होनेतैं ॥ ^{२०६}सो अकृत आत्मा
 जिसकालविषै दर्शनरूप स्वप्नकी वृत्तिकरि
 आचरताहै (वर्त्तताहै) तिस कालविषै वे
 याके लोक कर्मके फल हैं ॥ ॥ कौन वे लोक
 हैं ? तहां कहैहैं:-तहांवी महाराजकीन्यांई
 होवैहै ॥ सो यह महाराजभावकीन्यांई याका
 लोक है । जागरितकीन्यांई महाराजभावहीं
 नहीं है ॥ तैसें महाब्राह्मणकीन्यांईवी । देवता
 आदिक उच्चकीन्यांई औ तिर्यक् आदिक अ-

धर्मताके अभावतैं आत्माकूं संसारीपना नहीं है । इसरीतिसैं
 सिद्धांती । उत्तरकूं कहैहैं ॥

२०६ ताहीकूं उपपादन करते हुये आदिविषै “ सो
 जहां ” इत्यादि अक्षरोंकूं योजना करै हैं ॥

जनपदे यथाकामं परिवर्ततैवमेवैष ए-
हण करिके जनपद (देश)विषै यथाकाम
(इच्छाके अनुसार) च्यारि ओरतैं वर्तता
वच (नीच)कीन्यांईं मृषा (मिथ्या)हीं ग-
मन करैहै (वर्तताहै) ॥ महाराज भावआ-
दिक याके लोक हैं काहेतैं इवशब्दके प्रयोगतैं
औ जाग्रत्विषै व्यभिचारके दर्शनतैं । तैंतैं
स्वप्नविषै बंधुनके वियोगआदिकसैं जनित शोक
मोह आदिकसैं संबंधकूं पावताहीं नहीं ॥ ॥
नैनुं जैसें जागरितविषै जाग्रत्कालसैं अव्य-
भिचारी लोक हैं । ऐसें स्वप्नविषैवी वे याके म-
हाराजभाव आदिक लोक । स्वप्नकालविषै हो-
नेवाले औ स्वप्नकालसैं अव्यभिचारी आत्मा-

२०७ ननु अनंतर इहां स्वप्नका स्वभाव निर्देश करिये
है । परंतु ताका मिथ्यापना नहीं कथन करिये है ? तहां
कहैहैं ॥ इहां:—स्वप्नविषै देखे महाराजभावआदिकनका
जाग्रत्विषै जो अनुवृत्तिकरि रहितपना है । सो व्यभिचार
दर्शन है ॥

२०८ स्वप्नके मिथ्यापनैके हुये सिद्धार्थकूं कहैहैं ॥

२०९ विवादके विषय जे लोक । वे मिथ्या नहीं हैं । तिस
कालसैं अव्यभिचारी होनेतैं । जाग्रत्के लोककी न्यांईं । इस-
प्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

तत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथाकामं
परिवर्त्तते ॥ १८ ॥

है ॥ ॥ ऐसैंहीं यह (विज्ञानमय) यह
(ग्रहण) जैसें होवै तैसें । प्राणोंकूं (इंद्रि-
यनकूं) ग्रहण करिके स्वशरीरविषै यथा-
काम च्यारी औरतैं वर्त्तता है ॥ १८ ॥

भूतहीं हैं । परंतु अविद्यासैं आरोपित नहीं हैं ?
इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै ॥ ॥ तैंहां सि-
द्धांती शंका करै हैं:—जाग्रत्के कार्य अरु कर-
णोंकी स्वरूपता औ देवताकी स्वरूपता अविद्या-
करि आरोपित है । परमार्थरूप नहीं । इस री-
तिसैं व्यातिरिक्त, विज्ञानमयरूप आत्माके दि-
खावनेकरि पूर्व दिखाया । ^{२१०}सो स्वप्नलोकका
दृष्टांतरूप होनेकरि मृत पुरुषकीन्यांई उज्जीव-
नकूं पावता हुया कैसें प्रादुर्भावकूं पावैगा ॥ ॥

२१० साध्यकी विकलताकूं कहनेवास्ते सिद्धांती पाणि-
पेथ (हाथके मरोडने)के वाक्यकरि उक्त अर्थकूं स्मरण क-
रावै हैं ॥

२११ जाग्रत्के लोकके मिथ्यापनैके हुये फलितकूं कहैहैं ॥
इहां प्रादुर्भावविषै जाग्रत्के लोकका जो कर्त्तापना है । सो
प्रकरणसैं पठित है । ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

२१२
हे सिद्धांती ! यह तुझारा कथन सत्य है । काहेतैं
द्विज्ञानन्यायविषै व्यतिरिक्त कार्य करण अरु दे-
वताके स्वरूपताका प्रदर्शन जो है सो अवि-
द्यासैं आदे पित है । शुद्धिद्वारा रजतभावके
दर्शनकीन्यांई । यह व्यतिरिक्त आत्माके अं-
स्तित्वके प्रदर्शनके न्याय (अन्वय व्यतिरेक
नामक युक्ति) करिहीं सिद्ध होवैहै । परंतु तिस
(आत्मा) की शुद्धिकी तत्परताकरिहीं न्याय
कहा नहीं ? इसैं प्रकार प्रतिवादीनें कहा ॥
तहां सिद्धांती कहैहैं:—जाग्रत्के कार्य करण अरु
देवता स्वरूपताका दर्शनरूप दृष्टांत असत् हु-
याबी फेर उद्भव करिये है । जाँतैं सर्व न्याय

२१२ तहां पूर्ववादी दृष्टांतकूं साधताहै ॥ इहां अन्वय
अरु व्यतिरेक नामक न्याय है औ देहद्वयका अरु आत्माका
विवेकमात्र पूर्व कहा है ॥

२१३ ननु प्रधानताकरि आत्माकी शुद्धि कही है । इस
विभागकूं अंगीकार करिके । वस्तुतैं असत् हुयेबीदृष्टांतकूं
सत् करिके तिसकरि स्वप्नकी सत्यताकूं आशंका करिके ।
ताके निराससैं स्वप्नवाक्यकरि आत्यंतिकी शुद्धि कहीये है ।
तैसैं जाग्रत्कूंबी तिस प्रकारकी मिथ्या होनेतैं आत्मा एकरस
शुद्ध होवैगा ? इस आशयवान् हुये कहैहैं ॥

२१४ पाणिपेषके वाक्यविषै जाग्रत्के मिथ्यापनैकी उ-
क्तिकरि अर्थतैं शुद्धि कही । इहांबी जब सोई कहियेहै तब

किंचित् विशेषकूं अपेक्षा करताहुया पुनरुक्ति-
दोषवाला नहीं होवैहै ॥ प्रथम स्वप्नविषै अनु-
भूत महाराजभावआदिक लोक आत्मभूत
नहीं हैं । काहेतैं आत्मातैं अन्य जाग्रतूके प्रति-
बिंबरूप लोकके दर्शनतैं ॥ महाराजहीं प्रथम
भिन्न सुप्तप्रकृतिदेहे हुये पर्यंक (शय्या)विषै
सोवता हुया स्वप्नकूं देखता हुया उपसंहारकूं
प्राप्त करणवाला होवैहै । फेर समीप प्राप्त प्रकृ-
तिवाले महाराजकीन्यांई आत्मा (आप)कूं जा-
गरितकीन्यांई यात्रातैं आगतकीन्यांई औ भो-

पुनरुक्ति होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह
भाव है:—जो कछु सामान्यतैं पुनरुक्तिपना है सो सर्वत्र
तुल्य है अरु अवांतर भेदतैं अपुनरुक्तिपना है । सो प्रकृत-
विषैबी सम है । काहेतैं पूर्व ग्रंथविषै शुद्धिरूप द्वारकूं आ-
र्थिक (अर्थतैं सिद्ध) होनेतैं । इहां वाचनिक (एतदुक्त
उक्त) होनेतैं ॥

२१५ जाग्रतूके दृष्टांतकरि स्वप्नके सत्यताकी शंकाके सं-
भवतैं ताका समाधान कहनेकूं योग्य है ? इसरीतिसैं पूर्व-
वादीके मुखसैं कहिके । अब सिद्धांती समाधानकूं कथन
करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विवादके विषय जे लोक ।
वे द्रष्टा आत्माके धर्म नहीं हैं । ताके दृश्य होनेतैं । घटा-
दिककी न्यांई ॥

२१६ किंवा:—स्वप्नदृष्ट पदार्थनकी जाग्रतूदृष्ट पदार्थतैं
अर्थांतरताकरि दृष्टिकूं मिथ्यापना है । ऐसैं कहैहैं ॥

गोंकूं भोगतेकीन्यांई देखताहै ॥ औ^{२१७} तिस म-
 हाराजके पर्यकविषै शयनतैं द्वितीय (अन्य) प्र-
 कृतिकरि प्राप्त हुया विषय (देश)विषै पर्यटन
 करता हुया दिनमें लोकविषै प्रसिद्ध नहीं है ।
 जाकूं यह सुप्तपुरुष देखताहै^{२१८} औ उपसंहृत क-
 रणवालेकूं रूपादिमान् पदार्थका दर्शन नहीं सं-
 भवै है औ^{२१९} देहविषै ताके तुल्य अन्य देहका सं-
 भव नहीं है । जैंतैं देहविषै स्थितकूंहीं स्वप्नका
 दर्शन होवैहै ॥ ॥ नैनु^{२२०} पर्यकविषै सोया पुरुष
 मार्गविषै प्रवृत्त भये आपकूं देखताहै ? तहां श्रुति
 शरीरतैं बाहिर स्वप्नोंकूं (स्वप्नके पदार्थनकूं) दे-

२१७ ननु तिन (स्वप्नदृष्टपदार्थन)की जाग्रतविषै दृष्ट
 पदार्थतैं अर्थांतरता असिद्ध है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२१८ औ प्रमाण सामग्रीके अभावतैं स्वप्नका मिथ्यापना
 है । ऐसैं कहैहैं ॥

२१९ औ योग्य देशके अभावतैं ता (स्वप्न)का मिथ्या-
 पना है । ऐसैं कहैहैं ॥

२२० देहतैं बाहिरहीं स्वप्नदर्शनके अंगीकारतैं योग्य दे-
 शकी सिद्धि है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२२१ याहीकूं साधनेकूं प्रतिवादीकी शंकाकूं उठावते हैं ॥

२२२ तहां “ सो जैसैं महाराज ” इत्यादि वाक्यकूं उ-
 त्तररूप होनेकरि प्रगट करिके सिद्धांती व्याख्यान करैहैं ॥

खता नहीं । यह कहैहैं:—सो महाराज जनपद (देश)विषै होनेवाले राजाके उपकरणभूत भू-
 त्यनकूं औ अन्योकूं ग्रहणकरिके अपने (आ-
 पकेहीं) जय आदिककरि संपादन किये देश-
 विषै यथाकाम कहिये याकूं जो जो काम है
 तिस तिसकूं उल्लंघन न करिके इच्छातैं जैसें
 च्यारी ओरतैं वर्तताहै । यह अर्थ है ॥ ऐ-
 सैहीं यह विज्ञानमय पुरुष । यह (ग्रहण) जैसें
 होवै तैसें प्राणोकूं (इंद्रियनकूं) ग्रहण करिके
 कहिये जाग्रतके स्थानोंतैं उपसंहार करिके स्व
 (अपनेहीं) शरीर (देह)विषै बाहिर नहीं । य-
 थाकाम (इच्छाके अनुसार) च्यारी ओरतैं व-
 र्तताहै अर्थ यह जो:—काम कर्मकरि उद्भा-
 सित (प्रकाशित) पूर्व अनुभूत वस्तुनके सदृश

इहां यह अर्थ है:—यथाकाम कहिये तिस तिसकूं न उल्लं-
 घन करिके ॥ औ इहां “ एतत् (यहः) ” ऐसा क्रियापदके
 ग्रहणका विशेषण है । याका:—यह ग्रहण जैसें होवै तैसें ।
 यह अर्थ है ॥

२२३ परिवर्त्तनकूंहीं वर्णन करै हैं ॥

वासनाओंकू अनुभव करैहै ॥ तौतैं स्वप्नविषै
 आत्मभूत होनेकरि मृषा अध्यारोपितहीं लोक
 अविद्यमान हुयेहीं सत् रूप भासते हैं । तैसैं जा-
 ग्रत्विषैबी हैं । ऐसैं प्रतीति करनेकू योग्य है ॥
 तौतैं विशुद्ध औ अक्रिया कारक फलस्वरूप वि-
 ज्ञानमय है । यह सिद्ध भया । जौतैं जाग्रत्विषै
 द्रष्टाके विषयभूत । क्रिया कारक फलस्वरूप औ
 कार्यकरणरूप लौकिक (लोक) देखीयेहैं । तैसैं
 स्वप्नविषैबी देखीयेहै । तौतैं दृश्यरूप स्वप्न अरु
 जागरितके लोकनतैं अन्य यह द्रष्टा विज्ञामय
 विशुद्ध है ॥ १८ ॥

२२४ योग्यदेशके अभावके सिद्ध भये सिद्ध अर्थकू दि-
 खावै हैं ॥

२२५ स्वप्नके मिथ्यापनैके हुये ताकी दृष्टांतताकरि ज-
 डताआदिक हेतुसैं जागरितकाबी तैसैपना (मिथ्यापना) नि-
 श्चय करनेकू शक्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

२२६ दोनूके (जाग्रत् स्वप्नके) मिथ्यापनैके हुये प्रत्य-
 गात्माकी विशुद्धि सिद्ध भयी । ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

२२७ “अक्रियाकारकफलात्मक” इस विशेषणकू स-
 मर्थन करै हैं ॥

२२८ जागरितकू दृष्टांत करिके दार्ष्टान्तिककू कहैहैं ॥

२२९ द्रष्टा अरु दृश्यके अभाव हुये फलितकू कहैहैं ॥

२३० अन्यताके फलकू कथन करै हैं ॥

अथ यदा सुषुप्तो भवति । यदा न कस्यचन वेद ॥ हिता नाम नाड्यो द्वा-सप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभि-

अर्थः—अनंतर जब सुषुप्त (सुषुप्तिक्रं प्राप्त) होवैहै । जब (जिस कालविषै) किसीबी वस्तुक्रं नहीं जानताहै । हिता नामक बहत्तर हजार नाडीयां हृदयतैं पुरी-

टीकाः—^{३३}नु दर्शनवृत्तिरूप स्वप्नविषै वासना-ओंके समूहक्रं दृश्य होनेतैं तिसकी धर्मता नहीं है । यातैं विशुद्धता निश्चयकरी । आत्माका तहां (स्व-प्नविषै) “यथाकाम वर्त्तताहै” इसरीतिसैं कामे-वशतैं परिवर्तन कहा । द्रष्टा अरु दृश्यका संबंध औ कामादिकसैं संबंध याका स्वाभाविक है । इसप्रकार अशुद्धताकी शंका करियेहै? ^{३३}तैं ताकी विशुद्धिअर्थ श्रुति कहैहैः—अनंतर जब

२३१ वृत्तेके अनुवादपूर्वक उत्तरश्रुतिकरि निरास क-रने योग्य शंकाक्रं कहैहै ॥ इहां “तहां” ऐसैं स्वप्नकी उक्ति है औ कामादिकसैं संबंध चकारका अर्थ है ॥

२३२ निवर्त करने योग्य शंकाके सद्भावतैं निवर्त्तक अन्य श्रुतिक्रं प्रतिज्ञा करै हैं ॥

प्रतिष्ठन्ते । ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते ॥ स यथा कुमारो वा महाराजो वा तत् (शरीर)केप्रति च्यारी ओरतैं स्थित होवैहैं । तिन नाडीनकरि प्रत्यवसर्पण (व्यावर्त्तन) करिके पुरीतत् (शरीर)विषै सोवताहै ॥ सो जैसेँ कुमार वा महाराज सुषुप्त (सुषुप्तिकूं प्राप्त) होवैहैं कहिये जब स्वप्नवृत्तिकरि विचरताहै । तबबी यह विशुद्धहीं है । अनंतर (फेर) जब दर्शनवृत्तिरूप स्वप्नकूं छोडिके जिसकालविषै सुष्ठप्रकारसैं सुप्त (स्वाभाविक संप्रसादकूं प्राप्त) होवैहैं । तब निरंतर याकी शुद्धि सिद्ध होवैहैं ॥ कहिये सलिल (जल) कीन्यांई अन्यके संबंघरूप कलुषताकूं छोडिके स्वस्वभावकरि प्रसन्नताकूं पावताहै ॥ कैबै सुषुप्त होवैहैं ? जब (जिसकालविषै) किसीबी वस्तुकूं वा किसीबी शब्दादिकके संबंघि अन्य

२३३ ननु स्वप्नविषैबी शुद्धि कही है । फेर सुषुप्तिके ग्रहणसैं क्या है ॥ इहां जब संप्रसादकूं प्राप्त होवै है । तब निरंतर या (आत्मा)की शुद्धि सिद्ध होवै है । यह शेष है ॥

२३४ तिस एक सुषुप्ति कालकूं प्रश्नपूर्वक प्रगट करै हैं ॥

महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा
शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥ १९ ॥

वा महाब्राह्मण आनंदकी अतिघ्नी (अति-
शयकरि दुःखकूं हनन करनेहारी अवस्था)
कूं पायके सोवताहै ॥ ऐसैहीं यह (वि-
ज्ञानमय) यह (शयन) जैसें होवै तैसें सो-
वताहै ॥ १९ ॥

वस्तुकूं कलुबी नहीं जानताहै ॥ ^{२३५}पूर्व तो न्या-
य्य (अन्य वस्तुका ज्ञान योग्य) है औ सुप्तपु-
रुषविषै तौ विशेषज्ञानके अभावकूं विवक्षित हो-
नेतैं । ^{२३६}ऐसें प्रथम विशेष विज्ञानके अभाव हुये
सुप्त होवैहै । यह कहा ॥ फेर किस क्रमकरि
सुप्त होवैहै ? यह कहियेहैः—हिता नामवाली
नाडीआं जो हैं । हितरूप फलकी प्राप्तिविषै
निमित्त होनेतैं नाडीआं हिता कहियेहैं ॥ जे हि

२३५ विकल्पकूं निषेध करै हैं ॥

२३६ वृत्तकूं अनुवाद करिके प्रश्नपूर्वक सुषुप्तिकी गतिके
प्रकारकूं दिखावै है ॥

ता इसप्रकारके नामवाली नाडीआं देहके अँगूठ-
रसके विपरिणामभूत (विकाररूप) हैं औ वे ना-
डीआं बहत्तर हजार (७२०००) हैं कहिये दो
सहस्र अधिक सप्तति सहस्र हैं। वे नाडीजड़े बह-
त्तर हजार हैं हृदयतैं पुरीतत्केताई च्यारी ओ-
रतैं स्थित होवैहैं ॥ कहिये पुंडरीक (कमल)
के आकारवाले मांसके पिंडरूप हृदयतैं हृदयके
परिवेष्टनकूं पुरीतत् कहतेहैं। तिसकरि काकयुक्त
देवदत्तके गृहतकीन्याई उपलक्षित शरीर इहां
पुरीतत् शब्दकरि अभिप्रेत है। तिस पुरीतत्के-
ताई च्यारीओरतैं स्थित होवैहैं। अर्थ यह
जोः—संपूर्ण शरीरकेताई व्याप्त हुयी अश्वत्थ
(पिप्पल)के पर्णकी राजी (रेषा)नकीन्याई बहि-
र्मुख प्रवृत्त होवैहैं ॥ तैहां (शरीरविषै)बुद्धि जो

२३७ हितरूप फलकी प्राप्तिविषै निमित्तरूप होनेतैं नाडी-
यां हिता कहिये हैं। तिन देहसैं संबंधवाली नाडीओंके
अन्वय अरु व्यतिरेककरि अन्नरसविकारताकूं कहैहैं ॥

२३८ तिन (नाडीन)कीहीं मध्यम संख्याकूं कथन करै हैं ॥

२३९ औ तिन हृदयदेशसैं संबंधी नाडीनकी तिस
(हृदय)तैं निकसीके देहविषै व्याप्तिकरि बहिर्मुखताकूं कहैहैं ॥

२४० “ तिनकरि ” इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करनेकूं
भूमिकाकूं करै हैं ॥

अंतःकरण । ताका हृदयस्थान है । तिस शरीरविषै इतर बाह्यकरण बुद्धिके तंत्र (आधीन) हैं ॥ तिस^{३१} हेतुकरि बुद्धि जो है सो कर्मके वशतैं श्रोत्रादिकनकूं तिन नाडीओंकरि मत्स्यजालकीन्यांई कर्णशष्कुली (कर्णगोलक) आदिक स्थानोंकेतांई प्रसारतीहै औ प्रसारीके अधिष्ठान होयके स्थित होवैहै कहिये जागरितकाल (भोगकाल) विषै अधिष्ठान (आश्रय) होयके स्थित होवैहै ॥ तौ^{३२} (बुद्धि) के तांई विज्ञानमय (जीव) अभिव्यक्त (बुद्धिकरि आविर्भूत) स्वात्मचैतन्यका आभासरूप होनैकरि व्याप्त होवैहै औ तिस (बुद्धि) के संकोचन कालविषै पीछे संकोचकूं पावताहै ॥ सो (संकोच) । इस विज्ञानमय (जीव) का स्वाप (निद्रा) है औ जाग्रत्के विक्षेपका अनुभव भोग है । जा^{३३}तैं सो जलआदिकके

२४१ शरीरविषै करणोंकूं बुद्धितंत्रता (बुद्धिकी आधीनता) के हुये क्या होवै है ? सो कहैहैं ॥

२४२ तथापि जीवकूं क्या आया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२४३ बुद्धिके विकाशकूं अनुभव करता हुआ आत्मा जागता है ऐसैं कहिये है औ ता (बुद्धि) के संकोचकूं अनुभव करता हुआ सोवता है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

अनुसारी चंद्रआदिकके प्रतिबिंबकीन्यांई बुद्धि-उपाधिके अनुसारी है । तैतै जाग्रत्कूं विषय करनेवाली तिस बुद्धिके तिन नाडीओंकरि व्यावर्त्तनके पीछे व्यावर्त्तन करिके पुरीतत् (शरीर)विषै स्थित होवैहै । अर्थ यह जोः—तैतै लोहपिंडकेतांई अविशेषकरि सम्यक् व्यापिके वर्त्तनेवाले अग्निकीन्यांई शरीरकेप्रति सम्यक् व्यापिके वर्त्तताहै ॥ स्वैभाविकहीं स्वात्मा (स्व-स्वरूप) विषै वर्त्तमान हुयाबी कर्मके अनु-गत (अनुसारिणी) बुद्धिके अनुसार वर्त्तनेवाला होनेतै पुरीतत् (शरीर)विषै स्थित होवैहै । ऐसै कहियेहै ॥ जातै सुषुप्तिकालविषै शरीरकेसाथि

२४४ बुद्धि अनुसारीताकूं स्मरण करिके “ तिनोंकरि ” इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करै हैं ॥

२४५ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहांः— देहकी कर्मताविषै औ आत्माकी कर्तृताविषै उक्त दोनूं दृ-ष्टांत हैं ॥

२४६ ननु हृदयाकाशरूप ब्रह्मविषै विज्ञानात्मा सोवता है । ऐसै कहिके । फेर पुरीतत् (शरीर)विषै शयनकूं कहनेवाले तुमकूं पूर्वापरका विरोध होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२४७ यह वचन औपचारिक (लक्षणाके बलसै आरो-पित) है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अवस्था है । ऐसै प्रकृत सप्रति कहिये है ॥

जीवका संबंध नहीं है । औ “ तब (सुषुप्तिविषै) हृदयके सर्व शोककूं निश्चयकरि तिरगया होवैहै” ऐसैं यह उपनिषद् आगे कहैगी । [तातैं “ शरीरविषै रहताहै” यह वचन औपचारिक है] ॥ ॥ सर्व संसारके दुःखतैरहित यह (सुषुप्ति) अवस्था है । इस अर्थविषै दृष्टांतः—सो जैसें कुमार (अत्यंत बालक) । वा महाराज (अत्यंतवश्य सेनादि सप्त प्रकृतिवाला) । वा शास्त्रोक्त प्रकारसैं करनेवाला महाब्राह्मण (अत्यंत परिपक्व विद्या अरु विनयकरि संपन्न) । अतिशयकरि दुःखकूं हनन करनेवाली होनेतैं अतिघ्नी । ऐसी जो आनंदकी अहिघ्नी अवस्था (सुखावस्था) ताकूं पायके स्थित होवैहै ॥ औ स्वभावविषै स्थित इन कुमारआदिकनकूं निरतिशय (सर्वसैं अधिक) सुख लोकविषै प्रसिद्ध है । जातैं विकारकूं प्राप्त भये तिनका दुःखस्वभाव नहीं है ॥ तिस हेतुकरि तिनकी स्वाभा-

२४८ उक्त दृष्टांतनविषै विवक्षित अंशकूं दिखावैहैं ॥

२४९ ननु दुःखबी तिनकूं प्रसिद्ध होवै है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

विक जो अवस्था सो इहां दृष्टांतरूपताकरि ग्रहण करियेहै । प्रसिद्ध होनेतें औ तिनोंकी स्वाप (सुषुप्ति) हीं अभिप्रेत नहीं । काहेतें स्वाप (सुषुप्ति) कूं दार्ष्टांतिकरूपताकरि विवक्षित होनेतें औ तिनोंकी औ हमारी सुषुप्तिविषै विशेषके अभावतें ॥ जातें विशेषके होते दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिकका भेद होवैहै । तातें तिन (कुमारादिकन) की सुषुप्ति दृष्टांत नहीं है ॥ जैसें यह दृष्टांत है । ऐसेंहीं यह विज्ञानमय (जीव) जो है सो यह (शयन) जैसें होवै तैसें सोवताहै ॥ इहां (श्रुतिविषै) “एतत् (यह)” शब्द जो है सो क्रियापदके विशेषण अर्थ है ॥ ऐसें यह (विज्ञानमय) स्वाप (सुषुप्ति) कालविषै स्वाभाविकरूप स्वआत्माविषै सर्व संसारधर्मतें अतीत हुया वर्तताहै ॥ १९ ॥

२५० ननु कुमारआदिकनकी सुषुप्तिकाहीं दृष्टांत क्युं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२५१ कुमारआदिकनकी सुषुप्तिकूं दृष्टांतपना है औ हमारी सुषुप्तिकूं दार्ष्टांतिकपना है ? इस विभागकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

२५२ “यह तब कहां था” इस प्रश्नके उपपादन किये । उत्तरकूं उपसंहार करै हैं ॥

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः
क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मा-

अर्थः—सो जैसें ऊर्णनाभि तंतुकरि उ-
च्च गमन करैहै । जैसें अग्नितैं क्षुद्र वि-
स्फुलिंग विविध उच्च गमन करैहैं ॥ ऐसैहीं

टीकाः—“तैबै यह कहां था” इस प्रश्नका
प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) कहा औ^{२५४} इस प्रश्नके निर्णयकरि विज्ञानमयकी स्वभावतैं विशुद्धि अँरुँ
असंसारिता कही ॥ अँबै “कहांतैं यह (आग-
मन) जैसें होवै तैसें आवताभया” इस प्रश्नके
अपाकरण (दूरीकरण) अर्थ उत्तरग्रंथका आरंभ
है ॥ ॥ नैनुँ जिस ग्रामविषै वा नगरविषै जो

२५३ “सो जैसें” इत्यादि वाक्यकी संगतिकूं कहने-
वास्ते वृत्तकूं सम्यक् कीर्तन करै हैं ॥

२५४ ननु फेर श्रुतिगत आद्यप्रश्नके निर्णयकरि क्या फल
होवैहै? तहां त्वंपदार्थकी शुद्धिरूप फल होवैहै। ऐसैं कहैहैं ॥

२५५ शुद्धिद्वारा कथन किये ता (त्वंपदार्थ)के ब्रह्म-
भावकूबी कहैहैं ॥

२५६ उत्तर ग्रंथके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

२५७ पूर्वग्रंथकरि उत्तर ग्रंथकी गतार्थताकूं प्रतिवादी
शंका करै है ॥

दात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे
देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति ॥ त-

इस आत्मातैं सर्व प्राण । सर्व लोक । सर्व
देव । सर्व भूत । विविध उच्च गमन करैहैं
(उपजते हैं) ॥ तिस (ब्रह्मरूप आत्मा)

होवैहै । सो अन्य ठिकाने गमन करताहुया
तिसीहीं ग्रामतैं वा नगरतैं गमन करैहै । अ-
न्यतैं नहीं ॥ तैसैं हुये “ तव यह कहां था ”
इस प्रकारकाहीं प्रश्न होहू । जहां था तहांतैंहीं
आगमन प्रसिद्ध होवैगा । अन्यतैं नहीं ॥ ॥
हे प्रतिवादिन् ! “कहांतैं यह आवताभया” यह
प्रश्न । निरर्थक (व्यर्थ) हीं है । ऐसैं तुजकरि कैया
श्रुति उपालंभ (आक्षेप) की विषय करिये है ?

२५८ ननु स्थितिकी अवधिकेही निर्धारित होनेतैं गतिकी
अवधिके निर्धार करनेकी इच्छाकरि प्रश्नविषै प्रतिवचन सा-
वकाश है ? ऐसी सिद्धांतीकी आशंका मनमें ल्यायके । प्र-
तिवादी कहैहै ॥

२५९ अपौरुषेयी जो श्रुति । सो सर्व दोषोंकरि शून्य
होनेतैं अतिशय शंकाकी विषय करनेकूं योग्य नहीं है । इ-
सरीतिसैं सिद्धांती । गूढ अभिसंधि (अभिप्राय) वाले हुये
कहैहैं ॥

स्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति । प्राणा
वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्या-
यस्य प्रथम-मजातशत्रु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

की उपनिषत् है “सत्यका सत्य है” ऐसी ॥
प्राण प्रसिद्ध सत्य हैं । तिनका यह सत्य
है ॥ २० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य प्रथम-मजा-
तशत्रु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

तहां प्रतिवादी कहै है किः—^{२६०}ऐसैं नहीं ॥ तैबैं
क्या कि ? मैं ^{२६२}द्वितीय प्रश्नके अन्य अर्थकूं श्र-
वण करनेकूं इच्छताहूं । यातैं आनर्थक्य (“कु-
तः” शब्दकी अपादानरूप अर्थकी अयोग्यता)के

२६० मेरेकरि श्रुति आक्षेपकी विषय नहीं करिये है ।
निर्दोष होनेतैं ? इसप्रकार पूर्ववादी कहैहै ॥

२६१ श्रुतिकी अनापेक्षताके हुये तेरा चोद्य (प्रश्न)
निरवकाश होवैगा । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं ॥

२६२ ता (स्वचोद्य)की शावकाशताकूं पूर्ववादी सा-
धता है ॥

प्रति चोदना (आशंका) करताहूं ॥ ॥ जैसें ऐसें है तब “कुतः (कहांतैं)” इस पंचमीकी अपादान (आश्रय)रूप अर्थता नहीं ग्रहण करियेहै । जातैं अपादान (उपादान)रूप अर्थताके हुये पुनरुक्तारूप दोष होवैहै । अन्य अर्थताके हुये नहीं ॥ ॥ तैब (तिस अपादानरूप अर्थताकरि पुनरुक्तारूप अवस्थाविषै) “कहांतैं यह आवता भया । कहिये किस निमित्तवाला इहां आगमन है ? ऐसें निमित्तरूप अर्थवाला यह प्रश्न होहू ॥ ॥ तैहां एतद्वेद्यादिति प्रतिवादी । कहै हैः—निमित्तरूप अर्थताबी बनै नहीं । काहेतैं प्रतिवचन (प्रत्युत्तर)की विरूपता (विपरीतता)तैं ॥ औ अग्नि तैं विस्फुलिंग आदिककीन्यांई आत्मातैं सर्व जगत्की उत्पत्ति । प्रतिवचनविषै सुनिये

२६३ पूर्ववादीके पंचमी विभक्तिके अपादानतैं अन्य अर्थकूं श्रवण करनेकूं इच्छते हुये । एकदेशी कहैहै ॥

२६४ अन्य अर्थता कैसें है ? तहां कहैहै ॥ इहांः—तब शब्दका तिस अपादानरूप अर्थताकरि पुनरुक्तारूप अवस्थाविषै । यह अर्थ है ॥

२६५ एकदेशीके प्रति पूर्ववादी दूषण देताहै ॥ इहां अपादानार्थतावत् यह अपि शब्दका अर्थ है ॥

२६६ ताहीकूं स्पष्ट करै है ॥ इहां चेतन औ अचेतनरूप सर्व जगत्की ऐसें कहनेकूं च (औ) शब्द है ॥

है ॥ जातें विस्फुलिंगोंके पलायन (अग्नितें भागने)विषै अग्निनिष्पत्त नहीं है किंतु सो (अग्नि) अपादानहींहै ॥ तैसें “इस आत्मातें” इसवाक्यविषै परमात्मा विज्ञानमयरूप आत्माका अपादान होनेकरि सुनियेहै । तातें प्रतिवचनविषै विलोपता (विपरीतता)के होनेतें “कुतः (कहांतें)” इसप्रश्नकी निमित्तरूप अर्थता वर्णन करनेकूं शक्य नहीं है ॥ ॥ ननु अपादान पक्षविषैबी पुनरुक्ततारूप दोष स्थितहीं है? अत्र सिद्धांती कहै हैं:-यह (पुनरुक्ततारूप) दोष नहीं है । काहेतें दोनूं प्रश्नोंकरि आत्माविषै क्रियाकारक अरु फल स्वरूपताके निषेधकूं विवक्षित होनेतें ॥ जातें इहां विद्या अरु अविद्याके विषय उपन्यास (कहनेकूं प्रारंभ) कियेहैं ॥ तिनमें

२६७ ननु तव अपादानरूप अर्थवाली पंचमी होइ ? यह आशंका करिके । पूर्ववादी पूर्व उक्तकूं स्मरण करावै है ॥

२६८ सर्व अविद्या अरु तत्कार्यतें निर्मुक्त प्रत्यकरूप अद्वयब्रह्म दोनूं प्रश्नोंके भिषकरि प्रतिपादन करनेकूं वांछित है । यातें पुनरुक्ति नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती स्वाभिप्रायकूं प्रगट करै हैं ॥

२६९ ननु उक्त प्रकारका वस्तु दोनूं प्रश्नोंकरि विवक्षित है । यह ज्ञान काहेतें भया ? यह आशंका करिके सो कहनेकूं तृतीय अर्थकूं अनुवाद करै हैं ॥

“आत्मा ऐसैहीं उपासना करै । आत्माकूंहीं जाने । आत्मारूप लोककूंहीं उपासना करै ” यह विद्याका विषयहै औ तैसैं पांक्तकर्म अरु ताका फल नाम रूप कर्मस्वरूप अन्नोका त्रय अविद्याका विषयहै ॥ तिनके मध्य अविद्याके विषयविषै कहनेकूं योग्य सर्व कहे ॥ विद्याका विषय जो केवल आत्मा उपन्यास किया है । सो निर्णय किया नहीं ॥ ॥ औ तां (आत्मा)के निर्णय अर्थ “ब्रह्म तेरेताई कहताहूं” ऐसैं औ “जनावूंगा (विज्ञापन करूंगा)” ऐसैं प्रारंभ कियाहै । यातैं सो विद्याका विषयभूत ब्रह्म स्वभावतैं जनावनेकूं योग्यहै औ ताका स्वभाव (स्वरूप)क्रिया कारक अरु फलके भेदकरि शून्य अत्यंत विशुद्ध अरु अद्वैत है । ऐसैं यह कहनेकूं इच्छित है ॥ यातैं “तव यह कहांथा” औ “कहांतैं यह आवताभया” इसरीतिके ताके अनुसारी दोनूं प्रश्न । श्रुतिकरि उत्थापन करियेहैं ॥ तैंहां जहां

२७० ननु विद्याविषयके निर्णयकी कर्त्तव्यता इहां नहीं भासती है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां अन्यथा प्रक्रमका भंग होवैगा । यह भाव है ॥

२७१ ताका याथात्म्य (स्वभाव) क्या है ? सो कहैहैं ॥

२७२ दोनूं प्रश्नोंका उक्त प्रकारके याथात्म्यके व्याख्यान-

(तिसविषै जिसविषै) होवैहै सो अधिकरणहै । जो होवैहै सो अधिकर्तव्यहै औ तिन अधिकरण अरु अधिकर्तव्यका भेद लोकविषै देख्याहै ॥ तैसें जिसतैं आवताहै सो अपादान है । औ जो आवताहै सो कर्त्ता तिस (अपादान)तैं अन्य देख्याहै ॥ तैसें आत्मा अन्य हुया किसीबी अन्यविषै था औ अन्य हुया किसीबी अन्यतैं आवताभया । किसीबी भिन्न साधनान्तरि ॥ ऐसें लोककीन्यांई प्राप्त जो बुद्धि (ताकी प्रवृत्ति) सो प्रतिवचनकरि निवर्त्त करनेकूं योग्यहै ॥ येह आत्मा अन्यहुया अन्यविषै था नहीं वा अन्य हुया अन्यतैं आया नहीं वा आत्माविषै अन्य साधन नहीं है ॥ तब क्या किः—स्वात्मा (स्वस्वरूप)विषैहीं था । काहेतैं “अपने आत्माकूं प्रा-

विषै उपयोगीपना कैसें है ? यह आशंका करिके तिन दोनूके श्रौतार्थकूं कहैहैं ॥

२७३ प्रश्नकी प्रवृत्तिकूं कहिके । अब प्रतिवचनकी प्रवृत्तिकूं कहैहैं ॥

२७४ प्रतिज्ञात दोनूं वचनोंके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

२७५ स्वात्माविषैहीं था । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां सुषुप्तिविषै स्वात्माकी व्यवस्थिति “अतः (याहीतैं) ” शब्दका अर्थ है ॥

ध्याय । २] प्रथम-अजातशत्रु-ब्राह्मण ॥ १ ॥ ८४९

त होवैहै । हे सोम्य ! तव (सुप्तविषै) सत्
(ब्रह्म)के साथि मिलित होवैहै । प्राज्ञरूप आ-
त्माके साथि मिलित हुया परमात्माविषै स्थित
होवैहै” इत्यादि श्रुतिनतैं । याहीतैं अन्य हुया
अन्यतैं आवता नहीं ॥ सो^{२७६} श्रुतिकरिहीं दिखा-
इयेहै । “इस आत्मातैं” ऐसैं । काँहेतैं:-आ-
त्मातैं व्यतिरेककरि अन्य वस्तुके अभावतैं ॥ ॥
नैनुँ आत्मातैं व्यतिरिक्त प्राणआदिक अन्य व-
स्तुहै ? यह कथन बनै नहीं:-काहेतैं प्राण आ-
दिककी तिसी (आत्मा)तैंहीं उत्पत्तितैं ॥ ॥ नैनुँ
सो (आत्मातैं प्राणआदिककी. उत्पत्ति) किसप्र-

२७६ प्रबोध (जाग्रत्) दशाविषै आत्माकूंहीं आगमनकी
अपादानता है । इस अर्थविषै प्रमाणरूपताकरि अनंतर श्रु-
तिकूं उठावते हैं ॥

२७७ स्थिति अरु आगतिका आत्मातैंहीं अवधिपना है ।
इस अर्थविषै युक्तिकूं कहैहैं ॥

२७८ अन्य वस्तुके अभावताकी असिद्धिकूं शंका करिके
सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

२७९ क्रियावाले मृत्तिका आदिकतैं घटादिककी उत्प-
त्तिके देखनेतैं । ब्रह्मकूं अक्रिय होनेतैं तिसतैं प्राणादिककी उ-
त्पत्ति नहीं संभवै है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

कारसैं है ? तैहां कहिये हैः—तिस (आत्मातैं प्राणादिककी उत्पत्ति)विषै दृष्टांतः—सो जैसें लोकविषै ऊर्णनाभि कहिये भूताकीट (मकरी) जो है सो । एकहीं प्रसिद्ध हुया स्वात्मासैं अभिन्न तंतुकरि उद्गमन करैहै औ तैके उद्गमन-विषै आपतैं अतिरिक्त अन्य कारक नहीं है ॥ औ जैसें ^{२६२}एकरूप एक अग्नितैं क्षुद्र (अल्प) विस्फुलिंग (अग्निके अवयव) विविध वा नाना उद्गमन करैहैं ॥ जैसें ये दोनूं दृष्टांत । कारक भेदके अभाव हुयेबी प्रवृत्तिकूं औ प्रवृत्तितैं पूर्वस्वभावतैं एकताकूं दिखावतेहैं ॥ ऐसैंहीं इस आत्मातैं । अर्थ यह जो विज्ञानमयके प्रतिबोध (जाग्रत्) तैं पूर्व जो स्वरूप है तिसतैं । सर्व प्राण (वाक्आदिक) औ सर्व लोक (सर्व कर्मके फल) औ सर्व देव (प्राणोंके

२८० सृष्टिकी मायामयताकूं आश्रय करिके । सिद्धांती श्रुतिसैं परिहार करै हैं ॥

२८१ “स्वात्मा (स्वस्वरूप)सैं अप्रविभक्त तंतुकरि” ऐसैं कथन किये अर्थकूं अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्पष्ट करै हैं ॥

२८२ सहाय रहितकी कारणताविषै दृष्टांतकूं कहिके । कूटस्थके सद्भावविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

अरु लोकनके अधिष्ठाता अग्निआदिक) औ सर्व भूत (ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत प्राणिनके समूह) । विशेषकरि उद्गमन करतेहैं (उपजतेहैं) ॥ “ सर्व ये आत्मातैं ” इस पाठविषै । उपाधिके संबंधसैं जनित प्रबोधकूं प्राप्त विशेष आत्मातैं । इस अर्थविषै विशेषकरि उद्गमन करतेहैं ॥ जिस आत्मातैं स्थावर जंगमरूप यह जगत् । अग्नितैं विस्फुलिंगकीन्यांई निरंतर उपजताहै औ जिसीहींविषै प्रलीन होवैहै औ स्थितिकालविषै जलमें बुद्बुदकीन्यांई जिसरूप हुया वर्तताहै । तिस इस आत्मा (ब्रह्म) की उपनिषत् है ॥ उप (समीपकेतांई) निगमयति (प्राप्त करैहै) । इस अर्थका अभिधायक (वाचक) जो शब्द । सो “ उपनिषत् ” ऐसैं कहिये है ॥ शास्त्रके प्रामाण्यतैं । इस शब्दगत समीप

२८३ माध्यंदिनकी श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

२८४ “ ताकी उपनिषत् है ” इत्यादिरूप वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥

२८५ ननु प्रत्यग्भूत ब्रह्मके वाचक अन्य शब्दोंके होतेबी इस (उपनिषत्) शब्द विषयक आदरण क्यूं करिये है ? तहां कहैहैं ॥

प्रापकता नामविशेष निश्चय करियेहै ॥ ॥ कौन यह उपनिषत् है ? तहां कहैहैं:-सत्यका सत्य है । ऐसैं साधिके (सिद्ध करिके) औ सर्व ठिकाने उपनिषत् जो है सो अलौकिक अर्थवाली होनेतैं दुर्विज्ञेय अर्थवाली है । यातैं ता (उक्त उपनिषत्)के अर्थकूं कहैहैं:-प्राण प्रसिद्ध सत्य हैं । तिनका यह (परमात्मा) सत्य है । ऐसैं ॥ ईसैहीं वाक्यके व्याख्यानअर्थ पीछले दो ब्राह्मण होवेंगे [॥ २० ॥]

प्रथम । उपनिषद्के व्याख्यानअर्थ पीछले दो ब्राह्मण होहू । परंतु “ ताकी उपनिषत् है ” ऐसैं कहा । तहां । क्या प्रकृत विज्ञानमयरूप औ पाणिपेषण (हस्तके मरोडने) करि ऊठ्या औ शब्दआदिकका भोक्ता जो संसारी आत्मा है । ताकी यह उपनिषत् है । अथवा किसीबी असंसारी आत्माकी यह उपनिषद् है ॥ ॥ औ

२८६ ब्राह्मणरूप वाक्यका अर्थबी कैसैं निश्चय करनेकूं योग्य है ? तहां कहैहैं ॥

२८७ उक्त अर्थकूं अंगीकार करिके विशेषके अदर्शनकरि संशय युक्त हुया प्रतिवादी । शंका समाधानरूप विचारकूं प्रसंगविधै प्राप्त करै है ॥

“यों क्या प्रयोजन होवैगा ? सो हम नहीं जानते हैं ॥ जब संसारीकी यह उपनिषत् है । तब संसारीहीं जाननेके योग्य है । ताँके विज्ञान-^{२९१} तैहीं सर्वकी प्राप्ति है । सोई ब्रह्मशब्दका वाच्य है । ताँकी विद्याहीं ब्रह्मविद्या है । ऐसैं होवैगा ॥^{२९३} औ जब असंसारीकी यह उपनिषत् है । तब ताकूं विषय करनेवाली विद्या ब्रह्मविद्या है । औ तिस ब्रह्मविज्ञानतैं सर्वभावकी प्राप्ति होवैगी ।

२८८ “ संदिग्ध औ सप्रयोजन वस्तु विचारनेकूं योग्य है ” इस न्यायकरि संदेहकूं कहिके । अब विचारके प्रयोजक प्रयोजनकूं प्रतिवादी पूछता है ॥

२८९ तिस पक्षविषै क्या फल होवै है । ऐसैं पूछे हुये । प्रथम पक्षकूं अनुवाद करिके तिसविषै फलकूं कहैहै ॥

२९० ननु जाके विज्ञानतैं मुक्ति होवै है । ताहीकी ज्ञेयता है । जीवकी नहीं ? यह आशंका करिके कहैहै ॥

२९१ ननु ब्रह्मके विज्ञानतैंही सो (मुक्ति) होवैहै । संसारीके ज्ञानतैं नहीं ? यह आशंका करिके कहैहै ॥

२९२ ननु जाकी विद्या ब्रह्मविद्या कहियेहै । सोई ब्रह्म है । संसारी नहीं ? यह आशंका करिके कहैहै ॥ इहां प्रथम विकल्पके फलकी समाप्तिविषै इति शब्द है ॥

२९३ अन्य पक्षकूं अनुवाद करिके तिसविषै फलकूं कहैहै ॥

२९४ सर्व यह शास्त्रके प्रामाण्यतैं सिद्ध होवैगा ॥
 किंतु^{२९५} इस पक्षविषै “ आत्मा ऐसैहीं उपासना
 करै । आत्माकूंहीं ‘मैं ब्रह्म हूं’ ऐसै जाने ” इ-
 सरीतिसैं परब्रह्मकी एकताकी प्रतिपादक श्रुतियां
 कोपकूं पावैंगी । औ^{२९६} संसारीतैं अन्यके अभाव
 हुये उपदेशकी व्यर्थतातैं ॥ जातैं ईसरीतिसैं

२९४ ननु इसविषै कौन नियामक है ? यह आशंका क-
 रिके “ ब्रह्महीं यह ” इत्यादि शास्त्र है । ऐसैं कहैहै ॥

२९५ ब्रह्मकी उपनिषद् है । इस पक्षविषै जब शास्त्रकी
 प्रमाणताकरि सर्व समंजस होवै है । तब तैसैहीं होहू । वि-
 चारसैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंका करिके । जीव ब्रह्मका
 भेद है वा अभेद है । ऐसैं विकल्प करिके । प्रथम पक्षविषै
 दोषकूं कहैहै ॥

२९६ अभेदपक्षकूं दूषण देता है ॥ इहां:—उपदेशकी
 व्यर्थतातैं अभेदपक्षका असंभव है । यह शेष है ॥

२९७ विशेषके अनुपलंभकूं संशयकी हेतुता है ताकूं
 अनुवाद करै है ॥

२९८ दोनूं पक्षोंविषै फलकी प्रतीतिकूं स्मरण करैहै ॥
 इहां अन्वय व्यतिरेककी कुशलता पांडित्य है औ “ यह ”
 ऐसैं एकात्मताकी उक्ति है औ मोहकी महत्ता । विचारसैं
 उत्पन्न निर्णयविना उच्छेदसैं रहिततारूप है । ताका स्थान
 कहिये आलंबन (आश्रय) है औ किसीकरिबी नहीं कहा
 है प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) जिसका ऐसी जो एकात्मता सो
 क्या है ? ऐसा जो प्रश्न । ताका विषयभूत है ॥ जातैं जिस

पंडितद्वंद्वी यह अनुक्त प्रत्युत्तरवाले प्रश्नकूं विषय करनेवाला महामोहका स्थान है । योंतैं यथाशक्तिकरि ब्रह्मविद्याके प्रतिपादक वाक्यन-विषै ब्रह्मजिज्ञासु पुरुषनकूं बुद्धिके उत्पादनअर्थ हम (पूर्वपक्षी) विचार करतेहैं:—प्रथम असंसारी-पर (परमात्मा) नहीं है । काहेतैं पाणिके पेषणतैं प्रतिबोधित अरु अवस्थांतर विशिष्ट शब्दादिकके भोक्तातैं उत्पत्तिके श्रवणतैं औ प्रशासिता अरु क्षुधारहित पर (परमात्मा) नहीं है । काहेतैं ? जातैं “ब्रह्मकूं विज्ञापन करूंगा” ऐसैं प्रतिज्ञा करिके । सुप्तपुरुषकूं हस्तके मरोडनेकरि बोधनकरिके । ताकूं शब्दआदिकके भोक्तापनैकरि विकिसकरि एकात्मता पूछनेकूं वा कहनेकूं शक्य नहीं होवै है । काहेतैं “ जो (परमात्मा) श्रवणके अर्थवी बहुत पुरुषनकरि लभ्य (प्राप्य) नहीं है ” इत्यादि श्रुतितैं । यह अर्थ है ॥

२९९ विचारके प्रयोजककूं कहिके । अब ताके कार्य विचारकूं उपसंहार करै है ॥

३०० प्रतिवादी । संशयादिककरि विचारकी कार्यता (कर्त्तव्यता) कूं प्रगट करिके । अब पूर्वपक्ष करै है ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं जगत्कर्त्ता ईश्वर कहियेहै औ प्रकृतविषै सुषुप्ति विशिष्ट जीवतैं जगत्का जन्म कहियेहै । तातैं ईश्वर जीवतैं अतिरिक्त नहीं है ॥

३०१ ताहीकं प्रपंचन करै है ॥

शिष्ट दिखायके । तिसीहींका स्वप्नरूप द्वारकरि सुषुप्तिनामवाले अवस्थांतरकूं तर्कसैं दिखायके । तिसीहीं सुषुप्ति अवस्थाकरि विशिष्टआत्मातैं अ-
 भितैं विस्फुलिंग अरु ऊर्णनाभिरूप दोनूं दृष्टां-
 तनतैं “इसतैं” इत्यादिरूप ग्रंथकरि श्रुतिहीं उ-
 त्पत्तिकूं दिखावैहै ॥ औ^{३०२} अन्य (जीवतैं भिन्न
 ईश्वर) जगत्की उत्पत्तिका कारण अंतरालविषै
 सुन्या नहींहै । जातैं^{३०३} विज्ञानमयकाहीं प्रकरण
 है । औ^{३०४} समानप्रकरणवाले श्रुत्यंतरविषै कौषी-
 तकिनके आदित्यादि पुरुषनकूं प्रस्तुत करिके ।
 सो (अजातशत्रु) कहताभया । हे बालाके !
 जो प्रसिद्ध इन (आदित्यादिक) पुरुषनका कर्त्ता
 है औ जाका यह कर्म है । सो निश्चयकरि जा-
 ननेकूं योग्य है । ऐसैं प्रबुद्ध (जागरणकूं प्राप्त
 भये) विज्ञानमयकीहीं जाननेकी योग्यताकूं दि-

३०२ ननु प्रकृत जीवके हुयेबी जगत्का कारणपना ई-
 श्वरकूंहीं इहां सुन्या है ? यह आशंका करिके । कहैहै ॥

३०३ तहां प्रकरणके अविरोधविषै हेतुकूं कहैहै ॥

३०४ अन्य श्रुतिके वशतैंबी जीवहीं इहां जगत्का कर्त्ता
 है । ऐसैं कहैहै ॥ इहां अन्य श्रुतिकूं जो जीव विषयता है ।
 सो जगत्वाचिताके अधिकरणके पूर्वपक्षके न्यायकरि देख-
 नेकूं योग्य है ॥

खावैहैं । अन्य अर्थकी नहीं ॥ तिसँप्रकार हुये “आत्माकेतो काम (भोग) अर्थ सर्व प्रिय होवैहै” ऐसैं कहिके । जोई आत्मा प्रिय प्रसिद्ध है । ति-सीहींकी दर्शन कर्त्तव्यता योग्यता श्रवणकरनेकी योग्यता । मनन करनेकी योग्यता । अरु निदिध्यासन करनेकी योग्यता दिखावैहै ॥ तिसँप्रकार हुये विद्याके उपन्यास कालविषै “ आत्मा ऐ-सैंहीं उपासना करै । सो यह (स्वस्वरूप) प्रेय (प्रियतर) है । पुत्रतैं प्रेय है । वित्ततैं प्रेयहै । सो (ब्रह्म) आत्माकूंहीं जानताभया ‘मैं ब्रह्महूं’ ऐसैं” इत्यादि वाक्यनका जीवतैं भिन्न परमात्माके अभाव हुये आनुलोम्य (अविपरीतरूप अनु-क्रम) होवैगा औ जीवतैं भिन्न जानने योग्य परमात्माके अभावविषै “पुरुष आत्माकूं जब यह ‘मैं हूं’ ऐसैं जाने” यह उपनिषत् आगे कहैगी ॥ औ सर्व वेदांतनविषै “मैं हूं” ऐसैं प्रत्यगात्माकी

३०५ वाक्यशेषके वशतैंबी जीवकूंहीं वेदितव्यता (जाननेकी योग्यता) है । सो वाक्योंके अन्वयके अधिकरणके पूर्वपक्षके न्यायकरि दिखावैहै ॥

३०६ जीवतैं अतिरिक्त जानने योग्य परमात्माके अभावविषै पूर्वोत्तर वाक्योंकी अनुबलतरूप अन्य हेतुकूं कहैहै ॥

३०७ यातैं (इस कहनेके हेतुतैं) बी जीवकीहीं वेद्यता है । ऐसैं कहैहै ॥

वेद्यता (जाननेकी योग्यता)हीं दिखाईयेहै । शब्दादिककीन्यांई “ यह ब्रह्म है ” ऐसैं बा-
हिर वेद्यता नहीं दिखाईयेहै ॥ तैसैं तौषीतन-
केहीं “वाचाकूं विशेषकरि जाने नहीं किंतु व-
क्ताकूं जाने” इत्यादि वाक्यसैं वाक् आदिक क-
रणोंकरि व्यवहारकरनेवाले कर्त्ताकीहीं जान-
नेकी योग्यताकूं दिखावैहै ॥ ॥ ननु अवस्थां-
तरकरि विशिष्टताके हुये असंसारी (संसारीतैं
भिन्नपरमात्मा) है ? ऐसैं जो कहै । कहिये तौषी^{३१०}
(नुक्तयुक्तिके सद्भाव हुयेबी) जो जागरितविषै
शब्दादिकका भोक्ता विज्ञानमय होवैहै । सोई
सुषुप्तिनामक अवस्थांतरकेप्रति गमनके हुये अ-

३०८ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहै ॥ “ सर्व जनोंकरि जा-
ननेकूं योग्य है ” इस ठिकाने जीवकी वेदितव्यता स्पष्ट
नहीं है औ इहां तो स्पष्ट है । यह भेद है ॥

३०९ सुषुप्ति अवस्थावाले जीवतैं जगत्के जन्मकी श्रु-
तितैं औ ता (जीव)कीहीं वेद्यताकी दृष्टितैं जगत्का हेतु
ईश्वर वेदांत वेद्य नहीं है । ऐसैं प्रतिवादीकरि कहे हुये
सेश्वरवादी शंका करै है ॥

३१० शंकाकूंहीं सो विवरण करै है ॥ इहां:—अथापि
(तौषी) इस शब्दका उक्तव्यवस्थाके सद्भाव हुयेबी । यह
अर्थ है ॥

संसारी परमात्मा ता (जीव)का नियामक अन्य होवैगा? इसप्रकार जो सिद्धांती कहै । सो बनै नहीं:—काहेतैं अदृष्ट होनेतैं । जातैं इसप्रकारके धर्मवाला पदार्थ नास्तिकोंके सिद्धांततैं अन्य ठिकाने देख्या नहीं औ जातैं लोकविषै गौ (बैल) जो है सो खडा हुया वा गमन करता हुया अगौ (अबैल) नहीं होवैहै । औ सोवता हुया अश्रादि अन्य जातिवाला नहीं होवैहै ॥ औ न्यायतैं जो पदार्थ प्रमाणकरि जिस धर्मवाला निश्चित होवैहै । सो देश काल अरु अन्य अवस्थाविषैवी तिस धर्मवालाहीं होवैहै ॥ सो जब तिस धर्मकेतांई व्यभिचारकूं पावै । तब सर्व प्रमाणआदिक व्यवहार लुप्त होवैगा ॥ तिसैं प्रकार हुये न्याय (युक्ति)के जा-

३११ अवस्थाके भेदतैं वस्तुका भेद नहीं होवै है । काहेतैं तिस प्रकारके अनुभवके अभावतैं औ तैसैं अनंगीकार किये तुह्यारे सिद्धांतका अंग होवैगा । इसप्रकार प्रतिवादी (निरीश्वरवादी) परिहार करै है ॥

३१२ अवस्था भेदतैं वस्तुभेदके अभावकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै है ॥

३१३ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहै ॥

३१४ जाग्रत् आदिक अवस्थाकरि विशिष्टकूंहीं सुषुप्ति

ननेहारे सांख्य अरु नीसांसकआदिक निरीश्वरवादी जे हैं वे असंसारी (ईश्वर)के अभावकूं सैकडो युक्तिनकरि प्रतिपादन करैहैं ॥ ॥ ननु संसारीकूंबी (ईश्वरकीन्यांई) जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु लयरूप क्रियाका कर्त्तापना औ प्राण आदिकका कर्त्तापना विज्ञानके अभावतैं अयुक्त है? ऐसैं कहैं । कहिये जो महत् प्रपंच (विस्तार)करि स्थापित शब्दादिकका भोक्ता सं-

अवस्थासैं विशिष्ट होनेकरि संसारी होनेतैं अन्य ईश्वर नहीं है । ऐसैं कहिके । अब तिस (जीवतैं अन्य ईश्वर)के अभावविषै वादीनकी संमतिकूं कहैहै ॥ इहां आदिशब्द जो है सो लोकायतादि समस्त निरीश्वरवादीनके सम्यक् ग्रहण अर्थ है औ “ सैकडो युक्तिनकरि ” या पदका । ता (ईश्वर)कूं देहीभावके हुये असदादिकके तुल्य होनेतैं औ ता (देहीभाव)के अभाव हुये मुक्त पुरुषकी न्यांई जगत्के कर्त्तापनैके अयोगतैं जीवनकूंहीं अदृष्टद्वारा ता (जगत्)के कर्त्तापनैके संभवतैं किंचित्कर होवै है । इत्यादिक युक्तियोंकरि । यह अर्थ है ॥

३१५ ननु जीव जो है सो जगत्के जन्म आदिकका हेतु नहीं होवै है । काहेतैं तिसविषै असमर्थ होनेतैं । पाषाणकी न्यांई ॥ औ सो (असामर्थ्य) संसारी पनैतैं है ? इसरीतिसैं सिद्धांती शंका करै हैं ॥ इहां प्राणआदिकका कर्त्तापना अयुक्त है । यह शेष है ॥

३१६ संग्रहवाक्यकूं विवरण करै हैं ॥

सारी है । सोई अन्य (सुषुप्ति) अवस्थाकरि विशिष्ट हुया जगत्का इहां कर्त्ता है? इसप्रकार जो कहैं । सो असत् है:—काहेतैं जातैं संसारीकूं जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु लयरूप क्रियाका कर्त्ता होनेअर्थ विज्ञानशक्तिरूप साधनका अभाव । सर्व लोककूं प्रत्यक्ष है । सो अस्मदादिक संसारी मनसैवी चिंतन करनेकूं अशक्य अरु पृथिवीआदिकके विन्यास (स्थापन) करि विशिष्ट जगत्कूं कैसें निर्माण करैगा! किसी प्रकारसैवी नहीं ॥ यातैं यह अयुक्त है? इसप्रकार जो सिद्धांती कहैं । सो ^{३१७} बनै नहीं:—काहेतैं शास्त्रके प्रमाणतैं जातैं “ऐसैहीं इस आत्मातैं” यह शास्त्र । संसारीतैं जगत्की उत्पत्ति-आदिककूं दिखावैहै । तैंतैं सर्व श्रद्धा करनेकूं योग्यहै । एसरीतिका यह एक (निरीश्वरवादीका) पक्ष होवैहै ॥ ॥ “जो ^{३१८} सर्वज्ञ सर्ववित्है ।

३१७ अब प्रतिवादी । कालनाशके अतिक्रमकेमिषकरि दूषण देता है ॥

३१८ अब प्रतिवादी । निरीश्वरवादकूं उपसंहार करैहै ॥

३१९ अब सिद्धांती सेश्वरवादकूं उठावते हैं ॥ इहां:—पृथिवी आदिकविषै अभिमानी तिन पुरुषनकूं उत्पादन करिके जो उल्लंघन करता भया । सो यह सर्व विशेषकरि शून्य

जो क्षुधातृषाकूं उलंघन करिके वर्त्तताहै। असंग
 रज्जुमान होता नहीं। इसीहीं अक्षरके प्रशा-
 सनविषै। जो सर्व भूतनविषै स्थित होयके अं-
 तर्यामी अमृत अरु सम हुया तिन (पृथिवीआ-
 दिक) विषै अभिमानी पुरुषकूं उत्पादन करिके
 अतिक्रमण करताभया सोई यह महान् अज
 आत्माहै। यह नेताका विधरण सर्वका वशी
 सर्वका ईशान है। जो आत्मा अपहतपाप्मा
 (निष्पाप) विजर (जरारहित) अरु विमृत्यु (म-
 रणरहित)है। सो तेजकूं स्रजताभया। आत्माहीं
 यह एकही आगे होताभया। बाह्य हुया लोकनके
 दुःखकरि लिप्त होता नहीं” इत्यादि सैकडो श्रु-
 तिनतैं औ “मैं सर्वका प्रभव हूं अरु मेरेतैं सर्व प्र-
 वर्त्त होवैहै” इस स्मृतितैं “इसरीतिसैं श्रुति स्मृ-
 ति अरु न्यायकरि असंसारी परमात्माहै औ सो
 जगत्का कारण है ॥ ॥ नैनुं “ऐसैहीं इस आ-

है। यह अर्थ है ॥ औ श्रुतियां अरु स्मृतियां पूर्व उदाहरण-
 करि कही हैं औ न्याय तोः—“ विचित्र कार्य। विशिष्ट वि-
 ज्ञानवाले कर्त्ता पूर्वक होवैहै। प्रासाद (अट्टालिका) आदिक-
 विषै तैसैं उपलंभतैं ” इत्यादि रूप है ॥

३२० प्रकरणकूं अनुसरीके जीवकूं प्राणआदिककी का-
 रणता पूर्व प्रतिवादीने कहीथी। ताकूं स्मरण करावैहैं ॥

त्मातें” इसरीतिकरि संसारीतैंहीं उत्पत्तिकूं दि-
खावैहै ? ऐसैं कहाथा ॥ सो बनै नहीँः—काहेतैं
“जो यह अंतर हृदयविषै आकाश है” ऐसैं प-
रमात्माकूं प्रकृत होनेतैं “इस आत्मातैं ” इस
श्रुतिकरि । परमात्माकाहीं ग्रहण युक्त है ॥
“ यैहै तब (सुषुप्तिकालविषै) कहांथा ” इस
प्रश्नका प्रत्युत्तररूप होनेकरि आकाशशब्दका
वाच्य परात्मा (परमात्मा) कहा “जो यह हृ-
दयके भीतर आकाशहै तिसविषै रहताहै । हे
सोम्य ! तब (सुषुप्तिविषै) सत् (ब्रह्म)के साथि
संपन्न (एकरूप) होवैहै । दिनदिनविषै जाती हु-
यी इस ब्रह्मरूप लोककूं नहीं जानतहैं । प्राज्ञ-
रूप आत्माकेसाथि मिलित हुया परमात्माविषै
संम्यक् स्थित होवैहै” इत्यादि श्रुतिनतैं आकाश
शब्दका वाच्य परमात्माहै । ऐसैं निश्चय करिये
है औ “इसविषै अल्प अंतराकाशहै” ऐसैं प्रसं-

३२१ यह जीवका प्रकरण नहीं है । इसरीतिसैं सेश्वरवादी
परिहार करै है ॥

३२२ ननु प्रतिवचनरूप आकाशशब्दकूं परमात्माकूं वि-
षय करनैपना असिद्ध है ? यह आशंका करिके । कहैहै ॥

३२३ याहीतैंबी आकाश शब्दकूं परमात्माकूं विषय कर-

गविषै प्राप्तकरिके । तिसविषैहीं आत्मशब्दके प्रयोगतैं प्रकृत (आकाश)हीं परमात्माहै । तौतैं “ऐसैहीं इस आत्मातैं” इस श्रुतिकरि परमात्मातैंहीं सृष्टि (जगत्की उत्पत्ति) होवैहै । यह युक्तहै ॥ औ संसारीकूं सृष्टि स्थिति अरु संहारके ज्ञान अरु सामर्थ्यके अभावकूं हम कहतेहैं औ इहां “आत्मा ऐसैहीं उपासना करै । आत्माकूंहीं ‘मैं ब्रह्म हूं’ ऐसै जानै” इरीतिसैं ब्रह्मविद्या प्रस्तुत (प्रसंगविषै प्राप्तकरी) है औ

नेपना है । ऐसैं सेश्वरवादी कहैहै ॥ इहां “ जो आत्मा अपहत पाप्मा है ” यह आत्मशब्दका प्रयोग है ॥

३२४ प्रतिवचनविषै परमात्माकूं आकाश शब्दकी वाच्यताके हुये फलितकूं सेश्वरवादी कहैहै ॥

३२५ ता (परमात्मा)की प्रकृतताके हुये लब्ध अर्थकूं सेश्वरवादी कहैहै ॥

३२६ याहीतैंबी परमात्मातैंहीं प्राणादिककी सृष्टि होवै है । ऐसैं सोई कहैहै ॥ जो महत् प्रपंच (विस्तार) करि इत्यादि स्थलविषै यह शेष है ॥

३२७ ननु जगत्का कारण ब्रह्म ईश्वर है । सोई जीवका स्वरूप है । ताकी यह उपनिषत् है । इस सिद्धांतकूं आशंका करिके सोई दूषण देता है ॥ इहां तृतीय अध्याय । सप्तमीका अर्थ है ॥

ब्रह्मकूं विषय क नेवाला ब्रह्मका विज्ञानहै । सो “ब्रह्मै तेरेताई कहताहूं” औ “ब्रह्मकूं जनावूंगा” ऐसैं आरंभ किया ॥ तैहां अब असंसारि ब्रह्म जग-तका कारणहै । सो क्षुधाआदिकसैं अतीत नित्य-मुक्त नित्यबुद्ध नित्यशुद्ध स्वभाववालाहै औ ति-सतैं विपरीत संसारीहै ॥ तातैं “मैं ब्रह्महूं” ऐसैं ग्रहण करै नहीं । जातैं परमदेव ईश्वरकूं निकृष्ट संसारी जो है सो आत्मभावकरि स्मरण करता हुया कैसैं दोषका भागी नहीं होवैगा । दोषका भागी होवैगाहीं । तातैं “मैं ब्रह्महूं” ऐसैं जानना

३२८ फेर सो ब्रह्मविद्या कौन है ? तहां सोई कहैहै ॥ इहां यह ब्रह्मवेत्तानके मध्य प्रसिद्ध है । यह शेष है ॥

३२९ चतुर्थ अध्यायविषै ब्रह्मविद्या प्रस्तुत करी है । ऐसैं सोई (सेश्वरवादी) कहैहै ॥

३३० ननु ब्रह्मविद्या प्रस्तुतकरी है यह सत्य है । परंतु सो जीवविद्याबी होवै है काहेतैं जीव ब्रह्मके अभेदतैं ? यह आशंका करिके सोई कहैहै ॥ इहां:—“तहां” इस शब्दका ब्रह्मविद्याके प्रस्तुत हुये यह अर्थ है ॥ औ अबी नहीं ग्रहण करना । ऐसैं संबंध है ॥ परस्पर विरुद्धताकी प्रतीतिरूप अवस्थाविषै यह अर्थ है । औ अन्योऽन्यविरुद्धता “तत्” शब्दका अर्थ है ॥

३३१ विपक्षविषै सोई दोषकूं कहैहै ॥

युक्त नहीं है ॥ तौ तौ पुष्प उदक अंजलि स्तुति नमस्कार ~~बलिदान~~ स्वाध्याय अरु ध्यानयोग आदिक करि ईश्वरकूं आराधन करनेकूं इच्छे । आराधनसैं जानिके सर्वका नियंता ब्रह्म होवै है फेरै^{३३३} (परंतु) संसारी जो है सो शीतभावकरि अग्नि की न्यांई अरु मूर्त्तिमान्भावकरि आकाश की न्यांई असंसारी ब्रह्मकूं आत्मभावकरि चिंतन करै नहीं । औ ब्रह्मके आत्मभावका प्रतिपादक शास्त्रबी अर्थवादरूप होवैगा । ईसरीतिसैं सर्व तर्कशास्त्र लोक अरु न्यायकरि अविरोध होवैगा ? इसप्रकार जो प्रतिवादी (सेश्वरवादी) कहै । सो^{३३६}

३३२ ननु तब ईश्वरविषै नमस्कार कैसें करना ? यह आशंका करिके स्वामीभावकरि करना । ऐसें कहै है ॥ इहां आदिपद जो है सो प्रदक्षिणा आदिकके संग्रह अर्थ है ॥

३३३ एकताके शास्त्रतैं ब्रह्मविषै आत्मबुद्धिहीं करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके सोई कहै है ॥

३३४ ननु तब शास्त्रकी गति कौन होवैगी ? तहां कहै है ॥

३३५ ननु मुख्य अर्थताके संभव हुये अर्थवादता क्यूं कहता है ? यह आशंका करिके सोई कहै है ॥ इहां संसारिभाव अरु असंसारीभाव आदिककरि परस्पर विरुद्ध जीव ईश्वरकी शीत अरु उष्णकी न्यांई एकताका असंभवरूप न्याय है ॥

३३६ अब विज्ञानात्मान् विषय करनेपना औ तटस्थ

बनै नहीं:—काहेतैं मंत्र अरु ब्राह्मणके वादोंतैं तिसी (परमात्मा) हींके प्रवेशके श्रवणतैं ॥ “पुरनकूं करताभया” ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त करिके “पुरीनकेप्रति पुंरूष च्यारीओरतैं प्रवेश करताभया । रूप रूपके तांई प्रतिरूप होताभया । सो याका रूप स्पष्ट करने अर्थ है । धीर (परमात्मा) सर्व रूपोंकूं चिंतन करिके नामोंकूं करिके कथन करता हुया ^{३३}जो स्थित होवैहै” ऐसैं सर्व शाखाओंविषै सहस्रावधि जे मंत्रवाद हैं वे सृष्टिके कर्ता असंसारीकेहीं शरीरविषै प्रवेशकूं दिखावैहैं ॥ तैसैं “ ताकूं स्रजिके ताहीकेप्रति पीछे प्रवेश करताभया । सो जो इसीहीं सीमाकूं विदारण करिके इसी द्वारकरि प्राप्त होता (प्रवेश करता) भया । सो यह देवता इन तीन देवताकूं । इस जीवस्वरूपकरि पीछे प्रवेश करिके । यह सर्व भूतनविषै गूढ आत्मा

ईश्वरकूं विषय करनेपना उपनिषद्का निवारण करते हुये सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

३३७ परमात्माकेहीं प्रवेशके वादी (सिद्धांती) । मंत्र अरु ब्राह्मणके वादनकूं उदाहरण करै हैं ॥

३३८ औ जो “ मैं ब्रह्म हूं ऐसैं प्रहण करना नहीं ” इसप्रकार जो प्रतिवादीनैं कहा था । तहां कहैहैं ॥

प्रकाशता नहीं” इत्यादिक ब्राह्मणभागके वाद [बी परमात्माकेहीं शरीरविषे प्रवेशकूं दिखावै] हैं ॥ ॥ सर्व श्रुतिनविषे ब्रह्ममें आत्मशब्दके प्रयोगतैं औ आत्मशब्दकूं प्रत्यगात्माका अभिधायक (वाचक) होनेतैं औ “यह (परमात्मा) सर्व भूतनका अंतरात्मा है” इस श्रुतितैं परमात्मातैं व्यतिरेककरि संसारीके अभावतैं “एकहीं अद्वितीय है । ब्रह्महीं यह है। आत्माहीं यह है” इत्यादि श्रुतितैं “अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूं)” इसप्रकारसैंहीं धारण करनेकूं युक्तहीं हैं ॥ ॥ ननु जब इसरीतिसैं (एकतारूप) शास्त्रका अर्थ स्थित है । तब परमात्माकूं संसारीपना होवैगा ॥ तिसैं प्रकार हुये शास्त्रकी व्यर्थता होवैगी औ ताकी असंसारिताके हुये

३३९ शास्त्र उक्त एकताबी अनिष्टकी प्राप्तितैं स्वीकार करनेकूं योग्य नहीं है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३४० परमात्माके संसारीभावविषे औ ताके असंसारीभावविषे शास्त्रकी व्यर्थतारूप फलितकूं कहैहै ॥

३४१ संसारीतैं अनन्यरूप परमात्माकेबी असंसारीभावके हुये । संसारीभावकरि मान्याहुयाबी असंसारी है । या उपदेशकी व्यर्थता होवैगी । यातैं तिस (उपदेश) विनाहीं मुक्तिकी सिद्धि होवैगी । इस दोषांतरकूं कहैहै ॥

उपदेशकी व्यर्थतारूप स्पष्ट दोष प्राप्त होवैगा ?
 जब प्रथम परमात्मा सर्व भूतनका अंतरात्मा
 है । तब सर्व शरीरनके संबंधसैं जनित दुःख-
 नकूं अनुभव करैहै । एसैं स्पष्ट परमात्माकूं सं-
 सारीपना प्राप्त होवैगा ॥ तिस प्रकार हुये पर-
 मात्माके असंसारीभावकी प्रतिपादक श्रुतियां
 औ स्मृतियां औ सर्व न्याय (युक्तियां)
 कोपकूं पावैगी ॥ ॥ अथवा परमात्मा किसी प्र-
 कारसैंवी प्राण अरु शरीरनके संबंधसैं जन्य
 दुःखनसैं संबंधकूं पावता नहीं । एसैं प्रतिपादन
 करनेकूं शक्य होवैहै । तौबी परमात्माके साध्य-
 रूप परिहार करनेयोग्यके अभावतैं उपदेशकी
 व्यर्थतारूप दोष निवारण करनेकूं नहीं शक्य
 होवैहै ॥ ॥ इहां केईक (सिद्धांतके एक-

३४२ तिनमें आद्य दोषकूं वर्णन करै है ॥ इहां:—“बाह्य
 हुया लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं” इत्यादिक श्रु-
 तियां हैं । “ जाकूं अहंकृतभाव नहीं है अरु जाकी बुद्धि
 लिप्त होती नहीं ” इत्यादिक स्मृतियां हैं औ कूटस्थता अरु
 असंगता आदिक न्याय है ॥

३४३ द्वितीयपक्षविषै दोषके प्रसंगकूं संपादन करिके
 प्रगट करै है ॥

३४४ दोनूं दोषनविषै स्वयूथवाले (एकदेशी)के संबंधी
 समाधानकूं सिद्धांती उठावते हैं ॥

देशी) परिहारकूं कहतेहैं:—परमात्मा जो है । सो अपने रूपकरि साक्षात् भूतनविषै अनुप्रवेशकूं पाया नहीं । किंतु^{३३} विकारभावकूं प्राप्त हुया विज्ञानात्मभावकूं प्राप्त होताभया^{३४} औ सो विज्ञानात्मा परमात्मातैं अन्य है अरु अनन्य है ॥ जिसैं^{३५} हेतुकरि अन्य है । तिस हेतुकरि संसारी-भावका संबन्धी है औ जिस हेतुकरि अनन्य है तिस हेतुकरि “मैं ब्रह्म हूं” इस धारणाके योग्य है । इसरीतिसैं सर्व अविरुद्ध होवैगा ॥ ॥ तैंहां

३४५ तब तिस कार्यविषै प्रविष्ट भये परमात्माकूं जीवपना कैसें होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

३४६ ननु जीवकूं ब्रह्मकी विकारताके हुयेबी तिसतैं भेदकरि “मैं ब्रह्म हूं” ऐसी बुद्धि नहीं होवैगी अरु अभेदके हुये ब्रह्मकूंबी संसारीभाव होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

३४७ तथापि शंकाके विषय हुये दोषका अभाव कैसें होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां “ऐसें” इस शब्दकरि भिन्नता अरु अभिन्नताका ग्रहण है ॥

३४८ एकदेशीके मतकूं निराकरण करनेकूं विकल्प करैहैं ॥ इहां ये गतियां कहिये इतने आगे कहनेके पक्ष संभवैं हैं अन्य गति नहीं है । यह अर्थ है ॥ जैसें पृथिवीशब्दका वाच्य जो द्रव्य । सो अनेक अवयवनका समुदायरूप है । तैसें भौतिकस्वरूप अनेक द्रव्योंका समुदायरूप सावयव परमात्मा है । ताका एक देश चैतन्यरूप है । ताका विकार

विज्ञानात्मादे विकारपक्षविषै इतनी गतियां (इतने पक्ष) हैं:—पृथिवी द्रव्यकीन्यांई अनेक द्रव्योंका समुदायरूप सावयव परमात्माके एकदेशका विपरिणाम विज्ञानात्मा है। घटादिककी न्यांई ॥ ॥ अथवा पूर्व संस्थान (पूर्वलीस्थिति)-रूप अवस्थावाले परमात्माका एकदेश विक्रिया (परिणाम)कूं पावताहै। पुरुषके केश अरु भूमिकाके ऊषरआदिककीन्यांई ॥ अथवा सर्व (संपूर्ण)हीं परमात्मा परिणामकूं पावताहै क्षीरआदिककीन्यांई। ये तीन विकल्प (पक्ष) हैं ॥ तिनमें समानजातिवाले अनेक द्रव्योंके समुदा-

जीव है। पृथिवीके एकदेशरूप मृत्तिकाका विकार घट शराव आदिक है। यह एक कल्प (पक्ष) है ॥ औ जैसे भूमिका ऊषरादि देश वा पुरुषका नख केशादिक विकार है। तैसे अवयववाले परमात्माका एकदेशरूप विकार जीव है। यह द्वितीय कल्प (पक्ष) है ॥ औ जैसे क्षीर वा स्वर्ण रसपदार्थ दधि अरु रुचक (भूषण) आदिक रूपसँ परिणामकूं पावता है। तैसे संपूर्णहीं परमात्मा जीवभावसँ परिणामकूं पावै है। यह अन्य विकल्प (तृतीय पक्ष) है ॥

३४९ तिनमें प्रथम पक्षकूं अनुवाद करिके सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—नानाद्रव्योंका समाहार-रूप परमात्मा है वा परस्परकी अपेक्षावाले वे द्रव्य परमात्मा है। पेसँ जो कहै तो ताकी एकता नहीं होवैगी। जातें ब-

यका कोईक द्रव्यविशेष विज्ञानात्मभावकूं जब पावताहै । तब समानजातिवाला होनेतैं एकता उपचरित (आरोपित)हीं है । परंतु परमार्थतैं नहीं । तिसंप्रकार हुये सिद्धांतका विरोध होवैगा ॥ ॥ ^{३५९} औ जब नित्य मिलित सिद्ध अवयवोंविषै अनुगत अवयवी जो परमात्मा । तिस अवस्थावाले ता (परमात्मा)का एकदेशरूप विज्ञानात्मा संसारीहै । तोबी सर्व अवयवोंविषै अनुगत होनेतैं अवयवीकूंहीं अवयवगत दोष वा गुण होवैगा । ऐसैं विज्ञानात्माके संसारीभावरूप दोषकरि परमात्माहीं संबंधकूं पावैगा ।

हुतनकी मुख्य एकता नहीं होवैहै । काहेतैं समुदायके अपर पर्यायरूप समाहारकूं समुदायीनतैं भेद अरु अभेदकरि दुर्वाच्य होनेकरि कल्पित होनेतैं । यह अर्थ है ॥

३५० तब ब्रह्मकी मुख्य एकता मति होइ ? तहांकहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—जातैं ता (ब्रह्म)का नानापना किसीकूंबी संमत नहीं है ॥

३५१ द्वितीय पक्षकूं अनुवाद करिके निराकरण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्वदाहीं अपृथक् स्थित अवयवरूप जीवनविषै अनुगत चेतन अवयवी परमात्मा जब होवै । तब जैसें प्रति अवयव मलके संसर्ग हुये देहकी मलिनता होवैहै । तैसें परमात्माकूं जीवगत दुःखोंकरि महत् दुःख होवैगा । यातैं प्रथम कल्पनाकी न्यांई द्वितीय कल्पनाबी युक्त नहीं है ॥

इसप्रकारकी यहबी अनिष्ट कल्पना होवैगी ॥ ॥
^{३५२}औ क्षीरकीन्यांई सर्व (सारेपरमात्मा)के परिणाम
 पक्षविषै सर्व श्रुति अरु स्मृतिनका कोप होवैगा
^{३५३}औ सो अनिष्ट है ॥ “^{३५४}निष्क्रिय शांत दिव्य अमूर्त
 पुरुषहै । सो बाहिर भीतर अजन्माहै । आकाश-
 कीन्यांई सर्वगत औ नित्यहै । सोई यह महान्
 अजआत्मा अमर अजर अमृतहै ॥ कदाचित्
 जन्मता नहीं वा मरता नहीं । यह अव्यक्तहै”
 इत्यादि श्रुति स्मृति अरु न्यायतैं विरुद्ध ये (उक्त-
 प्रकारके) सर्व पक्षहैं ॥ ॥ किंवा अचल (अ-
 क्रिय) परमात्माके एकदेशरूप पक्षविषै विज्ञाना-
 त्माकूं कर्मफलकीन्यांई देश (स्वर्गादिक)विषै सं-

३५२ तृतीय विकल्पके प्रति कहैहैं ॥ इहां:—“ जन्मता
 नहीं वा मरता नहीं विपश्चित् ” इत्यादिक श्रुतियां हैं ॥
 औ “ कदाचित् जन्मता नहीं वा मरता नहीं ” इत्यादिक
 स्मृतियां हैं ॥

३५३ श्रुतिआदिकके कोपकी इष्टताकूं आशंका करिके ।
 वैदिकके प्रति कहैहैं ॥

३५४ श्रुति स्मृतिकूं विवेचन करते हुये तीन पक्षविषै
 साधारण दूषणकूं करै हैं ॥ इहां कूटस्थ अरु निरवयवके
 संपूर्ण अरु एकदेशकरि परिणामका असंभवरूप न्याय है ॥

३५५ जीवकूं परमात्माकी एकदेशताविषै अन्य दोषकूं
 कहैहैं ॥

सरण (गति)का असंभव होवैगा ॥ ३५६ परमात्माकूं संसारीपना होवैगा । ऐसैं कहा ॥ ॥
 ३५६ आँगिके विस्फुलिंगकीन्यांई परमात्मासैं स्फुटित (फूट्या) जो परमात्माका एकदेश (अवयव)रूप विज्ञानात्मा (जीव) । सो संसरता (गमन करता) है ? ऐसैं जो कहै । तैर्थापि परमात्माकूं अवयव-

३५६ एकदेशके एकदेशीसैं व्यतिरेककरि अभावतैं जीवकी स्वर्गआदिकविषै गतिका असंभव होवैगा ऐसैं कहा । अन्यथा परमात्माकीबी गति होवैगी । जातैं पटके अवयवनके चलते हुये पट नहीं चालता है ऐसैं नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां जब प्रथम परमात्मा इत्यादि स्थलविषै कहा है । यह शेष है ॥

३५७ जीवकूं संसारीभावके हुये परमात्माकूं सो नहीं है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

३५८ अब सिद्धांती परमात्माके निरवयवताकी श्रुतितैं अवयवनकी स्फुटता (फूटने)के असंभवकूं मानते हुये दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जहां परमात्माका अवयव फूटता है तहां ताकूं क्षत प्राप्त होवैहै । औ तिनके अवयवनके संसरणके हुये परमात्माकूं प्रदेशांतरविषै अवयवनके समूहके हुये उपचय (वढना) होवैगा । तैरुपरहुये परमात्माके अवयव जहांतैं निकस जाते हैं । तहां छिद्रभाकी प्राप्ति होवैगी औ जहां वे (अवयव) जाते हैं तहां उपचय (बढना) होवैगा । यातैं “ अकाय अव्रण अस्थूल अनणु अहस्व ” इत्यादि श्रुतिवाक्यका विरोध होवैगा ॥

नके फूटनेकरि क्षत कहिये व्रण (फोट)की प्राप्ति होवैगी औ तिन (अवयवन)के संसरण (गमन) के हुये परमात्माकी प्रदेशांतर (अन्यदेश)विषै अवयवनके समूहके हुये उपचय (वृद्धि) होवैगा औ अच्छिद्रभावकी प्राप्ति होवैगी औ अवृण वाक्यका विरोध होवैगा ॥ किंवा^{३५९} आत्माके अवयवभूत विज्ञानात्माके संसरणके हुये परमात्माकरि शून्य प्रदेशके अभावतैं अवयवांतरके नाश करने अरु वृद्धिकरनेकरि हृदयशूलसैं दुःखप्राप्तिकीन्यांई परमात्माकूं दुःखीभावकी प्राप्ति होवैगी ॥ ॥ अंगिके विस्फुलिंग आदिक दृष्टांतनकी श्रुतितैं दोष नहींहै? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहींः—काहेतैं श्रुतिकूं ज्ञापक (सिद्ध अरु

३५९ परमात्माका एकदेश विज्ञानात्मा (जीव) है । या पक्षविषै ता (परमात्मा)कूं दुर्वार दुःखीपनाबी प्राप्त होवैगा । इसरीतिके दोषांतरकूं सिद्धांती कहैहैं ॥

३६० मृत्तिका लोह विस्फुलिंगरूप दृष्टांतकी श्रुतिके वशतैं परमात्माके अवयव जीव सिद्ध होवैहैं । यातैं जीवनकूं परमात्माके एकदेशभावविषै उक्त जो दोष । सो प्रगट होता नहीं । काहेतैं युक्तिकी अपेक्षाकरि श्रुतिकूं बलवान् होनेतैं ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

३६१ शास्त्रका अर्थ युक्तिविरुद्ध नहीं सिद्ध होवैहै । इसरीतिसैं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

अज्ञात अर्थकी बोधक) होनेतैं ॥ शौंख जो है सो पदार्थनकूं अन्यथा करनेकूं प्रवृत्त नहीं होवैहै । किंतु^{३६३} यथाभूत अज्ञात पदार्थनके विज्ञापनविषै प्रवृत्त होवैहै ॥ ॥ ननु^{३६४} इस कथनतैं क्या होवैहै ? ईस कथनतैं जो होवैहै । सो श्रवण करः—यथाभूत (जिसप्रकारके) मूर्त्त अरु अमूर्त्तआदिक पदार्थरूप धर्म । लो^{३६५} प्रसिद्धहैं । तिन (लोक

३६२ “नञ्” शब्दके अर्थकूं वर्णन करै हैं ॥

३६३ हेतु भागकूं आकांक्षापूर्वक विभाग करै हैं ॥ इहां “अज्ञात वस्तुनके ” ऐसैं जो कहा । सो स्मृति आदिककी व्यावृत्ति अर्थ है ॥

३६४ शास्त्र अज्ञातका ज्ञापक होइ । तथापि परमात्माकी साव्यवता नहीं है । इस अर्थविषै क्या आया ? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

३६५ शास्त्रके उक्त प्रकारके स्वभावके हुये जो परमात्माका निरवयवपना फलता है । सो मुजकरि कथन किया हुया एकाग्र हुये तुजकरि सुननेकूं योग्य है । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं ॥

३६६ तहां प्रथम लोकके अविरोधकरि शास्त्रकी प्रवृत्तिकूं दिखावै हैं ॥ इहां आदिपदकरि भाव अभाव आदिक ग्रहण करिये है । पदार्थनविषैहीं भोक्ताकी परतंत्रतातैं धर्मशब्द है । तिन लोक प्रसिद्ध पदार्थरूप दृष्टान्तके उपन्यासकरि यह अर्थ है औ ताका अविरोधि कहिये लोक प्रसिद्ध अर्थका अविरोधि औ वस्तुअंतर कहिये निरवयवादि दाष्टीतिक ॥

प्रसिद्ध पदार्थरूप) दृष्टान्तके ग्रहण (उपन्यास) करि तिन (लोकप्रसिद्ध अर्थन)सैं अविरोधिहीं अन्य वस्तुकूं जनावनेकूं शास्त्र प्रवृत्त होवैहै ।
^{३६७}लौकिक वस्तुसैं विरोधके जनावने अर्थ लौकिक दृष्टान्तकूंहीं ग्रहण करता नहीं । ^{३६८}ग्रहण किया (उपन्यास किया)बी दृष्टान्त व्यर्थ होवैगा । काहेतैं दार्ष्टान्तिककी असंगतितैं ॥ ^{३६९}जातैं अग्नि शीत है वा अग्नि तपता नहीं । ऐसैं दृष्टान्तनके शतकबी प्रतिपादन करनेकूं शक्य नहींहै । काहेतैं प्रमाणांतरकरि वस्तुकूं अन्यथा अधिगत (और प्रकारसैं निश्चित) होनेतैं ॥ ^{३७०}औं प्रमाण जो है सो अन्यप्रमाणके साथि विरोधकूं पावता नहीं ।

३६७ ताका अविरोधीहीं । इस एवकारके व्यावर्त्य (निषेध्य)कूं कहैहैं ॥

३६८ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

३६९ सामान्यकरि उक्त अर्थकूं दृष्टान्तविशेषकी निविष्टाकरि स्पष्ट करै हैं ॥ इहां अग्निका उष्णपना औ आदित्यका तापकपना “अन्यथा” ऐसैं कहियेहै ॥

३७० ननु लौकिक प्रमाण जो है । सो लौकिक पदार्थसैं अविरोद्धहीं स्वार्थकूं समर्पण करै है ॥ वैदिक फेर अपौरुषेय जो वाक्य । सो तिस (लौकिक पदार्थ)सैं अविरोद्धबी स्वार्थकूं प्रमाज्ञानका विषय करैगा । अलौकिक विषयवाला होनेतैं ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥

जातें प्रमाणांत के अविषय (अज्ञातवस्तु) कूंहीं
 प्रमाणांतर ज्ञापन करैहै औ लौकिक पदपदा-
 र्थके आश्रय करनेके व्यतिरेकसैं (विना) आ-
 गमकरि अज्ञात वस्तुअंतर जनावनेकूं शक्य
 नहींहै । तातें प्रसिद्ध न्याय (लौकिक दृष्टांत)कूं
 अनुसरनेवाले आगमप्रमाणकरि परमात्माके
 सावयवभावकरि अंशअंशीभावकी कल्पना ।
 परमार्थतें प्रतिपादन करनेकूं शक्य नहींहै ॥ ॥
 ननु “क्षुद्र विस्फुलिंग” औ “मेराहीं अंश” ऐसैं

३७१ ननु श्रुतिकूं अज्ञातकी ज्ञापकताके हुये लोककी अ-
 पेक्षासैं रहित होनेतें तिस (लोक)सैं विरोधके हुयेबी कौन
 हानि है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“लोककरि
 प्राप्त सामर्थ्यवाला शब्द । वेदविषैबी बोधक होवैहै ” इस
 न्यायतें तिस (लोक)की अपेक्षासैंरहित श्रुति । अज्ञातव-
 स्तुकूं जनावनेकूं परिपूर्ण नहीं है ॥

३७२ शास्त्रकूं लोक अनुसारीताके सिद्ध भये फलितकूं
 कहैहैं ॥ इहां प्रसिद्ध न्याय कहिये लौकिक दृष्टांत है । जातें
 नित्य आकाशकी सावयवता नहीं है औ परमात्माबी नित्य
 अंगीकार किया है । ताकी सावयवताकरि अंशांशीभावकी
 कल्पना वस्तुतें नहीं संभवैहै । लोक विरोधतें यह अर्थ है ॥

३७३ ननु जीवकूं परमात्माके अंशभावके अनंगीकार किये
 हुये श्रुति स्मृतिकी गति कहनेकूं योग्य है ? इसप्रकार प्रति-
 वादी शंका करै है ॥

सुनियेहै औ स्मरण करियेहै? ऐसैं जो कहै ।
^{३७४}सो बनै नहीं:—काहेतैं तिन श्रुति अरु स्मृतिकूं
 एकताके ज्ञानरूप अर्थके परायण होनेतैं ॥ जातैं
 अग्निका विस्फुलिंग अग्निहीं है । ऐसैं लोहविषे
 एकताके ज्ञानके योग्य देख्या है । तिसंप्रकार
 हुये अंश जो है सो अंशीकेसाथि एकताके ज्ञान-
 के योग्य होवैहै ॥ तहां ऐसैं हुये विज्ञानात्माके
 परमात्माके विकारभाव अरु अंशभावके वा-
 चक जे शब्द हैं । वे ^{३७७}उपक्रम अरु उपसंहारकरि
 परमात्माकेसाथि जीवकी एकताके ज्ञानके क-
 थन करनेकी इच्छावाले हैं ॥ जातैं सर्व उपनि-
 षदनविषै पूर्व एकताकूं प्रतिज्ञाकरिके दृष्टांतों-

३७४ अब सिद्धांती तिन (श्रुतिस्मृति)की गतिकूं कहैहैं ॥

३७५ विस्फुलिंगविषै दिखाये न्यायकूं सर्वत्र अंशमात्र-
 विषै अतिदेश करै हैं ॥

३७६ दृष्टांतके उक्त प्रकारकी नीतिकरि स्थित भये दा-
 र्ष्टांतिककूं कहैहैं ॥ परमात्माकेसाथि जीवकी एकताकूं वि-
 षय करनेवाले प्रत्ययकूं आधान करनेकूं इच्छते हैं । ऐसैं जे
 शब्द । वे तिस प्रकारके कहैहैं ॥

३७७ तिन शब्दनकी एकताके ज्ञानके अवतारकी हेतुता-
 विषै अन्य हेतुकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

३७८ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

करि अरु हेतुनकरि परमात्माका विकार अरु अंश आदिक भाव । जगत्कूं प्रतिपादन करिके । फेर एकताकूं उपसंहार करैहै ॥ ^{३७९}सो जैसें इहांहीं (इसीहीं उपनिषदविषै) प्रथम “ यह सर्व जो यह आत्माहै ” ऐसें प्रतिज्ञा करिके उत्पत्ति स्थिति अरु लयके हेतु अरु दृष्टान्तनकरि विकार विकारीभावआदिक एकताके ज्ञानके हेतुनकूं प्रतिपादन करिके “यह आत्मा अनंतर अवाह्य ब्रह्महै” ऐसें उपसंहार करैगी ॥ ^{३८०}तातैं उपक्रम अरु उपसंहारकरि यह अर्थ निश्चय करियेहै ॥ यातैं परमात्माकेसाथि जीवकी एकताके ज्ञानकी दृढताअर्थ उत्पत्ति स्थिति अरु लयके प्रतिपादक वाक्य हैं औ ^{३८१}अन्यथा । वाक्यभेदके प्रसंगतैं ॥ ^{३८२}सर्व उपनिषदनविषै विज्ञानात्माका

३७९ उक्त अर्थकूं उदाहरण निष्ठताकरि विभाग करैहैं ॥ इधर “ इहां ” इस शब्दकरि प्रकृत उपनिषत्का कथन है औ आदिशब्दकरि अंशांशीभाव आदिक ग्रहण करियेहै ॥

३८० विवरण किये संग्रहण वाक्यकूं उपसंहार करैहैं ॥

३८१ तिन (वाक्यन)की स्वार्थ निष्ठताविषै दोषकूं कहते हुये एकताके ज्ञानरूप अर्थवान्ताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

३८२ एकवाक्यताके संभव हुये वाक्यका भेद नहीं अंगीकार करिये है । इस न्यायकरि उक्त अर्थकूं प्रपंचन करै हैं ॥

परमात्मवेत्ताएकताका प्रत्यय विधान करियेहै । इसरीतिसँ सर्व उपनिषद्वादीनकी अविप्रतिपत्ति (अविवाद) है औ सो विधान । एकवाक्यके योग हुये संभवैहै अरु उत्पत्तिआदिकके वाक्यनकी वाक्यांतरताकी कल्पनाविषै प्रमाण नहीं है औ फलांतर कल्पना करनेकूं योग्य होवैहै । तौतैं उत्पत्तिआदिककी श्रुतियां आत्माकी एकताके प्रतिपादनपरहैं ॥ ॥ औ ईहां (इस उक्त अर्थविषै) संप्रदायके वेत्ता (द्रविडाचार्य) आख्यायिकाकूं कहतेहैं:—कोईक त्याग

३८३ किंच:—तिन (वाक्यन)की स्वार्थनिष्ठताके हुये श्रुत फलके अभावतैं फलांतर कल्पनेकूं योग्य है औ एकताके ज्ञानकी विषयताकरि ताके ज्ञानमें निराकांक्ष तिनविषै कल्पना युक्त नहीं है । काहेतैं दृष्टके होते अदृष्टकी कल्पनाके अनवकाशतैं ऐसैं कहैहैं ॥

३८४ उत्पत्ति आदिककी श्रुतिनकी स्वार्थनिष्ठताके असंभव हुये फलितकूं उपसंहार करै हैं ॥

३८५ “तत्त्वमसि” आदिक वाक्य ऐक्यपर है अरु ताका शेष (उपकारक) स्रष्टि आदिकका वाक्य है । ऐसैं कहे हुये अर्थविषै द्रविडाचार्यकी संमतिकूं कहैहैं ॥

३८६ तहां दृष्टांतरूप आख्यायिकाकूं रचते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातमात्रविषै पूर्व अवस्थामैंहीं “ राजा हूं ” इस अभिमानके आविर्भावतैं औ तिनोंकरि ताके परित्याग-

निमित्तके अनिश्चयका विषय राजपुत्र था । सो जातमात्रहीं मातापिताद्वारि परित्यक्त हुया व्याधके गृहविषै सम्यक् वृद्धिकूं पावताभया । सो इस (राजा)के वंशभावकूं नजानता हुया व्याधजातिके प्रत्ययवाला हुया व्याधजातिके कर्मोंकूंहीं अनुवर्तन करतहै । “मैं राजा हूं” इस अभिमानपूर्वक राजजातिके कर्मोंकूं अनुवर्तन करता नहीं । जैसे फेर कोईक परम कारुणिक राजपुत्रकी राजलक्ष्मीकी प्राप्तिकी योग्यताकूं जानता हुया इस (राजा)की पुत्रताकूं बोधन करैहै:—“तूं व्याध नहींहैं” इस राजाका पुत्र हैं । किसी प्रकारसैंबी व्याधके गृहकेप्रति विषै निमित्त विशेषकी अनिश्चितताके द्योतनार्थ इहां किल (प्रसिद्ध) ऐसैं कहा । औ व्याधजातिका ज्ञान अरु ताका किया “मैं व्याध हूं” ऐसा अभिमान जिसकूं है सो तिस अभिमानके किये मांस विक्रयण आदिक व्याधजातिके कर्मोंके तांई अनुवर्तता है औ “मैं राजा हूं” इस अभिमानपूर्वक तिस जातिके किये प्रजापिताद्वारि आदिक कर्मोंके तांई अनुवर्तता नहीं ॥

३८७ अज्ञान औ ताके कार्यकूं कहिके । अब ज्ञान औ ताके फलकूं दिखावै हैं ॥

३८८ बोधनके प्रकारकूं आकारकरि दिखावैहैं ॥

३८९ तब शबर (व्याध)के गृहविषै प्रवेश कैसैं भया ?

अनुप्रवेशकूं पायाहैं” ऐसैं ॥ तब सो (राजकुमार) ऐसैं बोधित हुया व्याधजातिके प्रत्यय अरु कर्मोंकूं त्याग करिके । “मैं राजा हूं” ऐसैं आपके पिता अरु पितामहकी पदवीकेताई अनुवर्तन करैहै ॥ ॥ तैसैं प्रसिद्ध यह (जीवात्मा) परमात्मातैं अग्नितैं विस्फुलिंगआदिककीन्यांई तिसजातिवालाहीं कहिये तिसस्वभाववाला (वस्तुतैं परमात्मा)हीं हुया विभक्त (परमात्मातैं भिन्न) होयके इस (अपरोक्ष अनुभवगम्य) देहेंद्रियादिरूप वनविषै प्रविष्ट संसारी हुया देहेंद्रियादि संसारके धर्मकेप्रति “मैं देहेंद्रियादिकका संघातहूं । ठूशहूं । स्थूलहूं । सुखीहूं । दुः-

तहां कहैहैं ॥ इहां “मैं राजा हूं” इस अभिमानपूर्वक आपके पिता अरु पितामहकी पदवीकूं अनुसारी हुया वर्तता है । ऐसैं संबंध है ॥

३९० दार्ष्टान्तिकरूप आख्यायिकाकूं कहैहैं ॥ इहां जीवके परमात्मातैं विभागविषै अज्ञान औ ताका कार्यरूप निमित्त प्रसिद्ध है । ऐसैं द्योतन करनेकूं “किल (प्रसिद्ध)” ऐसैं कहा औ तिस जातिवाला कहिये तिस स्वभाववाला । अर्थ यह जो वस्तुतैं परमात्माहीं हुया औ इधर इहां:—(इसविषै) ऐसैं अपरोक्ष अनुभव गम्यताकी उक्ति है औ गहन कहिये गंभीर वन ॥

खीहूँ” ऐसैं आपके परमात्मभावकूँ न जानता हुआ अनुवर्तन करैहै ॥ तूँ^{३९२} इस स्वरूपवाला नहींहैं । किंतु असंसारी परब्रह्महीं हैं ऐसैं आचार्यकरि प्रतिबोधित हुआ तीन एषणाकी अनुवृत्तिकूँ छोडीके “ मैं ब्रह्महींहूँ ” ऐसैं जानताहै ॥ इँहां राजपुत्रकूँ राजप्रत्ययकीन्यांई अधिकारीकूँ ब्रह्मप्रत्यय दृढ होवैहै ॥ विस्फुलिंगकीन्यांईहीं तूँ परब्रह्मतैं भ्रष्ट भयाहैं । ऐसैं कथन कीये हुये विस्फुलिंगकी अग्नितैं भ्रंशतैं पूर्व अग्निकेसाथि एकताके देखनेतैं । तातैं एकताके ज्ञानकी दृढताअर्थ सुवर्णमणि लोह अरु अग्निके विस्फुलिंगरूप दृष्टांतहैं । उत्पत्तिआदिक

३९१ संसार धर्मके अनुवर्तनविषै हेतुकूँ कहैहैं ॥

३९२ उक्त अविद्या तत्कार्यकी विरोधिनी ब्रह्मात्मविद्याकूँ प्राप्त करै हैं ॥

३९३ राजपुत्रकूँ “ मैं राजा हूँ ” इस प्रत्ययकी न्यांई । वाक्यतैंहीं अधिकारीविषै “ मैं ब्रह्म हूँ ” यह प्रत्यय जब होवैहै । तब विस्फुलिंगादि दृष्टांतकी श्रुतिकरि क्या है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

३९४ तथापि ब्रह्मके प्रत्ययकी दृढता कैसैं होवैहै । तहां कहैहैं ॥ इहां दृष्टांतनविषै एकताके दर्शनके हुये मैं “ तातैं ” ऐसैं स्मरण किया है ॥

भेदके प्रतिपादन परायण नहीं हैं ॥ औ “एकप्रकारसैं देखनेकूं योग्य है” ऐसैं सैंधवघनकीन्यांई प्रज्ञप्तिरूप एकरस निरंतरताके निश्चयतैं औ जब ब्रह्मकी चित्रपट्टी^{३९६}न्यांई अरु वृक्ष समुद्रादिककीन्यांई उत्पत्तिआदिक अनेक धर्मोंकरि विचित्रता ग्रहण करावनेकूं वांच्छित होवै । तब “सैंधवघनकीन्यांई एकरस अनंतर अवाह्य है” ऐसैं श्रुति । उपसंहार नहीं करती औ “एकप्रकारसैंहीं देखनेकूं योग्य है” ऐसैं नहीं कहती औ “जो इस (अनानाभूत ब्रह्म)विषै नानाकीन्यांई देखताहै” ऐसैं भेदकी निंदाके वचनकूं नहीं कहती ॥ जातैं कहतीभयी । तातैं

३९५ उत्पत्ति आदिकके भेदविषै शास्त्रका तात्पर्य नहीं है । इस अर्थविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां चकार जो है । सो “अवधारणतैं” इस पदकूं अनुकर्षण करै है ॥

३९६ संक्षेपकरि उक्त अर्थकूं वर्णन करैहैं ॥ इहां निंदाका वचन नहीं कहताभया । ऐसैं संबन्ध है ॥

३९७ एकत्वके अवधारणके फलकूं कहैहैं ॥ इहां:—एककी भेदसहितताकूं निवारण करनेकूं “एकरूप” ऐसा विशेषण है औ आदिशब्दकरि प्रवेश अरु नियमन ग्रहण करियेहै । औ “ताके प्रत्ययके करने अर्थ नहीं” इस ठिकाने तत्शब्दकरि उत्पत्तिआदिकका भेद कहनेकूं वांच्छित है ॥

एकरूप एकताके ज्ञानकी दृढता अर्थहीं सर्व वेदांतनविषै उत्पत्ति स्थिति अरु लयआदिककी कल्पनाहै । तिन (उत्पत्तिआदिक)के ज्ञानके करने अर्थ नहीं ॥ औं ^{३९८} “निरवयव असंसारी परमात्माका संसारी । एकदेश है ” यह कल्पना श्रेष्ठ नहीं है । काहेतैं परमात्माकूं स्वतः देशरहित होनेतैं ॥ ^{३९९} अदेश (देशरहित) परमात्माके एकदेशके संसारीभावकी कल्पनाके हुये परमात्माहीं संसारीहै । ऐसैं कल्पित होवैगा ॥ औं ^{४००} जब अन्य उपाधिका किया एकदेश परमात्माका होवैहै । घट अरु करकआदिकके आकाशकीन्यांई ? तब तिस (ब्रह्म)विषै विवेकिनकूं

३९८ किंवाः—परमात्माका एकदेश विज्ञानात्मा है । इस ठिकाने ताका एकदेश स्वाभाविक है वा औपाधिक है ? ऐसैं विकल्प करिके प्रथमपक्षकूं दूषण देते हैं ॥

३९९ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

४०० द्वितीय पक्षकूं उठावते हैं ॥

४०१ एकदेशकी औपाधिकताके पक्षविषै परमात्माविषै विवेकवाले अरु ताके अखंडताकी बुद्धिकूं भजनेवाले पुरुषनकूं ताका एकदेश वस्तुतैं पृथक् होयके व्यवहारका विषय है । ऐसी बुद्धि नहीं उपजती है । काहेतैं औपाधिककूं स्फाटिकके लोहित (रक्तरंग)कीन्यांई मिथ्या होनेतैं । ऐसैं उत्तरकूं कहैहैं ॥

परमात्माका एक देश पृथक् व्यवहारका भजनेवाला है । ऐसी बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है ॥ ॥
 ननु अविवेकी पुरुषनकूं औ विवेकी पुरुषनकूं उपचरित (आरोपित) बुद्धि देखी है? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं:—काहेतैं अविवेकी पुरुषनकूं मिथ्याबुद्धिवाले (भ्रांत) होनेतैं औ विवेकी पुरुषनकूं संव्यवहारमात्र (कथनप्रतीतिमात्र)के

४०२ ननु जीवविषै मैं कर्ता हूं । मैं भोक्ता हूं । ऐसी परिच्छिन्न बुद्धि सर्वकूं उपलभ्यमान होवै है औ सो (बुद्धि) ता (जीव) कूं वस्तुतैं अपरिच्छिन्न ब्रह्ममात्र होनेतैं मंचेके पुकारनेकी बुद्धिकीन्यांई उपचरित (कथनमात्र) है । तातैं दोनूंकूं (अविवेकी अरु विवेकीनकूं) उक्त आत्मबुद्धिके देखनेतैं परमात्माकीं एकदेशता जीवकूं दुर्वार है ? इसप्रकासैं प्रतिवादी प्रश्नकूं करै है ॥

४०३ तहां अविवेकिनकूं उक्तप्रकारकी बुद्धि उपचरित नहीं होवै है । काहेतैं न तिसविषै तिसकी बुद्धि होनेकरि अविद्यारूप होनेतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

४०४ तथापि विवेकीनकूं इसप्रकारकी बुद्धि उपचरित होवै है ? ऐसैं जो कहै । तहां सिद्धांती कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिनका संव्यवहार जो अभिज्ञा (प्रतीति) अरु अभिवदन (कथन) स्वरूप है । तितने मात्रका (व्यवहारमात्रका) आलंबन (आभासभूत अर्थ) ताकूं विषय करनेवाली होनेतैं तिनकी बुद्धिकूंवी मिथ्या बुद्धिरूप होनेतैं उपचरितभावकी असिद्धि है ॥

आलंबन (आभास) रूप अर्थ (विषय) वाले होनेतैं ॥ जैसें कृष्ण औ रक्त आकाशहै । ऐसें अविवेकीनकीन्यांई विवेकीनकूंबी कदाचित् आकाशकी कृष्णता औ रक्तता संव्यवहारमात्रके आलंबन रूप अर्थभावकूं प्राप्त होवैहै औ परमार्थतैं आकाश कृष्ण वा रक्त होनेकूं योग्य नहींहै ॥ यातैं गंडितनकरि ब्रह्मस्वरूपके निश्चयविषै ब्रह्मके अंशअंशीभाव अरु एकदेश एकदेशीभाव अरु विकार विकारीभावकी कल्पना करनेकूं योग्य नहीं है । सर्व उपनिषदनकूं सर्व क-

४०५ विवेकीनकूं औ अविवेकीनकूं आत्माविषै परिच्छिन्न-बुद्धि प्रतीत होवैहै । इतनेकरि ताकी वस्तुतैं ब्रह्मकी अंशता आदिक नहीं सिद्ध होवैहै । यह दृष्टांतकरि साधते हैं ॥ इहां अविवेकीनकीन्यांई । यह “अपि” शब्दका अर्थ है ॥

४०६ ब्रह्मविषै वस्तुतैं अंशआदिककी कल्पना करने योग्य नहीं है । ऐसें दार्ष्टान्तिककूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां:— अंश अंशीका विशदीकरण (स्पष्ट करने) रूप एकदेश एकदेशी । ऐसा शब्द है ॥

४०७ अतः (यातैं) शब्दकरि ग्रहण किये हेतुकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां सर्व कल्पनाओंका अपनयनहीं अर्थ है । सो साररूप होनेकरि अभीष्ट है उपनिषदनकूं तिसके परायण होनेतैं तिस एक (केवल उपनिषद्) करि समधिगम्य (सम्यक् जानने योग्य) ब्रह्मविषै कदाचित्बी कल्पना नहीं है । यह अर्थ है ॥

ल्पनाके निवारणरूप अर्थमय सारविषै तत्पर होनेतैं ॥ ४०८ तैं सर्व कल्पनाकूं छोडीके आकाशकीन्यांई निर्विशेषता निश्चयकरनेकूं योग्यहै “ आकाशवत् सर्वगत है औ नित्य है । बाह्य-हुया लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं ” इत्यादि सैंकडो श्रुतिनतैं ॥ उष्णस्वरूप अग्निविषै शीतरूप एक देशकीन्यांई । वा प्रकाशस्वरूप सूर्यविषै तमरूप एकदेशकीन्यांई । आत्माकूं ब्रह्मतैं विलक्षण कल्पना करै नहीं । काहेतैं सर्व उपनिषदनकूं सर्व कल्पनाके निवारणरूप अर्थमय सारपर होनेतैं ॥ तैं संसार धर्मरहित आत्माविषै नाम रूप उपाधिमय निमित्तवालेहीं सर्व व्यवहार हैं ॥ काहेतैं “ रूपरूपकेतांई प्रति-

४०८ उपनिषदनकूं निर्विकल्पक वस्तुकी तत्परताके हुये कलितकूं कहैहैं ॥

४०९ ब्रह्मकी निर्विशेषताके हुयेवी ताके एकदेशरूप आत्माकी सविशेषता क्युं नहीं होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४१० ननु आत्मा जब निर्विशेष है तब तिसविषै तीन प्रकारका व्यवहार कैसें होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४११ आत्माविषै सर्व व्यवहार नाम रूप उपाधिका किया है । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

करिये! इसरीतिसँ अद्वैतहीं तत्व है ॥ ॥^{४१५} क-
मकांडकी प्रमाणताके विरोधके परिहार अर्थ
[विज्ञानात्माका भेद कल्पना करियेहै] ऐसँ
एक (द्वैतवादी) कहतेहैं ॥ जैतँ कर्मके प्रतिपा-
दक वाक्य जे हैं वे अनेक क्रिया कारक फल
भोक्ता अरु कर्त्तारूप आश्रय (विषय)वालेहैं ॥
विज्ञानात्माके भेदके अभाव हुये निश्चयकरि अ-
संसारी परमात्माकीहीं एकताके हुये पुरुष इष्ट
फलवाली क्रियाविषै कैसेँ प्रवर्त्त होवेंगे वा अ-
निष्ट फलवाली क्रियातँ कैसेँ निवर्त्त होवेंगे ॥
^{४१६} वाँ किस बद्ध पुरुषके मोक्ष अर्थ उपनिषत् आ-

४१७ किस अर्थ इस प्रश्नकूँ मानते हुये द्वैतवादीनके म-
तकूँ उठावते हैं ॥

४१८ वेदांतनकूँ ऐक्यपरताके हुयेबी ताकी प्रमाणताके
विरोधका प्रसंग कैसेँ होवैहै ? तहां कहैहै ॥

४१९ तथापि विरोधका अवकाश होवैगा ? यह आशंका
करिके कहैहै ॥

४२० केवलाद्वैतपक्षविषै कर्मकांडके विरोधकूँ कहिके ।
तहांहीं (केवलाद्वैत पक्षविषैहीं) ज्ञानकांडके विरोधकूँ क-
हैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—परमात्माकूँ नित्यमुक्त होनेतँ
औ आपतँ वा परतँ बद्ध अन्यके अभावतँ शिष्यका अभाव
है । तैसँ हुये अधिकारीके अभावतँ उपनिषद्के आरंभकी
असिद्धि होवैगी ॥

रंभ करियेगी ॥ किंवा^{४२१} परमात्माकी एकताके वादीके पक्षविषै परमात्माकी एकताका उपदेश कैसें होवैगा । वा तिस उपदेशके ग्रहणका फल कैसें होवैगा ॥ जाते^{४२२} बद्धपुरुषके बंधके नाश अर्थ उपदेश होवैहै । तिस (बद्ध)के अभाव हुये उपनिषद् रूप शास्त्र निर्विषय (अधिकाररहित) होवैगा ॥ जैव^{४२३} ऐसें है । तब उपनिषद्वादीके

४२१ कर्मकांडकी औ अन्य (ज्ञान) कांडकी प्रमाणताकी अनुपपत्ति जो है सो विज्ञानात्माआदिकके भेदकूं कल्पना करै है । ऐसें उभय अर्थापत्ति कही । तिनमें द्वितीय अर्थापत्तिकूं प्रपंचन करै है ॥

४२२ ननु फेर उपदेशकी अनुपपत्ति कौन है ? तहां कहैहै ॥ इहां ताके अभाव हुये इस ठिकाने तत् शब्द जो है सो बद्धपुरुषकूं अधिकार करैहै औ निर्विषय कहिये निरधिकार ॥

४२३ किंवा:—यद्यपि दो अर्थापत्ति उक्तप्रकारकरि ऊठती है । तब भेदकूं दुर्निरूप होनेतैं कर्मकांड प्रमाण कैसें है । इसप्रकार जो ब्रह्मवादीकरि कर्मवादी चोदना (शंका)-का विषयकरियेहै । सो ब्रह्मवादका कर्मवादकरि तुल्य है ॥ काहेतैं ब्रह्मवादविषैबी शिष्य अरु शासिता (शिक्षक) आदिकके भेदके अभाव हुये उपनिषदनकी प्रमाणता कैसें होवैगी आक्षेप करनेकूं सुकर होनेतैं । औ जो उपनिषदनका प्रतीयमान शिष्य अरु शासिताआदिकके भेदकूं आश्रय करिके प्रमाणपना है । ऐसा परिहार है । सो कर्मकांडकूंबी

पक्षका कर्मकांडवादीके पक्षसें चोद्य (प्रश्न) अरु परिहार (समाधान)का समान पंथ (मार्ग) है ॥ जिसें कारणकरि भेदके अभाव हुये कर्मकांड जो है सो निरालंब (निर्विषय) आपकेताई प्रमाणताके प्रति पावता नहीं । तैसें उपनिषत्-बी हैं । यातें प्रश्नकी समतातें परिहारकीबी समता है ॥ जैसें ऐसें है तब जिसकी प्रमाणताके हुये स्वार्थका विघात नहीं है तिस कर्मकांडकीहीं प्रमाणता होइ । उपनिषदनकी प्रमणाताकी कल्पनाविषै तो स्वार्थका विघात होवै है । यातें

समान है । काहेतें तहां (कर्मकांडविषै)बी प्रातीतक भेदकूं लेके प्रमाणताकूं सुघटित होनेतें औ भेदप्रतीतिकी भ्रांति नहीं है बाधके अभावतें । इस अभिप्रायकरिके प्रतिवादी कहै है ॥

४२४ चोद्यकी समताकूं विवरण करै है ॥ इहां ऐसें चोद्यकी समतातें परिहारकीबी समता है । यह शेष है ॥

४२५ ननु कर्मकांड भेदपर है । ब्रह्मकांड अभेदपर भासता है । तिन दोनूंमेंसें एक वस्तु निर्विकल्प संभवै है । यातें दोनूंमेंसें एककी अप्रमाणता है ? यातें कहै है ॥

४२६ उपनिषदनकूंबी स्वार्थकी अविघातकता तुल्य है ? यह आशंका करिके कहै है ॥ इहां स्वार्थ कहिये शब्दकी शक्तिवृत्तिके वशतें प्रतीयमान सृष्टिआदिकका भेद ॥

तिनकी प्रमाणता मति होहू ॥ जाँतैं कर्मकांड जो है सो प्रमाण हुया अप्रमाण होनेकूं योग्य नहीं है । जाँतैं प्रदीप जो है सो प्रकाश करने योग्य वस्तुकूं प्रकाश करैहै औ नहीं करैहै । ऐसैं ॥ व्याघातरूप दोषके होनेतैं ॥ औ प्रत्यक्षदि प्रमाणोंके प्रतिषेधतैं ॥ उपनिषत् जे हैं वे ब्रह्मकी एकताकूं प्रतिपादन करती हुयी केवल स्वार्थके विघातकूं औ कर्मकांडकी प्रमाणताके विघातकूं नहीं करैहैं किंतु प्रत्यक्षआदिक निश्चित भेदज्ञानरूप अर्थवाले प्रमाणोंके साथि

४२७ औ जो कहिये है:—कर्मकांडकी व्यावहारिक प्रमाणता है तात्त्विक नहीं औ तात्त्विक तो अन्य कांड (ज्ञानकांड)की है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहै ॥

४२८ जोई प्रमाणकी व्यावहारिकता है । सोई ताकी तात्त्विकता है । जातैं प्रमाण जो है । सो तत्वकूं जनावता नहीं । ऐसैं नहीं होवैहै । काहेतैं मेरी माता बंध्या है । या वाक्यकी न्याई । वचनके व्याघाततैं । इस अभिप्राय करिके दृष्टांतकूं कहैहै ॥ इहां स्वार्थके अभिघाततैं औ कर्मकांडके विरोधतैं उपनिषदनकी अप्रमाणता है । ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार करनेकूं इति शब्द है ॥

४२९ उपनिषदनकी अप्रमाणताविषै अन्य हेतुकूं कहैहै ॥ इहां प्रत्यक्ष आदिक निश्चितभेदकी प्रतिपत्तिरूप अर्थवाले जे प्रमाण हैं तिनोंकरि । ऐसैं विग्रह है ॥

विरोधकं पावैहैं । तातैं उपनिषदनकी अप्रमाण-
ताहीं है । वां अन्य अर्थवान्ता होहू । परंतु ब्र-
ह्मकी एकताके ज्ञानरूप अर्थवान्ता नहीं है ?
तहां सिद्धांती कहैहैं:—यह शंका बनै नहीं । काहे-
तैं याके उत्तरकूं हमोंकरि पूर्व कथन किया होनेतैं ॥
जातैं प्रमाणकी प्रमाणता वा अप्रमाणता जो है
सो प्रमाज्ञानके उत्पादन अरु अनुत्पादनरूप
निमित्तवाली है ॥ जब अन्यथा (ओरप्रकारसैं)
होवै तब स्तंभआदिककूं प्रमाणताके प्रसंगतैं
[मर्यादका भंग होवैगा] ॥ ॥ ननु यातैं शब्दआ-
दिक प्रमेयविषै क्या सिद्ध भया ? जब प्रथम

४३० ननु अध्ययनविधिकरि प्राप्त तिन उपनिषदनकी
अप्रमाणता कहातैं होवैगी ? यह आशंका करिके प्रतिवादी ।
कहैहै ॥

४३१ अब सिद्धांती सिद्धांतकूं कहैहैं ॥

४३२ ताहीकूं स्पष्ट करनेकूं सामान्य न्यायकूं कहैहैं ॥

४३३ स्वार्थविषै प्रमाकी उत्पादकताके अभाव हुयेबी प्र-
माणताकूं इच्छनेवालेके प्रति कहैहैं ॥

४३४ उक्त प्रकारके प्रयोजनका किया प्रमाणपना है वा
अप्रमाणपना है । इस पक्षविषै क्या फलित होवैहै । ऐसैं
प्रतिवादी पूछता है ॥

४३५ तहां उपनिषद जे हैं वे क्या स्वार्थकूं बोधन करै

उपनिषद् जे हैं । वे ब्रह्मकी एकताके ज्ञानरूप प्रमाणकूं करैहैं तब कैसें अप्रमाण होवैगी ॥

“^{४३६}नहीं करैहैं” इसप्रकार जो कहै । तो जैसें “अग्नि शीत है” ऐसें । सो तूं इसप्रकार कहता हुआ कहनेकूं योग्य हैं:—उपनिषद्की प्रमाणताके प्रतिषेधरूप अर्थवाला तेरा वाक्य । उपनिषद्की प्रमाणताके निषेधकूं क्या नहीं करैहै । वा अग्नि रूपके प्रकाशकूं नहीं करैहै ॥ अथवा करैहै ॥ ^{४३७}जैवं करैहै तब प्रतिषेधरूप अर्थवाला तेरा वचन प्रमाण होदू औ अग्निरूपका प्रकाशक होवैगा ॥ औ ^{४३८}प्रतिषेधक तेरे वाक्यकी प्रमाणताके हुये उपनिषदनकी प्रमाणता

हैं वा नहीं ? ऐसें विकल्प करिके आद्यपक्षकूं अनुवाद करिके सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

४३६ द्वितीय पक्षकूं उठायके निराकरण करै हैं ॥

४३७ जैसें अग्नि शीतकूं नहीं करै है । तैसें उपनिषद्बी ब्रह्मकी एकताविषै प्रमाणकूं नहीं करै हैं । ऐसें कहनेवालेके प्रति प्रतिबंधरूप ग्रह युक्त नहीं है । अनुभवके विरोधतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४३८ ननु तब स्वार्थविषै प्रमाका जनक होनेतैं वाक्यकी प्रमाणता होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

होवैगी हीं । ई^{३३}हां तुम कहो कौन परिहार है ? ॥ ॥
 मे^{४४०}नु इहां प्रत्यक्षतै मेरे वाक्यविषै उपनिषद^{४४१}तं
 प्रमाणताके प्रतिषेधरूप अर्थका निश्चय होवैहै
 औ अग्निविषै रूपके प्रकाश करनेके निश्चयका
 प्रमापक है ? तव तेरा प्रद्वेष ब्रह्मकी एकताके
 ज्ञानविषै है । प्रत्यक्ष प्रमाकूं करनेवाली प्रती-
 यमान उपनिषदनविषै प्रतिषेधके असंभवतै औ
^{४४२}शोकमोहआदिककी निवृत्तिरूप प्रत्यक्षफल ब्र-

४३९ उपनिषदनकी अप्रमाणताके हुये तुहारे वाक्यकी
 अप्रमाणता होवैगी औ ताकी (तेरे वाक्यकी) प्रमाणताके
 हुये तो उपनिषदनकी प्रमाणता दुर्वार है । ऐसै समताके
 प्राप्त हुये व्यवस्था करनेवाला कहनेकूं योग्य है ॥

४४० उक्त अर्थकूंहीं शंका समाधानकरि स्पष्ट करैहैं ॥

४४१ प्रतिषेधकूं अंगीकार करिके उक्त प्रकारकी उप-
 निषद् कही । उपलंभ (प्रतीति)के हुये ता (निषेध)कूं
 निरवकाश होनेतै निषेधकी अनुपपत्ति है । ऐसै कहैहैं ॥

४४२ उपनिषदनतै उत्पन्न बुद्धिकूं विफल होनेतै ति-
 नकी अप्रमाणता है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहांः—
 एकताकी प्रतिपत्ति प्रथम आपातकरि उपजतीहै औ सो
 विचारकूं योजना करिके मननादिद्वारा दृढ होवैहै । सो
 फेर अशेष शोकआदिककूं दूरी करैहै । ऐसै परंपराकरि ज-
 नित फल होवैहै । इसरीतिसै देखनेकूं योग्य है ॥

ह्मकी एकताके निश्चयकी परंपरासैं जनित है ।
 ऐसैं हम कहतेहैं ॥ तातैं याके उत्तरकूं हमों-
 करि पूर्व कथन किया होनेतैं उपनिषद्के प्रति
 अप्रमाणताकी शंका तावत् नहीं है ॥ ॥ औ जो
 पूर्व कहाथा किः—स्वार्थके विघातकी करनेहारी
 होनेतैं उपनिषदनकी अप्रमाणता है ? ऐसैं ॥
 सोबी बनै नहींः—काहेतैं तिन (उपनिषदन)के
 अर्थके निश्चयके बाधक [प्रमाणांतर]के अभा-
 वतैं ॥ जातैं उपनिषदनतैं ब्रह्म एकहीं अद्वि-
 तीय है औ नहीं है । ऐसा निश्चय नहीं है ॥

४४३ स्वार्थविपै प्रमाकी जनक होनेतैं उपनिषदनकी प्र-
 माणता है । ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

४४४ प्रामाण्यके हेतुके सद्भावतैं उपनिषदनके प्रामाण्यकूं
 प्रतिपादन करिके परोक्त (प्रतिवादीकरि उक्त) तिनके अ-
 प्रामाण्यकूं अनुवाद करै हैं ॥

४४५ तिन (उपनिषदन)कूं स्वार्थकी विघातकता कैसें
 हैः—क्या तिनतैं ब्रह्म एकहीं अद्वितीय है औ नहीं है । ऐसी
 प्रतिपत्ति उत्पन्न होवैहै । किंवा केईक उपनिषद् ब्रह्मके ए-
 कताकी प्रतिपत्तिकूं करै हैं औ अन्य उपनिषद् तहां प्रतिषे-
 धकूं करै हैं ? ऐसैं विकल्प करिके । आद्य विकल्पकूं दूषण
 देते हैं ॥

४४६ ताहीकूं प्रपंचन करै हैं ॥

जैसैं अग्नि उष्ण है औ शीत है । इस वाक्यतैं विरुद्ध दोनूं अर्थनका निश्चयहीं होवैहै औ अंगीकार करिके हम यह कहतेहैं । वाक्यकी प्रमाणताके समयविषै यह न्याय नहीं है । जो एक वाक्यकूं अनेक अर्थवान्ता होवै । औ एक वाक्यकी अनेक अर्थताके हुये स्वार्थ होवैगा औ तिस (स्वार्थ)के विघातका कर्ता विरुद्ध अन्य अर्थ होवैगा । औ यह वाक्यरूप प्रमाणोंका एक वाक्य । विरुद्ध अरु अविरुद्धरूप अनेक अर्थकूं प्रतिपादन करैहै । यह समय नहीं है । किंतु अर्थकी एकतातैं एकवाक्यता है औ कोईबी

४४७ एकवाक्यकी अनेकार्थताकूं अंगीकार करिके वै धर्म्य उदाहरण युक्त है । ऐसैं कहैहैं ॥

४४८ ताके अंगीकारकी वादताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

४४९ उक्त अर्थकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण करै हैं ॥

४५० ननु एकवाक्यकी अनेकार्थता होइ ? तहां नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

४५१ तब तिनका समय (सिद्धांत) क्या है ? तहां कहैहैं ॥ सो प्रथम तंत्रविषै कहा है:—“ अर्थकी एकतातैं जब एकवाक्य साकांक्ष (आकांक्षासहित) होवै तब विभाग-विषै होवैहै ” ऐसैं ॥

४५२ द्वितीय विकल्पकूं दूषण देते हैं ॥

उपनिषदनके वाक्य ब्रह्मकी एकताके प्रतिषेधकूं करते नहीं औ जो “अग्नि उष्ण है औ शीत है” यह लौकिक वाक्य है । तिसविषै एकवाक्यता नहीं है । काहेतैं तिस वाक्यके एकदेशकूं प्रमाणांतरके विषयका अनुवादी होनेतैं कहिये “अग्नि शीत है” ऐसा यह एक वाक्य है “अग्नि उष्ण है” यह तो प्रमाणांतरके अनुभवका स्मारक है । परंतु आप अर्थका अवबोधक नहीं । यातैं या (द्वितीयवाक्य) की “अग्नि शीत है” इसवाक्यके इस वाक्यके साथ एकवाक्यता नहीं है । काहेतैं या (द्वितीयवाक्य) कूं प्रमाणांतरके अनुभवके स्मरण करावनेकरिहीं उपक्षीण (कृतार्थ) होनेतैं ॥ औ जो विरुद्ध अर्थका

४५३ ननु एकवाक्यकी अनेकार्थता लोकविषै देखी है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४५४ “ ताके एकदेशकूं ” इत्यादि वाक्यकूं विवरण करै हैं ॥

४५५ अनुवादक अरु बोधक इन दोनूं भागनकी एकवाक्यताके अभावरूप फलितकूं कहैहैं ॥

४५६ उक्त हेतु अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

४५७ ननु शिशिर ऋतुका शीत अग्नि है । इस अर्थका

प्रतिपादक यह वाक्य है ऐसैं मानीता है । सो शीत अरु उष्ण इन दो पदोंके साथि अग्निपदके सामानाधिकरण्यकरि प्रयोगरूप निमित्तवाली भ्रांति है । परंतु लौकिकरूप वा वैदिकरूप एक वाक्यकूं अनेक अर्थवान्ता नहीं है ॥ औ जो पूर्व कहाथा किः—कर्मकांडके प्रमाणताके विघातका करनेवाला उपनिषद्का वाक्य है ? ऐसैं । सो बनै नहींः—काहेतैं अन्य अर्थके होनेतैं ॥ जातैं ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादनपर जे उपनिषद् हैं वे इष्टअर्थकी प्राप्तिविषै साधनके उपदेशकूं वा तिस (इष्टअर्थके प्रापक साधन)विषै पुरुषके नियोग (प्रेरणा)कूं निवारण नहीं करैहैं । अनेक अर्थवान्ताके असंभवतैंहीं ॥ औ कर्मकांडके वाक्य-

बोधकहीं जव वाक्य होवै । तव तिसविषै लोककूं विरुद्ध अर्थकी बुद्धि कैसें होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४५८ स्वार्थकी विघातक होनेतैं उपनिषदनकी अप्रमाणता है । इस पक्षकूं निराकरण करिके । अब चोद्यांतरकूं (अन्य शंकाकूं) अनुवाद करिके निराकरण करै हैं ॥ इहां तिसविषै । ऐसैं इष्टार्थके प्रापक साधनकी युक्ति है ॥

४५९ ननु उपनिषद् वाक्य ब्रह्मकी एकताकूं साक्षात् प्रतिपादन करताहुया अर्थात् कर्मकांडकी प्रमाणताका वि-

नके स्वार्थविषै प्रमा (यथार्थज्ञान) नहीं उपजे है
 ऐसैं नहीं ॥ ॥ ननु^{४६०} असाधारण स्वार्थविषै वा-
 क्य प्रमाकूं उपजावताहै ? तो अन्य (प्रमाणांत-
 र)के साथि विरोध कहांतैं होवैगा । प्रमाणोंकूं
 स्वगोचर (अपनेविषय)विषै शूर होनेतैं ॥ ॥ ननु^{४६१}
 ब्रह्मकी एकता (अद्वैतता)के हुये कर्मकांडके वा-
 क्यकूं निर्विषय होनेतैं तिसकरि प्रमा नहीं उ-
 पजे है ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो^{४६२}
 बनै नहीं:—काहेतैं प्रमाकूं प्रत्यक्षरूप होनेतैं [तु-

घातक है ? ऐसैं जो कहै । तहां तिसकी अप्रमाणता अनु-
 त्पत्तिरूप है वा विपर्यासरूप है । ऐसैं विकल्प करिके ।
 आद्यपक्षकूं अनुवाद करिके । दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ
 है:—विदित पद अरु ताके अर्थकी संगतिवाले वाक्यार्थ ।
 न्यायके वेत्ताकूं तिनके अर्थोंविषै प्रमाकी उत्पत्तिके देखनेतैं ॥

४६० स्वार्थविषै प्रमाकूं उत्पन्न करता हुयाबी वाक्य प्र-
 माणांतरके विरोधतैं अप्रामाण्य होवैहै ? यह आशंका करिके
 कहैहैं ॥ इहां प्रमाणोंकूं अपने विषयविषै शूरवीर होनेतैं ।
 यह अर्थ है ॥

४६१ ननु विवादका विषय जो वाक्य । सो प्रमाका उ-
 त्पादक नहीं है । प्रमाणकरि हरण किये विषयवाला होनेतैं ।
 अनुष्णाग्नि वाक्यकी न्याई ? इसप्रकार प्रतिवादीशंका करैहै ॥

४६२ प्रत्यक्षके विरोधतैं अनुमान अनवकाश (अवकाशर-
 हित) है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

जकरि उक्त अनुमानसँ ताका बाध बनै नहीं]॥
 जो ऐसँ होवै तो “ दर्श अरु पूर्णमासकरि स्व-
 र्गकी कामनावाला यजे । ब्राह्मण हनन करनेकूं
 योग्य नहींहै” इत्यादि वाक्यनतँ प्रत्यक्ष प्रमा
 उपजतीहै । सो नहीं होवैगी ॥ जो उपनिषद् जे
 हैं वे ब्रह्मकी एकताकूं आगे बोधन करैंगी । ऐसा
 अनुमान होवै औ अनुमान जो है सो प्रत्यक्षसँ
 विरोधके हुये प्रमाणताकूं पावता नहीं । [तो
 बाधित होवै । जातँ यह अनुमान नहीं किंतु
 प्रत्यक्षज्ञान है] तातँ “प्रमाहीं नहीं उपजती
 है” यह तुजकरि असत्हीं गायन करियेहै ॥ ॥
 किंवाँः—यथाप्राप्तहीं । अविद्याकरि प्रत्युप-
 स्थापित (आरोपित) । क्रिया कारक अरु फलके
 आश्रय करनेकरि इष्टकी प्राप्ति अरु अनिष्टकी
 निवृत्तिके उपायकी समानताविषै प्रवृत्त औ ताके

४६३ औ इस कहनेके प्रकारतँबी कर्मकांडकी अप्रमा-
 णता नहीं है । ऐसँ कहते हुये द्वितीय विकल्पके प्रति क-
 हैहै ॥ इहांः—यथाप्राप्त । याहीका व्याख्यान अविद्या प्र-
 त्युपस्थापित है ॥ इहां यह भाव हैः—साध्य अरु साध-
 नके संबंधके बोधक कर्मकांडका विपर्य्यास नहीं होवैहै ।
 काहेतँ मिथ्यार्थताके हुयेबी ताकी अर्थक्रियाकारि ताके सा-
 मर्थ्यके अनपहारतँ प्रमाणताकी उपपत्तितँ ॥

विशेषकूं न जाननेवाले पुरुषकूं सो कहती हुयी श्रुति । लोकप्रसिद्ध क्रिया कारक अरु फलके भेदकी सत्यताकूं वा असत्यताकूं नहीं कहतीहै औ इष्ट अरु अनिष्ट फलकी प्राप्ति अरु परिहारके उपायविषै निवारण करती नहीं । काहेतैं विधिपर होनेतैं ॥ जैसें काम्यकर्मोंविषै प्रवृत्त भई जो श्रुति । सो कामोंकी मिथ्याज्ञानकरि उत्पत्तिमान्ताके होतेबी यथाप्राप्त कामोंकूंहीं उत्पादन करनेवाले साधनोंकूंहीं विधान करैहै । परंतु कामोंकी मिथ्याज्ञानकरि उत्पत्तिमान्ताके अनर्थरूपता है । ऐसें नही विधान करैहै ॥ ऐसें नित्य अग्निहोत्रादि शास्त्रबी । मिथ्याज्ञानतैं उत्पत्तिवाले यथाप्राप्त (अविद्यारचित) हीं क्रिया कारकके भेदकूं लेके इष्टविशेषकी प्राप्तिरूप वा अनिष्टविशेषकी निवृत्तिरूप किसीबी प्रयोजनकूं देखता हुया अग्निहोत्रादि कर्मोंकूं विधान करैहै । परंतु अविद्याके गोचर असत् वस्तुकूं विषय करनेवाला [क्रिया अरु कारकका भेद-

४६४ ननु कर्मकांडकूं मिथ्याऽर्थताके हुये मिथ्याज्ञानके जनक होनेतैं अनर्थनिष्ठताकरि अप्रवर्त्तक होनेतैं अप्रामाण्य होवैगा ? यातैं कहैहैं ॥

रूप साधन] है। ऐसैं जानिके नहीं प्रवृत्त हो-
 वैहै ऐसैं नहीं। किंतु प्रवृत्त होवैहीं है। जैसैं^{४६५}
 काम्यकर्मोंविषै ॥ औ अविद्यावाले पुरुष नहीं^{४६६}
 प्रवृत्त होवैंगे ऐसैं नहीं किंतु प्रवृत्त होवैंगेहीं।
 काहेतैं दृष्ट (प्रत्यक्ष) होनेतैं। जैसैं कामीपु-
 रुष हैं ॥ ॥ ननु^{४६७} विद्यावालोंकूंहीं कर्मका अधि-
 कार है? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै। सो बनै न-
 हीं:—काहेतैं ब्रह्मकी एकताकी विद्याके हुये क-

४६५ ननु विमत (विवादका विषय) कर्मकांड अप्रमाण है।
 मिथ्या अर्थवाला होनेतैं। विप्रलंभकके वाक्यकी न्याई? यह
 आशंका करिके। व्यभिचारकूं कहैहैं ॥

४६६ अग्निहोत्रादिक काम्यकर्मोंविषै मिथ्याज्ञानसैं ज-
 नित मिथ्याभूत कामकूं लेके शास्त्र प्रवृत्तिकी न्याई। नित्य
 कर्मोंविषैवी असत् (मिथ्या) हीं साधनकूं लेके शास्त्र। प्रवृत्त
 होहू। तथापि बुद्धिमान् पुरुष नहीं प्रवृत्त होवैंगे। काहेतैं
 वेदांतनतैं तिनके मिथ्यापनैके निश्चयतैं? यह आशंका क-
 रिके कहैहैं ॥

४६७ अविद्यावाले पुरुषनकी कर्मोंविषै प्रवृत्तिकूं प्रति-
 वादी आक्षेप करै है ॥

४६८ द्रव्य देवता आदिकका ज्ञान कर्मविषै प्रवर्त्तक है
 वा ब्रह्मकी एकताका ज्ञान कर्मविषै प्रवर्त्तक है? ऐसैं विकल्प
 करिके। सिद्धांती। आद्य विकल्पकूं अंगीकार करिके द्वितीयकूं
 दूषण देते हैं ॥

माधिकारके विरोधकूं कथन किया होनेतैं ॥ ईसै-
करि (कर्मकांडकी अज्ञानीके प्रति समर्पकताके
उपपादनकरि) ब्रह्मसैं एकताके हुये निर्विषय
होनेतैं उपदेशकरि ताके ग्रहणके फलके अभा-
वसैं दोषका परिहार कहा एसैं जाननेकूं योग्य
है । औ पुँरुषकी इच्छा अरु रागआदिककी वि-
चित्रतातैं [प्रवृत्ति निवृत्ति होवैहैं शास्त्रतैं नहीं] ॥
जातैं पुरुषनकी इच्छा अनेकहैं औ राग आदि-
क दोष विचित्र हैं । तातैं बाह्यविषयविषै राग
आदिककरि अपहत चित्तवाले पुरुषनकूं शास्त्र ।
विषयनतैं निवर्तकरनेकूं शक्त (समर्थ) नहीं है

४६९ कर्मकांडकी प्रमाणताके असंभवकूं निराकरण क-
रिके द्वितीय अर्थापत्तिकूं अतिदेशकरि निराकरण करैहैं ॥
इहां इसकरि । याका कर्मकांडकी अज्ञानीके प्रति समर्पकताके
उपपादनकरि । यह अर्थ है ॥

४७० ननु कर्मकांड संबंधकूं बोधन करता हुया प्रवृत्ति
आदिकके पर है । यातैं रागादिकके वशतैं ताके अयोगतैं
शास्त्रीय प्रवृत्ति आदिकके विषयरूप द्वैतकी सत्यता होवैगी ।
अन्यथा ताकी विषयताका असंभव होवैगा । एसैं और अ-
र्थापत्ति प्रमाण आया ? यह शंका भयी । तहां कहैहैं ॥
इहां:—प्रवृत्ति अरु निवृत्ति । शास्त्रके वशतैं नहीं होवैहै ।
यह शेष है ॥

४७१ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

औ स्वभावतैं बाह्यविषयनविषै विरक्त चित्तवाले पुरुषनकूं विषयनविषै प्रवर्त्त करनेकूंबी शक्त न-हीं है । किंतु शास्त्रतैं इतनाहीं होवैहैः—यह इ-ष्टका साधन है । यह अनिष्टका साधन है । ऐ-सैं साध्य साधनके संबंधविशेषका आविर्भाव होवैहै । अंधकारविषै रूपादिज्ञानकेताई प्रदी-पादिककीन्यांई ॥ परंतु शास्त्र जो है सो भृ-त्योंकीन्यांई बलतैं निवर्त्त करता वा योजना (प्रेरणा) करता नहीं ॥ जातैं ^{४७२} रागआदिकके गौरवतैं शास्त्रकूंबी उलंघनकरिके वर्त्तनेवाचे पु-रुष देखीयेहैं । तातैं पुरुषनकी गतिविधि विचि-त्रताकूं अपेक्षाकरिके साध्य अरु साधनके सं-बंधविशेषनकूं अनेकप्रकारसैं शास्त्र उपदेश क-रैहै ॥ तहां (संबंधविशेषके उपदेशके हुये) पुरुष आपहीं यथारुचि (अपनि अपनि रुचिके अनुसार) साधनविशेषनविषै प्रवर्त्त होवैहै ।

४७२ शास्त्रकूं अकर (अकारक) होनेतैं प्रवृत्तकता आ-दिकके अभावकूं कहिके । तहांहीं अन्य युक्तिकूं कहैहैं ॥

४७३ तब शास्त्रका क्या कृत्य है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां “ तहां ” इस पदका । संबंधविशेषके उपदे-शके हुये । यह अर्थ है ॥

शास्त्र तो सूर्य अरु प्रदीपआदिककीन्यांई उ-
दासीनहीं रहैहै ॥ तैसें (रागादिककी विचि-
त्रताके अनुसारकरि) किसीबी पुरुषकूं पर-
मपुरुषार्थबी अपुरुषार्थकीन्यांईभासता है । जाँकूं
जैसा अवभासहै सो तैसें रूपवाले पुरुषार्थ-
कूं देखताहै औ तिसके अनुसारी साधनोंकूं
ग्रहण करनेकूं इच्छताहै ॥ तिसंप्रकार अर्थवा-
दबी है:—“तीन प्रकारके प्रजापतिके संतान प्र-

४७४ यथारुचि पुरुषनकी प्रवृत्ति जव होवैहै । तव परम
पुरुषार्थरूप कैवल्यकूं उपदेश करिके सम्यक्ज्ञानकी सिद्धि
अर्थ । ताके उपाय श्रवणादिकविषै बुद्धिपूर्वकारी पुरुषनकी
संन्यासपूर्वक प्रवृत्ति उचित है ? यह आशंका करिके क-
हैहै ॥ इहां रागादिककी विचित्रताके अनुसारकरि । यह
अर्थ है ॥ सो शास्त्रांतरविषै कहा है:—“ शून्यबी वृंदावन-
विषै स्रगालभाव होहू ” इत्यादि ॥

४७५ तव पुरुषार्थके विवेककी सिद्धि कैसें होवैगी ?
तहां कहैहैं ॥

४७६ पुरुषार्थ दर्शनके कार्यकूं कहैहैं ॥

४७७ स्वाभिप्रायके अनुसारकरि पुरुषनकूं पुरुषार्थका
निश्चय होवैहै । इस अर्थविषै गमककूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ
है:—जैसें प्रजापतिकरि उक्त तीन प्रकारविषै देव आदिक
स्वाभिप्रायकरि दमआदिक तीन अर्थकूं ग्रहण करते भये ।
तैसें स्वाभिप्रायके वशतैहीं पुरुषनकूं पुरुषार्थका निश्चय हो-
वैहै । यह अर्थवादतै जान्या ॥

सारीहैं वे प्रतिशरीरभिन्न अनुमानसैं जानी-
 येहैं । तहां ब्रह्मसैं एकताके कहनेवाले वादी-
 नकूं अनुमान प्रमाणका विरोधबी होवैगा ॥ औ
 तिसैं प्रकार हुये आगमके विरोधकूंबी कहतेहैं:-
 “ ग्रामकी कामनावाला यजन करै । पशु अरु
 स्वर्गकी कामनावाला यजन करै ” इत्यादि वा-
 क्यनतैं ग्राम पशु अरु स्वर्गआदिककी काम-
 नावाले औ तिनके साधन आदिकके अनुष्ठानके
 कर्त्ता भिन्न निश्चय करियेहैं ॥ ॥ इहां हम अ-
 द्वैतवादीनकरि कहियेहैं:-वे कुँतकौंकरि दूषित
 अंतःकरणवाले औ आगमके अर्थसैं विच्छिन्न
 संप्रदायवाली बुद्धिवाले ब्राह्मणआदिक वर्णों-
 विषै अपसद (अधम) । अनुकंपा करनेकूं योग्य
 हैं । कैसैं कि:-^{४८७}श्रोत्रादि^{४८८}द्वारवाले प्रत्यक्षतैं उ-
 पलभ्यमान शब्दादिकोंके साथि ब्रह्मकी एक-

४८५ तहांहीं प्रमाणांतरके विरोधकूं कहैहैं ॥

४८६ तीन प्रमाणके विरोधतैं ब्रह्मकी एकता नहीं है ।
 ऐसैं प्राप्तभयेके प्रति सिद्धांती कहैहैं ॥ इहां:-ऐसैं दूषण
 देनेवालेकरि तिनके । यह शेष है ॥

४८७ द्वैतग्राही प्रमाणसैं विरुद्ध है । ऐसैं कहनेवालेनकी
 शोच्यता कैसैं है । इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

४८८ तहां ब्रह्मकी एकताविषै प्रत्यक्षके विरोधकूं सि-

ता विरोधकूं पावती है । ऐसैं कहने हारे । पूछ-
नेकूं योग्य हैं:—क्या शब्दादिकनके भेदकरि
आकांक्षकी एकता विरोधकूं पावती है ? जो
कहै विरोधकूं पावती नहीं । तब ब्रह्म-
की एकताविषै प्रत्यक्षका विरोध नहीं हो-
वेगा ॥ ॥ औ जो कहाथा कि:—प्रतिशरीर श-
ब्दआदिककी उपलब्धिके कर्ता औ धर्म अरु
अधर्मके कर्ता भिन्न अनुमानसैं जानियेहैं । ति-
सप्रकार हुये ब्रह्मकी एकताविषै अनुमानका वि-
रोध होवैगा ॥ ॥ ऐसैं भिन्न । किनोंकरि । अ-
द्धांती परिहार करै हैं ॥ इहां:—तिस प्रकारताके हुये ताकी
एकताके अंगीकारका विरोध होवैगा । यह शेष है ॥

४८९ जैसैं सर्वभूतस्थ एक आकाश है । इहां शब्दादिकके
भेदका ग्राही प्रत्यक्षका विरोध नहीं है । तैसैं एक ब्रह्म है ।
इहांबी ता (प्रत्यक्ष)का विरोध नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥
इहां:—ताकूं कल्पितभेदकूं विषय करनेवाला होनेतैं । यह
भाव है ॥

४९० परोक्त अनुमानके विरोधकूं सिद्धांती । अनुवाद
करै हैं ॥

४९१ जो चेष्टा है सो प्रयत्नवानके पूर्विक है । इतनेकरि
आत्माका भेद नहीं होवैहै । काहेतैं स्वप्रयत्नपूर्वक ताकेबी
संभवतैं । अनुपलब्धिके विरोध हुये तो अनुमानकेहीं अनु-
त्थानतैं स्वदेहचेष्टाकी स्वप्रयत्नपूर्वकताकी न्यांई परदेहविषै

नुमानसैं जानियेहैं । ऐसैं पूछनेकूं योग्य हैं ॥

जो कहैंगे सर्व हम अनुमान कूशलोंकरि अनु-
मानसैं जानियेहैं । ऐसैं ॥ तैं कौन तुम अनु-
मान कुशल हो । इस प्रकार पूछे हुये तुह्यारा
क्या उत्तर होवैगा ॥ ॥ ननु शरीर इंद्रिय मन
अरु आत्माविषै प्रत्येक अनुमानकी कुशलताके

चेष्टाकूं ता (परदेह)की यत्नपूर्वकताके हुये आदिविषैहीं
स्वपरका भेद सिद्ध होवै औ सो अध्यक्ष (प्रत्यक्षप्रमाण)तैं
बनै नहीं । काहेतैं परपुरुषकूं अनध्यक्ष (अप्रत्यक्ष) होनेतैं
औ अनुमानतैं सिद्ध होवै नहीं काहेतैं अन्योन्याश्रयतैं । इस
आशयवान् हुये सिद्धांती कहैहैं ॥

४९२ अब दोषांतरके कथन करनेकी इच्छाकरि प्रतिवा-
दीकी शंकाकूं करावै हैं ॥

४९३ अस्मत् शब्दके अर्थकूं सिद्धांती पूछते हैं ॥ इहां यह
भाव है:—सो स्थूलदेह है वा करणोंका समूह है वा देह-
द्वयतैं अन्य है ? ये तीन पक्ष हैं । तिनमें पहिले दो पक्ष बनै
नहीं काहेतैं तिन दोनूंकूं अचेतन होनेतैं अनुमातापनैके अ-
योगतैं औ तृतीय पक्षबी बनै नहीं । काहेतैं ताकूं अविकारी
होनेतैं । यह भाव है ॥

४९४ किं (क्या) शब्दकी प्रश्नार्थताकूं मानिके पूर्ववादी
कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—आत्मा देहादि बहु साधनोंकरि
विशिष्ट हुया अनुमाता है । काहेतैं क्रियाओंकूं अनेक कार-
कोंकरि साध्य होनेतैं । ऐसैं विशिष्ट आत्माके किये अनुमानतैं
प्रतिदेह आत्माके भेदकी बुद्धि होवैहै ॥

प्रत्याख्यान (निराकरण) हुये शरीर इंद्रिय अरु मनरूप साधनवाले आत्मा । अवयवके प्रति अनुमान कुशल हैं । काहेतैं क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकी साध्य होनेतैं ? इसप्रकार जो तुम (तार्किक) कहो । तहां हम सिद्धांती कहैहैं:—जबै ऐसें होवै । तब अनुमानकी कुशलताके हुये तुमकूं अनेकताका प्रसंग होवैगा । जाँतैं अनेक कारकोंकरि साध्य क्रियाहै । ऐसें तुह्योंकरिहीं

४९५ विशिष्ट आत्माके अनुमानके कर्त्तापनैविषै क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं । यह हेतु जब कहा तब तुजकूं एक एक देहादिककीबी अनेकता होवैगी । इसरीतिसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

४९६ ताहीकूं विवरण करै हैं ॥ इहां यह भाव है:—आत्माके औ देहादिकरूप अनुमानके कारकोंके मध्य प्रत्येक अवांतर क्रिया है । वहिआदिकविषै तैसैं देखनेतैं । तिसप्रकार हुये आत्माकी अवांतर क्रिया क्या अनेक कारकोंकरि साध्य है किंवा नहीं ? आद्यपक्षविषैबी आत्मातैं अतिरिक्त अनेक कारकोंकरि साध्य है किंवा तिस (आत्मा)तैं अनतिरिक्त तिस (अनेक कारकों)करि साध्य है । तिनमें आद्य पक्ष बनै नहीं । काहेतैं अनवस्था दोषतैं । द्वितीय पक्षविषै तो आत्माकूं अनेकताकी प्राप्तितैं निरात्मता होवैगी औ अवांतर क्रिया अनेक कारकोंकरि साध्य नहीं है ऐसैं नहीं । काहेतैं प्रधानकी क्रियाविषैबी तिसप्रकारताके प्रसंगतैं । इस कथनकरि देहादिकविषैबी कारकता निषेध करी ॥

अंगीकार किया है ॥ औ तहां अनुमान जो क्रिया है सो शरीर इंद्रिय अरु मनोमय आत्माके साधनरूप कारकोंकरि आत्माकी करी हुयी निर्वाह करियेहै । ऐसैं यह प्रतिज्ञा किया है ॥ तहां हम अनुमानविषै कुशल हैं । इस रीतिसैं कहनेवाले तुम तार्किकोंकरि शरीर इंद्रिय मन अरु आत्मा प्रत्येक हम हैं एक नहीं । ऐसैं अंगीकार किया होवैगा । अहो पुच्छ अरु शृंगसैं रहित तार्किकरूप बलीवदोंनैं अनुमान कुशलता दिखाई !! जाँतैं जो आत्माकूंहीं नहीं जानताहै । सो मूढ तिसगत भेद वा अभेदकूं कैसेँ जानेगा । तँहां क्या अनुमान करैगा । वीँ किस लिंगकरि अनुमान होवैगा । जाँतैं आत्माके

४९७ औ जो:—आत्मा आत्मप्रतियोगिक भेदवाला है । वस्तु होनेतैं घटकी न्याई ? यह अनुमान है । तहां आत्मा प्रतिपन्न (ज्ञात) है वा अप्रतिपन्न (अज्ञात) है ? तिनमें द्वितीय पक्षके प्रति कहैहैं ॥

४९८ प्रतिपन्नताके पक्षविषैबी भेदकरि ताकी प्रतिपत्ति है वा अभेदकरि ? उभय प्रकारसैंबी अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

४९९ याहीतैंबी आत्मभेदके अनुमानका अनुत्थान है । ऐसैं कहैहैं ॥

५०० “ किस [लिंग] करि ” इहां जो कि शब्द है । ताके आक्षेपरूप अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

स्वतः भेदका प्रतिपादक कलुषी लिंग नहीं है । जिस लिंगकरि आत्माके भेदकूं साधे ॥ तार्किक जे हैं वे जिंन लिंगोंकूं आत्मभेदके साधनार्थ नामरूपवाले उपन्यास करैहैं । वे नामरूपगत आत्माके उपाधिहीहैं । आकाशके उपाधिरूप घट करक (लघुघट) अपवारक (ज-रोंखा वा खिडकी) अरु भूछिद्रकीन्यांई ॥ जंबे आकाशके भेदके लिंगकूं देखताहै । तब सो आत्माकेबी भेदके लिंगकूं पावैगा ॥ जाँतैं आत्माके परमात्मातैंबी विशेषकूं अंगीकार करनेहारे सैंकडो तार्किकोंकरिबी आत्माके भेदका लिंग दिखावनेकूं नहीं शक्य होवैहै । स्वतः तो दूरतैं निराकरण कियाहीं है । आत्माकूं अविषय हो-

५०१ ननु जन्मादिकके प्रति नियमादि लिंगके वशतैं आत्माका भेद होवैगा ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

५०२ आत्माके सजातीय भेदविषै लिंगके अभावकूं दृष्टांतकरि साधते हैं ॥

५०३ किंचः—आत्माका भेद औपाधिक तेरेकरि साधियेहै । वा स्वाभाविक ? तिनमें आद्यपक्ष बनै नहीं । सिद्ध साध्यके होनेतैं । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

५०४ द्वितीयपक्ष बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

नेतैं ॥ जो जो परब्रह्मविषै आत्मधर्मताकरि अंगीकार करैहैं । तिस तिसकी नामरूपात्मकताके अंगीकारतैं औ नामरूपतैं आत्माकी अन्यताके अंगीकारतैं “आँकाश जो है सो प्रसिद्ध नामरूपके निर्वाहका कर्ता है । वे (नामरूप) जिसके मध्य हैं सो ब्रह्म है ” इस श्रुतितैं औ “नामरूपकूं प्रगट करूं” ऐसैं जाँतैं उत्पत्ति अरु प्रलय स्वरूप नामरूप हैं औ तिनतैं विलक्षण ब्रह्म है । यँतैं प्रत्यगभिन्न ब्रह्मकूं अनुमानकाहीं अविषय होनेतैं ब्रह्मकी एकताविषै अनुमानका विरोध कहांतैं होवैगा ॥ ईसंकरि (औ-

५०५ ननु आत्मा द्रव्यत्वरूप जातितैं अतिरिक्त अपर जातिवाला है । अश्रावण विशेष गुणवाला होनेतैं । घटकी न्याई । इस अनुमानांतरकूं आशंका करिके अन्यतर (दोनूं-मैसैं एक)की असिद्धिकूं दिखावैहैं ॥

५०६ तिन दोनूंतैं आत्माकी अन्यताके अंगीकारविषै प्रमाणकूं उपन्यास करै हैं ॥

५०७ तहांहीं उपपत्तिकूं कहैहैं ॥

५०८ अनुमानके अविरोधकूं उपसंहार करै हैं ॥

५०९ आगमके विरोधकूं उक्त न्यायके अतिदेशकरि निराकरण करै हैं ॥ इहां “ इस कथनकरि ” । या शब्दका औपाधिक भेदकी आश्रयतासैं व्यवहारकी उपपन्नताके दर्शनकरि । यह अर्थ है ॥

पाधिक भेदकी आश्रयतासैं व्यवहारकी सिद्धिके दिखावनेकरि) आगमका विरोध दूरी किया ॥ ॥

^{५१०} औ जो पूर्व कहाथा किः—ब्रह्मकी एकताके हुये जिसकेअर्थ उपदेश करियेहै औ जिसकूं उपदेशके ग्रहणका फल होवैहै। तिन दोनूके अभावतैं एकताके उपदेशकी व्यर्थता होवैगी ऐसैं? ^{५११} सो बी बने नहींः—काहेतैं क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं कौन चोय (प्रश्न) होवैहै ॥ ^{५१२} एक

५१० प्रत्यक्ष अनुमान अरु आगमकरि अद्वैतके अविरोध के हुयेबी । अर्थापत्तिकरि विरोध होवैगा ? ऐसैं जो कहै । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—उपदेश जिसके अर्थ करिये है औ जाकूं उपदेशका क्रिया फल होवै है । तिन दोनूकी ब्रह्मसैं एकताके हुये उपदेशकी व्यर्थता होवैगी । यह प्रतिवादीकी उक्तिके अनुवादका अर्थ है ॥

५११ क्या क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं तेरेकरि ऐसैं प्रश्न करियेहै । किंवा ब्रह्मकूं नित्यमुक्त होनेतैं ? ऐसैं विकल्प करिके । आद्य पक्षकूं दूषण देतेहैं ॥ इहां यह भाव हैः—तिन (क्रियाओं)की अनेक कारकोंकरि साध्यताकूं निषिद्ध होनेतैं ॥

५१२ जब ब्रह्मकी नित्यमुक्तताके अभिप्रायसैं उपदेशके व्यर्थताकी शंका करियेहै । तहां नित्यमुक्त ब्रह्मके ज्ञात हुये उपदेशकी व्यर्थता शंका करियेहै वा अज्ञात हुये ? ऐसैं विकल्प करिके । आद्यपक्षकूं अंगीकार करैहैं ॥

निरुपाधिक ब्रह्मविषै उपदेश नहीं है । उपदेश नहीं है औ उपदेशके ग्रहणका फल नहीं है । तातैं उपनिषदनकी व्यर्थता होवैगी । यह हमोंकरि अंगीकार कियाहीं है ॥ ॥ “औ जब अनेक कारकोंके विषयरूप उपदेशकी व्यर्थताका प्रश्न करियेहै ? ” सो बनै नहीं:—काहेतैं स्वतः अंगीकारके हुये आत्मवादीनके विरोधतैं । “तातैं (प्रमाण विरोधके अभावतैं) तार्किकरूप चाट (आर्योंकी मर्यादाके भेदक) अरु भट (मिथ्याभाषी किंकर)नके राजाओंकरि प्रवेश करनेके अयोग्य औ अल्पबुद्धिमानोंकरि अगम्य औ शास्त्र अरु गुरुके प्रसादसैं रहित पुरुषन

५१३ द्वितीय पक्षकूं उठावतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— उपदेश प्रथम अनेक कारकोंका साध्य होनेकरि विषय है । ताकी व्यर्थता है । ताकूं अज्ञात नित्यमुक्त ब्रह्मविषै जब शंका करिये है ॥

५१४ सर्व आत्मवादीनकरि उपदेशकूं ज्ञान अर्थ इष्ट होनेतैं ताके विरोधतैं अज्ञात ब्रह्मविषै ता (उपदेश)की व्यर्थताका प्रश्न अघटित है । ऐसैं कहैहैं ॥

५१५ ननु अद्वैतविषै अन्य विरोधके अभावहुयेबी तार्किकोंके सिद्धांतका विरोध है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां प्रमाणोंके विरोधका अभाव “ तत् (तातैं) ” शब्दका अर्थ है । औ आर्योंकी मर्यादाकूं भेदनकरनेहारे चाट कहि-

करिबी अगम्य अभय दुर्ग (किल्ला) यह (ब्रह्मा-
त्माका एकत्व) है । काहेतैं “तिसैं^{५१६} मदामदरूप
देवकूं मुजतैं अन्य कौन जाननेकूं योग्यहै । दे-
वोंनैबी इहां पूर्व संशय कियाहै । यह मति त-
र्कसैं पावने योग्य नहीं है ” औ देवताआदि-
कनके वरप्रसादकरि लभ्यताकी श्रुति अरु स्मृ-
तिके वादोंतैं शास्त्र आदिकके प्रसादसैं रहित
पुरुषनकरि अलभ्य यह तत्व है । यह निश्चित
है ॥ औ “सो (ब्रह्म)^{५१७} चलताहै । सो नहीं चल-
ताहै । सो दूरविषैहै । तैसैं समीपविषै है ” इ-
त्यादि विरुद्ध धर्मकरि युक्तताके प्रकाशक मं-
त्रके वणोंतैं औ गीताविषै “मेरेविषै सर्व भूत-
येहैं औ मिथ्याभाषण करनेहारे सेवक (किंकर) तो भट
कहियेहैं । तिन सर्वके राजा तार्किक हैं । तिनोंकरि अप्र-
वेश्य (अनाक्रमणीय) यह ब्रह्मात्माकी एकताहै ॥

५१६ शास्त्र आदिकके प्रसादतैं शून्य पुरुषनकरि याकी
अगम्यताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—देव
आदिकके वर प्रसादकरि लभ्य है । इस अर्थविषै श्रुतिस्मृ-
तिके वाद हैं औ तिन शास्त्रआदिकके प्रसादसैं हीन पुरु-
षनकरि अलभ्यतत्व है । यह निश्चित है ॥

५१७ शास्त्र आदिकके प्रसादवाले पुरुषनकूहीं तत्व सु-
गम है । इस अर्थविषै श्रुति स्मृति उक्त अन्यलिङ्गकूं दि-
खावैहैं ॥

हैं” इत्यादि कहा है । “तौतौ परब्रह्मसैँ व्यतिरेक करि संसारी नाम अन्य वस्तु अंतर नहीं है । “तौतौ हमोंकरि सुष्ठु (सम्यक्) जैसैँ होवै तैसैँ कहियेहै:—“ब्रह्महीं यह (जगत्) आगे होता-भया । सो आत्माकूंहीं जानताभया ‘मैं ब्रह्महूं’ ऐसैँ । इसतैँ अन्य द्रष्टा नहीं है । इस (ब्रह्म)तैँ अन्य श्रोता नहीं है” इत्यादि सैँकडो श्रुतिनतैँ ॥ “तौतौ परब्रह्मकाहीं “सत्यका सत्य” नाम परम उपनिषत् है ॥ २० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीयाध्यायस्य प्रथममजातशत्रु-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ १ ॥

५१८ अद्वैतब्रह्मविषैँ सर्व प्रकारके विरोधके अभावहुये फलितकूं कहैहैं ॥

५१९ संसारीकी ब्रह्मतैँ अन्य अर्थताके अभावविषैँ श्रुतिनकी अनुकूलताकूं दिखावै हैं ॥

५२० अद्वैतके श्रुतिकरि सिद्ध हुये विचारकरि सिद्ध अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्द्वितीयाध्यायगत प्रथम
ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वि-
तीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

यो ह वै शिशुः साधानः सप्रत्या-
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी
पिकाया द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

अर्थः—जो साधान सप्रत्याधान सस्थूण

अथ बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया द्विती-
याध्यायस्य द्वितीयं शिशु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः—“ब्रह्मकूं विज्ञापन करुंगा” ऐसैं प्र-
स्तुत (प्रकृत) है । तहां जिसतैं जगत् जन्म्या

अथ द्वितीयाध्यायगतद्वितीयब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

५२१ पूर्व उत्तर ग्रंथकी संगतीकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन
करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ब्रह्म तेरेतांई कहताहूं । ऐसैं
प्रक्रम करिके । निश्चयकरि तेरेतांई विज्ञापन करुंगा । ऐसैं
प्रतिज्ञा करिके जगत्के जन्म आदिक जिसतैं होवेहैं । सो
अद्वितीय ब्रह्म है । ऐसैं व्याख्यान किया ॥

धानं सस्थूणं सदामं वेद । सप्त ह द्वि-
 षतो भ्रातृव्यानवरुणद्वि ॥ अयं वाव शि-
 सदाम शिशुकं निश्चयकरि जानताहै [सो]
 प्रसिद्ध सप्त द्वेषके कर्ता भतीजोंकं नाश
 करैहै ॥ ॥ यह प्रसिद्ध शिशु है जो यह म-
 है । जिसमय है औ जिसविषै लीन होवैहै । सो
 एक ब्रह्म है । ऐसैं विज्ञापन किया ॥ फेर^{५२२} किस
 स्वरूपवाला सो जगत् उपजताहै औ लीन होता
 है ? पंच^{५२३}भूतात्मक ॥ औ भूत^{५२४} नामरूपात्मक हैं ।
 नो^{५२५}मरूप सत्य हैं । ऐसैंबी निश्चयकरि कहा ।
 तिसै^{५२६} पंचभूतात्मक सत्यका सत्य ब्रह्म है । फेर^{५२७}
 पंचभूत सत्य कैसे हैं । यातैं मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मण

५२२ जन्मआदिकके विषय जगत्के स्वरूपकं पूछताहै ॥

५२३ विप्रतिपत्तिके निरास अर्थ ताके स्वरूपकं कहैहैं ॥

५२४ ननु तब नामरूप कर्मात्मक जगत् है । यह कैसे
 कहा है ? तहां कहैहैं ॥

५२५ तहां गमककं कहैहैं ॥

५२६ ननु भूतनकी सत्यताके हुये ब्रह्मकी सत्यताके
 वचनकी युक्ति कैसे होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

५२७ सो सत्यहै । इस अवधारणतैं बाधहोने योग्य भू-
 तनविषै सत्यताकी असिद्धि होवैगी ? ऐसैं शंका करिके ।
 सिद्धांती समाधान करैहैं ॥

शुयोऽयं मध्यमः प्राणस्तस्येदमेवा-
 ध्यम (शरीरके मध्यवर्ती) प्राण (लिं-
 गात्मा) है । ताका यह (शरीर) हीं आ-
 है ॥ मूर्त्ति अरु अमूर्त्ति भूतस्वरूप होनेतैं कार्य करण-
 स्वरूपभूत प्राणवी सत्य हैं । तिनें कार्य करण स्व-
 रूप भूतनके स्वरूपके निर्धार करनेकी इच्छाकरि
 दो ब्राह्मण आरंभ करियेहैं । सोई उपनिषद्की
 व्याख्या है । जैतैं कार्य अरु करणके स्वरूपके

५२८ सत् औ त्यत् । दोनूं मिलिके सत्य शब्द सिद्ध
 होवैहै । इस व्युत्पत्तिकरि भूत जब सत्य शब्दके वाच्य क-
 हनेकूं वांछित होवेंगे । तब कार्यकारणके संघातकी औ
 प्राणोंकी सत्यता कैसें कहीहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ
 है:—कार्यकारणोंकूं उक्तपंचभूतरूप होनेतैं औ तदात्मक-
 भूत सत्यहैं ऐसैं अंगीकारतैं कार्यकारणोंकी सत्यता है औ
 प्राणवी तदात्मक (पंचभूत स्वरूप) हैं । यातैं सत्य शब्दके
 वाच्य होवैहैं । इस रीतिसैं “ प्राण प्रसिद्ध सत्यहैं ” ऐसैं
 जो कहा है । सो अविरुद्ध है ॥

५२९ ऐसैं पातनिकाकूं करिके । अब उत्तर ब्राह्मण दोके
 विषयकूं कहैहैं ॥

५३० ननु यह कथन । उपनिषद्के व्याख्यान अर्थ ब्राह्म-
 णद्वय है । इस उक्तितैं विरुद्ध है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५३१ कार्यकारणात्मक भूतनके स्वरूपकी निर्धारणाहीं
 उपनिषद्की व्याख्या है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

ऽऽधानमिदं प्रत्याधानं। प्राणः स्थूणाऽन्नं
दाम ॥ १ ॥

धान है। यह (शिर) प्रत्याध्यान है। प्राण
(बल) स्थूणा (खूटा) है। अन्न दाम
(रस्सी) है ॥ १ ॥

निश्चयद्वारा सत्यका सत्य ब्रह्म निश्चय करि-
येहै ॥ [यातै] इ^{३३}हां कहाहै:—“प्राण प्रसिद्ध स-
त्यहै। तिनका यह सत्यहै” ऐसै ॥ ॥ तहां कौन
प्राण हैं ? अरु कितनी वा कौनसी प्राणकूं विषय
करनेहारी उपनिषद् हैं ? इसरीतिसै ब्रह्मकी उ-
पनिषद्के प्रसंगसै करणोंके स्वरूपकूं निश्चय क-
रैहै। मा^{३३}र्गविषै प्राप्त कूप अरु आरामआदि-
कके निश्चयकीन्यांई ॥ जो^{५३४} निश्चयकरि साधान

५३२ ब्राह्मण द्वयकूं ऐसै अवतार देके। इस शिशु ब्रा-
ह्मणकी अवांतर संगतिकूं कहाहै ॥ इहां यह शेष है:—उप-
निषद् कौन हैं वा कितनी हैं यह उपसंख्या करनेकूं योग्य
है। इस आकांक्षाके हुये ॥

५३३ ननु ब्रह्म जब अवधारण करनेकूं इष्ट है। तब
सोई अवधारण करनेकूं योग्य है। मध्यमै करणोंका स्वरूप
कयूं अवधारण करिये है ? तहां कहाहै ॥

५३४ ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहिके। अब ताके अक्षरनकूं
योजना करै हैं ॥

सप्रत्याधान सस्थूण अरु सदाम शिशुकूं जान-
ताहै । ताकूं यह फल होवैहै ॥ ॥ सो क्याकिः—
सप्तसंख्यावाले द्वेषके कर्त्ता भतीजोंकूं विनाश
करैहै ॥ जाँतैं भतीजे दो प्रकारके होवैहैं । द्वे-
षके कर्त्ता औ अद्वेषके कर्त्ता । तिनके मध्य द्वे-
षके कर्त्ता जे भतीजेहैं । तिन द्वेषी भतीजनकूं
विनाश करैहै ॥ साँत जे शिरगत प्राण (इंद्रिय)
रूप विषयनकी उपलब्धिके द्वारहैं । तिनतैं प्र-
भववाले जे विषयनविषै राग हैं । वे सहज हो-
नेतैं भतीजेहैं ॥ जाँतैं वे याकी स्वात्माविषै स्थित
दृष्टिकूं विषयनकूं ग्रहणकरनेहारी करैहैं । तिस
हेतुकरि वे द्वेषके कर्त्ता भतीजेहैं । प्रत्यग्गतः ई-

५३५ विशेषणके अर्थ । भतीजेकूं भेदन करैहैं ॥

५३६ फेर इहां कौन भतीजे कहनेकूं वांछित होवैहैं ?
तहां कहैहैं ॥

५३७ श्रोत्रादिकनका सत्यपना कैसें है ? तहां द्वारभेदतैं
है । ऐसें कहैहैं ॥

५३८ तिनका भतीजेपना कैसें है ? यह आशंका करिके ।
विषयनकी अभिलाषाद्वारा है । ऐसें कहैहैं ॥

५३९ तथापि तिनकूं द्वेषापना कैसें है ? यातैं कहैहैं ॥

५४० औ इंद्रिय । विषयनकूं विषयकरनेहारी दृष्टिकूं क-
रते हुयेहीं आत्मविषयक दृष्टिकूंभी करेंगे । तातैं तिनकूं उ-
क्तप्रकारका भतीजेपना (भ्रातृजपना) नहीं है ? तहां कहैहैं ॥

क्षण (अवलोकन) के करनेहारे होनेतैं ॥ सो कठ-^{५४१}
वल्ली उपनिषद्विषैवी कहा है:—“स्वयंभू (परमा-
त्मा) इंद्रियनकूं बहिर्मुख हिंसा करताभया । तातैं
[पुरुष] बाह्य देखता है । अंतरात्माकूं नहीं” इत्या-
दि ॥ तैंहां जो शिशुआदिकनकूं जानताहै कहिये
तिनके स्वभावकूं निश्चय करताहै । सो इन भती-
जोंकूं विनाश करैहै ॥ ॥ अब फलके श्रवणकरि
अभिमुख भये तिस (शिष्य)केताई कहैहै:—
यह प्रसिद्ध शिशु है ॥ ॥ कौन यह शिशु
है? तहां कहैहै:—जो यह मध्यम प्राण है क-
हिये शरीरके मध्य जो प्राण लिंगस्वरूप है
औ जो पांच प्रकारसैं शरीरके प्रति आविष्ट (आ-
वेशकूं प्राप्त) भया है । अरु हे बडा ! शुकुवस्त्र-
वाला ! सोम ! राजन् ! ऐसैं पूर्व कहा है औ जि-
सविषै वाक् अरु मनआदिक करण । विषक्त
(संलग्न) हैं ॥ सैमर्थ अश्वके च्यारी पादबंधन-

५४१ इंद्रियां विषयनविषै तत्पर हुये तहांहीं दृष्टिकी
कारणहैं । प्रत्यगात्माविषै नहीं । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

५४२ फलितकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—उक्त विशेष-
णवाले भतीजोंके सिद्धहुये यह अर्थ है ॥

५४३ प्राणविषै वाक् आदिकनकी प्रविभक्तताविषै हेतुकूं

के कीलनके दृष्टान्ततैं ॥ सो यह (प्राण) शिशु-कीन्यांई विषयनविषै इतर करणोंकीन्यांई अपट्टु होनेतैं शिशु है ॥ ॥ साधान (आधानसहित) कूं ऐसैं कहा । फेर तिस वत्सस्थानीय करणस्वरूप शिशुका आधान (अधिष्ठान) क्या है? तहां कहैहैं:—ताका यहहीं शरीर आधान है । सो कार्यात्मक है ॥ (धारण करियेहै इसविषै सो आधान कहियेहै) । यातैं तिसैं प्राणरूप शिशुका यह शरीर अधिष्ठान है । जातैं इस (शरीर) विषै करण अधिष्ठित (आश्रित) हुये प्ररब्धात्मक उपलब्धिके द्वार होवैहैं । प्राणमात्रविषै विषक्त (संसक्त) हुये [उपलब्धिके द्वार] नहीं होवैहैं ॥ तिसैं प्रकार जातैं अ-

कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं जातिवाला हय (अश्व) । च्यारी पादबंधनके कीलनकूंबी पर्याय (क्रम) करि उखाडिके उत्क्रमण करता है । तैसैं प्राण । वाक् आदिकनकूं [शरीरदेशतैं उखाडिके उत्क्रमण करै है] इस दृष्टान्ततैं वाक् आदिक प्राणविषै विषक्त (संलग्न) सिद्ध होवैहैं ॥

५४४ शरीरका प्राणके प्रति आधानपना साधतेहैं ॥

५४५ शरीरके अधिष्ठानपनैकूं स्पष्ट करै हैं ॥

५४६ प्राणमात्रविषै विषक्त हैं तोबी उपलब्धिके द्वार नहीं होवैहैं । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

जातशत्रुनें पूर्व दिखाया है:—“करणोंके उप-
 संहारकूं प्राप्त हुये विज्ञान नहीं उपलभ्यमान
 होवैहै । शरीरदेशविषै करणोंके व्यूढ (स्थित)
 हुये तो विज्ञानमय (जीवात्मा) उपलभ्यमान
 (प्रतीयमान) हुया देखियेहै”^{५४८} औ सो हस्तके
 मरोडनेकरि प्रतिबोधनसै दिखाया ॥ ॥ यह
 प्रत्याधान शिर है । सो प्रदेश^{५४९} (अंग) विशे-
 षणवि^{५५०} जिस तिसके प्रति धारण करियेहै ।
 यातै प्रत्याधान है ॥ ॥ प्राण (बल) स्थूणा
 (खंभ) है ॥ अन्न अरु पानकरि जनित शक्ति ।
 प्राण । बल । ये परस्पर पर्याय हैं ॥ जातै बल-

५४७ देहरूप अधिष्ठानवाले प्राणविषै संलग्न वे (इं-
 द्रियां) उपलब्धिके द्वार होवैहैं । इस अर्थविषै अनुभवकूं
 अनुकूल करै हैं ॥

५४८ तहांहीं अजातशत्रुब्राह्मणके संवादकूं दिखावैहैं ॥
 इहां यह अर्थ है:—शरीरके आश्रित प्राणविषै वाक्आदि-
 कनके संलग्न हुये उपलब्धाकी उपलभ्यमानता होवै है ॥

५४९ शिरके प्रत्याधानपनैकूं व्युत्पादन करै हैं ॥

५५० बलके पर्याय प्राणके स्थूणा (स्तंभ)पनैकूं समर्थन
 करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—यह मरनेवाला आत्मा (पुरुष)
 जिसकालविषै देहकूं अबलभाणकेतांई प्राप्तकरिके संमोहकी

रूप आश्रयवाला प्राण इस शरीरविषै रहताहै [तातै] सो जहां (जिसकालविषै) यह आत्मा (मर-नेवाला पुरुष) देहकूं निर्वलभावकेतांई प्राप्त करि-के संमोहकूं प्राप्त हुयेकी न्यांई प्राप्त होवैहै । तब शरीरतै उत्क्रमण करैहै । ऐसैं आगे देखनेतै ॥

^{५५१} जैसे वत्स स्थूणारूप आश्रयवाला होवैहै ।

^{५५२} ऐसैं शरीरका पक्षपाती वायुरूप प्राण स्थूणा है ।

ऐसैं केईक (भर्तृप्रपंचके अनुसारी) कहतेहैं ॥

अन्न दाम (रस्सी) है ॥ जातैं भुक्त अन्न

न्यांई प्राप्त होवैहै । तब उत्क्रमण करैहै (शरीरतै निकसता है) । ऐसैं षष्ठविषै देखनेतै ॥

५५१ इस देहविषै बलरूप आश्रयवाला प्राण है । इस अर्थविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

५५२ अब वेदांतके एकदेशी भर्तृप्रपंचके पक्षकूं दिखा-वेहैं ॥ जातैं कहाहै:—प्राण यह उच्छ्वास अरु निश्वासरूप कर्मवाला शारीर (शरीरमध्यवर्ती) अरु शरीरका पक्षपाती वायु ग्रहण करिये है । इस स्थूणाविषै शिशुरूप प्राण कर-णोंका देवता लिंगशरीरका पक्षपाती ग्रहण करियेहै ॥

५५३ सो देवरूप प्राण इस बाह्यप्राणविषै बांध्या है । ऐसैं सो व्याख्यान करनेकूं भूमिकाकूं करै हैं ॥ इहां त्वक् रुधिर मांस मेद मज्जा अस्थि अरु शुक्ररूप सप्त धातुनतैं भया जो देह । सो सप्त धातुक कहियेहै ॥

तीन प्रकारसैं परिणामकूं पावताहै ॥ जो स्थूल परिणामहै । सो ये दो रूप होयके इस (पृथिवी) के तांई विलय होवैहैं । मूत्र औ पुरीष (विष्ठा) ॥ जो मध्यम रसरूप सार है सो लोहित (रुधिर) आदिक क्रमकरि स्वकार्य सप्त धातुके शरीरकूं बढावताहै । जातैं स्वकारणरूप अन्नके आगमहुये शरीर बढता है । अन्नमय होनेतैं । विपर्ययके हुये अपक्षय (पतन) कूं पावताहै औ जो अणिष्ठ (सूक्ष्म) रस अमृतरूप औ अर्कप्रभाववाला ऐसैं कहियेहै । सो नाभिके ऊपर हृदयदेशके प्रति आयके । हृदयतैं प्रसृत बहत्तर हजार नाडीनविषै अनुप्रवेश करिके । जो सो वायुसंघातरूप शिशुसंज्ञक लिंगहै । ताके शरीर (स्वरूप) विषै स्थूणानामक बलकूं उपजावता हुया स्थितिका कारण है ॥ त्रिदोषरि अन्न दोनुंओरतैं पाशकीन्यांई । (दामकीन्यांई) प्राण अरु शरीरका निर्बधनरूप होवैहै ॥ १ ॥

तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते । त-
द्या इमा अक्षन् लोहिन्यो राजयस्ता-

अर्थः—तिसके तांई ये सप्त अक्षितियां
उपस्थित होवैहैं । तहां जे ये (प्रसिद्ध) अ-
क्षिविषै लोहित (रक्त) राजियां (रेखा)

टीकाः—अब चक्षुरूप प्रत्याध्यानविषै ऊढ
(स्थित) तिसीहीं शिशुकी केईक उपनिषद् क-
हियेहैंः—ता (शिशु) केतांई ये सप्त अक्षि-
तियां उपस्थित होवैहैं ॥ कहिये शरीरविषै
अन्नरूप बंधनवाले चक्षुविषै ऊढ तिस करण-
स्वरूप प्राणकेप्रति ये वक्ष्यमाण सप्त संख्यावा-
लियां अक्षितिकी हेतु होनेतैं अक्षितियां उप-
स्थित होवैहैं ॥ ॥ यद्यपि मंत्रकरणविषै उपपूर्व

५५५ “ जो प्रसिद्ध शिशुकुं ” इत्यादि वाक्यविषै सूत्रित
शिशुआदिक पदार्थनकूं व्याख्यान करिके । अनंतरके वाक्य-
रचनाके तात्पर्यकूं दिखावतेहुये उत्तर वाक्यकूं लेके व्या-
ख्यान करै हैं ॥

५५६ ननु जहां मंत्रकरि उपस्थान करियेहै तहांहीं उ-
पपद है पूर्व जिसके ऐसे तिष्ठति धातुका आत्मनेपद हो-
वैहै ॥ सो पाणिनीय शास्त्रविषै कहा हैः—“उपतैं मंत्रक-
रणविषै” ऐसैं औ आदित्यके प्रति गायत्रीकरि उपस्थान

भिरेन रुद्रोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षन्नाप-
स्ताभिः पर्जन्यो या कनीनका तथा-
ऽऽदित्यो यत् कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्लं तेने-
हैं । तिनकरि या (मध्यम प्राण)केताई
रुद्र अनुगत होवैहै ॥ औ जे अक्षिविषै
आपहैं । तिनकरि पर्जन्य [अनुगत होवैहै]
॥ जो कनीनकाहै । तिसकरि आदित्य [अ-
नुगत होवैहै] ॥ जो कृष्ण है । तिस (द्वार)

तिष्ठति धातु आत्मनेपदी होवैहै ॥ इहांवी सप्त
देवताके नामरूप मंत्रस्थानीय करण तिष्ठति
धातुके हैं । यातैं इहांवी आत्मनेपद विरुद्ध नहीं

करैहै ऐसैं देखीयेहै । इहां मंत्रकरि किंचित् नहीं करियेहै
किंतु प्राणकूं अन्नके अक्षयका हेतु होनेतैं सप्त अक्षितियां ।
ऐसैं उपनिषद् कहनेकूं वांछित होवैहैं ? तहां कहैंहैं ॥
इहांः—मंत्रकरि किसीबी अनुष्ठानके करणके विवक्षित हुये
उपपूर्व तिष्ठति धातु यद्यपि आत्मनेपदी होवैहै । तथापि
इहां सप्तरुद्रआदिक देवताके नाम मंत्रकी न्यांई अवस्थित
हैं । तिनोंकरि करणरूप उपासनाके अनुष्ठान इहां करियेहैं ।
यातैं उपपूर्व तिष्ठति धातुका आत्मनेपद अविरुद्ध है । ऐसैं
योजना है औ लोहित (रक्त) रेखाओंकरि रुद्रकी प्राणके
प्रति अनुगतिके अनंतर । यह अथ शब्दका अर्थ है ॥

न्द्रोऽधरयैनं वर्तन्या पृथिव्यन्वयत्ता ।
 करि अग्नि [अनुगत होवैहै] ॥ जो शुक्रहै ।
 तिसकरि इंद्र [अनुगत होवैहै] ॥ नीचेकी
 पमणीकरि याके तांई पृथिवी अनुगत हो-
 है ॥ ॥ कौन वे अक्षितियां हैं ? तहां कहियेहैः—
 तहां जो ये प्रसिद्ध अक्षि (नेत्र) विषै लो-
 हित (रक्त) रेखाहैं । द्वारभूत तिन (रेखाओं)
 करि इस मध्यम प्राणके तांई रुद्र अनुगत
 होवैहै ॥ अनंतर जे अक्षि (नेत्र) विषै धूम
 आदिकके संजोगकरि आविर्भूत आप हैं । ति-
 न द्वारभूत आपों (जलों) करि देवतास्वरूप
 पर्जन्य अनुगत होवैहै । अर्थ यह जो उपस्थित-
 होवैहै ॥ औ सो प्राणोंका अन्नभूत अक्षिति
 पर्जन्य (मेघ)के वर्षते हुये प्राण आनंदी हो-
 वैहै” इस अन्य श्रुतितैं ॥ जो कनीनका (वृक्
 शक्ति) है तिस कनीनकारूप द्वारकरि आदि-
 त्य मध्यम प्राणके प्रति उपस्थित होवैहै ॥ च-

५५७ पर्जन्य (मेघ)की अन्नद्वारा प्राणके अक्षयके हे-
 तुताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

द्यौरुत्तरया ॥ नास्यान्नं क्षीयते । य एवं वेद ॥ २ ॥

वैहै ॥ उत्तरा (ऊपरकी पमणी) करि स्वर्ग-लोक [अनुगत होवैहै] ॥ याका अन्न क्षीण नहीं होवैहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ २ ॥

क्षुविषै जो कृष्ण है । तिसकरि याके प्रति अग्नि उपस्थित होवैहै । चक्षुविषै जो शुक्ल है तिसकरि इंद्र उपस्थित होवैहै ॥ नीचेके पक्ष्म (पमणी) करि याके तांई पृथिवी अनुगत होवैहै । अधरताकी समानतातैं ॥ द्यौः (स्वर्गलोक) ऊपरकी पक्ष्म (पमणी) करि स्थित होवैहै । ऊर्ध्वताकी समानतातैं ॥ ये सँस-प्राणके अन्नभूत अक्षितियां निरंतर उपस्थित होवैहैं ॥ ईसैं प्रकारसैं जो जानताहै । ताकूं यह फल होवै है:—याका अन्न क्षयकूं पावता नहीं । जो ऐसैं जानता है ॥ २ ॥

५५८ फेर इन सर्वकूं प्राणके प्रति अक्षितिपना कैंसैं सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

५५९ अब उपासनाके फलकूं कहैहैं ॥

तदेष श्लोको भवति । अर्वाग्बिलश्च-
मस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं वि-
श्वरूपम् । तस्याऽऽसत ऋषयः सप्त तीरे

अर्थः—तिस (अर्थ)विषै यह श्लोक
(मंत्र) होवैहैः—नीचे छिद्रवाला अरु ऊप-
रसैं गोल चमस (यज्ञपात्रविशेष) है ।
तिसविषै विश्वरूप (नानारूप) यज्ञ स्थित
होवैहै । ताके तीरविषै (किनारे) सप्त ऋषि

टीकाः—तिस इस अर्थविषै यह श्लोक (मं-
त्र) होवैहैः—अर्वाग्बिलश्चमसः (नीचे छि-
द्रवाला चमस) । इत्यादि ॥ ॥ तैहां श्रुति मं-
त्रके अर्थकूं कथन करैहैः—नीचे बिल (छिद्र)

५६० रुद्रादि शब्दनकूं देवतारूप विषयवाले होनेतैं मंत्र-
कूंबी तद्विषयता (देवतारूप विषयवान्ता) होवैगी ? यह
आशंका करिके । चक्षुविषै रुद्रादिकके गणकूं उक्त होनेतैं
इंद्रियके साथि संबंधतैं ताकी करणग्रामरूपताकी प्रतीतितैं
तिस (करणग्राम)कूं विषय करनेवाला श्लोक (मंत्र) है ।
प्रसिद्ध देवताकूं विषय करनेवाला नहीं है । इस अभिप्राय-
करिके कहैहैं ॥ इहां मंत्रका व्याख्यानकी अपेक्षावान्पना
जो है सो “तहां” ऐसैं कहिये है ॥

वागष्टमी ब्रह्मणा सम्विदानेति । अर्वा-
 ग्विलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर
 एष ह्यर्वाग्विलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मि-
 न्यशो निहितं विश्वरूपमिति ॥ प्राणा वै
 रहतेहैं । वाक् ब्रह्माकेसाथि संवादकूं क-
 रतीहुयी अष्टमी होवैहै । ऐसैं नीचे छिद्र-
 वाला अरु ऊंचेसैं गोल चमस है इति ।
 यह सो शिर है । यहहीं नीचेसैं छिद्रवाला
 अरु ऊपरसैं गोल चमस है ॥ तिसविषै
 विश्वरूप यश स्थित है इति ॥ प्राणरूप
 वाला चमस (चमसके आकारवाला शिर) ऊ-
 र्ध्वबुध्न (ऊपरगोल) है ॥ कौन फेर यह नीचे
 छिद्रवाला अरु ऊपरसैं गोल चमस (यज्ञपात्र-
 विशेष) है ? यह सो शिर है । जातैं सो (शिर)
 नीले छिद्रवाला औ ऊपरसैं गोल चमस (सो-
 मवल्लिके रसके पान करनेके पात्र)के आकार-
 वाला है ॥ ॥ यह नीचे छिद्रवाला कैसे है ?

५६१ शिरकूं चमसका आकारवान्पना अस्पष्ट है ?
 ऐसैं आशंका करिके । समाधान करै है ॥

यशो विश्वरूपं प्राणानेतदाह तस्या-
 ऽऽसत ऋषयः सप्त तीर इति प्राणा वा
 प्रसिद्ध यश विश्वरूप हुआ स्थित है ॥ प्रा-
 णोंकूं यह कहैहैः—ताके तीरविषै सप्त ऋषि
 रहतेहैं । ऐसैं ॥ प्राण प्रसिद्ध ऋषि हैं ।
 मुखकूं बिल (छिद्र) रूप होनेतैं है औ शिरकूं
 गोल आकारवाला होनेतैं सो ऊपर गोलवाला
 है ॥ तिसविषै विश्वरूप यश निहित है इ-
 ति ॥ कहिये जैसें चमस (यज्ञपात्रविशेष)विषै
 सोम (सोमवल्लिका रस) स्थित होवैहै । ऐसैं
 तिस शिरविषै विश्वरूप (नानारूप) यश नि-
 हित (स्थित) होवैहै ॥ फेर सो यश क्या है ?
 प्राण जे हैं वे प्रसिद्ध विश्वरूप यश है ॥
 प्राण जे श्रोत्रादिक इंद्रिय औ तिनविषै सप्त
 प्रकारसैं प्रसृतभये वायु । तिनकूं यह वेदका मंत्र
 यश ऐसैं कहताहै । शब्दादिकके ज्ञानके हेतु
 होनेतैं तिस (शिररूप चमस)के तीरविषै
 सप्त ऋषि रहतेहैं । परिस्पंदात्मक (स्फुरण-
 स्वरूप) हैं वेही ऋषि हैं ॥ यह मंत्र । प्राणोंकूं

ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा
सम्बिदानेति वाग्ध्यष्टमी ब्रह्मणा सं-
वित्ते ॥ ३ ॥

प्राणोंकूं यह कहैहै । वाक् ब्रह्माकेसाथि
संवादकूं करतीहुयी अष्टमी होवैहै । ऐसैं
वाक् अष्टमी ब्रह्माकेसाथि संवादकूं क-
रैहै ॥ ३ ॥

यह कहता है ॥ ब्रह्म (शब्दराशि) करि सं-
वाद करती हुयी वाक् । अष्टमी होवैहै ॥ तिसैं-
विषै हेतुकूं कहैहैः—वाकहीं अष्टमी । ब्रह्म (श-
ब्दराशि) करि संवादकूं करैहै ॥ ३ ॥

५६२ वाक् अष्टमी है ऐसैं कहा । औ ताकूं सप्तमता
करि उक्त होनेतैं एक (वाक्) कूं दोपना (अष्टमपना तथा
सप्तमपना) बनै नहीं ? यह आशंका करिके कहैहै ॥ इहां
यह अर्थ हैः—शब्दका जो राशि (समूह) सो ब्रह्म कहि-
येहै । तिससैं संवाद जो संसर्ग । ताके तांई गमन करती
हुयी (शब्दराशिकूं उच्चारती हुयी) वाक् । अष्टमी होवैहै ॥

५६३ तथापि सप्तमपनैकूं छोडीके अष्टमपना कैसें क-
हा है ? तहां कहैहैं ॥ वक्ता अरु अत्तापनैके भेदकरि वाक्
दोप्रकारकी इष्ट है । तिनमें वक्तापनैकरि अष्टमी है औ अत्ता
(भक्षक) पनैकरि सप्तमी है । ऐसैं अविरोध है औ रसना तो

इमावेव गोतमभ द्वाजावयमेव गो-
तमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्र-
जमदग्नी । अयमेव विश्वामित्रोऽयं जम-

अर्थः—ये (दो कर्ण)हीं गोतम भरद्वाज
हैं । यह (दक्षिण)हीं गोतम है । यह (उत्तर)
भरद्वाज है ॥ ये (दो चक्षु)हीं विश्वामित्र
जमदग्नि हैं । यह (दक्षिण)हीं विश्वामित्र
है । यह (उत्तर) जमदग्नि है ॥ ये (दो

टीकाः—फेर तिस चमसके तीरविषै कौनरे
ऋषि रहतेहैं ? येहीं दो कर्ण गौतम अरु भ-
रद्वाज हैं । यहहीं गोतम है । यह भरद्वाज
है । दक्षिण औ उत्तर वा विपर्ययकरि हैं ॥ ॥
तैसें दोनूं चक्षुनकूं उपदेश करताहुया कहता
भयाः—येहीं (दो चक्षु) विश्वामित्र अरु जम-
दग्नि हैं । दक्षिण विश्वामित्र है । उत्तर जमद-

उपलब्धिकी हेतु है । यह भाव है ॥ वा विपर्ययकरि है । यह
अर्थ पूर्वकीन्यांई है । ऐसें कहिये है । इहां अत्रि सप्तम है ।
ऐसें संबंध है औ अदनक्रियाके योगतैं यह अत्रिभावविषै
हेतु है ॥

दग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावयमेव व-
 सिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा ह्य-
 न्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति स-
 नासिकाके पुट) वसिष्ठ कश्यप हैं । यह
 (दक्षिण) हीं वसिष्ठ है । यह (उत्तरपुट)
 कश्यप है ॥ वाक्हीं अत्रि है ॥ वाक्करि
 जातें अन्न भक्षण करियेहै [तातें] अत्ति
 प्रसिद्ध नाम यह है । जो अत्रि है । ऐसैं ॥
 ग्नि है । वा विपर्ययकरि हैं ॥ दोनूं नासिकाके छि-
 द्रनकूं उपदेश करता हुया कहता भयाः—द-
 क्षिणपुट वसिष्ठ होवैहै । उत्तर कश्यप है ।
 वा पूर्ववत्हैं ॥ ॥ वाक्हीं अत्रि है । अदन (भ-
 क्षणरूप) क्रियाके योगतैं । सो सप्तम है । 'जातैं
 वाक्करि अन्न अदन करियेहै । 'तातैं वाक्का
 अत्ति यह नाम प्रसिद्ध है । अत्ता (भक्षक)
 होनेतैं अत्रि ऐसा नाम है । जो अत्ति हीं हुयी

५६४ हेतुकूं साधते हैं ॥

५६५ साध्य अर्थकूं निगमन करै हैं ॥

५६६ तब अत्रि यह कैसें व्यपदेश करिये है ? यातें क-

र्वस्यात्ता भवति । सर्वमस्यान्नं भवति ।
य एवं वेद ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्या-
यस्य द्वितीयं-शिशु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥२॥

सर्वका अत्ता (भक्षक) होवैहै । सर्व याका
अन्न होवैहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ ४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभा-
षादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं
शिशु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

परोक्षकरि अत्रि कहियेहै । सर्व इस अन्नके स-
दायरूप प्राणका अत्रि निर्वचनके विज्ञानतैं
अत्ता होवैहै । कहिये अत्ताहीं होवैहै । परलो-
कविषै अन्यकरि फेर प्राप्त नहीं होवैहै ॥ यह
कथन किया होवैहै:—सर्व याका अन्न होवैहै ।

हैंहैं ॥ इहां:—प्राणका जो अन्नका समूह है । तिस इस
सर्वका अत्ता होवैहै । अत्ति निर्वचनके विज्ञानतैं ऐसैं संबंध है ॥

५६७ “ सर्व याका ” इत्यादिरूप वाक्यकूं अर्थके कथन-
पूर्वक प्रगट करैहैं ॥

जो^{५६८} ऐसैं इस उक्त प्रकारके प्राणके स्वभावकूं जानताहै । सो ऐसैं मध्यमप्राणरूप होयके आधानगत भोक्ताहीं होवैहै । अर्थ यह जोः— भोज्य । भोक्तातैं निवृत्त नहीं होवैहै ॥ ४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्ब्राह्मण्यभाषादीपिका
यां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ २ ॥

५६८ केवल अत्रिशब्दके निर्वचनका किया यह विज्ञानका फल नहीं । किंतु प्राणके स्वभावके ज्ञानका किया है । ऐसैं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्द्वितीयाध्यायगतद्वितीय-
ब्राह्मणस्य टिप्पणिका समाप्ता ॥ २ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्विती-
याध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे । मूर्त्तञ्चैवामू-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया
द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अर्थः—दोईहीं ब्रह्मके रूप हैंः—मूर्त्तहीं

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया
द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

टीकाः—तैहीं (अजातशत्रु ब्राह्मणके अवसा-
नविषै) “प्राण असिद्ध सत्य है” ऐसैं कहा ॥
औ जे प्राणोंकी उपनिषद् हैं वे ब्रह्मकी उपनि-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायगत-
तृतीयब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

५६९ संबंधकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्तन करै हैं ॥ इहां
अजातशत्रुब्राह्मणका अंत “ तहां ” इस सप्तमीका अर्थ है
औ उपनिषद कहिये रुद्रादिकके नाम हैं ॥

र्तञ्च । मर्त्यञ्चामृतञ्च । स्थितञ्च यच्च सच्च-
त्यच्च ॥ १ ॥

अरु अमूर्तहीं ॥ औ मर्त्य अरु अमृत ।
स्थित अरु यत् (अस्थित) । सत् (अप-
रोक्ष) अरु त्यत् (परोक्ष) है ॥ १ ॥

षट्के प्रसंगकरि व्याख्यानकरी । “ये तेरे प्राण
हैं” ऐसैं ॥ ॥ वे^{५७०} (प्राण) किस स्वरूपवाले हैं
वा तिन (प्राणों)की सत्यता कैसैं है । यहबी
कहनेकूं योग्य है? यह शंकाभयी । यातैं कार्य-
कारणस्वरूप पंचभूतरूप सत्योंके स्वरूपके अ-
वधारण (निश्चय) अर्थ । यह (तृतीय) ब्राह्मण
आरंभ करियेहै ॥ जो “नेति नेति ऐसैं” उपा-
धिविशेषके अपनय (निवारण)रूप द्वारकरि

५७० उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

५७१ ब्रह्मकूं निर्धारण करनेकूं योग्य होनेतैं इहां भूत-
नका सत्व (सत्पना)कयूं निर्धार करिये है ? तहां कहैहैं ॥
इहां उपाधिभूत तिनभूतनके स्वरूपके निश्चयअर्थ यह ब्रा-
ह्मण है । ऐसैं संबंध है औ “ सत्यका सत्य है ” इस वाक्य-
विषै षष्ठ्यंत सत्यशब्दका वाच्य हेय है अरु प्रथमांत सत्य-
शब्दका वाच्य आदेय है । तिन दोनूंकें मध्य आद्यके स्वरू-
पके कथनअर्थ पूर्वला वाक्य है । अरु ताके अनंतर जो

ध्याय । २] तृतीय-मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ ९४७

ब्रह्मका सत्व निर्धार करनेकूं इच्छित है ॥ तैहैं
दो रूपवाला । पंच^{५७३}भूतजनित कार्यकरणसैं संबं-
धवाला । मूर्त्त अरु अमूर्त्त नामवाला मर्त्य अरु
अमृत स्वभाववाला । औ तज्जनित वासनारू-
प । सर्वज्ञ । सर्वशक्तिमान् सोपाख्य (शब्द
अरु प्रत्ययका विषय) औ क्रिया कारक अरु फ-
लस्वरूप । सर्व व्यवहारोंका विषय है । सोई^{५७४}
ब्रह्म । सर्व उपाधि भेदतैं रहित । सम्यक् ज्ञान-
का विषय । अज । अजर । अमृत । अभय । वा-
क् अरु मनकाबी अविषय । अद्वैतरूप होनेतैं
“नेति नेति” एसैं निर्देश करियेहै ॥ तैहैं जिनके
निषेधद्वारा “नेति नेति” एसैं ब्रह्म निर्देशकरि-
येहै । वे ये दोईहीं ब्रह्म (परमात्मा)के रू-
प हैं । अविद्याकरि आरोपित जिन दोनूंकरी

वाक्य है सो ब्राह्मणकी समाप्तिपर्यंत आदेयके निरूपण अर्थ
है । यह समुदायका अर्थ है ॥

५७२ सविशेषहीं ब्रह्म है । निर्विशेष नहीं । एसैं केईक
कहते हैं । तिनकूं निराकरण करनेकूं ब्रह्मका विभाग करैहैं ॥

५७३ “ दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं ” इत्यादि श्रुतितैं सोपा-
धिक ब्रह्मके रूपकूं विवरण करै हैं ॥

५७४ निरुपाधिक ब्रह्मके रूपकूं दिखावैहैं ॥

५७५ एसैं भूमिकाकूं रचिके अब अक्षरोंकूं व्याख्यान करैहैं ॥

अरूप परब्रह्म निरूपण करियेहै । [यातैं वे दो रूप कहियेहैं] ॥ ॥ कौनसे वे दो रूप हैं? मूर्त्तहीं । तैसैं अमूर्त्तहीं है । यह अर्थ है ॥ अंतर्भावित स्वात्माविषै विशेषण मूर्त्त अरु अमूर्त्त दो-ईहीं निश्चय करियेहैं ॥ ॥ फेर वे मूर्त्त अरु अमूर्त्तविषै अंतर्भावित विशेषण कौन हैं? तहां कहियेहैं:—मर्त्य (मरणधर्मी) अरु अमृत (तिसतैं विपरीत) । स्थित (परिच्छिन्न गतिपूर्वक जो स्थासु है) अरु यत् जो जाताहै यातैं यत् व्यापि अपरिच्छिन्न होवैहै ऐसा स्थिततैं विपरीत । सच्च (सत्) कहिये अन्योतैं विशेष्यमाण असाधारण धर्मरूप विशेषवाला अरु त्यच्च (तिसतैं वि-

५७६ ननु विवक्षित ब्रह्मके दोरूप जब निश्चित होवैं । तब मर्त्यताआदिक वक्ष्यमाण विशेषण । अवधारण (निश्चय)के विरोधतैं अयुक्त होवेंगे ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

५७७ मूर्त्त अरु अमूर्त्तके मध्य अंतर्भावित जे स्वात्माविषै विशेषण हैं । तिनकूं आकांक्षाद्वारा दिखावै हैं ॥ जो गतिपूर्वक स्थासु (स्थिर) है सो परिच्छिन्न स्थित है । ऐसैं योजना है औ विवेक्ष्यमाणता कहिये प्रत्यक्षकारि उपलभ्यमानता । औ इहां “तहां” ऐसी सप्तमी निर्धारण अर्थ है । अर्थ यह जो तहां प्रत्येक मूर्त्त अमूर्त्तके चतुष्टय विशेषणताके हुये ॥

तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षा-
च्चैतन्मर्त्यमेतत् स्थितमेतत्सत्तस्यैत-

अर्थः—सो यह मूर्त्त है । जो यह वायुतैं
अरु अंतरिक्षतैं अन्य (पृथिवीआदि भूत-
त्रय) है । यह मर्त्य है । यह स्थित है । यह
परीत) त्यत् ऐसाहीं सर्वदा परोक्ष कथनके यो-
ग्य है ॥ १ ॥

टीकाः—तहां चतुष्टय विशेषकर विशिष्ट
मूर्त्त तथा अमूर्त्त है ॥ ॥ तिनमें मूर्त्तके विशेषण
कौनहैं औ इतर (अमूर्त्तके विशेषण) कौन हैं ?
यह कहियेहैंः—सो यह मूर्त्तहै कहिये मूर्च्छित
अवयववाला (परस्परविषै अनुप्रविष्ट अवयववा-
ला) घन (संहत) है । यह अर्थहै ॥ ॥ सो क्याहै ?
जो अन्यत् (न्यारा) है ॥ किसतैं अन्यत् है ?
वायुतैं अरु अंतरिक्ष (आकाश) तैं । इन
दोनों भूतनतैं अन्यहै । परिशेषतैं पृथिवीआ-
दिक तीनिभूत । यह मर्त्यहै कहिये जो यह

५७८ ननु स्थितभावके हुये मर्त्यपना कैसैं है ? तहां
कहैहैं ॥

स्य मूर्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थित-
स्यैतस्य सत् एष रसो य एष तपति ।
सतो ह्येष रसः ॥ २ ॥

सत् है । तिस इस मूर्त्तका । इस मर्त्यका ।
इस स्थितका । इस सत्का । यह रस है ।
जो यह तपता है । जातैं सत्का यह रस
है ॥ २ ॥

मूर्त्त नामवाला भूतत्रय है । यह मर्त्य (मरण
धर्मी) है ॥ काहेतैं ? जातैं यह स्थित (परि-
च्छिन्न) है कहिये अर्थांतरके साथि सम्यक् प्र-
युज्यमान हुया विरोधकूं पावताहै ॥ जैसें घट ।
स्तंभ अरु भित्ति आदिककरि । तैसें मूर्त्त जो है
सो स्थित (परिच्छिन्न) हुया अर्थांतरका संबंधी
होवैहै । तातैं अर्थांतरके विरोधतैं मर्त्य यह सत् ।
विशेष्यमाण असाधारण धर्मवाला है । तातैंहीं
परिच्छिन्न है । परिच्छिन्न होनेतैं मर्त्य है । यातैं

५७९ ताहीकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥ इहां यातैं मर्त्य
होनेतैं मूर्त्त है । यह शेष है औ मूर्त्तभाव अरु मर्त्यभावके
परस्परहेतु हेतुमद्भावकूं जनावनेकूं “वा” शब्द है ॥

मूर्त्त है ॥ वा मूर्त्त होनेतें मर्त्य है । मर्त्य होनेतें स्थित है । स्थित होनेतें सत् है । यातें अंन्यो ऽन्य अव्यभिचारतें च्यारीधर्मोंका यथाइच्छा विशेषणविशेष्यभाव औ हेतु हेतुमद्भाव दिखावनेकूं योग्यहै ॥ सर्वथावी तो तीनिभूत । चतुष्टयविशेषणकरि विशिष्ट मर्त्य है । सो ब्रह्मका रूप है ॥ ॥ तेंहां च्यारीनके मध्य एक विशेषणके ग्रहण किये हुये इतर विशेषण गृहीतहीं होवैहैं । ऐसैं कहैहैः—तिस इस मूर्त्तका । इस स्थितका इस सत्का । अर्थ यह जोः—चतुष्टय विशेषणवाले भूतत्रयका । यह रस है । अर्थ यह जो सार है ॥ जातें तीनि भूतनका सारिष्ट (अतिशय साररूप) सविता (सूर्य) है । ईसैं (सू-

५८० फेर च्यारी धर्मोंविषै विशेषण विशेष्यभाव औ हेतुहेतुमद्भाव कैसें निश्चय करनेकूं योग्य है ? तहां कहैहैं ॥

५८१ रूप अरु रूपीभावकेवी व्यवस्थाके अभावकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

५८२ तिस इसका यह रस है । ऐसैं कहनेके योग्य हुये “मूर्त्तका” इत्यादि वाक्यकरि क्यूं विशेषण चतुष्टयका अनुवाद करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

५८३ सारताकूं साधते हैं ॥

५८४ तहां प्रतिज्ञाकूं अनुवादकरिके हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां

र्यरूप) सारवाले तीनि भूत हैं। जातैं ये तीनि विभज्यमान रूपवाले विशेषण होवैहैं। आधिदैविक कार्यका यह रूप है। जो सविताहै। जो यह मंडल तपताहै। सैत्तरूप भूतत्रयका जातैं यह रसहै ऐसैं ग्रहण करियेहै। जातैं मूर्तरूप यह सविता तपताहै “औ सारिष्ट है। औ जो आधिदैविक करणमंडलके अभ्यंतर है ताकूं हम कहतेहैं ॥ २ ॥

यह अर्थ है:—इस सूर्यमंडलकरि किये विभज्यमान (असंकीर्ण) शुक्ल कृष्ण लोहित ये रूप हैं विशेषण जिनके ऐसैं पृथिवी जल अरु तेजरूप तीन भूत हैं। तातैं तीन भूतनके कार्यके मध्य सूर्यमंडलकी प्रधानता है ॥

५८५ “जो यह तपता है” याके अर्थकूं कहैहैं ॥

५८६ हेतुवाक्यकूं लेके ताके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां मंडलहीं एतत् (यह) शब्दका अर्थ है ॥

५८७ मंडलके ग्रहणविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां मूर्त्तके ग्रहणकूं उपलक्षण होनेतैं च्यारीका जो अन्वय है सो हेतुताके अर्थ है ॥

५८८ यातैंबी मंडलात्मा सूर्य सो तीन भूतोंके कार्यनके मध्य प्रधान होवैहै। कार्यकारणकी एकरूपताकूं स्वाभाविक होनेतैं। ऐसैं कहैहैं ॥

५८९ ननु मंडल जब आधिदैविक कार्य है। तब फेर तिस प्रकारका करण क्या है? यह शंका भयी। यातैं सो कहैहैं ॥

अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृत-
मेतद्यदेतत्त्यं । तस्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्या-

अर्थः—अब अमूर्त्तः—वायु अरु अंतरिक्ष
है ॥ यह (भूतद्वय) अमृत है । यह यत् (अ-
स्थित) है । यह त्यत् है ॥ तिस इस अ-

टीकाः—अंब अमूर्त्त कहियेहैः—वायु औ
अंतरिक्ष (आकाश) रूप जो परिशेषित भूत-
द्वय है यह अमूर्त्त है । अमूर्त्त होनेतैं अस्थित
(अपरिच्छिन्न) है । यातैं किसीकेबी साथि अ-
विरुद्ध्यमान है । अमृत अमरणधर्मी यह है ।
औ यह यत् है कहिये स्थिततैं विपरीत व्यापिप-
रिच्छिन्न है ॥ जातैं यह अन्योतैं अप्रविभज्यमान
विशेषवाला है । यातैं त्य (त्यत्) ऐसैं परोक्ष कथ-
नके योग्यहीं है । पूर्वकीन्यांई ॥ तिस इस अमूर्त्त-

५९० आधिदैविक मूर्त्तकूं कहिके । तिस प्रकारकेहीं अमू-
र्त्तकूं प्रतीकके ग्रहणपूर्वक स्पष्ट करै हैं ॥ इहां अमूर्त्त जो
है सो उभयतारूप हेतुताकरि संबंधकूं पावता है औ अपरि-
च्छिन्नपना जो है सो अविरोधविषै हेतु है ॥

५९१ अमूर्त्तताआदिकनका परस्पर विशेषणविशेष्य-

मृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो
य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्त्यस्य
ह्येष रस इत्यधिदैवतम् ॥ ३ ॥

मूर्त्तका । इस अमृतका । इस यत्का । इस
त्यत्का यह रस है । जो यह इस मंडल-
विषै पुरुष है । जातैं त्यत्का यह रस है ।
यह अधिदैवत है ॥ ३ ॥

का । इस अमृतका । इस यत् (गमनशील)
का । इस त्यत् (परोक्ष)का कहिये च्या-
रीविशेषणवाले अमूर्त्तकाहीं यह रस है ॥ ॥
कौन यह रसहै ? जो यह इस मंडलवि-
षै करण^३ात्मक हिरण्यगर्भ गणरूप पुरुष
ऐसैं कहियेहै । जो सो यह अमूर्त्तरूप भूतद्व-
यका "पूर्वकीन्यांई रस (सारिष्ट) है ॥

भाव औ हेतु हेतुमद्भाव इच्छाके अनुसार देखनेकूं योग्य
है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां पुनरुक्तिबी पूर्वकीन्यांई है ॥

५९२ " जो यह " इत्यादि प्रतीकका ग्रहण है । ताका
व्याख्यान करणात्मक इत्यादि है ॥

५९३ जैसें भूतत्रयका मंडल सारिष्ट कहा है । ताकी
न्यांई है । ऐसैं कहैहैं ॥

यँहँ पुरुषरूप सारवाला अरु अमूर्त्तरूप भूतद्वय । हिरण्यगर्भसंबंधी लिंगके आरंभअर्थहीहै । तिस अव्याकृततँ भूतद्वयकी अभिव्यक्ति है । तादर्थ्यतँ तिसका सार भूतद्वय है ॥ जाँतँ^{५९५} त्यत्का यह रस है । जाँतँ जो मंडलविषै स्थित पुरुष मंडलकीन्याँई नहीं ग्रहण करियेहै । औ भूतद्वयका सार है । ताँतँ मंडलविषै स्थित पुरुषका औ भूतद्वयका साधर्म्य (समानधर्मवान्पना) है ॥ ताँतँ^{५९६} त्यत्का यह रस है । ऐसँ प्रसिद्धिकी न्याँई^{५९७} हेतुका ग्रहण युक्त है ॥ ॥ केईक (भर्तृ-

५९४ सारिष्टपनैकं अनुवाद करिके हेतुकुं कहैहँ ॥ इहां भूतत्रयके उपसर्जनरूप औ आपहीं प्रधान भूतद्वयकुं तिस अर्थ होनेतँ याका । हिरण्यगर्भके आरंभ अर्थ होनेतँ । यह अर्थ है ॥ औ भूतद्वय जो है सो भूतत्रयका उपसर्जन रूप है । यह शेष है ॥

५९५ हेतुकुं अवतार देके व्याख्यान करै हँ ॥ इहां पुरुषशब्दतँ ऊपर स (सो) शब्द देखनेकुं योग्य है ॥

५९६ अमूर्त्त होनेतँ इस विशेषणचतुष्टयकरि विशिष्टताका असाधर्म्य (अतुल्यपना) है ताके फलकुं कहैहँ ॥

५९७ स्वमतकुं कहिके । अब भर्तृप्रपंचके मतकुं कहैहँ ॥ इहां यह अर्थ है:—“ त्यत्काहीं ” इत्यादि वाक्यविषै रस-शब्दकरि भूतद्वयका कारण कहाहै औ सो चेतनतँ अन्य नहींहै औ जीव नहीं है तिस प्रकारके असामर्थ्यतँ औ पर-

प्रपंचके अनुसारी):-रस कहिये कारण जो हिरण्यगर्भका विज्ञानात्मा चेतन है । ऐसैं कहते हैं । औ तँहां (भर्तृप्रपंचके पक्षविषै) प्रसिद्ध हिरण्यगर्भके विज्ञानात्माका कर्म । वायु अरु अंतरिक्षका प्रयोक्ता है ॥ सो^{५९९} कर्म । वायु अरु अंतरिक्षका आधार (तिसरूपसैं परिणत) हुया अन्य (तीन) भूतनका प्रयोक्ता होवै है । तिस स्वकर्मकरि वायु मात्माबी नहीं है कूटस्थ होनेतैं । तातैं चेतन । सूत्ररूप क्षेत्रका जाननेवाला तैसा है ॥ यह अर्थ है ॥

५९८ सोबी भूतद्वयका कारण कैसें है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां परकीयपक्ष “तहां” इस सप्तमीका अर्थ है औ सो कर्मका असाधारण अघटित है । या अभिप्रायकरिके किल (प्रसिद्ध) ऐसैं कहा ॥ जैसें कहते हैं:—“जोई इस मंडलविषै विज्ञानात्मा है यह निश्चयकरि अविद्या कर्म अरु पूर्वप्रज्ञाकरि युक्त हुया विज्ञानात्मापनैकूं पावता है । सो यह कर्मविज्ञानात्माका रूप है । सो वायु अरु अंतरिक्षका प्रयोक्ता होवै है ” ॥

५९९ ननु हिरण्यगर्भके देहकूं पंचभूतस्वरूप होनेतैं भूतद्वयकी उत्पत्तिके हुयेबी इतर (तीन) भूतनकी उत्पत्तिविना कहासैं याकूं भोग सिद्ध होवै है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां वायु अरु अंतरिक्षका आधार । याका । तिसरूपसैं परिणामकूं पाया । यह अर्थ है ॥ औ वायु अंतरिक्षका । इहां तीन भूतनके उपसर्जनरूप इनका । यह शेष है ॥ इहां प्रयोक्ता कहिये हिरण्यगर्भका विज्ञानात्मा है ॥

ध्याय । २] तृतीय-मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ ९५७

अरु अंतरिक्षका प्रयोक्ता है । यातैं तिनका रस (कारण) कहियेहै इति ॥ ॥ सो बनै नहीं:—
काहेतैं मूर्त्तरसके साथि अमूर्त्तरसकी अतुल्यतातैं । मूर्त्तरूप भूतत्रयका तो रस । भूतत्रयके समान जातिवाला मूर्त्तरूपहीं मंडल देख्या है । चेतन नहीं ॥ तैसेँ अमूर्त्तरूप दोनूं भूतनकाबी तिसके समान जातिवाचेहीं अमूर्त्तरसकरि होनेकूं युक्त है । वाक्यकी प्रवृत्तिकूं तुल्य होनेतैं ॥
जैसेँहीं चतुष्टय धर्मवाले मूर्त्त अरु अमूर्त्त विभागकरियेहैं । तैसेँ रस अरु रसवाले मूर्त्त अरु

६०० निराकरण करै हैं ॥

६०१ मूर्त्तरसके साथि उक्तप्रकारके अमूर्त्तरसकी अतुल्यता कैसेँ है ? यह आशंका करिके । कहै हैं ॥ अमूर्त्तरसकी चेतनताके हुये दोनूं रसनका विजातिपना होवैगा । यह भाव है ॥

६०२ दोनूं रसनका विजातिपना होहू ? तहां सो बनै नहीं । ऐसेँ कहैहैं ॥ इहां:—मूर्त्त मर्त्य स्थित अरु सत् । यह मूर्त्तके धर्मोंका चतुष्टय है औ अमूर्त्त अमृत व्यापि अरु त्यत् । यह अमूर्त्तका विभजन है कहिये असंकीर्णताकरि प्रदर्शन है ॥

६०३ जैसेँ रसवाले मूर्त्त अरु अमूर्त्तकी तुल्यता कही । तैसेँ रस अरु रसवालेबी तिन (मूर्त्त अमूर्त्त)का तुल्य प्रकारकरिहीं प्रदर्शन उचित है । परंतु अमूर्त्तरस चेतन है

अमूर्त्तकाबी तुल्यहीं न्यायकरि विभाग युक्त है
 औ अर्द्धमरण नहीं ॥ ॥ ननु ^{६०४} मूर्त्तरसविषैबी
 मंडलका अधिपति चेतन विवक्षित होवैहै? ऐसैं
 जो तूं ^{६०५} प्रतिवादी कहै । तो यह तेरेकरि अति
 अल्प कहियेहै । काहेतैं सर्व ठिकानेतो मूर्त्त
 अरु अमूर्त्तकूं ब्रह्मरूपकरि विवक्षित होनेतैं ॥ ॥
^{६०६} ननु पुरुषशब्द । अचेतनविषै ^{६०७} अघटित है? इस
 प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं:—का-
 हेतैं पक्ष अरु पुच्छआदिककरि विशिष्टहीं लिं-

औ मूर्त्तरस तो अचेतन है । इस रीतिका विभाग युक्त
 नहीं है । काहेतैं अर्द्धजरतीय (अर्द्धमरण)कूं अप्रामाणिक
 होनेतैं । ऐसैं कहैहैं ॥

६०४ अर्द्धवैशस (अर्द्धमरण)कूं परिहार करनेकूं प्रति-
 वादी । शंका करै है ॥

६०५ अमूर्त्तरसकी न्यांई मूर्त्त शब्दकरिबी मंडलभावकूं
 प्राप्त भये ब्रह्मचेतनकाहीं ग्रहण है? इस पक्षकूं सिद्धांती ।
 दूषण देतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मंडलकूं चेतनकी का-
 र्यताकरि चेतनताके हुये सर्वकूं ता (चेतन)की कार्यता-
 करि तन्मात्र होनेतैं दोनूं रसनकूं चेतनता होवैगी । यातैं
 विशेषणकी व्यर्थता होवैगी ॥

६०६ ननु मंडलके आधारकी चेतनता पुरुषशब्दके वशतैं
 माननेकूं योग्य है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६०७ अब सिद्धांती । अनुपपत्तिकूं परिहार करैहैं ॥

अथाध्यात्ममिदमेव मूर्त्तं यदन्य-
अर्थः—अब अध्यात्म [कहिये] हैः—

गकूं पुरुषशब्दके देखनेतैं ॥ ^{६०८} ऐसैं प्रविभक्त हुये प्र-
जाकूं उपजावनेकूं हम समर्थ नहीं होतेहैं ऐसैं
आलोचन करिके इन सप्तपुरुषनकूं एकपुरुष
करतेहैं ॥ “वे इन सप्तपुरुषनकूं एकपुरुष क-
रते भये” इत्यादिकविषै औ अन्नरसमयादिक
श्रुत्यंतरविषै पुरुषशब्दके प्रयोगतैं ॥ यँह अ-
धिदैवत है ॥ ऐसैं कहा जो उपसंहार । सो
अध्यात्म—विभागके कथन अर्थ है ॥ ३ ॥

टीकाः—अब अध्यात्मरूप मूर्त्त अरु अमू-

६०८ ताहीकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—
विभक्त हुये हम व्यवहारकूं उपजावनेकूं समर्थ नहीं होवैहैं ।
ऐसैं आलोचनकरिके त्वक् चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राण वाक् अरु
मनरूप इन सप्तपुरुषनकूं एकपुरुषरूप संघातमय लिंगकूं
करैं । ऐसैं निश्चयकरिके । ये प्राण । उक्त सप्तपुरुषनकूं लि-
गात्मारूप एकपुरुषकूं करते भये ॥ इहां आदिशब्दकरि
लौकिक दर्शनकाबी ग्रहण करियेहै औ श्रुत्यंतरविषै कहिये
तैत्तिरीय श्रुतिविषै पुरुषशब्दका प्रयोगः—“सो प्रसिद्ध यह
पुरुष अन्नरसमय है ” इत्यादि रूप है ॥

६०९ परकीय व्याख्यानकूं निषेध करिके । प्रकृत श्रुतिके
व्याख्यानकूं अनुवर्तन करै हैं ॥

प्राणाच्च यश्चाऽयमन्तरात्मन्नाकाश ए-
तन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्सत्तस्यैतस्य मू-
यहहीं मूर्त है । जो प्राणतैं अन्य है औ
जो यह अंतरात्माविषै आकाश है । यह
मर्त्य है । यह स्थित है । यह सत् है ॥

र्तका विभाग कहियेहै ॥ क्या सो मूर्त है? यह-
हीं है ॥ क्या यह है? जो प्राणतैं औ वायुतैं अ-
न्यहै औ जो यह अंतरात्माके भीतर आकाश
है औ जो शरीरविषै स्थित प्राण है । इन दो-
नूंकूं वर्जना करिके जो अन्य शरीरका आरंभ-
क भूतत्रयहै । यह मर्त्य है । इत्यादि अन्य पूर्व
करि समान है ॥ इस सत्का हीं यह रस है ।
जो चक्षु है । ऐसैं आँध्यात्मिक शरीरारंभक
कार्यका यह रस (सार) है । जातैं तिस सार-
करि सारवाला यह समस्त शरीर है ॥ जैसेँ अ-
धिदैवत आदित्यमंडलकरि औ प्रथमताकरि

६१० चक्षुके रसभावकूं प्रतिज्ञापूर्वक प्रकट करैहैं ॥

६११ चक्षुकी सारताविषै शरीरके अवयवनविषै प्रथम-
तारूप अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

र्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैत-
स्य सत एष रसो यच्चक्षुः सतो ह्येष
रसः ॥ ४ ॥

तिस इस मूर्त्तका । इस मर्त्यका । इस
स्थितका । इस सत्का । यह रस है । जो च-
क्षु है । जातैं सत्का यह रस है ॥ ४ ॥

है । [ऐसैं] ^{६१२} दो चक्षुहीं प्रथम संभवते हैं ॥ ऐसैं
^{६१३} तेजोमय अग्निरूप रस निवर्त्त होताभया । इस
लिंगतैं तैजसहीं चक्षुहै । ईसैं सारवाला आ-

६१२ तिसविषै प्रमाणकूं कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
जायमान जंतुके दो चक्षुहीं प्रथम (प्रधान) उपजते हैं ।
वारंवारहीं सेचनकीये रेतके दो चक्षुहीं प्रथम उपजते हैं ।
यह ब्राह्मण है ॥

६१३ चक्षुकी सारताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां:—
शरीरमात्रका अविशेषकरि निष्पादक अरु तहां (शरीरविषै)
सर्वत्र सन्निहित हुयाबी तेज विशेषकरि चक्षुविषै स्थित है ।
काहेतैं “ आदित्य चक्षुरूप होयके अक्षिनविषै प्रवेश करता-
भया ” इस श्रुतितैं । यातैं तेजःशब्दके पर्यायरूप रसश-
ब्दकी चक्षुविषै प्रवृत्ति अविरोद्ध है । यह भाव है ॥

६१४ या (कहनेके हेतु) तैबी तेजःशब्दका पर्याय रस-
शब्द चक्षुविषै संभवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

६१५ प्रतिज्ञारूप अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

अथामूर्त्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरा-
त्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं । त-

अर्थः—अब अमूर्त्त [कहिये] हैः—प्राण
है औ जो यह अंतरात्माविषै आकाश है ॥
यह अमृत है । यह यत् (अस्थित) है ।

ध्यात्मिक भूतत्रय है । जातैं सत्काहीं यह रस
है । ऐसैं मूर्त्तभावकी सारताविषै हेतुका अर्थ
है ॥ ४ ॥

टीकाः—अब अमूर्त्त कहियेहैः—जो परिशे-
षित भूतद्वयहै । औ प्राणहै औ जो यह अं-
तरात्माविषै आकाशहै यह अमूर्त्त है ॥ अन्य
पूर्वकीन्यांई है ॥ इस त्यत्का यह रस (सार)
है । जो यह दक्षिण अक्षिविषै पुरुषहै ॥ इहां

६१६ हेतुकूं अवतार देके ताके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहांः—
चक्षुकूं मूर्त्तरूप होनेतैं मूर्त्तरूप तीनभूतनका कार्यपना युक्त
है औ साधर्म्यतैं अरु देहके अवयवनविषै प्रधान होनेतैं ता
(चक्षु)की आध्यात्मिक भूतत्रयके सारताकी सिद्धि है ।
यह अर्थ है ॥

६१७ ननु विशेष उक्ति कहांतैं है ? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—शास्त्रकूं वा तिस

स्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत
एतस्य त्यस्यैष रसो योऽयं दक्षिणेऽक्षन्
पुरुषस्त्यस्य ह्येष रसः ॥ ५ ॥

यह त्यत् है ॥ तिस इस अमूर्त्तका । इस
अमृतका । इस यत्का । इस त्यत्का ।
यह रस है । जो यह दक्षिण अक्षिविषै
पुरुष है । जातैं त्यत्का यह रस है ॥ ५ ॥

“ दक्षिण अक्षिविषै ” ऐसा विशेषग्रहण शास्त्र-
करि प्रत्यक्ष होनेतैं है ॥ जातैं लिंगकी दक्षिण
अक्षिविषै जो विशेषकरि अधिष्ठानताहै । सो
शास्त्रकूं प्रत्यक्षहै । काहेतैं सर्व श्रुतिनविषै तैसैं
प्रयोगके देखनेतैं । त्यत्काहीं यह रस है । यह
पूर्वकीन्यांई जानिलेना ॥ विशेषकरि अग्रहणतैं
अमूर्त्तभावकी सारताविषै हेतुका अर्थ होहू ॥ ५ ॥

(शास्त्र) करि दक्षिण अक्षिविषै विशेष (विलक्षणता) कूं
प्रत्यक्ष होनेतैं ॥

६१८ द्वितीय व्याख्यानकूं आश्रय करिके । हेतुके अर्थकूं
स्पष्ट करै हैं ॥

६१९ हेतुकूं अनुवादकरिके ताके अर्थकूं कथन करै हैं ॥
इहां यह अर्थ है:—जैसैं पूर्व चक्षुविषै मूर्त्तआदिकके चतुष्ट-
यकी दृष्टिकरि तिस प्रकारके भूतत्रयकी सारता कही । तैसैं

तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं । यथा
माहारजनं वासो यथा पाण्ड्याविकं । य-

अर्थः—तिसीहीं इस पुरुषका रूप है ।
जसैं माहारजन (हरिद्राकरि रक्त) वस्त्र
है । जैसैं श्वेतआविक (ऊर्णादि वस्त्र) है ।

टीकाः—ब्रह्मके उपाधिभूत मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूप
सत्यशब्दके वाच्य अध्यात्म अरु अधिदैवतका
कार्य अरु करणके विभागकरि विभाग व्याख्यान
किया ॥ अब तिस इस पुरुषरूप करणात्मक
लिंगके रूपकूं कहतेहैं । सो कैसा है किः—वासना-
मय मूर्त्त अमूर्त्तकी वासनाकरि अरु विज्ञानमयके

इहांबी लिंगात्माविषै अमूर्त्तता आदिक चतुष्टयके विशेषकरि
अग्रहणतैं अमूर्त्तता आदिकके साथि साधर्म्यतैं तिस प्रकारके
भूतद्वयकी सारता है औ ताकूं शरीरविषै प्रधान होनेतैं ताके
सारताकी सिद्धि है ॥

६२० “ तिसहीं ” इत्यादि वृत्तांतके कथनपूर्वक संब-
धकूं कहैहैं ॥ इहां विभाग नाम विशेष है । तिस अधिदैव-
रूप प्रकृत इस अध्यात्मके सन्निहित अमूर्त्त रसभूत अंतः-
करणकूंहीं रागादि वासना है । पेसैं कहनेकूं “तिसीहींका ”
इत्यादिरूप वाक्य है ॥

६२१ यह रूप लिंगकूं कैसें प्राप्त भया है ? यह शंका

थेन्द्रगोपो यथाऽग्र्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं ।
 यथा सकृद्विद्युत्तं सकृद्विद्युत्तेव ह वा
 जैसें इंद्रगोप(वर्षाकालमें उत्पन्न रक्त लघुजं-
 तुविशेष) है । जैसें अग्निकी ज्वाला है । जैसें
 पुंडरीक (शुक्लकमल) है । जैसें सकृद्विद्युत्त
 (बीजलीका चमत्कार) है ॥ सकृद्वि-
 संयोगकरि जनित (बुद्धिरूप) । पट अरु भित्ति-
 विषै चित्रकीन्यांई । विचित्र । माया इंद्रजाल अरु
 मृगतृष्णिकाकी उपमावाला औ सर्व व्यामो-
 हका आस्पद है । जेहां एतावत् मात्रहीं आत्मा
 भयी । यातें सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मूर्त्त अमूर्त्तकी
 वासनाकरि औ विज्ञानमयके संयोगकरि जनित बुद्धिका
 रूप है ॥

६२२ ननु यह आत्माका रूप नहीं है । काहेतें एक-
 रस ता (आत्मा) कूं अनेकरूपताके असंभवतें ? यह शंका-
 भयी । यातें ता वासनामय रूपकूं विशेषण देते हैं ॥

६२३ ताके वास्तवताकी शंकाकूं निवारण करैहैं ॥ इहां
 विचित्रताकूं अनुसरिके अनेक उदाहरण हैं ॥

६२४ अंतःकरणकूंहीं जव रागादि वासना होवै । तव पुरुष
 -तन्मय कैसें देखियेहै ? तहां कहैहैं ॥

६२५ ताहीकूं व्याख्यान करते हुये क्षणिकविज्ञानवादी-
 नकी भ्रांतिकूं कहैहैं ॥ इहां:—बुद्धिमात्रहीं अहंवृत्तिकरि

अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति । न ह्येतस्मादिति नेत्यद्युत्तकीन्यां ईर्हीं याकी श्री (स्याति) होवैहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ अनंतर यातैं नेति नेति ऐसा आदेश (ब्रह्मका निर्देश)

है । ऐसैं विज्ञानवादीरूप वैनाशिक । भ्रांत होते हैं औ वासनारूप इसीहींकूं पटके रूपकी न्यां ई आत्मारूप द्रव्यका गुणहै । ऐसैं नैयायिक औ वैशेषिक प्राप्त भयेहैं ॥ यह आत्माके अर्थ है । पुरुषार्थरूप हेतुकरि ॥ औ त्रिगुण स्वतंत्र

विशिष्ट । स्वरसकरि भंगुर । रागादि मलकरि कलुषित हुया आत्मा है । अन्य स्थायी वा क्षणिक नहीं । ऐसैं जिसविषे वे (क्षणिकविज्ञानवादी) भ्रांत हैं । ताके रूपकूं हम कहतेहैं । ऐसैं संबंध है ॥

६२६ तार्किकोंकीबी बौद्धनकीन्यां ई भ्रांतिकूं उद्भव करे हैं ॥ इहां:—अंतःकरणहीं अहंबुद्धिकरि ग्राह्य अरु रागादि धर्मवाला हुया आत्मा है । ताका वासनामय रूप पटके शुक्लभावकीन्यां ई गुण है औ सो संसार है । ऐसैं जहां (जिस अंतःकरणविषे) तार्किक भ्रांतहैं । ताके रूपकूं हम कहते हैं । यह पूर्ववत् (संबंध) है ॥

६२७ अब सांख्यवादीनकी भ्रांतिकूं कहैहैं ॥

६२८ किस प्रकारकरि अंतःकरण आत्माके अर्थ अंगीकार करिये है ? तहां कहैहैं ॥

न्यत्परमस्त्यथ नामधेयं सत्यस्य स-
त्यमिति । प्राणा वै सत्यं तेषामेष स-
त्यम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य
तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

है ॥ जातैं ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं इसतैं अन्य
पर (श्रेष्ठ) [निर्देश] नहीं है । यातैं
सत्यका सत्य है ऐसा नामधेय है । प्रा-
णहीं सत्य हैं तिनका यह सत्य है ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र भाषा-
दीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं-मूर्त्तामूर्त्त-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

^{६२९}प्रधानरूप आश्रयवाला प्रवृत्त होवैहै । ऐसैं सांख्य-

६२९ याकूं त्रिगुणता आदिक कैसे सिद्ध होवैहै ? तहां
कहैहैं ॥ इहां:—अंतःकरणहीं आत्मा नहीं किंतु तिसतैं
अन्य सर्वगत सर्व विक्रियाकरि शून्य स्वप्रकाश आत्मा है ।
ताके भोग मोक्षकी अनुसारिताकरि प्रधानात्मक अंतःकरण
है । सो सधर्मक हुया प्रवर्त्तक होवैहै । ऐसैं जिसविपै क-
पिलके अनुसारी भ्रमते हैं । ताके रूपकूं हम कहते हैं ।
ऐसैं संबंध है ॥

वादी कहते हैं औ उ३पनिषद्के सिद्धांतकूं मान-
नेवालेबी केईक प्रक्रियाकूं रचते हैं:—मूर्त्त अमूर्त्त
र्त्तका राशि एक है । पर३मात्मा३ राशि उत्तम
है । तिन३ दोनूतैं अन्य यह मध्यम प्रसिद्ध तृ-
तीय । कर्त्ता भोक्तारूप अजातशत्रुकरि प्रति-
बोधित विज्ञानमयके साथि विद्या कर्म अरु पूर्व
ग्ला३ समुदायके प्रयोक्ता३ (उत्पादक) कर्मका
राशि है औ प्रयोज्य पूर्वोक्त मूर्त्त अमूर्त्त भूत-

६३० जहां (जिस अंतःकरणविषै) विद्वानोंकूं विचित्र
भ्रांति है । सो अंतःकरण “ ताहीके ” इस वाक्यविषै क-
हिये है । आत्मा नहीं । इस स्वपक्षकूं कहिके । अब भर्तृ-
प्रपंचके पक्षकूं उठावते हैं ॥

६३१ किस प्रकारकी प्रक्रिया है ? ऐसैं कहेहुये । तीन
राशिकी कल्पनाकूं कहते हुये आदिविषै अधम राशिकूं
दिखावै हैं ॥

६३२ उत्कृष्ट राशिकूं कहै हैं ॥

६३३ अन्यराशि (मध्यमराशि) कूं कहै हैं ॥

६३४ वे ये तीन वस्तु । मूर्त्त अमूर्त्तके अरु माहारजन
(हरिद्राकरि रक्तवस्त्रकी न्याईं) आदिकरूप आत्मतत्व है ।
इस परोक्तिकूं आश्रयकरिके । तीन राशिकी कल्पनाकूं क-
हिके । अब मध्यम अरु अधम राशिनके मध्य विशेषकूं क-
है हैं ॥ इहां उत्पादकका नाम प्रयोक्ता है औ कर्मका जो
ग्रहण है सो विद्या अरु प्रज्ञाका उपलक्षण है ॥

नका राशि औ साधन है । इति ॥ औ तहां (राशित्रयके कल्पित हुये) तार्किकोंके साथि संधिकूं करतेहैं:—औ लिंग^{६३५}का आश्रय यह कर्म राशि है । ऐसैं कहिके फेर तिस (उक्ति) करि सांख्यभावके भयतैं भयकूं पावते हुये वैशेषिकके चित्तकूंबी अनुसरतेहैं:—सर्व कर्म^{६३६}राशि पुष्पके आश्रय जो गंध है । सो पुष्पतैं वियोगके हुयेबी पुट (पुडीया) अरु तैलके आश्रय जैसें होवैहै ॥ तैसें लिंगतैं वियोगके हुयेबी परमात्मा-

६३५ साधन जो ज्ञान अरु कर्मका कारणरूप कार्य अरु कारणका समुदाय है । सोबी प्रयोज्य (कार्यविधै योजना करनेकूं योग्य) है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां इतिशब्द जो है सो तीनराशिनके कल्पनाकी समाप्ति अर्थ है ॥

६३६ परकीय अन्य कल्पनाकूं कहैहैं ॥ इहां “तहां” कहिये तीन राशिनके कल्पित हुये ॥

६३७ संधिके करनेकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥ सांख्यके भयतैं डरते हुये वैशेषिकनके चित्त (कल्पनारूप विचार) कूं अनुसरते हैं । ऐसैं संबंध है ॥

६३८ तिनके चित्तका अनुसरण कैसें है ? ताकूं उपादन करै हैं ॥

६३९ निर्गुण आत्माकूं कर्मराशि कैसें आश्रय करै है ? यह आशंकाकरिके । कहैहैं ॥ इहां:—अन्यतैं । इस पदका कार्यकरणात्मक भूतराशितैं । यह अर्थ है ॥

के एक देशकूं आश्रय करैहै ॥ सो परमात्माका एक देश । प्रसिद्ध अन्यतै (कार्य करणात्मक भूतराशितै) प्राप्त गुणरूप कर्मकरि सगुण होवैहै ॥ निर्गुण हुँयावी कर्त्ता भोक्ता विज्ञानात्मा । बंधनकूं पावताहै औ मुक्त होवैहै । ऐसैं वैशेषिकके चित्तकूंबी अनुसरतेहैं ॥ औ सो कर्मराशि । भूतराशितै आगंतुक हुया स्वतः निर्गुणहीं हैं । परमात्माका एक देश होनेतैं ॥ ॥ स्वतः उ-

६४० जब भूतराशिविषै स्थित कर्म आदिक तिसद्वारा आत्माविषै आवताहै । तब सो (आत्मा) कर्त्ताभाव आदिक संसारकूं अनुभव करै है । ऐसैं कहैहैं ॥

६४१ ननु स्वतः (स्वरूपकरि) ताकूं कर्म आदिकके साथि संबंधवान् होनेकरि संसारीपना होवैहै ? इसप्रकार जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां निर्गुणहीं विज्ञानात्मा है । यह शेष है ॥

६४२ सांख्यनके चित्तके अनुसारअर्थहीं परवादीनकी अन्य प्रक्रियाकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—स्वाभाविकीबी अविद्या परमात्मातैंहीं अभिव्यक्त (आविर्भूत) हुयी ताके एकदेशके प्रति विकारकूं पायके तिसीहीं अंतःकरण नामक एकदेशविषै स्थित होवै है । ऐसैं कहते हुये अनात्माका धर्म अविद्या है । ऐसैं कद्विके सांख्योंके चित्तकूंबी अनुसरते हैं ॥

ध्याय । २] तृतीय-मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ ९७१

त्पन्न भयी अविद्या अनागतुक हुयीबी ऊपरकी
न्याई अनात्माका धर्म है । ऐसी इस कल्पना-
करि सांख्योंके चित्तकूं अनुसरिके वर्त्ततेहैं ॥

^{६४४} सर्व यह तार्किकोंके साथि समंजसभावकी क-
ल्पनाकरि रमणीय देखतेहैं । ^{६४५} उपनिषद्के सि-
द्धांतकूं औ औ सर्व न्यायके विरोधकूं नहीं दे-
खतेहैं ॥ ॥ ^{६४६} कैसेंकि ? ^{६४७} तैहां प्रथम परमात्माकी

६४३ ननु अविद्या जब परमात्मातैं उपजी है । तब परमा-
त्माकूंहीं आश्रय करैगी । ताके एकदेशकूं नहीं ? यह आशंका
करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसें पृथिवीतैं उपज्याबी
ऊपरदेश ताके एकदेशकूं आश्रय करै हैं । ऐसें अविद्या परमा-
त्मातैं उपजी हुयीबी ताके एकदेशकूं आश्रय करैहै ॥

६४४ अब सिद्धांती तिस इस (भर्तृप्रपंचके पक्ष) कूंहीं
दूषण देनेकूं उपक्रम करैहैं ॥ इहां:—तार्किकोंके साथि
संघिकरण आदिक इस सर्वकूं आश्रय करिके समंजसताकरि
पूर्व उक्त कल्पनाओंकी आपातकरि रमणीयताकूं अनुभव
करै हैं । यह अर्थ है ॥

६४५ उक्त कल्पनाओंकी श्रुति अरु न्यायकी अनुसारि-
ताके अभावतैं त्याज्यताकूं सूचन करै हैं ॥ इहां दो कर्म जो
हैं सो प्रत्येक क्रियापदके साथि संबंधकूं पावते हैं औ नकार-
का दोनूंविषै अन्वय है ॥

६४६ ननु उक्त प्रकारकी कल्पनाओंकूं आपातरमणी-
यताकरि श्रुति अरु न्यायतैं बाह्यपना कैसें है ? इसप्रकार
प्रतिवादी पूछता है ॥

६४७ पूर्व कहाथा जो:—परमात्माका एक देश विज्ञा-

सावयवताविषै संसारत्व सव्रणत्व कर्मफल देश-
संसरणकी अनुपपत्ति (असंभव) आदिक (श्रुति
स्मृतिके विरोधरूप) दोष । पूर्व उक्तहीं हैं औ
निर्त्य भेदके हुये विज्ञानात्माकी परमात्माके सा-
थि एकताका असंभव होवैगा ॥ ॥ नैनु लिंग-
गहीं है ? ऐसैं जो कहै । तो परमात्माके उप-
चरित (कल्पित) देशभावकरि कल्पित हो-
वैगा । घट करक भूछिद्रके आकाशआदिककी
न्यांई ॥ तैसैं लिंगतैं वियोगके हुयेबी परमात्मा-

नात्मा है । ऐसैं । तहां तिस (परमात्मा) का एक देशपना
वास्तव है वा अवास्तव है । प्रथमपक्षविषै सो (एक देश)
परमात्मातैं अभिन्न है वा भिन्न है ? ऐसैं विकल्प करिके । आ-
द्यपक्षके प्रति दूषण देते हैं ॥ इहां आदिशब्दकरि श्रुति स्मृ-
तिका विरोध ग्रहण करिये है ॥

६४८ द्वितीय विकल्पके प्रति कहैहैं ॥ इहां:—भेद अरु
अभेदकी विरुद्ध होनेतैं अनुपपत्ति है । सो चकारका अर्थ है ॥

६४९ लिंग उपाधिवाला आत्मा परमात्माका अंश है ?
इसप्रकारका विकल्पांतर शंका करिये है ॥

६५० लिंग उपाधिकरि कल्पित जो परमात्माका अंश ।
सो जीवात्मा है । ऐसैं कहे हुये । सुषुप्ति आदिकविषै लिंगके
ध्वंस हुये वासना अनात्माविषै होवैगी । काहेतैं लिंगके अ-
भाव हुये ताके आधीन जीवके अभावतैं औ तिसतैं ताके
वियोगके हुयेबी लिंगविषै स्थितवासना जीवविषै स्थित हो-
वैहै । यह प्रक्रिया अघटित है । ऐसैं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

ध्याय । २] तृतीय-मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ ९७३

रूप देशका आश्रयण (आश्रय करना) होवैगा ॥
औ वारणास्य अविद्याका स्वतः (परमात्मातैं)
उत्थान होवैहै । ऊपरकी न्यांई । इत्यादि कल्प-
ना अघटितहीं है ॥ औ वास्य (वासना करने
योग्य) देशसैं व्यतिरेककरि वासनाका अन्य
वस्तुविषै संचरण मनसैंबी कल्पना करनेकूं श-

६५१ औ जो परमात्मातैं अविद्याका उत्थान होवैहै । ऐसैं
कहा । ताकूं निराकरण करैहैं ॥ इहां आदिपदकरि अविद्याकी
अनात्मधर्मता ग्रहण करियेहै ॥ इहां यह भाव है:—परमात्मातैं
अविद्याकी उत्पत्तिके हुये तिसी (परमात्मा)हींकूं संसार हो-
वैगा । काहेतैं तिन (अविद्या अरु संसार दोनूं)कूं एक अ-
धिकरणवाले होनेतैं औ यातैं अविद्याके होते मुक्ति नहीं हो-
वैगी औ तिस (अविद्या)के नष्ट हुये ता (अविद्या)की सि-
द्धिके कारण (परमात्मा)के स्थित हुये कार्यके अत्यंतनाश
(बाध)के अयोगतैं । कार्यरूप अविद्याके नाश हुये ताके कारण-
का पराभव नहीं है । तिसप्रकार हुये मोक्ष होनेवालेके अ-
भावतैं मोक्षकी असिद्धि होवैगी औ अविद्या जो है सो अना-
त्माका धर्म नहीं है । काहेतैं विद्याकूंबी तद्धर्मता (अनात्म-
धर्मता)के प्रसंगतैं । तिन (विद्या अविद्या दोनूं)कूं एक
आश्रयवाली होनेतैं ॥

६५२ औ जो लिंगके निवर्त्त हुये तद्रतवासना आत्मा-
विषै रहै है । ऐसैं जो कहा था । तहां कहैहै ॥ इहां पुटका-
दिकविषै तो पुष्प आदिकनके अवयवनकीहीं अनुवृत्ति है ।
यह भाव है ॥

क्य नहीं है ॥ औ ^{६५३} “काम संकल्प विचिन्-
त्सा । हृदयविषैहीं रूपोंकूं । ध्यान करते हुयेकी
न्यांई लीला करते हुयेकीन्यांई । जे याके हृ-
दयविषै आश्रित काम हैं । तब हृदयगत स-
र्व शोकोंकूं तिरगया होवैहै ” इत्यादिक श्रु-
तियां । इस अर्थविषै गमन नहीं करैहैं औ ईर्ने
श्रुतिनके श्रुतअर्थतैं अन्यअर्थकी कल्पन युक्त
नहीं है । काहेतैं इन श्रुतिनकूं आत्माके परब्र-
ह्मभावके उपपादनरूप अर्थके परायण होनेतैं
^{६५५} औ सर्व उपनिषदनके एतावन्मात्र अर्थविषै

६५३ यातैंबी वासनाकूं जीवकी आश्रयता असंगत है ।
ऐसैं कहैहैं ॥

६५४ ननु जीवरूप समवायिकारणविषै मनके संश्लेषण
असमवायिकारणतैं काम आदिकनकी उत्पत्ति होवैहै । ऐसैं
उदाहरणकरी श्रुतिनविषै विवक्षित होवै है ? तहां कहैहैं ॥
इहां यह अर्थ है:—दृश्यमान संसारकूं औपाधिक कहिके ।
जीवके ब्रह्मभावके उपपादनविषै श्रुतिनका तात्पर्यहै । सो
उपक्रम अरु उपसंहारकी एकरूपता आदिक षट् लिंगनतैं
जानियेहै । तातैं अर्थांतरकी कल्पना बनै नहीं ॥

६५५ यातैंबी उक्त प्रकारकी श्रुतिनके अर्थांतरकी कल्पना
बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्व उपनि-
षदनका एकरस अर्थविषै पर्यवसान । फलवान्ता आदिक

उपक्षय (ऋतार्थता)के होनेतैं ॥ ताँतैं श्रुतिअर्थ-
की कल्पनाविषै अकुशल सर्वहीं । उपनिषदनके
अर्थकूं अन्यथा करतेहैं ॥ तँथापि जब वेदार्थ
होवै तब यथाइच्छा होहू । यामैं मेरा द्वेष नहीं
है औ दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं ऐसैं तीन राशिकी
प्राप्तितैं समंजस नहीं है ॥ जब तो मूर्त्त अमूर्त्त
औ तज्जनित वासना [मिलिके] मूर्त्त अमूर्त्त
दो रूप हैं औ ब्रह्म तृतीय रूपि है औ अन्य च-
तुर्थ अंतराल (मध्य)विषै नहीं होवै । तब
लिंगनतैं जानिये है । तातैं उक्त श्रुतिनके अर्थांतरकी कल्पना
कैसैं होवै ॥

६५६ ननु उपनिषदनके एकतातैं प्रतिपाद्य अर्थांतरकूंबी
व्याख्यानके कर्त्ता वर्णन करै हैं । तातैं अर्थांतरकी कल्पनाका
असंभव कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां सर्व उपनिषदनका
एकतापरताका प्रतिभास । तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है ॥

६५७ ननु अन्यवादीओंकारि कथनकीयाबी वेदार्थ हो-
वैहीं है । यह क्या द्वेषतैंहीं त्याग करियेहै ? तहां कहैहैं ॥
इहां यह भाव हैः—अर्थांतरकूं वेदार्थता नहीं है । काहेतैं
तहां तात्पर्यविषै लिंग (उपक्रमादिक)के अभावतैं ॥

६५८ लिंग (लिंगशरीर)के वियोगके हुयेबी पुरुषविषै
वासना रहती हैं । इस पक्षकूं निराकरण करिके । अब तीन
राशिकी कल्पनाकूं निराकरण करै हैं ॥

६५९ ननु सिद्धांतविषैबी वाच शब्द आदिककी समंजसता
कैसैं होवै है ? तहां कहैहैं ॥

“दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं । यह अवधारण अनु-
कूल होवै ॥ अन्न्यथा ब्रह्मके एकदेशरूप विज्ञा-
नात्माके दो रूप हैं । ऐसैं कल्पना करनेयोग्य
है । वा परमात्माके विज्ञानात्मारूप द्वाराद्वारि दो
रूप हैं । औ तब दो रूप नहीं । ऐसा द्वि-
वचन असमंजस होवैगा ॥ “रूपाणि” (रूप) ।
ऐसैं वासनाओंकरि सहित बहुवचन युक्ततर
होवैगा ॥ औ दो मूर्त्त अरु अमूर्त्त है औ वा-
सना तृतीय है इति ॥ ॥ अँव मूर्त्त अरु अमू-
र्त्तहीं दो परमात्माके रूप हैं औ वासना विज्ञा-
नात्मा (जीवात्मा)का रूप है ? इसप्रकार
जो कहै । सो बनै नहीं:—काहेतैं तँव विज्ञा-

६६० तीन राशिके पक्षविषै जीवका रूपके मध्य अं-
तर्भावके हुये निषेध्य कोटिविषै निवेश होवैगा औ रूपीके
मध्य अंतर्भावके हुये । श्रुति । शिक्षा करनेकूं योग्य है ? यह
शंका भयी । तहां कहैहैं ॥

६६१ ऐसैं श्रुतिकी शिक्षा होइ ? तहां कहैहैं ॥ इहां तदा
(तब) शब्दका रूपीके मध्य जीवके अंतर्भावकी कल्पनाके
हुये । यह अर्थ है ॥

६६२ विषय भेदकरि उपक्रमके विरोधकूं प्रतिवादी शंका
करै है ॥

६६३ इसरीतिसैं व्यवस्थाके हुये जीवद्वारा विक्रियमाण
परमात्माके मूर्त्त अमूर्त्त दोरूप हैं । यह उक्ति अयुक्त हो-

नात्मारूप द्वारकरि विक्रियमाण परमात्मादुं
इसप्रकारकी यह वचनकी युक्ति व्यर्थ होवैगी ।
वासनाकेबी विज्ञानात्मारूप द्वारकूं अविशिष्ट
होनेतैं औ वस्तु जो है औ वस्तु अंतररूप द्वार-
करि विक्रियाकूं पावताहै । ऐसैं दुःख्यावृत्तिकरि
कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है औ विज्ञानात्मा
परमात्मातैं वस्तु अंतर नहीं है । ऐसैं कल्पना
किये हुये सिद्धांतके त्यागतैं ॥ तातैं वेदार्थविषै
मूढ पुरुषनकी स्वचित्तसैं प्रभाववाली इत्यादि

वैगी । काहेतैं वासना अरु कर्म आदिककेबी तिराद्वारा ताके
संबंधके अविशेषतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

६६४ विज्ञानात्माद्वारा परमात्माकी विक्रियमाणता (विका-
रिता)कूं अंगीकार करिके जो कहा । सोई नहीं है । ऐसैं
कहैहैं ॥ इहां तिसप्रकारके वस्तुकी औ अन्यथा (और) प्रकारके
वस्तुकी विक्रियाकूं दुःखकरि प्रतिपादन करनेकूं अयोग्य
होनेतैं । यह अर्थ है ॥

६६५ किंवाः—जीवकी ब्रह्मतैं वस्तुअंतरता आत्यंतिक
है । वा अनात्यंतिक है ? तिनमें आद्य पक्ष बनै नहीं । ऐसैं
कहैहैं ॥ इहां द्वितीय पक्ष बनै नहीं । काहेतैं भेदाभेदके
निरासतैं । ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

६६६ परपक्षके दूषणकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां इत्यादि
कल्पना कहिये तीनराशि औ जीवकूं कामादिककी आश्रयता
इत्यादिक ॥

कल्पना अक्षर बाह्य है । जाँतैं अक्षरोंतैं बाह्य वेदार्थ वा वेदार्थविषै उपकारी अर्थ नहीं होवै है । काहेतैं वेदकूं प्रामाण्यकेप्रति निरपेक्ष होनेतैं । ताँतैं तीन राशिकी कल्पना असमंजस है ॥ ॥ “^{६६७}जो यह दक्षिण अक्षिविषै पुरुष है” ऐसैं अध्यात्मविषै लिंगात्मा प्रस्तुत किया । औ अधिदैवविषै “जो यह इस मंडलविषै पुरुष है” ऐसैं ताके ऐसैं प्रकृतके उपादानतैं सोईहीं ग्रहण करियेहै । जो यह अमूर्त्तरूप त्यत्का रस है । परंतु विज्ञानमय नहीं ॥ ॥ ननु^{६६८} विज्ञानमयकेहीं ये रूप काहेतैं नहीं होवैहैं । काहेतैं विज्ञानमय जो है । याकूंबी प्रकृत होनेतैं । औ तिसका ।

६६७ अक्षरबाह्यताविषै फलितकूं कहैहैं ॥

६६८ वेदके अर्थविषै उपकारिताके अभावविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६६९ वेदार्थता आदिकके अभाव हुये सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

६७० “ तिसीहीं इस पुरुषका ” इस वाक्यविषै परकीय (मतांतरकी) प्रक्रियाकूं निषेध करिके । अब स्वमतविषै तत् शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

६७१ प्रकृत होनेतैं लिंगात्मकके ग्रहण हुये जीवकेबी पाणिपेष वाक्यविषै तिस भावतैं तिसी (जीव) हींका इहां तत् शब्दकरि ग्रहण होवैगा ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

ऐसैं प्रकृतके उपादान (ग्रहण)तैं ? ऐसैं कहना बनै नहीं:—काहेतैं विज्ञानमयकूं अरूपि होनेकरि विज्ञापन करनेकूं इष्ट होनेतैं । जब निश्चयकरि तिसीहीं विज्ञानमयके ये माहारजन (हरिद्राकरि रक्तवस्त्र)आदिक रूप होवैं । तब तिसीहींका “नेति नेति” इस अनाख्येयरूपताकरि आदेश नहीं होवैगा ॥ ॥ ननु अन्यकाहीं यह आदेश होवैगा । विज्ञानमयका तो नहीं ? इसप्रकार प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं:—काहेतैं षष्ठ (चतुर्थ)के अंतविषै उपसंहारतैं । “अरे (मैत्रेयि) ! विज्ञाताकूं किसकरि जानैं” ऐसैं विज्ञानमयकूं प्रस्तुत करिके “सो यह नेति नेति” ऐसैं तिसीहींका

६७२ प्रकृतपनैके हुयेबी ता (जीव)कूं निर्विशेष ब्रह्मरूपताकरि जनावनेकूं इष्ट होनेतैं वासनामय संसाररूप वास्तवतैं युक्त नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती । परिहार करैहैं ॥

६७३ यातैंबी जीवकी वासना निरूपित नहीं है किंतु चित्तकी है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां निषेध्य कोटिविषै प्रवेशतैं । यह भाव है ॥

६७४ यह जीवका आदेश नहीं है किंतु तटस्थ (जीवतैं भिन्न) ब्रह्मका है ? ऐसैं शंका करिके । ताकूं दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—षष्ठ (चतुर्थ)के अवसानविषै “अरे विज्ञाताकूं किसकरि जानैं” ऐसैं आत्माकूं उपक्रम करिके

आदेश है । तटस्थका नहीं औ “ विज्ञापन क-
रूंगा ” ऐसी प्रतिज्ञाकूं अर्थवान् होनेतैं ॥ औ
जब विज्ञानमयकूंहीं सम्यक् व्यवहार करनेके
अयोग्य अरु निषिद्ध सर्व उपाधिरूप विषयवाला
आत्मस्वरूप जनावनेकूं इष्ट होवै । तातैं (तब) यह
प्रतिज्ञा अर्थवती होवै । जिसकरि यह ज्ञापित
हुया आत्माकूंहीं “मैं ब्रह्म हूं” ऐसैं जानताहै अरु
शास्त्रनिष्ठाकूं प्राप्त होवैहै । किसीतैंबी भयकूं
पावता नहीं इति ॥ औ फेर अन्य विज्ञानमय
है अरु अन्य “नेति नेति” ऐसैं व्युपदेश करि-
येहै । तब “ अन्य यह ब्रह्म है । अन्य मैं हूं ”
ऐसैं विपर्यय ग्रहण किया होवैगा । आत्माकूंहीं
“ मैं ब्रह्म हूं ” ऐसैं नहीं जानैगा ॥ तातैं तिस

“सो यह नेति नेति आत्मा है” ऐसैं आत्मशब्दतैं तिसीहींका
आदेश है । तटस्थ ब्रह्मका नहीं ॥

६७५ यातैंबी प्रत्यगर्थकाहीं यह आदेश है । ऐसैं कहैहैं ॥

६७६ ताहीकूं समर्थन करै हैं ॥

६७७ इस प्रतिज्ञाकूं अर्थवान्पना कैसे है ? सो कहैहैं ॥

६७८ ज्ञानके फलकूं कथन करै हैं ॥

६७९ अन्वयद्वारा उक्त अर्थकूं व्यतिरेकद्वारा साधतेहैं ॥

६८० विपर्ययके ग्रहण किये हुये ब्रह्मकंडिकाके विरोधकूं
दिखावै हैं ॥

६८१ तत् शब्दकरि जीव ग्रहणके असंभव हुये फलितकूं
कहैहैं ॥

प्रसिद्ध इस लिंगपुरुषकेहीं ये रूप हैं ॥ औ सत्यके सत्यरूप कहनेयोग्य परमात्मस्वरूपविषै निरवशेष (निरपेक्ष) सत्य कहनेकूं योग्य है औ सत्यके विशेषरूप वासना हैं । तिनके ये रूप कहियेहैं इस लिंगस्वरूप पुरुषके ये रूप हैं ॥ कौनसे वे रूप हैं ? तहां कहियेहैं:—जैसें लोकविषै महारजन जो हरिद्रा । तिसकरि रक्त जो वस्त्र । सो माहारजन है । ऐसें चित्तका स्त्री-आदिक विषयनकेसाथि संयोगकेहुये तादृशवा-रंजनाकार उपजताहै ॥ जैसेंकरि यह पुरुष । वस्त्रादिककीन्यांई रक्त (रंगित) ऐसें कहियेहै । औ जैसें लोकविषै पांडुआविक(शुक्ल ऊर्णादिवस्त्र) होवैहै औ जैसें यह (ऊर्णवस्त्र) च्यारीओरतैं पांडुर होवैहै । तैसें अन्यवासनारूप

६८२ ननु लिंगके जब ये रूप हैं । तब क्यूं उपन्यास करिये हैं । परमात्मस्वरूपकूंहीं कहनेकूं योग्य होनेतैं ? यातैं कहैहैं ॥

६८३ इंद्रगोपके उपमानकरि कौसुंभ (कुसुंभके रंग) कूं गत (प्राप्त) होनेतैं महारजन कहिये हरिद्रा । ऐसें व्याख्यान किया । तहां लोकप्रसिद्धिकूं दिखावैहैं ॥ इहां “ऊर्णादि ” यह आदिपद जो है । सो कंबल आदिकके ग्रहण अर्थ है ॥

होवैहै ॥ औ जैसें लोकविषै इंद्रगोप (वर्षा-
कालमें होनेवाला जंतुविशेष) अत्यंत रक्त हो-
वैहै । ऐसें याका वासनारूप होवैहै ॥ कहींक
विषयविशेषकी अपेक्षाकरि औ कहींक पुरुषके
चित्तवृत्तिकी अपेक्षाकरि रागका तारतम्य (अ-
धिक न्यूनपना) होवैहै ॥ औ जैसें लोकविषै
अग्निकी ज्वाला भास्वर (प्रकाशमान) हो-
वैहै । तैसें कहींक किसीकी वारणाका रूप हो-
वैहै ॥ औ जैसें पुंडरीक (शुक्लकमल) होवैहै
ताकीन्यांईवी किसीकी वासनाका रूप होवैहै ॥
औ जैसें सकृत्विद्युत्त कहिये सकृत्विद्योतन
(बीजली) सर्वओरतें प्रकाशक होवैहै । ऐसें ज्ञान-
रूप प्रकाशके वृद्धिकी अपेक्षाकरि किसीकी वा-
सनाका रूप उपजताहै ॥ ईनका आदि अंत वा
मध्य । संख्या । देश काल वा निमित्तनहीं निश्चय क-

६८४ मनविषै वासनाकी विचित्रतामें क्या कारण है ?
यह शंका भयी । तहां सो कहैहैं ॥ इहां चित्तवृत्ति शब्दकरि
सत्त्व आदिक गुणोंका परिणाम विवक्षित है ॥

६८५ परिमित दृष्टान्तके कथनकरि वासनाओंकाबी
परिमितपना है । काहेतें दृष्टान्त अरु दार्ष्टान्तिककूं सम होनेतें ?
यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

ध्याय । २] तृतीय-मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ ९८३

रियेहै। त्रिसंख्येय ओंकूं असंख्येय होनेतैं औ वासनाके हेतुनकूं अनंत होनेतैं ॥ तिसंप्रकार आगे षष्ठ(४ अध्यायके ४ ब्राह्मण)विषै यह उपनिषद् कहैगी “इदंमय । अदोमय” इत्यादि ॥ तैंतैं जैसे मा-हारजन वस्त्रहै। इत्यादिक दृष्टांत । स्वरूप संख्याके निश्चयअर्थ नहीं हैं किंतु प्रकारके दिखावने अर्थ हैं । ईस प्रकारकेहीं वासनाके रूप हैं ऐसैं ॥ ॥
औ जो अंतविषै स्रुत्विद्योतनकीन्याई । ऐसैं वासनाका रूप कथन किया । सो अव्याकृततैं प्रादुर्भावकूं पावनेवाले हिरण्यगर्भकी । विद्युत्कीन्याई एकवारहीं वस्तुनके समुदायकी व्यक्ति होवैहै । याकी न्याई ताकी वासनाका रूप

६८६ तहां वाक्य शेषकूं कथन करै हैं ॥

६८७ वासनाओंकी अनंततातैं तिसके परिमितके प्रदर्शन-विषै परिमित दृष्टांतके ग्रहणके अतात्पर्यके हुये । कहां तात्पर्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

६८८ प्रकारके प्रदर्शनकूंहीं आकारकरि दिखावै हैं ॥

६८९ फलवती अंत्यवासना आदिककरि विशिष्ट सूत्रकी उपासनाकूं ताके उत्कर्षके कथनपूर्वक कथन करै हैं ॥ इहां सर्व वस्तुसमूहकी व्यक्ति होवैहै । यह शेष है ॥

६९० तदीय (तिसीका) ऐसैं कहा । याकी प्रगटताके कारणकूं कहैहैं ॥

है ॥ जैसे^{६९१} हिरण्यगर्भका है । ऐसैं तिस उक्त-
 प्रकारके वासनाके रूपवान्पनैकूं जो जानता-
 है । सकृतविद्युत्कीन्यांईहीं (ऐसैंहीं) या-
 की श्री (ख्याति) होवैहै । यह अर्थ है ॥ ॥
 ईसैं^{६९२} रीतिसैं निरवशेष सत्यके स्वरूपकूं कहिके ।
 जिस तिसकूं सत्यका सत्य हम कहतेभये । तिस-
 हीं ब्रह्मके स्वरूपके अवधारणार्थ यह आरंभ
 करियेहैः—अथ (सत्यस्वरूपके निर्देशके अनं-
 तर) जातैं जो सत्यका सत्य है । सोई अवशेष
 रहताहै । यातैं (तातैं) [सत्यके सत्य स्वरूपकूं
 हम निर्देशकरै हैंः—] आदेश कहिये ब्रह्मका निर्दे-
 श है ॥ ॥ कौन फेर यह निर्देश है ? तहां कहि-
 येहैः—नेति नेति (ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं) इस प्रकार
 रका निर्देशहै ॥ ॥ ननु^{६९४} इन “नेति । नेति” ऐसैं दो

६९१ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

६९२ वृत्तकूं अनुवाद करिके अनंतरके ग्रंथकूं अवतार देते
 हैं ॥ इहां तिसीहीं ब्रह्मका । ऐसैं संबंध है ॥

६९३ किसतैं अनंतर । ऐसैं कहे हुये ताकूं दिखावते हुये ।
 अपेक्षित अतः (यातैं) शब्दके ताई पूरण करते हुये व्या-
 ख्यान करै हैं ॥

६९४ उक्त प्रकारके आदेशके अभावविषै पर्यवसायी प-
 नैकूं मानता हुया प्रतिवादी । शंका करै है ॥

शब्दोंद्वारा कैसे सत्यका सत्य निर्देश करेगा वां-
छित है ? तैहों कहियेहैः—सर्व उपाधिरूप वि-
शेषनके निषेधकरि निर्देश करनेकूं इच्छित है ॥
जिसविषे विशेष नहीं है ॥ नाम वा रूप
वा कर्म वा भेद वा जाति वा गुण । तिसद्वारा-
हीं शब्दकी प्रवृत्ति होवैहै^{६९८} औ इनोके मध्यमेंसे
कोईबी विशेष (विलक्षणता) ब्रह्मविषे नहीं है ।
यातै [ब्रह्म] “ यह सो है ” ऐसै निर्देश कर-
नेकूं शक्य नहीं होवैहै^{६९९} ॥ गौ (बैल) यह च-

६९५ निरवधि (अवधिरहित) निषेधकी अस्तित्वता ताका
अवधि होनेकरि सत्यका सत्य ब्रह्म निर्देश करनेकूं इष्ट है ।
ऐसै सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

६९६ ब्रह्मके विधिमुखकरि निर्देशके संभव हुये सो (ब्रह्म)
निषेधमुखकरि क्युं निर्देश करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां
सो (ब्रह्म) विधिमुखकरि निर्देश करनेकूं अशक्य है । यह
शेष है ॥

६९७ नाम रूपादिकके अभाव हुयेबी ब्रह्मविषे शब्दकी
प्रवृत्तिकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

६९८ जाति आदिकके मध्य । अन्यतम (एक)के ब्रह्म-
विषेबी संभवतै तिसद्वारा तिसविषे शब्दकी प्रवृत्ति होवैगी ?
इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं । ऐसै कहैहैं ॥

६९९ उक्त अर्थकी विधर्मताकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥
इहां तैसै जाति आदिकके अभावतै ब्रह्मविषे शब्दकी प्रवृत्ति
नहीं है । यह शेष है ॥

लताहै । शुकु है । शृंगवाला है । यह जैसेँ लोकविषै निर्देश करियेहै । तैसेँ [जातिआदिकके अभावतैं ब्रह्मविषै शब्दकी प्रवृत्ति नहींहै] अँध्यारोपित नाम रूप ब्रह्म द्वारकरि ब्रह्म “ विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है । विज्ञान घनहीं ब्रह्मात्माहै ” इत्यादि शब्दोंकरि निर्देश करिये है ॥ जँब फेर निरस्त सर्व उपाधिरूप विशेषवाला स्वरूपहीं निर्देश करनेकूँ इच्छित होवैहै । तब किसीबी प्रकारकरि निर्देश करनेकूँ योग्य (शक्य) नहीं होवैहै । तँबे यहहीं अभ्युपाय

७०० ननु तब कहींक विधिमुखकरि ब्रह्म कैसेँ उपदेश करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“विज्ञान आनंद रूप ब्रह्म है” । इत्यादि वाक्यनविषै शबल (मायाविशिष्ट ब्रह्म)में गृहीत शक्तिवाले शब्दनकरि ब्रह्म लखियेहै (लक्षणासैं जानीये है) ॥

७०१ ननु लक्षणाकूँ उपेक्षा करिके साक्षात्हीं ब्रह्म कयूँ नहीं कहियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—निर्देश करनेकूँ कहिये लक्षणाकूँ छोडिके साक्षात्हीं कहनेकूँ । शक्य नहीं होवैहै । काहेतैं तहां (साक्षात् कथनविषै) शब्द प्रवृत्तिके निमित्त जाति आदिकनकूँ अवश्य उक्त होनेतैं ॥

७०२ विधिमुखकरि निर्देशके असंभव हुये फलितकूँ कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राप्त भया है निर्देश जिस विशेषका ताके प्रतिषेधरूप मुखकरि ॥

(प्रकार) है:—जोबी प्राप्त निर्देशके प्रतिषेधरूप द्वारकरि । अर्थ यह जो जिस विशेषका निर्देश प्राप्त होवै ताके प्रतिषेधद्वारा “नेति नेति” ऐसैं निर्देश है । औ यँह नकारोंका द्वय जो है सो वीप्साकरि व्याप्ति (सर्व विषयनके संग्रह) अर्थ है कहिये जो जो प्राप्त होवै सो सो निषेध करियेहै । तिसँ प्रकार हुये सत्यविषै निर्दिष्टकी जो ब्रह्मकी शंका है । सो परिहार करी होवै-है ॥ अँन्यथा जातैं नकारद्वयकरि प्रकृतद्वयके प्र-

७०३ ननु ऐसैं ब्रह्म । जब निर्देश करनेकूँ इच्छित है । तब एकहीं नकारकरि बहुत है । द्वितीय नकारनैं क्या किया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७०४ वीप्सा (दोवार कथन) करिके व्याप्ति जो सर्व विषयनका संग्रह । ताके अर्थ दो नकार हैं । ऐसैं कथन कीये अर्थकूँहीं स्पष्ट करै हैं ॥

७०५ विषयताकरि प्राप्त सर्वके निषेधकरि । ब्रह्म है । ऐसैं कहे हुये अविषय प्रत्यगात्मा ब्रह्म है । ऐसैं एकताविषै शास्त्रके पर्यवसानतैं आकांक्षारहित ब्रह्म श्रोताकूँ सिद्ध होवै है । ऐसैं कहैहैं ॥

७०६ इति शब्दकूँ प्रकृत अर्थका स्मारक होनेतैं प्रकृत मूर्त्त अमूर्त्त आदिकतैं ब्रह्मकी अन्यताविषै नकारका पर्यवसान क्यूँ नहीं अंगीकार करिये है ? तहां कहैहैं ॥

तिषेध हुये प्रकृत गतिषिद्धद्वयतैं जो अन्य । सो ब्रह्म होवैगा । सो निर्देश किया नहीं ॥ किस प्रकारका तो प्रसिद्ध है । इस प्रकारकी शंका निवृत्त नहीं होवैहै । तिसँ प्रकार हुये । सो निर्देश अनर्थक (व्यर्थ) होवैगा । पुरुषकी विविदिषा (जिज्ञासा)-का अनिवर्त्तक होनेतैं ॥ औ ब्रह्मकूं जनावूंगा । यह वाक्य । अपरिसमाप्तिके अर्थ होवैगा ॥ औ जब सर्व उपाधिनके निराकरणरूप द्वारकरि सर्व दिशा आदिककी जिज्ञासा निवृत्त करी होवै । तब सैधवघनकीन्यांई एकरस प्रज्ञानघन अनंतर अबाह्य सत्यका सत्य ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं सर्व ओरतैं जिज्ञासा निवृत्त होवैहै । आत्माविषैहीं अवस्थि-

७०७ आशंकाकी निवृत्तिके अभावविषै दोषकूं कहैहै ॥

७०८ औ अनर्थक (व्यर्थ) होवैगा । ऐसैं चकार (औ-कार) करि मिलित दोषांतरकूं कहैहै ॥

७०९ उक्त अर्थकूं अन्वयद्वारा समर्थन करैहै ॥ इहां ऐसैं योजना है:—सर्व उपाधिनके निषेधकरि तहां तहां विषयके ज्ञानकी इच्छा जब निवर्त्त होवैहै । तब उक्त प्रकारका प्रत्यकरूप ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं निश्चयकरिके आकांक्षा सर्व ओरतैं निवर्त्त-होवैहै । तिसकरि निर्देशकी सार्थकता होवैहै औ जब उक्त-रीतिकरि ब्रह्मरूपआत्माविषैहीं प्रज्ञा (बुद्धि) अवस्थित होवैहै । तब प्रतिज्ञावाक्यबी परिसमाप्तिके अर्थ होवैगा ॥

त प्रज्ञा होवैहै ॥ ताँतैं वीप्साकेअर्थ नेति ने-
ति । ऐसा नकारद्वय है ॥ ॥ नँनु महत् प्रयत्न-
करि परिकः (कसर)के बंधकूं करिके । ब्रह्मनि-
र्देश करनेकूं क्या युक्तहीं है ? बाढ (सो सत्य
है) ॥ काहेतैंकिः—जातैं “नेति नेति” इसतैं
इति इतिकरि व्याप्त होनेयोग्य प्रकार । नकार
द्वयके विषय निर्देश करियेहैं । जैसे^{७१२} ग्रामग्राम
रमणीय है । यातैं अन्यपर निर्देशन नहींहै ।

७१० वीप्साके पक्षकूं उपसंहार करै हैं ॥

७११ आदेशकी प्रक्रमकी अननुसारिताकूं आशंका क-
रिके । अनंतर वाक्यकरि परिहार करै हैं ॥ इहां “ नहीं ”
ऐसैं प्रतीकका ग्रहण है औ “जातैं” इस “हि” शब्दके अर्थका
“तातैं” इस शब्दके साथि संबंध है औ व्याप्तव्य (संग्राह्य)
कहिये विषय करने योग्य जे प्रकार । वे दो नकारनके विषय
हुये “नेत्येतस्मात् (नहीं है ऐसैं इसतैं)” कहिये इस भागकरि
निर्देश करियेहैं । ऐसैं योजना है ॥

७१२ दो इतिशब्दोंकरि व्याप्तके सर्व प्रकारके संग्रहविषै
दृष्टांतकूं कहैहैं ॥ इहांः—“ ग्राम ग्राम रमणीय है ” ऐसैं
कहे हुये राज्यविशिष्ट रमणीय सर्व ग्रामोंके संग्रहकीन्यांई ।
प्रकृतविषैबी दो इतिशब्दोंकरि विषयभूत सर्व प्रकारोंके
संग्रहके हुये दो नकारोंकरि तिनका निषेध है । यह अर्थ है
औ उक्त प्रकारके निषेधरूप निर्देशतैं अन्य निर्देश जातैं ब्र-
ह्मतैं पर नहीं है । तातैं । ऐसैं उपसंहार है ॥

तातैं ब्रह्मका यहहीं निर्देशहै ॥ जो कहाहै:—ता^{७१३}
 (ब्रह्म)की उपनिषत् है । सत्यका सत्य है । इ-
 स प्रकारकरि सत्यका सत्य सो पर ब्रह्म है । यातैं
 ब्रह्म उक्त नामधेय (नामहीं) युक्त है ॥ क्या
 सो ? सत्यका सत्य है ॥ प्राण प्रसिद्ध स-
 त्य हैं । तिनका यह (परमात्मा) सत्य है ।
 इति ॥ ६ ॥

इति श्रीमद् बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यभाषादी-
 पिकायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-
 ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

७१३ “ अथ (अब) ” इत्यादि वाक्यकूं प्रकृतके उपसं-
 हारपनैकरि व्याख्यान करैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद् द्वितीयाध्यायगत तृतीय-
 ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उ-
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—याज्ञवल्क्य । अरे मैत्रेयि ! मैं इस

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यभाषा-
दीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मै-
त्रेयि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

टीकाः—“^{७१५}आत्मा ऐसैहीं उपासना करना । सो-

अथ द्वितीयाध्यायगत चतुर्थब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

७१४ संबंधके कहनेकी इच्छाकरि वृत्तकूं कीर्तन करै हैं ॥

७१५ आत्मतत्त्वहीं क्यूं ज्ञातव्य है ? तहां कहैहैं ॥ इहां
ऐसै सूत्रित विद्याकूं विषय करनेहारे वाक्यका व्याख्यानहीं
विषय है । तिसविषै विद्यारूप साधन है अरु साध्य मुक्ति
है । ऐसै संबंध है ॥

द्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि ।
हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करव-
णीति ॥ १ ॥

स्थानतैं ऊर्ध्व जानेवालाहूं । यातैं तेरी अनु-
मतिकूं प्रार्थना करूंहूं औ तेरे इस कात्या-
यनीसैं अंत (विभाग)कूं करूं । एसैं क-
हताभया ॥ १ ॥

ई इस सर्वविषै पदनीय आत्मतत्व है । जातैं पुत्रा-
दिकतैं ^{७१६} प्रेय है” एसैं उपन्यस्त वाक्यके व्याख्या-
नविषै संबंध अरु प्रयोजन कथन किये “सो आ-
त्माकूं हीं जानताभया । में ब्रह्महूं एसैं तातैं सो सर्व
होताभया” ईसैं प्रकार अत्यगात्मा । ब्रह्मविद्याका
विषय है । यह उपन्यास किया ॥ औ ^{७१८} अविद्या-

७१६ औ मुक्ति फल है । यह “ आत्माकूं ” इत्यादि वा-
क्यकरि दिखायी है । एसैं कहैहैं ॥

७१७ उक्त विद्याकी विषयताकूं निगमन करै हैं ॥

७१८ उक्त अर्थांतरकूं स्मरण करावै हैं ॥ इहां:—“ अन्य
यह ” इहांसैं आरंभ करिके औ “ तीन यह ” इत्यादि वा-
क्यकरि संसाररूप अविद्याका विषय उपसंहार किया । एसैं
संबंध है ॥

का विषय “अन्य यह है अन्य मैं हूँ । ऐसैं । सो नहीं जानता है” इहांसैं आरंभ करिके । चाँतुर्वर्ण्यके प्रविभागआदिक निमित्तवाले पांक्त कर्मके साध्य साधनरूप । बीजांकुरकीन्यांई व्याकृत अरु अन्व्यष्टत् स्वभाववाला । नामरूपात्मक संसार है । सो “तीनहीं यह नाम रूप अरु कर्म हैं” ऐसैं उपसंहार किया है ॥ तिनमें शास्त्रीय उत्कर्षरूप ब्रह्मलोकपर्यंत है औ अधोभावरूप स्थावरपर्यंत अशास्त्रीय है । सो “दो प्रकारके हीं” इत्यादि वाक्यकरि पूर्वहीं दिखाया ॥ ईस अ-

७१९ संसारकूंहीं विशेषण देते हैं ॥ याका यह अर्थ है:—चातुर्वर्ण्य (च्यारी आश्रम) ऐसा प्रविभाग आदिक है निमित्त जिस पांक्तकर्मका । ताके साध्यसाधनस्वरूप ॥

७२० ता (संसार)के अनादिभावकूं दिखावै हैं ॥

७२१ ताहीकूं तीन प्रकारका संक्षेपसैं कहैहैं ॥

७२२ औ सो (संसार) उत्कर्ष अरु अपकर्षकरि दो प्रकारसैं भेदकूं पावता है । तिनमें आद्यकूं उदाहरण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं उत्कृष्ट संसार । शास्त्रीय ज्ञानकरि लभ्य है ॥

७२३ द्वितीयकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—निकृष्ट संसार । स्वाभाविक (लौकिक) ज्ञान अरु कर्मकरि साध्य है ॥

७२४ ननु अविद्याका विषय क्यूं व्याख्यान किया । जातैं सो पुरुषकूं उपयोगी नहीं होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

विद्याके विषयतैं विरक्त इस पुरुषका प्रत्यगात्माकूं विषय करनेवाली ब्रह्मविद्याविषै अधिकार है । सो कैसें होवै । यातैं तृतीय (प्रथम) अध्यायविषै समस्त अविद्याका विषय उपसंहार किया ॥ चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायविषै तो ब्रह्मविद्याके विषय प्रत्यगात्माकूं “ ब्रह्म तेरेताई कहुंगा ” ऐसें औ “ब्रह्मकूं जनावुंगा” ऐसें प्रस्तुत करिके । सो ब्रह्म । एक अद्वय सर्व विशेष शून्य । क्रियाकारक फल स्वभाव सत्य शब्दके वाच्य अशेषभूत अरु धर्मोंके प्रतिषेधरूप द्वारकरि “नेति नेति” ऐसें विज्ञापन किया ॥ ईस ब्रह्मविद्याका अंग होनेकरि संन्यास विधान किया है । जाँया पुत्र वित्त आदिरूप पांक्त कर्मस्वरूप अविद्याका विषय जातैं

इहां यह अर्थ है:—प्रत्यगात्माहीं विषय है । तिसविषै जो “ब्रह्म है” ऐसी विद्या है । तिसविषै ॥

७२५ तृतीय (प्रथम) अध्यायकूं अनुवाद करिके । अब चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायके अर्थकूं कथन करै हैं ॥

७२६ ऐसें वृत्तकूं अनुवाद करिके । उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

७२७ ननु संन्यास क्यूं विधान करियेहै । कर्मसैंहीं विद्याके लाभतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां:—अविद्याका विषयहीं विषय है जिसका । ऐसें विग्रह है । तातैं संन्यास विधान किया है । ऐसें पूर्वके पदसैं संबंध है ॥

है” ऐसैं तिनकी काम्यताके श्रवणतैं ॥ औ ब्रह्म-
वेत्ताकूं आसकाम होनेतैं । आसकाम (आसका-
म) कूं कामके असंभवतैं । औ “जिनैं हमारा
यह आत्मा यह लोक है” इस श्रुतितैं ॥ ॥

कैईक (समुच्चयवादी) तो ब्रह्मवेत्ताकाबी एष-
णासैं संबंधकूं वर्णन करैहैं ॥ तिनोंनैं बृहदार-
ण्यक सुन्या नहीं है । पुत्रादिकनकी एषणाओंकी
अविद्वानकी विषयता सुनी है । काहेतैं ता (अ-
ज्ञानी)के प्रकरणविषै तिनके उपदेशतैं । औ
“प्रजाकरि हम क्या करैंगे” इहांसैं आरंभ क-

७३२ कर्मोंकी काम्यरूपताके हुयेबी ब्रह्मवेत्ताकूं वे (कर्म)
क्यूं नहीं होवैंगे ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७३३ या (कहनेके हेतु)तैंबी ता (ब्रह्मवेत्ता)कूं पुत्रादि
साधनका असंभव है । ऐसैं कहैहैं ॥

७३४ समुच्चय पक्षकूं अनुवाद करिके विरोधकरि दूषण
देते हैं ॥

७३५ श्रुतिके विरोधकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां:—अवि-
द्वानकी विषयता सुनी है । काहेतैं ताके प्रकरणविषै तिनके
उपदेशतैं । यह शेष है औ “ प्रजाकरि हम क्या करैंगे ”
इहांसैं आरंभ करिके “ जिन हमारा यह आत्मा यह लोक
है ” ऐसैं विद्याके विषयविषै श्रुति है । ऐसैं योजना है । औ
यह विभाग । श्रुतिनैं किया है । सो तिन सच्चवादीयोनें नहीं
सुन्या है । ऐसैं संबंध है ॥

रिके “जिन हमारा यह आत्मा यह लोक है” यह विद्याके विषयविषै श्रुति^{७३६}। किया विभाग तिनों^{७३६} नहीं सुन्या है औ सर्व क्रिया कारक अरु फलके ~~स्मृति~~ रूप विद्याके होते कार्यक^{७३६}। सहित अविद्याकी अनुत्पत्तिरूप विरोध तिनों^{७३७} जान्या नहीं है औ व्यासवाक्य (स्मृतिवाक्य) तिनों^{७३७} सुन्या नहीं है ॥ विद्या^{७३९} अरु अविद्यारूप कर्म अरु विद्याके स्वरूपका प्रतिकूल वर्त्तन (निवर्त्य निवर्त्तकभाव) रूप विरोध है ॥ औ जो यह वेदवचन है:— “तूं कर्मकूं कर औ त्यागदे । विद्याकरि किस गतिकूं जातेहैं औ कर्मकरि किस गतिकूं जातेहैं । यह हीं मैं सुननेकूं इच्छताहूं । सो आप मेरे तांई कहो ?

७३६ केवल श्रुतिके विरोधतैंहीं समुच्चयकी असिद्धि नहीं है किंतु युक्तिके विरोधतैंबी है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अवधारण (निश्चय) रूप अर्थवाला दूसरा चकार नकारके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

७३७ स्मृतिके विरोधतैंबी समुच्चयकी असिद्धि है । ऐसैं कहैहैं ॥

७३८ तहां प्रथम पूर्व उक्त युक्तिके विरोधकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां प्रतिकूल वर्त्तन कहिये निवर्त्यनिवर्त्तकभाव है ॥

७३९ अब स्मृतिके विरोधकूं स्पष्ट करै हैं ॥

ये (^{७४०}ज्ञान अरु कर्म) परस्पर विरुद्धताविषै वर्त्ततेहैं । प्रतिकूलतैं” इस रीतिसैं शिष्यकरि पूछे हुये । भगवान् व्यासके प्रतिवचनका “जंतु कर्मकरि बाधकूं पावताहै औ विद्याकरि मुक्त होवैहै । तातैं पारके दर्शीं जे यतिहैं । वे कर्मकूं नहीं करैहैं” इससैं आदिलेके विरोध दिखाया है ॥ तैंतैं साधनांतरकरि सहित ब्रह्मविद्या पुरुषार्थका साधन नहीं है । सर्वके विरोधतैं किंतु साधन निरपेक्ष (अन्य साधनकी अपेक्षासैं

७४० प्रसिद्ध वेदवचनः—“ तूं कर्मकूं कर ” ऐसा जो यह अज्ञानीके प्रति प्रतीत होवै है औ विवेकीके प्रति “त्याग कर ” ऐसा वचन है । तहां “ किस गतिकूं ” इत्यादि रूप शिष्यका व्यासके प्रति प्रश्न है । ताके बीजकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विद्या अरु कर्मनामक दो उपाय परस्पर विरुद्धताविषै वर्त्तते हैं । काहेतैं साभिमानता अरु निरभिमानता आदिकके पुरस्कारकरि प्रतिकूल होनेतैं समुच्चयके असंभवतैं उक्त प्रकारके प्रश्नकी सावकाशता है ॥ इहां “ इस प्रकार पूछे हुये भगवान् व्यासके ” यह शेष है औ ज्ञानकर्मके समुच्चयका विरोध है । ऐसैं कहनेकूं योग्य है ॥

७४१ समुच्चयके असंभवकूं उपसंहार करै हैं ॥

७४२ ननु तब ब्रह्मविद्या पुरुषार्थका साधन कैसें है ? तहां कहैहैं ॥ इहां “ सर्वके विरोधतैं ” इस पदका सर्व क्रिया कारक अरु फलके भेदस्वरूप द्वैतरूप इंद्रजालके ब्रह्मविद्याके साथि विरोधतैं । यह अर्थ है ॥

रहित) ब्रह्मविद्याहीं पुरुषार्थका साधन है। योंतैं सर्व साधनोंका संन्यास (त्याग) रूप पारिव्राज्य (संन्यासाश्रम) अंग (ज्ञानका साधन) होनेकरि विधान करिये है “ ईर्त्तनाहीं अमृतभावका साधन है” ऐसैं अवधारणतैं औ षष्ठ (चतुर्थअध्याय)की समाप्तिविषै “कर्मि हुया याज्ञवल्क्य संन्यासकूं करताभया” इस लिंगतैं कर्मके साधनोंकरि रहित मैत्रेयीकेअर्थ अमृतभावकी

७४३ अकेली ब्रह्मविद्या मुक्तिकी हेतु है। ऐसैं स्थित हुये। फलितकूं कहैहैं ॥

७४४ संन्यासकूं श्रवणादिककी पुष्कलतारूप दृष्ट फलद्वारकरि विद्याके परिपाकका अंगभाव है। सो केवल श्रुति आदिकके वशतैं नहीं जानीये है। किंतु श्रुतिउक्त फलरूप लिंगतैंबी जानीये है। ऐसैं कहैहैं ॥

७४५ तहांहीं अन्य लिंगकूं कहैहैं ॥ इहां यह (षष्ठ अध्यायकी समाप्तिविषै ऐसा पद जो है सो) दोनूं ओरतैं संबंधकूं पावता है ॥ जब कर्मसहित ज्ञान। मुक्तिका हेतु होवै। तब कर्मि हुये याज्ञवल्क्यका संन्यास क्यूं कहियेहै। तातैं ता (कर्म) का त्याग ता (ज्ञान)का अंग होनेकरि विधान किया है। यह अर्थ है ॥

७४६ तहांहीं अन्य लिंगकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— मैत्रेयी त्यक्तकर्मवाले भर्त्ताके हुये। आप कर्म करनेकूं योग्य नहीं होवै है। काहेतैं प्रतिरूप द्वारविना भार्याकूं ताके अनधिकारतैं। तिसप्रकार हुये कर्मरहित मैत्रेयीकेताई मुक्ति-

साधन होनेकरि ब्रह्मविद्याके उपदेशतैं औ वि-
 त्तकी निंदाके वचनतैं ॥ जँब अमृतभावका
 साधन कर्म होवै । तब वित्तकरि साध्य पांक्त
 कर्म है । ऐसैं ता (वित्त)की निंदाका वचनअ-
 निष्ट होवैगा ॥ जँब तो परित्याग करनेकूं वांछि-
 त कर्म होवै । तातैं (तब) ताके (कर्मके) सा-
 धन (वित्त)की निंदा युक्त होवैगी । औ “ब्रह्म
 (ब्राह्मणजाति)ता (अब्रह्मवेत्ता)कूं परास्त क-
 रैहै । क्षत्र (क्षत्रियजाति) ताकूं परास्त (तिर-
 स्कृत) करैहै” इत्यादिरूप कर्मके अधिकारके नि-

विषै साधन होनेकरि विद्याके उपदेशतैं कर्मका त्याग ताका
 अंग है । यातैं ताका अंग होनेकरि कहा है ॥

७४७ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
 तिस (धन)करि मैं क्या करूंगी । ऐसैं निंदा करियेहै ।
 यातैंबी तिस (धन)करि साध्य कर्म । ज्ञानका सहायक
 होनेकरि मुक्तिविषै उपकार नहीं करै है ॥

७४८ ताहींकूं विचरण करै हैं ॥ इहां ताकी निंदाका
 वचन । इस ठिकाने तत् शब्दकरि वित्त कहिये है ॥

७४९ वा तुझारे पक्षविषै निंदाका वचन किसप्रकार हो-
 वैगा ? तहां कहैहैं ॥

७५० मैं ब्राह्मण हूं । मैं क्षत्रिय हूं । इस कर्म अनुष्ठानके
 निमित्त अभिमानकी निंदाकरि सर्व यह आत्माहीं है । इस
 प्रत्ययविषै श्रुतिके तात्पर्यके देखनेतैं विद्याका अंग होनेकरि
 संन्यास विधान किया है । ऐसैं कहैहैं ॥

मित्त वर्णाश्रमादिकके प्रत्ययके उपमर्दतैं [वी कर्मका संन्यास विधान किया है] ॥ जाँतैं ब्रह्मक्षत्र आदिकके स्वरूपके प्रत्ययके उपमर्दके हुये ब्राह्मण-करि यह कर्त्तव्य है । क्षत्रियकरि यह कर्त्तव्य है । ऐसैं विषयके अभावतैं विधि जो है सो आत्मा (स्वरूप) कूं पावता नहीं । जिसीहीं ^{७५२} ए र्षका ब्रह्म क्षत्रिय आदिकके स्वरूपकूं विषय करनेवाला प्रत्यय उपमर्दित होवैहै । ताके प्रत्ययके संन्यासतैं ताके कार्य कर्मोंका औ कर्मोंके साधनोंका संन्यास अर्थतैं प्राप्त भया है । ^{७५३} तौतैं आत्मज्ञानका अंग होनेकरि संन्यासके विधानकी इच्छा-

७५१ ननु विधिके जागते हुये कर्मका अनुष्ठान अपहरण करनेकूं अशक्य है ? यातैं कहैहैं ॥

७५२ ननु वर्ण आश्रमके अभिमानवालेकूं संन्यासबी अंगीकार करिये है । सो (संन्यास) ता (वर्णाश्रमाभिमान) के अभाव हुये कैसें होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां औ अर्थतैं प्राप्त । यह औ शब्द (चकार) अवधारणके अर्थ है ॥ प्रयोजकके ज्ञानवालेकूं विधिउक्त संन्यासके अंगीकारतैं अविरोध है । यह भाव है ॥

७५३ ननु संन्यासकूं आत्मज्ञानकी अंगता जब श्रुति स्मृति अरु न्यायकरि सिद्ध है । तब यह आख्यायिका किस अर्थ रचियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—विधिविषै अपेक्षित अर्थवादकी सिद्धि अर्थ आख्यायिका है ॥

सैंहीं यह आख्यायिका आरंभ करियेहै । अरे मै-
त्रेयि ! ऐसैं याज्ञवल्क्य कहताभया कहिये
याज्ञवल्क्य नाम ऋषि । मैत्रेयीनामक अपनीभा-
र्याकेतांई आमंत्रण करताभयाः—अरे [मैत्रेयि] !

मैं इस (गृहस्थभावरूप) स्थान (आश्रम)-
तैं ऊर्ध्व (संन्यास नामक आश्रमांतर)के-
तांई गमन करनेकूं इच्छताहूं । ७५४ योंतैं तेरी
अनुमति (संमति)कूं प्रार्थना करूंहूं ॥ किंवाँ
और अन्य तेरा इस द्वितीय भार्यारूप कात्या-
यनीसैं अंत (विच्छेद)कूं करूंहूं कहिये मु-
जसैं संबंधवाली तुम दोनूंका पतिद्वारा जो सं-
संध होताभया । ता संबंधके विच्छेदकूं करूंहूं ।

७५४ भार्याकूं आमंत्रण करिके क्या करते भये ? सो क-
हैहैं ॥ इहां “ वै ” शब्द निश्चय अर्थ है औ अन्य आश्रमके
तांई जानेवालाहीं मैं हूं । ऐसैं संबंध है ॥

७५५ उक्त प्रकारकी इच्छाके अनंतर भार्याके कर्त्तव्यकूं
दिखावै हैं ॥ इहां भार्या आदिकके होते संन्यासकूं ताकी
आज्ञापूर्वक होनेके नियमतैं । यह भाव है ॥

७५६ अन्य कर्त्तव्यकूं कथन करै हैं ॥

७५७ हम दो भार्याओंका विच्छेद स्वाभाविक है । तिस-
विषै क्या कर्त्तव्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

सा होवाच मैत्रेयी । यन्नु म इयम्भ-
गोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्
कथं तेनामृता स्यामिति ॥ नेति होवाच

अर्थः—सो मैत्रेयी कहती भईः—हे भग-
वन् ! जबकि मेरेकूं यह सर्व पृथिवी वित्त-
करि पूर्ण होवै । तिसकरि क्या अमृता हो-
अर्थ यह जो द्रव्यके विभागकूं करिके (वित्त
करि तुमकूं विभाग करिके) गमन करूंगा ॥१॥

टीकाः—^{७५९}ऐसैं उक्त सो मैत्रेयी । कहती भयीः—
हे भगवन् ! जब नु [इहां नु यह वितर्कके
विषैहै] मेरेकूं सर्व (सागरकरि वेष्टित)औ वित्त
(धन)करि पूर्ण यह पृथिवी होवै [तब बी
मैं] तिसकरि किस प्रकारसैं अमृता (मरण

७५८ तुमारेकूं संन्यस्त हुये आपहीं हम दोनूंका वि-
च्छेद होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां वित्तविषै
स्त्रीकी स्वतंत्रता नहीं है । यह भाव है ॥

७५९ मैत्रेयी मोक्षकूंहीं अपेक्षा करती हुयी भर्त्तिकेप्रति
आपकी अनुकूलताकूं दिखावैहै ॥ इहां कर्मसाध्यकी गृह अरु
प्रासाद आदिककी न्यांई नित्यताकी अनुपपत्ति आक्षेपका
निदान (कारण) है ॥

याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं
तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु
नाऽऽशाऽस्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥

उंगी ! ऐसैं ॥ ॥ तहां याज्ञवल्क्य नहीं
ऐसैं कहतेभये:—जैसैंहीं लोकविषै उपकरण
(साधन) वालोंका जीवन होवैहै । तैसैंहीं
तेरा जीवित होवैगा । वित्तकरि अमृतभाव-
की तो आशा नहीं है इति ॥ २ ॥

रहित) होवूंगी ! किसीप्रकासैं बी नहीं ॥ ऐसैं
“कथं” शब्द । आक्षेपार्थ है वा प्रश्नार्थ है ॥
-तिसैं (पृथिवीविषै पूर्ण वित्तकरि साध्य) अग्नि-
होत्रादि कर्मकरि क्या मैं अमृता होवूंगी ? [ऐसैं
व्यवहितके साथि संबंध है] ऐसैं ॥ ॥ तैसैं ताके

७६० कथं (कैसैं) शब्दकी प्रश्नार्थताके पक्षविषै वाक्यकूं
जोडतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“कैसैं तिसकरि” इस ठिकाने
कैसैं शब्दकरि तिसकरि मैं क्या करूंगी इस अर्थविषै क्या
शब्दकूं लेके वाक्यकूं जोडती है । काहेतैं वित्तकरि साध्य
कर्मकूं अमृतभावकी साधनतामात्रकी असिद्धिविषै तिस प्र-
कारके प्रश्नकूं निरवकाश होनेतैं ॥

७६१ भार्याके हृदयका जाननेवाला मुनिबी संतुष्ट हुआ
आक्षेपके ताईं औ प्रश्नके ताईं प्रत्युत्तर कहैहैं । ऐसैं कहैहैं ॥

सा होवाच मैत्रेयी । येनाहं नामृता

अर्थः—सो मैत्रेयी कहतीभईः—जिसक-

प्रति याज्ञवल्क्य नहीं ऐसैं कहतेभये ॥ ॥

“किस प्रकारसैं” ऐसा जब आक्षेपके अर्थ है ।

तब नहीं ऐसैं अनुमोदनकूं याज्ञवल्क्य कहते भ-

ये ॥ औ “किस प्रकारसैं” ऐसा जब प्रश्न है ।

तब प्रतिवचनके अर्थ । अमृता नहीं होवैगी । ऐसैं

याज्ञवल्क्य कहतेभये ॥ ॥ तँबे क्या किः—जै-

सैंहीं लोकविषै उपकरणवाले (साधनवाले पु-

रुषन)का जीवित सुखके उपायरूप भोगकरि

संपन्न है । तैसैंहीं तेरा जीवित होवैगा । प-

रंतु वित्त (वित्तकरि साध्य कर्म) करि मनसैं

बी अमृतभावकी आशा नहीं है ॥ २ ॥

टीकाः—^{७६२}ऐसैं उक्त सो मैत्रेयी । याज्ञवल्क्यके

७६२ वित्तकरि मेरेकूं अमृतभावके अभाव हुये सो अ-
किंचित्कर अदेय है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७६३ वित्तके अमृतभावके साधनके अभावकूं जानिके ।
तिसविषै आस्थाकूं त्यागिके मुक्तिके साधनहीं आत्मज्ञानकूं
आपके अर्थ देनेकूं पतिकेप्रति प्रेरणा करती हुयी कहैहै ॥

स्या किमहं तेन कुर्यां । यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ॥ ३ ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे रि मैं अमृता नहीं होऊं । तिसकरि मैं क्या करों । जोई भगवान् (आप) [अमृतभावका साधन] जानतेहो सोई मेरे अर्थ कहो ऐसैं ॥ ३ ॥

अर्थः—सो याज्ञवल्क्य । त्रि। २ ॥री तूं इ-
प्रति कहतीभयीः—जब ऐसैं हूँ तब तू जेसकरि
मैं अमृता नहीं होवूँ । तिस वित्तकरि मैं
क्या करूंगी ! भगवान् (आप) जाहीकूँ केवल
अमृतभावका साधन जानतेहो । तिसीहीं अ-
मृतभावके साधनकूँ मेरेताई कहो । ऐसैं ॥३॥

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहता भया कहिये

७६४ भार्याकूँ अपेक्षित मोक्षके उपायकूँ कहनेकूँ इच्छते हुये । आदिविषै ता (भार्या)कूँ स्तुतिकी विषय करै हैं ॥ इहां वित्तकरि साध्य कर्म है । तिस अमृतभावके साधनके शं-
कित हुये मैं तिसकरि क्या करूंगी । ऐसैं भार्याकरिबी ताके निषेधके किये हुये यह अर्थ है औ स्वाभिप्राय । कर्म मु-

नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व । व्याख्यास्यामि ते । व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥ ४ ॥

एहैं ऐसैं) कृपा करिके कहैहैं:—अरे (मैत्रेयि) ! [तूं] हमारी प्रिया हैं । प्रियभाषण करैहैं । आ बैठ । तेरे अर्थ व्याख्यान करुंगा । व्याख्यानके करनेवाले मेरे वाक्यनकूं अर्थतैं निश्चकरिके ध्यावनेकूं इच्छ । ऐसैं ॥ ४ ॥

ऐसैं (उक्तप्रकारसैं) वित्तकरि साध्य अमृतभावके साधनके निषेध किये हुये । याज्ञवल्क्य । स्व अभिप्रायकी संपत्तिके हुये तुष्ट (प्रसन्न) हुया कहताभया ॥ याज्ञवल्क्य उवाच:—[इहां “वत” ऐसैं कृपा करिके कहैहैं] अरे मैत्रेयि ! तूं हमारी पूर्व बी प्रिया (इष्ट) सती (पतिव्रता) हैं । अबी प्रिय (चित्तके अनुकूल वचन) कूंहीं बोलती हैं । आ बैठ ! जो तेरा इष्ट अमृतभा-

क्तिका हेतु नहीं । यह है । ताकी भार्याद्वाराबी संपत्तिके हुये । यह अर्थ है ॥

स होवाच । न वा अरे पत्युः कामाय
पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहताभयाः—
प्रसिद्धहीं अरे (मैत्रेयि) ! पतिके काम
अर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो

वका साधन आत्मज्ञान है । ताकूं व्याख्यान
करूंगा (कथन करूंगा) ॥ तूं मुज व्याख्यान
करनेवालेके वाक्यनकूं तो निदिध्यासन कर
कहिये अर्थतैं निश्चयकरि ध्यान करनेकूं इच्छ ।
ऐसैं ॥ ४ ॥

टीकाः—अमृतभावके साधन वैराग्यकूं उप-
देश करनेकूं इच्छता हुया सो याज्ञवल्क्य क-
हता भयाः—तिनके संन्यास (त्याग) अर्थ जाँया-

७६५ ननु अमृतभावका साधन जब आत्मज्ञान विव-
क्षित होवै । तब “अरे ! आत्माहीं देखनेकूं योग्य है” इत्यादि
कहनेकूं योग्य है । “अरे ! पतिके काम अर्थ पति प्रिय नहीं
है ” इत्यादि वाक्य क्यूं कहा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥
इहां जायादिकनका आत्माके अर्थ होनेकरि प्रियपना है औ
आत्माका अनौपाधिक प्रियताकरि परमानंदता है । ऐसैं क-
हते भये । यह शेष है ॥

पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै
 कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु
 कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे
 पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्या-
 कामअर्थ पति प्रिय होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध
 अरे ! जायाके कामअर्थ जाया प्रिया नहीं
 होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ जाया प्रिया
 होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! पुत्रोंके काम अर्थ

पति पुत्रादिकनतैं विरागकूं उत्पादन करैहैंः—^{७६६}नवै
 (नहीं) इहांसैं ॥ [इहां “वै” शब्द । प्रसिद्धके^{७६७}
 स्मरणअर्थ है] अरे मैत्रेयि ! सो लोकविषै प्र-
 सिद्धहीं है । जो पति (भर्त्ता) के काम (प्रयो-
 जन) अर्थ जायाकूं पति प्रिय नहीं होवैहै ।
 तब क्या किः—आत्माके तो काम (प्रयोजन)
 अर्थहीं भार्याकूं पति प्रिय होवैहै ॥ तैसैं अरे
 मैत्रेयि ! प्रसिद्धहीं जायाकेअर्थ (जायाके

७६६ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

७६७ तिस निपातकरि क्या स्मरणकरियेहै ? सो कहैहैं ॥

त्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ।
 न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भ-
 वत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ।
 न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं
 पुत्र प्रिय नहीं होवैहैं । आत्माके तो काम
 अर्थ पुत्र प्रिय होवैहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे !
 वित्तके काम अर्थ वित्त प्रिय नहीं होवैहै ।
 आत्माके तो काम अर्थ वित्त प्रिय होवैहै ॥ ॥
 प्रसिद्ध अरे ! ब्रह्म (ब्राह्मणजाति)के काम
 काम अर्थ) । जाया प्रिय नहीं होवैहै० इससे
 आदिलेके अन्य समान है ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं
 पुत्रोंके कामअर्थ पुत्र प्रिय नहीं होवैहैं०
 अरे ! प्रसिद्धहीं वित्तके कामअर्थ वित्त प्रिय
 नहीं होवैहै० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं ब्रह्म (ब्रा-
 ह्मणजाति)के कामअर्थ ब्रह्म (ब्राह्मणजा-
 ति) प्रिय नहीं होवैहै० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं
 क्षत्र (क्षत्रियजाति)के काम अर्थ क्षत्र प्रिय
 नहीं होवैहै० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं लोकोंके काम

भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति । न वा अरे लोकानां कामाय अर्थ ब्रह्म प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ ब्रह्म प्रिय होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! क्षत्र (क्षत्रियजाति) के काम अर्थ क्षत्र प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ क्षत्र प्रिय होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! लोकन अर्थ लोक (स्वर्गादिक) प्रिय नहीं होवैहैं० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं देवनके कामअर्थ देव प्रिय नहीं होवैहैं० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं भूतनके कामअर्थ भूत प्रिय नहीं होवैहैं० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं सर्वके कामअर्थ सर्व प्रिय नहीं होवैहै० ॥ पूर्व पूर्व जैसेँ समी-

७६८ उक्त प्रकारके क्रमविषै नियामककूं कहैहैं ॥ इहां जो जो आसन्न (समीप प्राप्त) प्रीतिका साधन है । तिस तिसकूं अतिक्रमण न करिके । तिस विषयविषै पूर्व पूर्व वचन है । ऐसैं योजना है ॥

लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय
 लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवा-
 नां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मन-
 स्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा
 अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि
 (स्वर्गादिकन)के काम अर्थ लोक प्रिय
 नहीं होवेंहैं । आत्माके तो काम अर्थ लोक
 प्रिय होवेंहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे! देवनके काम
 अर्थ देव प्रिय नहीं होवेंहैं । आत्माके तो
 काम अर्थ देव प्रिय होवेंहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे!
 भूतन (पृथिवी आदिकन)के काम अर्थ
 पके प्रीति साधनकेविषै वचन है । तँहां तहां वैरा-
 ग्यकूं इष्टतर (प्रियतर) होनेतैं औ सर्व पदका ग्रह-

७६९ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

७७० “ अरे! सर्वके काम अर्थ सर्व प्रिय नहीं है ” ऐसैं
 कहना अयुक्त है काहेतैं पति आदिकनकूं उक्त होनेतैं अं-
 शकरि पुनरुक्तिके प्रसंगतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां
 यह अर्थ है:—उक्तकी न्यांई अनुक्तोंकाबी ग्रहण कर्त्तव्य है ।
 औ सर्व पदार्थ विशेषकरि ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं हैं ।
 तिसकरि सामान्यके अर्थ “सर्व” पद है ॥

भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु काकाय सर्वं प्रियं भवति ॥ आत्मा वा भूत प्रिय नहीं होवैहैं । आत्माके तो काम अर्थ भूत प्रिय होवैहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! सर्वके काम अर्थ सर्व प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ सर्व प्रिय होवैहै ॥ ॥ [तातै] अरे (मैत्रेयि) ! आत्माहीं देख-

ण उक्तकी न्यांई अनुक्तके ग्रहण अर्थ है ॥ तातै^{७७१} लोकप्रसिद्ध यह है:-आत्माहीं प्रिय है अन्य नहीं । “ सो यह पुत्रतै प्रेय है ” ऐसैं उपन्यास किया है । तिसका यह वृत्तिस्थानीय प्रपंचन किया ॥ तातै^{७७३} आत्माकी प्रीतिका साधन होनेतै

७७१ सर्व पर्यायोंविषै सिद्ध अर्थकू उपसंहार करै हैं ॥

७७२ ननु तृतीय(प्रथम)विषै आत्माका प्रियपना कहा । सोई जब इहांबी कहियेहै तब पुनरुक्ति होवैगी ? तहां कहैहैं ॥

७७३ अब उपन्यास अरु विवरणकरि आत्माविषैहीं प्रीति है । यह अयुक्त है । काहेतैं पुत्रादिकविषैबी ता (प्रीति) के देखनेतैं ? यातैं कहैहैं ॥

अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदि-
ध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे द-
र्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं
विदितम् ॥ ५ ॥

नेकूं योग्य है । सुननेकूं योग्य है । मनन
करनेकूं योग्य है । निदिध्यासन करनेकूं
योग्य है ॥ ॥ अरे मैत्रेयि ! आत्माकेहीं दर्श-
नकरि श्रवणकरि मननकरि विज्ञान (नि-
दिध्यासन)करि यह सर्व विदित होवै-
है ॥ ५ ॥

अन्य ठिकाने गौणी प्रीति है । आत्माविषै हीं
मुख्य प्रीति है ॥ तौतैं अरे (मैत्रेयि) ! आ-
त्माहीं द्रष्टव्य (दर्शनके योग्य) है कहिये द-
र्शनका विषय आपादन करनेकूं योग्य है । पूर्व
आचार्यतैं औ आगमतैं श्रोतव्य (श्रवणके योग्य)

७७४ आत्माकी निरतिशय प्रीतिकी विषयताकरि पर-
मानंदरूपताकूं कहिके । अब उत्तर वाक्यकूं लेके व्याख्यान
करै हैं ॥

७७५ फेर यह दर्शन कैसें उपजता है ? तहां कहैहैं ॥

है । पीछे तर्क (युक्ति) तैं मंतव्य (मननकर-
नेकूं योग्य) है । तातैं (तदनंतर) निदिध्या-
सितव्य (निश्चयकरि ध्यावने योग्य) है ॥

^{७७६} ऐसैं जातैं क्रियमाण श्रवण मनन औ निदि-
ध्यासनरूप साधनोंकरि यह (आत्मा) दृष्ट हो-
वैहै ॥ ^{७७७} जैंब एकताके प्रति ये (श्रवणादिक) प्राप्त
होवैहैं । तब ब्रह्मकी एकतारूप विषयवाला स-
म्यक्ज्ञान-प्रसिद्ध होवैहै । अन्यथा (श्रवण मा-

७७६ श्रवणादिकनके मध्य अन्यतमकरि आत्मलाभतैं स-
र्वका अध्ययन क्यूं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७७७ विधिकी अनुसारिता “एव” शब्दका अर्थ है । का-
हेतैं श्रुतपनैके अविशेषतैं औ विकल्प हेतुके अभावतैं सर्वक-
रिहीं जब आत्मज्ञान उपजता होवै तब तिस (श्रवणादिक)
कूं आग्नेय आदिककीन्यांई समप्रधानता प्राप्त होवैगी ? यह
आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—श्रवणकूं प्रमा-
णका विचाररूप होनेकरि प्रधान होनेतैं अंगीपना है औ
मनन निदिध्यासनकूं तो ताके कार्यविषै प्रतिबंधके प्रध्वंसी
होनेतैं अंगपना है । ऐसैं अंगअंगीभावकरि जब श्रवणादिक
वारंवार तिनके अनुष्ठानकरि समुच्चित होवैं । तब सामग्रीकी
पुष्कलताकरि फलरूप शिरवाला तत्वज्ञान सिद्ध होवैहै ।
औ मननादिकके अभाव हुये श्रवणमात्रकरि सो (तत्वज्ञान)
नहीं उपजताहै । काहेतैं मननआदिककरि प्रतिबंधके अप्रध्वं-
सके हुये वाक्यकूं फलवाले ज्ञानकी जनकताके अयोगतैं ॥

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्तः ब्रह्म

अर्थः—ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) ताकूं प-

त्रकरि) नहीं ॥ जो ब्रह्म क्षत्रादि । कर्मका नि-
मित्त है । सोई वर्णाश्रमादिरूप आत्माविषै अ-
विद्यासैं आरोपणके प्रत्ययका विषय औ क्रिया
कारक अरु फलात्मक अविद्याकरि आरोपित
प्रत्यय (ज्ञान)का विषय है । रज्जुविषै सर्पके
प्रत्ययकीन्यांई ताके उपमर्द (बाध)अर्थ क-
हैहैंः—अरे मैत्रेयि ! आत्माके निश्चयकरि देखे
हुये । सुने हुये । मनन किये हुये । विज्ञात
हुये । यह सर्व विदित होवैहै ॥ ५ ॥

टीकाः—ननु अन्यके विदित हुये अन्य कैसें

७७८ परामर्षवाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां कर्मका
निमित्त ब्रह्म क्षत्र आदिक है । सोई वर्ण आश्रम अवस्थारूप
हुया आत्माविषै अविद्याकरि आरोपित प्रत्ययरूप जो मिथ्या-
ज्ञान । ताका विषय होनेकरि स्थित है अरु क्रिया आदिक
स्वरूप है । ताके उपमर्दन अर्थ कहैहैं ॥ ऐसैं संबंध है ॥

७७९ अविद्याकरि आरोपित प्रत्यक्षका विषय है । ऐसैं
जो कहा । याहीकूं व्याख्यान करै हैं ॥

७८० अविद्याजनित प्रत्ययकी विषयताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

७८१ आत्माके विदित हुये सर्व विदित होवै है । ऐसैं
उक्त अर्थके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥

वेद । क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः
 क्षत्रं वेद । लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽ-
 त्मनो लोकान्वेद । देवास्तं परादुर्योऽन्य-
 राकरण (तिरस्कार) करैहै । जो आत्मा-
 तैं अन्य ठिकाने ब्रह्मकूं जानताहै ॥ क्षत्र
 (क्षत्रियजाति) ताकूं पराकरण करैहै । जो
 आत्मातैं अन्य ठिकाने क्षत्रकूं जानताहै ॥
 लोक ताकूं पराकरण करैहैं । जो आत्मातैं
 अन्य ठिकाने लोकनकूं जानताहै ॥ देव ति-
 विदित होवैहै ? यँहें दोष नहीं है:—जातैं आत्मातैं
 व्यतिरेककरि अन्य कलुबी नहीं है । जँव है । तब
 सो विदित नहीं होवैगा । परंतु अन्य नहीं है ।
 किंतु सर्व आत्माहीं है । तातैं आत्माके विदित हुये
 सर्व विदित होवैहै ॥ ॥ फेरँ^४ आत्माहीं सर्व कैसें
 है ? यह सुनावैहैं:—ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) ता

७८२ दृष्टिके विरोधकूं सिद्धांती । निराकरण करै हैं ॥

७८३ आत्माके ज्ञात हुये सर्व ज्ञातहीं होवै है । काहेतैं
 तिसतैं अन्य अर्थके अभावतैं । ऐसैं उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

७८४ आकांक्षापूर्वक उत्तर वाक्यकूं उदाहरण करिके व्या-
 ख्यान करै हैं ॥

त्राऽऽत्मनो देवान्वेद । भूतानि तं परादु-
र्योऽन्यत्राऽऽत्मनो भूतानि वेद । सर्वं तं
परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेदेदं ब्र-

सकूं पराकरण करैहैं । जो आत्मातैं अन्य
ठिकाने देवनकूं जानताहै ॥ भूत तिसकूं
पराकरण करैहैं । जो आत्मातैं अन्य ठिकाने
भूतनकूं जानताहै ॥ सर्व तिसकूं पराकरण
करैहै । जो आत्मातैं अन्य ठिकाने सर्वकूं

पुरुषकूं धिक्कार (तिरस्कार) करैहै ॥ किंसकूं
किः—जो आत्मातैं अन्य ठिकाने कहिये आ-
त्मस्वरूपतैं व्यतिरेककरि ब्रह्म (ब्राह्मणजाति)
कूं जानताहै कहिये यह ब्राह्मणजाति आ-
त्माहीं नहीं होवैहै । ऐसैं ताकूं जो जानताहै ।
तिसकूं सो ब्राह्मणजाति “अनात्मस्वरूपकरि
मोकूं देखताहै ” यह जानिके तिरस्कार करैहै ।

७८५ पुरुषकूं विशेषतैं जाननेकूं प्रश्नकूं उपन्यास करिके
प्रतीककूं ग्रहण करिके व्याख्यान करै हैं ॥

७८६ पराकरणविषै पुरुषके अपराधीपनैकूं दिखावैहैं ॥

ह्येदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि
भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा ॥ ६ ॥

जानताहै ॥ यह ब्रह्म है । यह क्षत्र है । ये
लोक हैं । ये देव हैं । ये भूत हैं । यह सर्व
है । जो यह आत्मा है ॥ ६ ॥

^{७८७}
जातैं परमात्मा सर्वका आत्मा है ॥ तैसैं क्षत्र
(क्षत्रियजाति) ॥ तैसैं लोक । देव । भूत । स-
र्व यह ब्रह्म है । ऐसैं जितने इहां प्रक्रांत हैं औ
जे अनुक्रांत हैं । सर्व आत्माहीं है ॥ जो यह
आत्मा द्रष्टव्य है । श्रोतव्य है । ऐसैं प्रकृत है ।
जिसैं आत्मातैं जन्मताहै । आत्माविषैहीं लीन
होवैहै । औ स्थितिकालविषै आत्ममय है । आ-
त्मव्यतिरेककरि अग्रहणतैं आत्माहीं सर्व है ॥ ६ ॥

७८७ परमात्मातैं अतिरेककरि ब्राह्मणजातिके तांई द-
श्यमानोंके मध्यवी स्वस्वरूपकरि देखता हुया कैसैं अपराधी
होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह ब्रह्म है ।
ऐसैं उत्तर वाक्यका अनुवाद है । ताका व्याख्यान । जे अनु-
क्रांत है इत्यादि है ॥

७८८ आत्माहीं सर्व है । यह प्रतिपादन करै हैं ॥ इहां:—
स्थितिकालविषै स्थित होवैहै । तातैं आत्माहीं सर्व है । तिसतैं
व्यतिरेककरि अग्रहणतैं । ऐसैं योजना है ॥

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न
बाह्यौश्छब्दान्छक्रुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभे-

अर्थः—सो जैसें हन्यमान (ताड्यमान)
दुन्दुभिके बाह्यशब्दनकूं ग्रहण करने अर्थ
नहीं शक्त होवैहै । दुन्दुभिके तो वा दुन्दु-

टीकाः—फेरें अब यह सर्व आत्माहीं है ऐसैं
किसप्रकार ग्रहण करनेकूं (जाननेकूं) शक्य
होवैहै ? चिन्मात्रके अनुगमतेँ सर्वत्र चित्स्व-
रूपताहीं है । ऐसैं जानियेहै ॥ तँहां (सर्वत्र चे-
तनतेँ व्यतिरेककरि असद्भावविषै) दृष्टांत क-
हियेहैंः—जौके स्वरूपतेँ व्यतिरेककरि जिसका
अग्रहण है । तिसकी तदात्मता (तिसरूपता)

७८९ ननु स्थिति अवस्थाविषै सर्वकी आत्ममात्रता जा-
ननेकूं अशक्य है । ज्ञापकके अभावतेँ ? इसप्रकार प्रतिवादी ।
आक्षेप करै है ॥

७९० घट स्फुरता है इत्यादि प्रत्ययकूं आश्रय करिके ।
सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

७९१ “ सो जैसें दुन्दुभिके ” इत्यादि वाक्यकूं अवतार
देते हैं ॥ इहांः—सर्वत्र चेतनतेँ अतिरेककरि असद्भाव है ।
यह “तहां” इस सप्तमीका अर्थ है ॥

७९२ दृष्टांतविषै विवक्षित अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

स्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो
गृहीतः ॥ ७ ॥

भिके आघात (ताडन)के ग्रहणकरि शब्द
गृहीत होवैहै ॥ ७ ॥

हीं लोकविषै देखी है । सो ^{७९३}जैसैं । कहिये सो
यह दृष्टांत है:—लोकविषै जैसैं दंडआदिककरि
ताडयमान दुंदुभि (भेरीआदिक)के बाह्य
शब्दोंकूं (बहिर्भूत शब्दविशेषनकूं) कहिये दुं-
^{७९४}दुभिके शब्दकी समानता^{७९३} बाहिर निकसे दुं-
दुभिके शब्दविशेषनकूं ग्रहण करनेकूं पुरुष
शक्त नहीं होवैहै । परंतु ^{७९५}दुंदुभिके ग्रहणकरि
शब्दोंके सामान्यविशेषभावसैं । दुंदुभिके शब्द

७९३ दुंदुभिके दृष्टांतकूं लेके ताके अक्षरनकूं व्याख्यान
करै हैं ॥

७९४ शब्दविशेषनकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

७९५ ननु तब दुंदुभिके शब्दविशेषनका ग्रहण कैसें
होवै है ? सो कहैहैं ॥ इहां दुंदुभिके । इस शब्दका दुंदुभि
शब्दके सामान्यके । यह अर्थ है ॥

ये हैं । ऐसैं शब्दविशेष गृहीत होवैहै । काहे-
 तैं दुंदुभिके शब्दके सामान्य व्यतिरेककरि तिन
 (शब्दविशेषन)के वा दुंदुभिके आघात (ता-
 डन)के अभावतैं [इहां दुंदुभिका आहनन (ता-
 डन) आघात कहियेहै] दुंदुभिके आघात-
 करि विशिष्ट शब्दसामान्यके ग्रहणकरि तँद्वत
 विशेष गृहीत होवैहै । परंतु वेहीं भेदकूं पायके
 ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं होवैहै । विशेषरूप-
 करि तिनके अभावतैं ॥ ॥ तैसैं प्रज्ञान व्यति-
 रेककरि स्वप्न अरु जागरितविषै कोई बी वस्तु
 विशेष नहीं ग्रहण करियेहै । तातैं विज्ञान व्य-
 तिरेककरि तिनका अभाव युक्त है ॥ ७ ॥

७९६ उक्त अर्थविषै “ दुंदुभिके आघात (ताडन)के ”
 इत्यादि वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करै हैं ॥

७९७ “वा” शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

७९८ उक्त अर्थकूं व्यतिरेकरूप द्वारकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७९९ विवक्षित दार्ष्टान्तिककूं कहैहैं ॥ इहां:—तहांहीं
 वस्तुविशेषके ग्रहणकी संभावनाकूं अभिप्रायकी विषय क-
 रिके स्वप्न जागरितविषै ऐसैं कहा । औ तैसैंशब्दका दुंदु-
 भिके दृष्टान्तकी न्याई । यह अर्थ है ॥ औ “शंखके तो ग्रहण-
 करि ” इत्यादि वाक्य । आदि शब्दका अर्थ है ॥

स यथा शङ्खस्यध्यायमानस्य
न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्त्याद्ग्रहणाय श-
ङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा श-
ब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बा-

अर्थः—सो जैसें शब्दकरि पूर्यमाण शं-
खके बाह्य शब्दनकं ग्रहण अर्थ नहीं शक्त
होवैहै । शंखके तो वा शंखके ध्वनिके ग्र-
हणकरि शब्द गृहीत होवैहै ॥ ८ ॥

अर्थः—सो जैसें वाद्यमान वीणाके बाह्य-

टीकाः—तैसें (दुंदुभिके दृष्टांतकीन्यांई) सो
जैसें बजाये हुये (शब्दकरि संयोज्यमान) कहिये
आपूर्यमाण शंखके बाह्य शब्दोंकं ग्रहण क-
रनेकं शक्त नहीं होवैहै । इत्यादि पूर्वकीन्यांई^{८००}
है ॥ ८ ॥

टीकाः—तैसें (दो दृष्टांतनकीन्यांई) वाद्यमा-

८०० “ दुंदुभिके तो ग्रहणकरि ” इत्यादि वाक्यकं दृ-
ष्टांतरूप करै हैं ॥ इहां तथा शब्दकरि दृष्टांतद्वयका ग्रहण है ॥

ह्याञ्शब्दाञ्शक्त्याद्ग्रहणाय वीणायै
तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृ-
हीतः ॥ ९ ॥

शब्दनकं ग्रहण अर्थ नहीं शक्त होवैहै ।
वीणाके तो वा वीणावादके ग्रहणकरि श-
ब्द गृहीत होवैहै ॥ ९ ॥

वीणाके० ॥ इहां (जगत्विषै वा श्रुतिविषै)
“अनेक दृष्टान्तनका ग्रहण । समानभाव अरु बहु-
भावके स्थापनअर्थ है ॥ जातैं “अनेक विल-
क्षण चेतन अचेतनरूप सामान्य विशेष हैं ।
तिनका परंपरागतिकरि जैसेँ एक महासा-
मान्यविषै अंतर्भाव है । तैसेँ प्रज्ञानघनविषै

८०१ ननु एकहीं दृष्टान्तकरि विवक्षित अर्थकी सिद्धिके
हुये । अनेक दृष्टान्तनका ग्रहण क्युं है ? यह आशंका करिके ।
कहैहैं ॥ इधर “ इहां ” इस शब्दकरि जगत् वा श्रुति क-
हिये है ॥

८०२ सामान्यके बहुत्वकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

८०३ तिन (सामान्यों)के स्वसामान्यविषै अंतर्भावके
हुयेबी ब्रह्मविषै पर्यवसान काहेतैं होवैगा ? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥ इहां कैसेँ इस शब्दतैं पूर्व । तैसेँ ऐसा अध्या-
हार किया चाहीये औ पेसैं श्रुति मानतीहै । यह शेष है ॥

सर्व जगत् अंतर्भावकं पावताहै । कैसें नाम
 (प्रसिद्ध) प्रकर्षकरि दिखावनेकूं योग्य है ।
 ऐसें श्रुति मानतीहै ॥ जैसें दुंदुभि^{८०४} । शंख अरु
 वीणाके शब्दके सामान्य अरु विशेषनकी श-
 ब्दताविषै [एकता] है । ऐसें स्थितिकालविषै^{८०५}
 प्रथम सामान्य विशेषके अव्यतिरेकतैं ब्रह्मकी
 एकता जाननेकूं शक्य है । ऐसें उत्पत्तिकाल-
 विषै अरु उत्पत्तितैं पूर्व ब्रह्महीं है । ऐसें जान-
 नेकूं शक्य होवैहै ॥ ९ ॥

८०४ विवादका विषय जो जगत् । सो आत्मातैं अतिरेकि
 (भिन्न) नहीं है । काहेतैं तिसतैं अतिरेककरि अगृह्यमाण
 होनेतैं । जो जिसतैं अतिरेककरि अगृह्यमाण है । सो तिसतैं
 अतिरेकि नहीं होवैहै । जैसें दुंदुभि आदिकके शब्द । तिनके
 सामान्यतैं अतिरेककरि अगृह्यमाण हुये तिसतैं अतिरेककरि
 नहीं हैं । इस अनुमानकूं कहनेकूं इच्छते हुये कहैहैं ॥ ति-
 नका जैसें शब्दत्वविषै अंतर्भाव है । तैसें प्रज्ञानघनविषै
 सर्व जगत् अंतर्भावकं पावताहै । यह शेष है ॥

८०५ तीन दृष्टांतनकूं आश्रय करिके । निष्कर्षरूप अर्थकूं
 उपसंहार करै हैं ॥

८०६ “ सो जैसें आर्द्र (गीले) इंधनॉकरि प्रदीप्त अ-
 ग्नितैं ” इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ स्थितिकालकी
 न्याईं । यह “ एवं (ऐसें) ” शब्दका अर्थ है ॥

स यथाऽऽद्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धू-
मा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो
भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजु-

अर्थः—सो जैसें अभ्याहित आर्द्र इंध-
नोंकरि प्रदीप्त अग्नितैं प्रथक् धूम निकस-
ते हैं । ऐसैंहीं अरे ! महत्भूत इस (पर-
मात्मा)का निःश्वसित यह ऋग्वेद । य-

टीकाः—जैसें विस्फुलिंग धूम अंगार अरु
ज्वालाके अविभागतैं पूर्व अग्नि हीं है । ऐसैं
अग्निकी एकता होवैहै ॥ इसरीतिसैं (स्थिति-
कालकीन्यांई) नामरूपकरि विक्रियमाण ज-
गत् । उत्पत्तितैं पूर्व प्रज्ञानघनहीं है । ऐसैं ग्र-
हण करनेकूं युक्त है । र्थहँ कहियेहैः—सो जैसें
अभ्याहित ऐसा जो आर्द्र (गीले) इंधनों-

८०७ तहां वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥
इहां महत् कहिये अनवच्छिन्नका औ भूत कहिये परमार्थका
यह इन दो शब्दनका अर्थ है ॥

८०८ निःश्वसितकी न्यांई । ऐसैं उक्त अर्थकूं स्पष्ट करै
हैं ॥ इहां “ अरे मैत्रेयि ! तिसतैं उत्पन्न भया है ” । ऐसैं
संबंध है ॥

वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पु-
राणं विद्या उपनिषद्ः श्लोकाः सूत्राण्य-

जुर्वेद । सामवेद अथर्वाङ्गिरस । इतिहास ।
पुराण । विद्या । उपनिषद् । श्लोक । सूत्र ।

करि वृद्धिकूं पाया अग्नि । तिसत्तैं पृथक् (ना-
ना प्रकारके) धूम (धूम अरु विस्फुलिंगादिक)
विशेषकरि निर्गमन करैहैं [इहां नाना प्रका-
रके धूमका ग्रहण । विस्फुलिंगादिकके दिखा-
वने अर्थ है] ॥ ऐसैं (जैसें यह दृष्टांत है । तै-
सैं) अरे मैत्रेयि ! प्रसिद्ध इस महत् (अनव-
च्छिन्न) भूत (परमार्थ) प्रकृत परमात्माका
निःश्वसित (निःश्वासकीन्यांई निःश्वासरू-
प) यह होता भया ॥ जैसें अप्रयत्नकरिहीं पु-
रुषका निःश्वास होवैहै । ऐसैंहीं अरे मैत्रेयि !
तिसत्तैं होता भया ॥ ॥ क्यैं सो निःश्वासकी

८०९ ताहीकूं आकांक्षापूर्वक स्पष्ट करैहैं ॥ इहां इति-
हास यह ब्राह्मणहीं है । ऐसैं संबंध है औ संवाद आदिक ।
इहां आदिपदकरि प्राणके संवाद आदिकका ग्रहण है औ
“ असत्हीं यह आगे होता भया ” इस आदि शब्दकरि

नुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि ॥ १० ॥

अनुव्याख्यान । व्याख्यान । हैं ॥ इसी-
हींके ये सर्व निःश्वसित हैं ॥ १० ॥

न्याईं तिसतैं होता भया ? तहां कहियेहैः—जो ऋग्वेद । यजुर्वेद । सामवेद । अथर्वांगि-
गिरस । यह चतुर्विध मंत्रोंका समूह है ॥ इति-
हास । यह उर्वशी अरु एरुवाका संवाद आ-
दिक । “उर्वशी नामक इहां अप्सराथी” । इ-
त्यादि ब्राह्मणहीं है ॥ औ पुराण कहिये “अस-

“असत्हीं यह आगे होताभया” यह ग्रहण करियेहै औ देव-
जनविद्या कहिये नृत्य गीतादि शास्त्र । “वेद सो यह है ” ।
अर्थ यह जो वेदतैं बाहीर नहीं होवैहै । इत्यादिक विद्या
है । ऐसैं संबंध है । इहां आदिशब्द । शिल्पशास्त्रके संग्रह
अर्थ है औ “ प्रिय है ऐसैं याकूं उपासना करै ” इत्यादिक
उपनिषद् हैं । इस ठिकाने आदिशब्द “ सत्यका सत्य है ”
या उपनिषद्के संग्रह अर्थ है औ “ ताके ये श्लोक होवै हैं ”
इत्यादिक श्लोक (मंत्र) हैं ॥ इहां आदिशब्दकरि “ सोबी
यह श्लोक होवै है । असत्हीं सो होवैहै ” इत्यादि ग्रहण
करिये है औ इत्यादिक सूत्र हैं । इहां आदिपद “ औ जो
अन्य देवताकूं उपासताहै । ब्रह्मवित् पर (ब्रह्म) कूं पावता
है ” इत्यादि ग्रहण करनेकूं है ॥

तहीं यह आगे होता भया” इत्यादि है औ विद्या कहिये देवजनविद्या (नृत्यगीतादि शास्त्र) । “ वेद सो यह ” इत्यादि ॥ उपनिषद् कहिये “प्रिय ऐसैं याकूं उपासना करै” इत्यादिक ॥ श्लोक कहिये ब्राह्मणतैं प्रभववाले मंत्र । “वे ये श्लोक हैं” । इत्यादिक ॥ सूत्र कहिये वस्तुके संग्रहरूप वाक्य । वेदविषै जैसे “आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै ” इत्यादिक ॥ अनुव्याख्यान कहिये मंत्रोंके विवरण ॥ व्याख्यान कहिये अर्थवाद ॥ अर्थवा वस्तुके संग्रहरूप वाक्योंके विचारणरूप अनुव्याख्यान हैं । जैसे चतुर्थाध्यायविषै “आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै ” इस वाक्यका है । वा जैसे “अन्य यह है अन्य मैं हूं ऐसैं [जो जानता है] सो जानता नहीं । जैसे पशु है । ऐसैं सो देवनका है ” इस वाक्यका है । यहहीं अध्यायका शेष है ॥ औ मंत्रोंके वि-

८१० अर्थवादनविषै व्याख्यान पदकी प्रवृत्तिमें हेतुके अभावकूं शंका करिके पक्षांतरकूं कहैहैं ॥

८११ इतिहास आदिक शब्दनके व्याख्यानकूं उपसंहार करै हैं ॥ ब्राह्मण जो है सो इतिहास आदिक पदोंकरि जाननेकूं योग्य है । यह शेष है ॥

वरणरूप व्याख्यान हैं । ऐसैं अष्टविधब्राह्मण है ॥ ईसैं रीतिसैं मंत्र अरु ब्राह्मणकाहीं ग्रहण है ॥ औ निर्यतरचनावाले विद्यमानहीं वेदकी अभिव्यक्ति (आविर्भाव) होवैहै । पुरुषके निःश्वासकीन्यांई अरु पुरुषकी बुद्धिके प्रयत्नपूर्वक नहीं है । यातैं स्वार्थविषै प्रमाणकी अपे-

८१२ ननु ऋक् आदिक शब्दनके औ इतिहास आदिक शब्दनके प्रसिद्ध अर्थके त्यागविषै कौन हेतु है ? यह आशंका करिके । निःश्वसित श्रुति इतिहास आदिक शब्दनके प्रसिद्ध अर्थके त्यागविषै हेतु है । परिशेष तो अन्य ठिकाने है । या अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

८१३ ननु प्रथमकांडविषै वेदकी नित्यताकरि प्रमाणता स्थापित करी है । ता (वेद) की अनित्यताके हुये ता (प्रमाणता) की हानि होवैगी ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—न इत्यादिक वेदविषै विशेष करियेहै । “ कल्पांतविषै तव तिन वेदनकूं ” इत्यादि वाक्यतैं वेदका नियतरचनावान्पना जानियेहै औ “ आदि अंततैं रहितनकूं ” इत्यादि वाक्यतैं ताकी सनातनता निश्चय करिये है औ कृतक (कृतिसाध्य) होनेतैं ताकी अप्रमाणता नहीं है । प्रत्यक्षआदिकविषै व्यभिचारतैं औ पौरुषेय होनेतैं अनपेक्ष हेतुके अभावतैं ताकी अप्रमाणता नहीं है । काहेतैं बुद्धिपूर्वक प्रणीतताके अभावकरि ता (प्रमाणता) की सिद्धितैं औ उन्मत्तवाक्यका सादृश्य नहीं है । अबाधित अर्थवाला होनेतैं ॥

क्षासैं रहितहीं है ॥ तैतैं जो तिस (वेद) नैं कहा है सो तैसैंहीं आपके ज्ञानरूप वा कर्मरूप श्रेयकूं इच्छनेवाले पुरुषनकरि प्रतीति करनेकूं योग्य है इति ॥ जातैं नाम प्रीकाशके वशहीं रूपकी विक्रिया अवस्था है औ जातैं परमात्माकी उपाधिभूत व्याक्रियमाण अरु जलके फेनकीन्यांई तत्वतैं अन्यभावकरि अनिर्वचनीर नाम रूपकूं हीं सर्व अवस्थाविषै (व्यक्त अव्यक्त अवस्थाविषै) संसारपना है ॥ यातैं नामकीहीं निःश्वासरूपता कही । ताँके

८१४ वेदकी प्रमाणताके सिद्ध भये । फलितकूं कहैहैं ॥

८१५ ननु नाम प्रपंचकी सृष्टिहीं इहां उपदेश करी । रूप प्रपंचकी सृष्टि नहीं औ सो उपदेश करनेकूं योग्य है । काहेतैं अन्यथा सृष्टिकी पूर्तिके असंभवतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ यद्यपि नामके आधीन रूपकी सृष्टि है । यातैं नामसृष्टिके कथनकरि रूपसृष्टि अर्थात् कही । तथापि सर्व संसारकी सृष्टि नहीं कही ॥

८१६ नामरूपकूंहीं संसारताके हुये तिन दोनूंकी सृष्टितैं पूर्व संसार नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां सर्व अवस्थाविषै याका । व्यक्त अरु अव्यक्त अवस्थाविषै । यह अर्थ है ॥

८१७ नाम प्रपंचकीहीं इहां उपपादनकरी सगोक्तिकूं उपसंहार करै हैं ॥

८१८ अतः (यातैं) शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

स यथा सर्वासामपां समुद्र एका-

अर्थः—सो जैसें सर्व जलोंका समुद्र ए-

कथनकरिहीं इतर (रूप)की निःश्वासरूप-
ताकी सिद्धितैं ॥ अर्थवा सर्व द्वैतके समूहकूं अ-
विद्याकी विषयता कही “ब्रह्म ताकूं तिरस्कार
करैहै । यह सर्व जो यह आत्मा है” ऐसैं । तिस
करि वेदकी अप्रमाणता आदिका करियेहै ।
तिसैं आशंकाकी निवृत्ति अतु है यह कहाः—पुरु-
षकी निःश्वासकी न्यांई अद्वयत्नकरि उत्थित
होनेतैं प्रमाण वेद है । जैसें अन्य ग्रंथ है । ऐ-
सा नहीं ॥ १० ॥

टीकाः—किंवा अन्य (और) है । कहिये के-

टिप्पणीः—निःश्वासित श्रुतिकूं औरप्रकारसैं अवतार देतेहैं ॥

८२० मिथ्यापनैदे... हुयेबी प्रतिविंबकीन्यांई प्रमाणताके
संभवतैं औ उन्मत्त आदिकके वाक्योंकूं मिथ्यापनैदे आ-
धीन प्रयत्नसैं जन्य होनेकरि अप्रमाण होनेतैं औ वेदकूं ताके
अभावतैं विषयके अव्यभिचारतैं अप्रमाणता नहीं है । ऐसैं
कहैहैं ॥ इहांः—अन्य ग्रंथ कहिये बुद्ध आदिककरि प्रणीत
“ स्वर्गकी कामनावाला चैत्य (प्रतिमा वा चैतन्य)कूं वंदना
करै ” इत्यादिक है । सो जैसें [पुरुषके प्रयत्नकरि उत्थित
होनेतैं अप्रमाणरूप है । तैसैं] ॥

८२१ “ सर्व जलनका ” इत्यादि समनंतर ग्रंथकूं उ-
ठावते हैं ॥

यनमेव॑ सर्वेषां॑ स्पर्शानां त्वगेकाय-
नमेव॑ सर्वेषां॑ गन्धानां नासिके एका-
यनमेव॑ सर्वेषां॑ रसानां जिह्वैकायन-
मेव॑ सर्वेषां॑ रूपाणाञ्चक्षुरेकायन-

कायन है (एकालयाधार है) । ऐसैं सर्व
स्पर्शोंका त्वक् एकायन है । ऐसैं सर्व गंधों-
का दो नासिका एकायन है । ऐसैं सर्व रसों-
का जिह्वा एकायन है । ऐसैं सर्व रूपोंका

वर्तल स्थिति अरु उत्पत्तिकालविषै हीं प्रज्ञान-
घनतैं व्यतिरेककरि अभावतैं जगत्का ब्रह्म-
भाव नहीं है । किंतु प्रलयकालविषैवी जैसें
जैलके बुद्दुद अरु फेन आदिकनका जलतैं व्य-
तिरेककरि अभाव है । ऐसैं प्रज्ञानतैं व्यति-
रेककरि तिसके कार्य अरु तिसीविषैहीं ली-
यमान (लीनभये) नाम रूप अरु कर्मका अ-

८२२ ताहीकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां:—औ प्रलयकाल-
विषै प्रज्ञानतैं व्यतिरेककरि अभावतैं जगत्का ब्रह्मभाव है ।
ऐसैं संबन्ध है ॥

८२३ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥

मेव० सर्वेषां० शब्दानां० श्रोत्रमेकायन-
मेव० सर्वेषां० संकल्पानां० मन एकाय-
नमेव० सर्वासां० विद्यानां० हृदयमे

चक्षु एकायन है । ऐसैं सर्व शब्दनका श्रो-
त्र एकायन है । ऐसैं सर्व संकल्पोका मन
एकायन है । ऐसैं सर्व विद्याओंका हृदय

भाव है ॥ तौतैं एकहीं प्रज्ञानघन एकरस ब्र-
ह्म प्रतीति करनेकूं योग्य है । ऐसैं है । यौतैं क-
है हैः—प्रलयके दिखावने अर्थ दृष्टांत है । सो
ऐसैं दृष्टांत हैः—जैसैं (जिस प्रकारकरि) सर्व
नदी वापी तडाग आदिकविषै गत (स्थित)
जलोंका समुद्र (अब्धि) । एक अयन (एक

८२४ तथापि प्रज्ञानहीं एक ऐसैं होवैगा । ब्रह्म नहीं ?
यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहांः—सत्य ज्ञान आदिक
वाक्यतैं ब्रह्मकूं तन्मात्र होनेतैं । यह अर्थ है ॥

८२५ उक्त प्रकारका ब्रह्म । जब निश्चय करनेकूं योग्य है ।
तब “ सो जैसैं ” इत्यादि वाक्य क्यूं है ? यह आशंका क-
रिके । ताका शेष होनेकरि प्रलयकूं दिखावनेकूं यह दृष्टां-
तका वचन है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां प्रलीन होवैहै इसविषै
सो प्रलय कहिये है । एक ऐसा जो प्रलय सो एकप्रलय क-
हिये है । ऐसैं विग्रह है ॥

कायनमेव० सर्वेषां कर्मणा० हस्तावे-
कायनमेव० सर्वेषामानन्दानामुपस्थ
एकायनमेव० सर्वेषां विसर्गाणां पायु-
(बुद्धि) एकायन है । ऐसैं सर्व कर्मोंका
दो हस्त एकायन है । ऐसैं सर्व आनंदोंका
उपस्थ एकायन है । ऐसैं सर्व विसर्गनका

गमन) कहिये एक प्रलय । अर्थ यह जो अविभा-
गकरि प्राप्ति है ॥ जैसें यह दृष्टांत है । ऐसैं सर्व
मृदु कर्कश कठिन पिच्छिल (गट्टायुक्त दधि आ-
दिक) वायुके आत्मभूत स्पर्शनका त्वक् ए-
कायन है । इहां त्वक् इस शब्दकरि त्वक्का

८२६ तडाग आदिकविषै गत (स्थित) जलनका समुद्रविषै
लय कहातैं होवै है । जातैं तिनकी तिसके साथि संगति नहीं
है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—इहांहीं
समुद्रशब्दकरि जलका सामान्य कहियेहै औ तातैं व्यतिरे-
ककरि जलविशेषनका अभाव विवक्षित है । तिनकूं ताका
साधनमात्र होनेतैं औ यातैं इनका इसविषै अविभागकी
प्राप्ति है । ऐसैं समुद्रविषै अविभागकी प्राप्ति है औ पिच्छिल
आदिकनका । इहां आदिशब्दकरि अनुक्त स्पर्शविशेष सर्व
ग्रहण करिये हैं ॥

८२७ ननु विषयनकूं इंद्रियके कार्यभावके अभावतैं स्प-

रेकायनमेव* सर्वेषामध्वनां पादावेका-
यनमेव* सर्वेषां वेदानां वागेकायनम्
॥ ११ ॥

पायु एकायन है । ऐसैं सर्व मार्गनका दो
पाद एकायन है । ऐसैं सर्व वेदनका वाक्
एकायन है ॥ ११ ॥

विषय स्पर्शका सामान्यमात्र कहियेहै । तिस-^{८२८}
विषै प्रविष्ट भये स्पर्शविषै समुद्रके प्रति आ-
पकीन्यांई तिसतैं व्यतिरेककरि अभावभूत
होवैहैं । जातैं तिसीहींके वे संस्थानमात्र होते
भये ॥ तैसैं सो स्पर्शसामान्यमात्र बी त्वक्
र्शनका त्वचाविषै विलय कहातैं होवैगा ? यह आशंका क-
रिके कहैहैं ॥

८२८ स्पर्शविशेषनके स्पर्शसामान्यविषै अंतर्भावकूं प्रपं-
चन करै हैं ॥

८२९ तथापि समस्त जगत्का ब्रह्म व्यतिरेककरि अभावतैं
ब्रह्मभाव है । यह कैसैं प्रतिज्ञा किया ? यह आशंका क-
रिके परंपराकरि ब्रह्मविषै सर्वके प्रविलयकूं दिखावनेकूं क्रमकूं
अनुक्रमसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मनके होते विषय
विषयीभावके देखनेतैं औ न होते न देखनेतैं विषयनका
समूह मनस्पदित मात्र है । ऐसैं ताके (मनके) विषयमात्र

शब्दका वाच्य है ॥ औ मनके विषयके सामान्य-
मात्ररूप संकल्पविषै त्वचाके विषयविषै स्पर्श
विशेषनकीन्यांई प्रविष्ट (प्रवेशकूं पाया) है ।
तिसतैं व्यतिरेककरि अभावभूत होवैहै ॥
ऐसैं मनका विषयवी बुद्धिके विषयके सामान्य
मात्रविषै प्रविष्ट है । तिसतैं व्यतिरेककरि
अभावभूत होवैहै । कहिये विज्ञानमात्रहीं हो-
यके प्रज्ञानधनरूप परब्रह्मविषै समुद्रविषै आ-
पकीन्यांई प्रलीन होवैहै ॥ ऐसैं परंपरा क्रम

(विषय सामान्य)विषै प्रविष्ट भये ता (विषयनके समूह)का
तिसतैं अतिरेककरि असद्भाव है ॥

८३० संकल्पकूं अध्यवसायकी परतंत्रताके देखनेतैं औ
अध्यवसायरूप बुद्धिविषै ताके विषयके पूर्वकीन्यांई अनु-
प्रवेशतैं संकल्प विकल्पात्मक मनकरि स्पंदित द्वैतके सं-
कल्पात्मक मनविषै अंतर्भावतैं औ तिस बुद्धिविषयके सा-
मान्यविषै प्रविष्ट भये विद्यमान मनके विषयके सामान्यका
तिसतैं व्यतिरेककरि असद्भाव है । ऐसैं कहैहैं ॥

८३१ सर्व जगत् । उक्त न्यायकरि बुद्धिमात्र होयके “सो
जो श्रेय आत्माके भीतर है ” इस श्रुतिकरि ब्रह्मविषै पर्य-
वसानकूं पावता है । ऐसैं कहैहैं ॥

८३२ ननु विलीयमान यह जगत् शक्तिविषै है शेष
(संस्कार) जिसका ऐसा हुयाहीं विलीन होवै है । काहेतैं
तत्त्वज्ञानतैं विना ताके निःशेष नाशके अनाश्रयणतैं । तिस-

करि शब्दादिकके करणरूप ग्राहककरि सहित प्रज्ञानघनविषै प्रलीन हुये उपाधिके अभावतैं सैधवघनकीन्यांई प्रज्ञानघन एकरस अनंत अपार निरंतर निरंजम ब्रह्म व्यवस्थित हो-
 वैहै । तैतैं आत्माहीं एक अद्वय है । ऐसैं प्र-
 तीति करनेकूं योग्य है ॥ तैसैं पृथिवीके विशेष-
 षरूप सर्व गंधोंका दो नासिका (घ्राणके विषय-
 का सामान्य) है ॥ तैसैं जलके विशेषरूप सर्व र-
 सनका जिह्वा इंद्रियके विषयनका सामान्य है ॥
 तैसैं तेजके विशेषरूपनका चक्षुके विषयका सा-

प्रकार हुये ब्रह्मके एकरसरूपकी प्रतिपत्ति कहांतैं होवेगी ?
 यातैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—शक्तिशेषरूप लयके हु-
 येबी ता (शक्ति) कूं दुर्निरूप होनेतैं वस्तुके एकरसकी बुद्धि
 अविरोद्ध है ॥

८३३ एकायनकी प्रक्रियातैं सर्वकूं उपसंहार करै हैं ॥
 इहां ब्राह्मणके विषयका सामान्य इत्यादिकविषै एकायन है ।
 ऐसैं सर्वत्र संबंध है ॥

८३४ फेर इहां प्रतिपर्याय जैसें होवै तैसैं ब्रह्मविषै पर्य-
 वसान कैसें है ? तहां कहैहैं ॥ इहां:—जैसें सर्व पर्यायो-
 विषै ब्रह्ममें पर्यवसान है । तैसैं कहिये है । यह अर्थ है औ
 पूर्वकी न्यांई याका त्वचाके विषयके सामान्यकी न्यांई यह
 अर्थ है औ संकल्पविषै लय है । यह शेष है औ विज्ञानमा-
 त्रविषै इस ठिकानेबी तैसैंहीं (लय ऐसा शेष) है ॥

मान्य है । तैसैं श्रोत्रादिकके विषयनका सामान्य पूर्वकी न्यांई (त्वचाके विषयके सामान्यकी न्यांई) है ॥ तैसैं श्रोत्र आदिकके विषयके सामान्योंका मनके विषयके सामान्यरूप संकल्पविषै लय होवैहै औ मनके विषयके सामान्यकावी बुद्धिके विषयके सामान्यरूप विज्ञानमात्रविषै लय होवैहै ॥ [ऐसैं सर्व जगत्] विज्ञानमात्र होयके प्रज्ञानघनरूप परब्रह्मकेविषै प्रलीन होवैहै ॥ तैसैं कर्म इंद्रियनके विषय जे वदन आदान गमन विसर्ग विषय अरु आंनदविशेष । वे तिन क्रियाओंके सामान्योंविषैहीं प्रविष्ट हुये समुद्रविषै अब्धिविशेषनकीन्यांई विभज्य (विभाग करनेके योग्य) नहीं होवैहैं । औ वे सामान्य प्राणमात्र होवैहैं औ प्राण । प्रज्ञान मात्र होवैहै ॥ इस रीति-

८३५ “ ऐसैं सर्व कर्मोंका ” इत्यादि वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

८३६ क्रियासामान्योंकी सूत्रात्माविषै संस्थानकी भेदताकूं अंगीकार करिके कहैहैं ॥ इहां चेतनकी उपाधिभूत क्रियाशक्ति अरु ज्ञानशक्तिके चेतनसैं भेदाभेदकूं अभिप्रायका विषय करिके “ औ प्राण ” इत्यादिकरि भावना करनेकूं योग्य है ॥

सैं जोई ^{८३७} प्राण है सो प्रज्ञा है। जोई प्रज्ञा है सो प्राण है। ऐसैं कौषीतकि शाखावाले ब्राह्मण पढते हैं ॥ ॥ नैनु ^{८३८} सर्वत्र विषयकाहीं प्रलय कहा। करणका तो नहीं। तहां कौन अभिप्राय है? यह ^{८३९} तेरा कथन। बाढ (श्रुतिनै करणका लय नहीं कहा यह सत्य) है:—किंतु ^{८४०} श्रुति। करणकूं विषयके समानजातिवाला मानती है। परंतु अन्यजातिवाला नहीं। विषयकाहीं आपका ग्राहक होनेकरि अन्य संस्थान करणनाम है ॥ जैसें रूप विशेषकाहीं संस्थान प्रदीप। सर्व रूपोंके प्रकाशनेविषै करण है। ऐसैं सर्व विषय विशेषनके हीं स्वस्वरूप विशेषनके प्रकाश होनेकरि अन्य संस्थान ^{८४२} करण हैं। प्रदीपकी

८३७ तहां तिनके अन्योन्य अभेदविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

८३८ श्रुतिके मुखतैं करणका लय नहीं भासता है औ आप व्याख्यान करियेहै। तहां कौन हेतु है? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

८३९ श्रुतिकरि करणके लयकी अनुक्तताकूं सिद्धांती। अंगीकार करै हैं ॥

८४० पूछे हुये अभिप्रायकूं खोलते हैं ॥

८४१ करणकी विषयसैं सजातीयताकूं वर्णन करै हैं ॥

८४२ यामैं क्या प्रमाण है? यह आशंकाकरिके। अनु-

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त
उदकमेवानुविलीयेत न हास्योद्ग्रह-

अर्थः—सो जैसे सैन्धवका खिल्य (ख-
डा) उदकविषै फेंक्या हुया उदकके तां-
ईहीं पीछे विलय होवैहै । या (खिल्य)के
उद्ग्रहण (उद्धार करिके पूर्ववत् ग्रहण)
न्याई ॥ तौतौ करणोंके पृथक् प्रलयविषै यत्न
करने योग्य नहीं है । विषयके सामान्यस्वरूप
होनेतौ विषयनके प्रलयकरिहीं करणोंका प्रलय
सिद्ध होवैहै इति ॥ ११ ॥

टीकाः—तौहीं (पूर्व ग्रंथविषै) “यह सर्व जो
यह आत्मा है” ऐसै प्रतिज्ञा किया । तिसविषै
मानकूं सूचन करै हैं ॥ इहांः—चक्षु जो है सो तैजस (ते-
जका कार्य) है । रूपादिकनके मध्यरूपकाहीं प्रकाशक हो-
नेतौ । संप्रतिपन्नकी न्याई ॥ इत्यादिक अनुमान । शास्त्रप्रका-
शिकाविषै जाननेकूं योग्य हैं ॥

८४३ करणोंकूं विषयकी सजातीयताके हुये फलितकूं
कहैहै ॥ इहां पृथक् विषयके प्रलयतौ यह शेष है औ एकाय-
नप्रक्रियाकी समाप्तिविषै इति शब्द है ॥

८४४ “ सो जैसे सैन्धवखिल्य ” इत्यादि वाक्यके संबं-
धकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करै हैं ॥ इहां पूर्वसंदर्भ (गत
ग्रंथरचना) “तहां” ऐसै कहिये है ॥

णायैव स्यात् । यतो यतस्त्वाददीत ल-
वणमेवैवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तम-

अर्थ नहीं होवैहै । जिस जिस देशतैं सो (उ-
दक) ग्रहण करिके आश्वादन करिये । ल-
वणहीं होवैहै ॥ ऐसैहीं अरे (मैत्रेयि) !
यह (परमात्मा नामक) महत्भूत अनंत

आत्माकी सामान्यता । आत्मातैं जन्यता औ
आत्माविषै प्रलयवान्तरूप हेतु कहा । तातैं
उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय कालविषै प्रज्ञानतैं
व्यतिरेककरि अभावतैं प्रज्ञान ब्रह्महीं है । आ-
त्माहीं यह सर्व है । ऐसैं जो प्रतिज्ञा किया ।
सो तर्कतैं साधित भया ॥ ॥ स्वाभाविक यह

८४५ प्रतिज्ञात अर्थविषै पूर्वोक्त हेतुकूं अनुवाद करिके।
साध्यकी सिद्धिरूप फलकूं दिखावै हैं ॥ इहां उक्त हेतुतैं
उक्त प्रकारका ब्रह्महीं सर्व यह जगत् है ऐसैं । जो प्रतिज्ञा
किया । यह सर्व जो यह आत्मा है । सो पूर्व उक्त दृष्टांतके
प्रबंधरूप तर्कके वशतैं साधित भया । ऐसैं योजना है ॥

८४६ उत्तर वाक्यके विषयके परिशेष अर्थ उक्त प्रलय-
विषै पौराणिकनकी संमतिकूं कहैहैं ॥ इहां कार्यनका प्रकृति-
विषै जो आश्रितपना है । सो स्वाभाविकपना है ॥

पारं विज्ञानघन एव । एतेभ्यो भूतेभ्यः
समुत्थाय तान्येवाऽनु विनश्यति न
अपार विज्ञानघनहीं है ॥ इन भूतनतैं
सम्यक् उत्थान करिके । तिन भूतनके
तांईहीं पीछे विनाशकूं पावताहै । मरणकूं

प्रलय होवैहै । ऐसैं पौराणिक कहते हैं ॥ ^{८४७} औ
जो ब्रह्मवेत्ता पुरुषनकूं ब्रह्मविद्यारूप निमित्त-
वाला बुद्धिपूर्वक प्रलय होवैहै । यह आत्यंतिक
प्रलय है । ऐसैं कहते हैं । जो (आत्यंतिक प्र-
लय) ^{८४८} अविद्याके निरोधद्वारा होवैहै । तिसके
अर्थ यह विशेष आरंभ है ॥ तिस (आत्यंतिक
प्रलय) विषै दृष्टांत ग्रहण करियेहै:-सो जैसैं
सैंधवखिल्य (सिंधुलवणका खडा) [सिं-
धुका विकार सैंधव] है । इहां सिंधुशब्दकरि
उदक कहियेहै । स्यंदनतैं (चलनेतैं) उदक
सिंधु कहियेहै । तिसका विकार वा तिसविषै

८४७ प्रलयांतर (आत्यंतिकप्रलय) विषैबी तिनकी सं-
मतिकूं कहैहैं ॥

८४८ द्वितीय प्रलयकूं आश्रय करिके पीछले ग्रंथकूं प्र-
गट करै हैं ॥ इहां तहां ऐसी आत्यंतिक प्रलयकी उक्ति है ॥

प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच
याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥

पायके संज्ञा (विशेषज्ञान) नहीं है। अरे !
ऐसें कहताहूं। इस रीतिसैं याज्ञवल्क्य क-
हते भये ॥ १२ ॥

होनेवाला जो लवण सो सैंधव है। सैंधव ऐ-
सा जो खिल्य (खिल) कहिये खडा सो सैंधव
खिल्य कहिये है। इहां खिलहीं खिल्य कहिये
है। स्वार्थविषै यत् प्रत्यय है। सो [लवणका
खडा]। उदक (अपने योनिरूप सिंधु) वि-
षै फेक्या हुया विलीयमान उदककेतांईहीं
पीछे विलयकूं पावताहै ॥ जो भौम अरु तै-
जसके संपर्कतैं खिल्य (खडे) कूं कठिनताकी
प्राप्ति है। सो स्वयोनि (उदक)के संपर्कतैं दूरी
होवैहै। सो उदकका विलय होना है। ताके पीछे
सैंधवखिल्य विलीन होवैहै। ऐसें कहियेहै ॥

८४९ उदक विलीयमान होवैहै। यह अयुक्त है। काहेतैं
कठिनताके विलय हुयेबी ताके लयके अदर्शनतैं? यह आ-
शंका करिके कहैहैं ॥

सो यह कहै है:—उदकके ताईहीं पीछे विलीन होवैहै ऐसैं ॥ ईसं खिल्यके उद्धार करिके पूर्वकीन्यांई ग्रहण करनेकूं कोईबी (सुष्ठुप्रकारसैं निपुण पुरुषबी) नहीं समर्थ होवैहै ॥ काहेतैं ? जिस जिस देशतैं सो उदक ग्रहण करिके प्राशन करिये [तहां तहां] लवणके आस्वादवालाहीं सो उदक होवैहै । परंतु खिल्यभाव नहीं होवैहै । जैसे यह दृष्टांत है ॥ ऐसैंहीं तो अरे मैत्रेयि ! यह परमात्मा नामक महद्भूत है । जिसैं महत्भूततैं तूं (मैत्रेयी) अविद्याकरि परिच्छिन्न हुयी कार्य अरु करणरूप उपाधिके संबंधतैं खिल्यभावकूं प्राप्त भयी हैं । औ मर्त्य (मरने योग्य मनुष्य) अरु जन्म

८५० न ह । इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां अन्वयके दिखावने अर्थ नहीं ऐसैं फेर कहा है औ महत्भूत एक अद्वैत है । ऐसैं उत्तरग्रंथविषै संबंध है औ इस अर्थकी सर्व उपनिषदनविषै प्रसिद्धताके दिखावने अर्थ वै शब्द है ॥

८५१ यह महत्भूत है । इस ठिकाने इदं शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥ सो यह परमात्मा नामक महत्भूत है । ऐसैं पूर्व ग्रंथके साथि संबंध है ॥

८५२ खिल्यभावकी प्राप्तिके कार्यकूं कथन करैहैं ॥

मरण क्षुधा तृषा आदिक संसार धर्मबन्धन हैं ।
 औ नीमरूप कार्यस्वरूप अमुक अन्वय (वंश)
 वाली मैं हूँ ऐसा ॥ सो खिल्यभाव तेरेकूँ कार्य-
 करणरूप उपाधिके संपर्ककी भ्रांतिसैं जनित
 है औ महत्भूत स्वयोनिरूप महासमुद्र स्था-
 नीय अजर अमर अभय शुद्ध सैधवघनकी न्याईं
 एकरस प्रज्ञानघन अनंत अपार निरंतर अविर्धी-
 जनित भ्रांतिके भेदसैं वर्जित परमात्माविषै
 प्रवेशित (प्रवेशकूँ पावै) है ॥ तिसैं स्वयोनि-

८५३ कौन यह खिल्यभाव अभिप्रेत है ? तहां कहैहैं ॥
 इहां कार्य करणके संघातविषै तादात्म्य अभिमानद्वारा जो
 जातिका अभिमान है । सो खिल्यभाव है औ इति शब्दकरि
 अभिमान लखिये है ॥

८५४ उक्त प्रकारके खिल्यभावके होते भूतका महत्पना
 कहातैं होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां खिल्य-
 भाव स्वशब्दका अर्थ है औ परमात्माकी परिशुद्धता अर्थ
 अजरादि विशेषण हैं ॥

८५५ किसरूपकरि एकरसता है ? सो कहैहैं ॥

८५६ ताके अपरिच्छिन्नभावकूँ कहैहैं ॥

८५७ ताके सापेक्षभावकूँ निवारण करै हैं ॥

८५८ प्रतिभासमान भेदके होते उक्तप्रकारका तत्व कैसें
 होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

८५९ उक्तप्रकारके तत्वविषै खिल्यभावका प्रवेश होइ ।
 तथापि क्या होवैगा ? यह आशंका भयी । यातैं कहैहैं ॥

करि ग्रस्त खिल्यभावके प्रविष्ट भये । अविद्या-
कृत भेदभावके प्रणाशित हुये । यह एकअद्वैत
महत्भूत होवैहै ॥ सर्वसैं अत्यंत बडा होनेतैं
औ आकाश आदिकका कारण होनेतैं सो महत्
है औ भूत कहिये ^{८६१}तीन कालविषै बी स्वरूपके
अव्यभिचारतैं सर्वदाहीं पर निष्पन्न है । ऐसैं
त्रैकालिक निष्ठाप्रत्यय है । अथवा भूतशब्द
परमार्थका वाची है । अर्थ यह जो महत् औ
पारमार्थिक है ॥ यद्यपि स्वप्नमा करिके किया-
हीं महत् आदिक पर्वतोपम लौकिक महत् हो-
वैहै । परंतु सो परमार्थ वस्तु नहीं है । यातैं वि-
शेषण देते हैं:—यह (ब्रह्म) महत् है औ भूत
है ऐसैं ॥ औ याका अंत विद्यमान नहीं है ।

८६० महत्पनैकूं साधते हैं ॥

८६१ भूतपनैकूं उपपादन करै हैं ॥

८६२ ननु महत् ऐसैं कहे हुये पारमार्थिक है । यह वि-
शेषण किस अर्थ है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां जा-
ग्रत्कालका परिदृश्यमानहीं महदादिरूप महत् यद्यपि हो-
वैहै । तथापि स्वप्न अरु मायाआदिकके तुल्य होनेतैं सो पर-
मार्थ वस्तु नहीं है । जातैं दृश्य जड जो है सो इंद्रजाला-
दिकतैं विशेष नहीं होवैहै । यातैं लौकिक महत्तैं ब्रह्मकूं
भिन्नकरनेकूं “भूत” ऐसा विशेषण है । यह अर्थ है ॥ औ
आपेक्षिक होवैगा । अनंतपना । यह शेष है ॥

यातें अनंत है ॥ कदाचित् आपेक्षिक अनंतता होवैगी । यातें विशेषण देते हैं:-अपार है ऐ-
सैं ॥ औ विज्ञप्ति कहिये विज्ञान औ विज्ञान
ऐसा जो घन सो विज्ञानघन है ॥ इहां घन
शब्द अन्य जातिके प्रतिषेध अर्थ है ॥ जैसें
सुवर्णघन है अरु अयोघन है । इति ॥ इहां
एव शब्द अवधारण (निश्चय)के अर्थ है । अर्थ
यह जो:-अंतरालविषै अन्य जातिअंतर वि-
द्यमान नहीं है ॥ ॥ जैवै यह एक अद्वैत पर-
मार्थतैं स्वच्छ अरु संसार दुःखकरि असंपृक्त
(असंग)है । तब आत्माकूं मैं जन्म्या मर्या सु-
खी दुःखी हूं । यह मेरा है । इत्यादि लक्षणवा-
ला अरु अनेक संसारके धर्मोंकरि उपद्रुत (दू-

८६३ अवधारणरूप अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

८६४ “ इन भूतनतैं सम्यक् उत्थानकरिके ” इत्यादिरूप
समनंतर वाक्यकरि व्यावर्त्य (निवार्य) आशंकाकूं कहैहै ॥

८६५ वस्तुतैं शुद्धताके हुये क्या सिद्ध होवैहै ? सो
कहैहै ॥

८६६ खिल्यभावकूंहीं प्रतिवादी । विशेषण देताहै ॥ इहां
अनेक संसाररूप धर्म जो क्षुधा तृषाआदिक है । तिसकरि
उपद्रुत कहिये दूषित । यह अर्थ है ॥

षित) यह खिल्यः किस निमित्तवाला है ?
 यह शंका भयी । तहां कहिये हैः—इन भूतनतैं
 कहिये जे ये स्वच्छ सलिलोपम प मात्माके
 कार्य करणरूप विषयाकारकरि परिणत नाम-
 रूपात्मक सलिलके फेन बुद्बुद्की उपमावाले
 हैं औ विषयपर्यंत जिनका प्रज्ञानघन ब्रह्म-
 विषै परमार्थ विवेकज्ञानकरि नदी समुद्रकी

८६७ तब तिसविषै निमित्तके अभावतैं ताका खिल्यपना
 नहीं होवैगा । ऐसैं मानिके प्रतिवादी । कहैहै ॥

८६८ खिल्यभावविषै निमित्तकूं दिखावते हुये सिद्धांती ।
 उत्तरकूं कहैहैं ॥

८६९ एतत् (इन) शब्दके अर्थकूं व्याख्यान करै हैं ॥
 इहां स्वच्छ परमात्माके कार्य करण अरु विषय आकारकरि
 परिणामकूं प्राप्तभये । यह अर्थ है ॥

८७० स्वच्छताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

८७१ तिनकूं व्यवहारकी सिद्धि अर्थ विशेषण देते हैं ॥

८७२ तिनके अतिदुर्बलपनैकूं सूचन करै हैं ॥

८७३ तिनकी प्रत्यक्षताके हुयेबी प्रकृतपनैके अभाव हु-
 ये एतत्शब्दकरि तिनका परामर्श (ग्रहण) कैसें होवैगा ?
 यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां उक्त कायनप्रक्रियाविषै ।
 यह शेष है ॥

८७४ प्रज्ञानघन ब्रह्ममें भूतनके प्रलयविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

न्यांई प्रविलापन कहा । इन हेतुभूत सैत्य श-
ब्दके वाच्य भूतनतैं सम्यक् उत्थान करिके
कहिये सैधवखिल्यकीन्यांई वाँ जैसेँ जलोंतैं
सूर्य चंद्र आदिकका प्रतिबिंब होवैहै । वा जैसेँ
स्वच्छ स्फटिकका अलक्तकादि (लाक्षादि) उ-
पाधिनतैं रक्त आदिक भाव होवैहै ॥ ऐसैं कार्य-
करणभूत भूतरूप उपाधिनतैं विशेष आत्माके
खिल्यभावकरि सम्यक् उत्थान करिके जिनिं
भूतनतैं उत्थित होवैहै ॥ जब वे कार्यकरण
रूप विषयाकारकरि परिणत । आत्माके विशेष
स्वरूपके खिल्यके हेतुभूत ये भूत । ईंस्त्र अरु

८७५ हेतुविषै पंचमी है । ऐसैं दिखावै हैं ॥

८७६ पूर्वब्राह्मणविषै षष्ठी विभक्ति है अंतविषै जिसके
ऐसैं सत्यशब्दके वाच्य होनेकरि तिन (भूतन)के प्रकृत-
पनैकूं कहैहैं ॥

८७७ जैसेँ सैधवरूप हुया खिल्य (खडा) सिंधुतैं तेजके
संबंधकूं अपेक्षाकरिके उद्भव होवैहै । तैसेँ भूतनतैं खिल्य-
भाव होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

८७८ समुत्थानकूंहीं विवरण करै हैं ॥

८७९ “ तिनहींके पीछे ” इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान
करै हैं ॥ इहां खिल्यके हेतुभूत कहिये तिसविषै हेतुताके
हुयेवी वे भूत । यह अर्थ है ॥

८८० ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

आचार्यके उपदेशकरि जनित ब्रह्मविद्यासैं न-
दी संमुद्रकी न्यांई प्रविलापित हुये विनाशकूं
पावै हैं । तब सलिलविषै ^{८८२} फेन बुद्बुद् आदि-
ककी न्यांई तिन (भूतन)के विनाशकूं पावते
हुये पीछे सो यह विशेषात्माका खिल्यभाव वि-
नाशकूं पावताहै ॥ जैसे ^{८८३} उदक अरु अलक्तक
आदिक हेतुके दूरी किये हुये सूर्य चंद्र अरु स्फ-
टिक आदिकका प्रतिबिंब विनाशकूं पावताहै ।
चंद्र आदिकका स्वरूपहीं परमार्थतैं व्यवस्थित
होवैहै । ताकीन्यांई प्रज्ञानघन अनंत अपार
स्वच्छ वस्तु व्यवस्थित होवैहै । तिस (कैवल्य)-
विषै मरिक्के कार्य करणके संघातनतैं विमुक्त
पुरुषकी विशेषसंज्ञा नही है ॥ ऐसैं अरे मै-

८८१ ता (ब्रह्मविद्या)के फलकूं दृष्टांतसहित कहैहैं ॥

८८२ जैसे जलविषै फेनआदिक विनाशकूं पावतेहैं ।
तैसे तिन भूतनके विनाशकूं प्राप्त हुये पीछे खिल्यभाव ना-
शकूं पावता है । ऐसैं कहै हैं ॥

८८३ फेर भूतनके औ खिल्यभावके विनाश हुये क्या
अवशेष रहैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां “तहां” ऐसैं कैवल्यकी उ-
क्ति है ॥

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगव न-
अर्थः—सो मैत्रेयी । प्रसिद्ध कहतीभईः—

त्रेयि ! मैं कहताहूँ । मैं यह हूँ । अमुकका पुत्र
हूँ । मेरा यह क्षेत्र है । धन है । मैं सुखी हूँ दुःखी
हूँ । इत्यादिरूप विशेष संज्ञा नहीं है । अविद्या-
कृत होनेतैं औ ता अविद्याकूं ब्रह्मविद्याकरि
निःशेषतैं नाशित होनेतैं चैतन्यस्वभावविषै
स्थित ब्रह्मवेत्ताकूं विशेषसंज्ञाका संभव कहातैं
होवैगा ॥ शरीरविषै अवस्थित (सुषुप्त) कूं बी
विशेषसंज्ञा नहीं संभवैहै । फेर कार्यकरणतैं
विमुक्त अरु सर्व ओरतैं मुक्त भये ब्रह्मवेत्ताकूं
विशेषसंज्ञा नहीं है । यामैं क्या कहना है !!
इस रीतिसैं मैत्रेयी भार्याके अर्थ । याज्ञवल्क्य
मुनि । परमार्थ दर्शनकूं प्रसिद्ध कहते भये
॥ १२ ॥

टीकाः—^{८८६}ऐसैं प्रतिबोधित भयी सो मैत्रेयी ।

८८४ उक्तहीं वाक्यार्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

८८५ अशरीररूप ब्रह्मवेत्ताके विशेषसंज्ञाके अभावकूं कै-
मुक्तिकन्यायकरि कथन करै हैं ॥ इहां शरीरावस्थित पदका
सुषुप्तकूं । यह अर्थ है औ सर्वतैं मुक्तकूं । यह शेष है ॥

८८६ उक्त परमार्थदर्शनकूंहीं स्पष्ट करनेकूं मैत्रेयी । प्रश्न

मूमुहन्न प्रेत्यसंज्ञाऽस्तीति ॥ स होवाच
याज्ञवल्क्यो न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं
वा अर इदं विज्ञानाय ॥ १३ ॥

इहांहीं (इस ब्रह्मविषैहीं) मुजकूं भगवान्
(पूजावान् आप) । “मरणकूं पायके संज्ञा
नहीं है” ऐसैं मोहकूं करते भये ॥ ॥ सो या-
ज्ञवल्क्य कहते भये:—अरे ! मैं मोहकूं नहीं
कहताहूं । अरे ! यह विज्ञानके अर्थ निश्चय
करि परिपूर्ण है ॥ ॥ १३ ॥

प्रसिद्ध कहती भयी:—इहांहीं (इसीहीं एक
ब्रह्मरूप वस्तुविषै) विरुद्धधर्मवान्पनैकूं क-
हनेवाले भगवान् (तुम)नैं मेरेकूं मोहकिया ।
सो कहैहै:—इहांहीं मुजकूं भगवान् (पूजावान्
आप) मोहकूं करते भये ॥ ॥ ननु तिस (या-
ज्ञवल्क्य)नैं विरुद्धधर्मवान्पना कैसें कहा ?
तहां कहियेहै:—पूर्व विज्ञानघनहीं है । ऐसैं
करै है ॥ इहां तिसनैं । याका याज्ञवल्क्यनैं । यह अर्थ है ।
औ ऐसैं कहनेवाले तिसनैं विरुद्धधर्मवान्पना कहा । यह
शेष है ॥

प्रतिज्ञा करिके । फेर मरिके संज्ञा नहीं है । ऐ-
^{८८७}सैं ॥ विज्ञानघनहीं कैसें है वा मरिके संज्ञा
 नहीं है यह कैसें है । जाँतैं उष्ण औ शीत ए-
 कहीं अग्नि नहीं होवैहै । जाँतैं इहां (उक्तवि-
 षयविषै) में सूढ हूं ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य
 प्रसिद्ध कहते भये:—अरे मैत्रेयि ! मैं मोहकूं
 नहीं कहता हूं । अर्थ यह जो मैं मोह करने-
 वाले वाक्यकूं नहीं कहता हूं ॥ ॥ नैनु विज्ञान-
 घन अरु संज्ञाके अभावरूप विरुद्ध धर्मवान्प-
 नैकूं तुम कैसें कहते भये? मैंनें यह एक धर्मी-

८८७ ऐसैं कहनेवाले याज्ञवाल्क्यकीबी काहेतैं विरुद्ध
 धर्मकी उक्ति है? तहां मैत्रेयी कहैहै ॥

८८८ एकहींकी विज्ञानघनताके हुये औ संज्ञारहित-
 ताके हुये काहेतैं विरुद्ध बुद्धि है? यह आशंका करिके ।
 मैत्रेयी । कहैहै ॥

८८९ विरुद्धबुद्धिके फलकूं मैत्रेयी कहैहै ॥ इधर:—इहां
 यह उक्तविषयका ग्रहण है ॥

८९० नवै (नहीं) इस प्रतीककूं लेके अब याज्ञवल्क्य
 व्याख्यान करै हैं ॥

८९१ मोहन वाक्यकूं आप कहतेहीं हो? इस प्रकार
 मैत्रेयी शंका करैहै ॥

८९२ याज्ञवल्क्य समाधान करै हैं ॥

विषै नहीं कहा । तैने^{८९३}हीं यह विरुद्धधर्मवान्ता-
 करि एक वस्तु । भ्रांतिसे^{८९४} ग्रहण किया है । मैंने
 तो कहा नहीं ॥ मैंने तो यह कहा है:—जो अ-
 विद्याकरि आरोपित कार्यकरणके संबंधी आ-
 त्माका खिल्यभाव है । ताके विद्याकरि नाशित
 हुये तिस निमित्तवाली शरीर आदिक संबंधी
 विषै अन्यभावके ज्ञानरूप जो विशेषसंज्ञा है ।
 सो कार्यकरणके संघातरूप उपाधिके प्रविला-
 पित हुये हेतुके अभावतै नष्ट होवैहै । उदक
 आदिक आधारके नाशतै चंद्रादिकके प्रतिबिंब
 औ तिस निमित्तवाले प्रकाश आदिककी न्यांई ॥
^{८९५} फेर परमार्थरूप चंद्र अरु आदित्यके स्वरूपके
 अनाश^{८९६}न्यांई विज्ञानघनरूप असंसारी ब्रह्म-
 स्वरूपका नाश नहीं होवैहै । सो (ब्रह्म) वि-

८९३ तब मुजकूं एकी वस्तुविषै विरुद्धधर्मवान्ताकी
 बुद्धि कैसें भयी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

८९४ तब तुहनें क्या कहा ? यह शंका भई । तहां कहैहैं ॥

८९५ ननु खिल्यभावके विनाश हुये प्रत्यगात्माका रूपहीं
 विनाशकूं पावैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

८९६ ब्रह्मस्वरूपके अनाश हुये विज्ञानघनकूं क्या आया ।
 इस आशय करिके । कहैहैं ॥

ज्ञानघन है । ऐसैं कहा । परंमार्थतैं सर्व जगत्का आत्मा सो भूतर्नके नाशतैं विनाशी नहीं होवैहै । विद्या तो अविद्याकरि जो खिल्यभाव है सो होवैहै । “वाचारंभण विकार नामधेय है” इस अन्य श्रुतितैं ॥ यंह तो पारमार्थिक है । “अविनाशीहीं अरे ! यह आत्मा है” योंतैं अरे ! यह महत्भूत अनंत अपार जैसा व्याख्यान किया तैसा विज्ञानके अर्थ (जाननेकूं) अलं (परिपूर्ण) है काहेतैं “विज्ञाताकी विज्ञातिका विपरिलोप नहीं है अविनाशी होनेतैं” ऐसैं जातैं आगे कहियेगा ॥ १३ ॥

८९७ विज्ञानघनके उक्तपनैकूं दिखावै हैं ॥

८९८ तब “ तिनकेहीं पीछे विनाशकूं पावता है ” यह कैसे कहा ? तहां कहैहैं ॥

८९९ खिल्यभावकी अविद्याकृतताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

९०० ननु खिल्यभावकी न्यांई परमात्माकाबी विनाशीपना होवैगा ? इस प्रकार जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

९०१ पारमार्थिकताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

९०२ अविनाशीभावके फलकूं कहैहैं ॥ इहां जाननेकूं परिपूर्ण है । ऐसैं संबंध है ॥

९०३ इदं (यह) इत्यादि पदनके गतार्थ होनेतैं व्याख्यान करनेकी अयोग्यताकूं सूचन करै हैं ॥

९०४ विज्ञानघनहीं है । इस अर्थविषै वाक्यशेषकूं प्रमाण करै हैं ॥

यत्र हि द्वैतमिव भवति । तदितर इ-
तरं जिघ्रति । तदितर इतरं पश्यति ।

अर्थः—जहां (खिल्यभावके होते) हीं
द्वैतकीन्यांई होवैहै । तहां इतर इतरकूं सूं-
घताहै । तहां इतर इतरकूं देखताहै । त-

टीकाः—ननु तव मरिके संज्ञा नहीं है । यह
कैसे कहिये है ? तहां सुनोः—जहां कहिये जि-
स अविद्या कल्पित कार्यकरणके संघातरूप
उपाधिकरि जनित विशेष आत्मारूप खिल्य-
भावके होते जातैं परमार्थतैं अद्वैतरूप ब्रह्मविषै
द्वैतकी न्यांई (आत्मातैं भिन्नकी न्यांई) वस्तु

१०५ ननु आत्माका विज्ञानघनपना जब प्रामाणिक है ।
तव संज्ञा (विज्ञान)के निषेधका वाक्य अयुक्त होवैगा ?
इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

१०६ अविद्याकृत विशेषविज्ञानके अभावके अभिप्रायकरि
निषेधवाक्यका संभव है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहांः—
जिस उक्तलक्षणवाले खिल्यभावके होते जातैं उक्त प्रकारके
ब्रह्मविषै द्वैतकीन्यांई द्वैत लखीयेहै । तातैं तिस (खिल्यभाव)
के होते इतर इतरकूं सूंघताहै । ऐसैं संबन्ध है ॥

१०७ द्वैतकी न्यांई ऐसैं उक्त अर्थकूं अनुवाद करिके व्या-
ख्यान करै हैं ॥

तदितर इतरं शृणोति। तदितर इतरमभि-
वदति । तदितर इतरं मनुते । तदितर इ-
तरं विजानाति ॥ यत्र वा अस्य सर्वमा-
त्मैवाभूत्तत्केन कं जीघ्रेत्तत्केन कं पश्ये-

हां इतर इतरकूं सुनताहै । तहां इतर इ-
तरकूं कहताहै । तहां इतर इतरकूं मनन
करताहै । तहां इतर इतरकूं जानताहै ॥
जहां (विद्याअवस्था विषै) या (ब्रह्म-
वेत्ता) कूं सर्व आत्माहीं होता भया । तहां

अंतर उपलक्षित होवैहै ॥ ॥ ननु द्वैतकरि
द्वैतकूं उपमीयमान (उपमाकूं प्राप्त) होनेतैं पा-
रमार्थिकपना है ? यह शंका भयी । तहां सि-
द्धांती कहै हैं:—सो बनै नहीं । काहेतैं “वाँचा-

९०८ इव शब्दके उपमारूप अर्थकूं अंगीकार करिके । प्र-
तिवादी शंका करै है ॥ इहां यह अर्थ है:—द्वैतकरि द्वैतकूं
उपमीयमान होनेतैं दृष्टांतरूप औ दार्ष्टांतरूप तिस (द्वैत)का
वस्तुपना होवैगा । काहेतैं उपमान अरु उपमेयरूप चंद्र अरु
मुखके वस्तुपनैकी प्रतीतितैं ॥

९०९ द्वैतप्रपंचके मिथ्यात्वकी कहनेवाली श्रुतिके वि-
रोधतैं । ताकी सत्यता नहीं है । इस रीतिसैं सिद्धांती । परि-

तत्केन कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदे-
 तत्केन कं मन्वीत । तत् केन कं विजा-
 नीयात् ॥ येनेदं सर्वं विजानाति तं
 किसकरि किसकूं सूंघे । तहां किसकरि
 किसकूं देखै । तहां किसकरि किसकूं सुनै ।
 तहां किसकरि किसकूं कहै । तहां किसक-
 रि किसकूं मनन करै । तहां किसकरि कि-
 रंभण विकार नामधेय है” इस अन्य श्रुतितैं
 औ “एकहीं अद्वितीय है । आत्माहीं यह सर्व है”
 ऐसैं बी कहा है ॥ जातैं द्वैतकीन्यांई होवै है ।
 तातैंहीं तहां तिस (खिल्यभाव)के होते प-
 रमात्मातैं इतर यह खिल्यभूत आत्मा [अप-
 रमार्थतैं हुया निरंतर सूंघताहै] । परमार्थरूप
 चंद्र आदिकतैं इतर उदकगत चंद्र आदिकके

हार करै हैं ॥ इहांः—तहां याका तिस खिल्यभावके होते ।
 यह अर्थ है औ स्वप्न आदिक द्वैतकी न्यांई जागरितविषैबी
 सो द्वैत जातैं च्यारीओरतैं लखिये है । तातैं परमात्मातैं
 इतर यह खिल्यभूत आत्मा अपरमार्थतैं हुया निरंतर सूंघता
 है । ऐसैं योजना है ॥

९१० परमात्मातैं इतर अपरमार्थरूप खिल्यभूत आत्मा-
 विषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन वि-
जातीयादिति ॥ १४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य
चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

सकूं जानै ॥ जिसकरि इस सर्वकूं जानता
है ताकूं किसकरि जानै । अरे ! विज्ञाताकूं
किसकरि जानै । इति ॥ १४ ॥

इति श्रीमद् बृहदारण्यकोपनिषद् मूलमात्र-भाषादी-
पिकायां द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

प्रतिबिंबकीन्यां ई ॥ द्रष्टा इतर चक्षु आदिक
करणकरि इतर जो देखने योग्य रूपादिक है ।
ताकूं देखताहै ॥ इहां “ईतर इतरकूं” । ऐसैं कार-
कके दिखावने अर्थ कहा है औ “देखता है” ऐसैं

९११ इतरशब्दकूं अनुवाद करिके । ताके अर्थकूं क-
हैं ॥

९१२ अविद्यादशाविषै सर्ववी कारक हैं । काहेतैं कर्त्ता
औ कर्मके निर्देशकूं सर्व कारकोंका उपलक्षण होनेतैं । ऐसैं
कहैहैं ॥

क्रिया अरु फलका कथन है ॥ जैसे^{९१३} छेदन करै है यह क्रियापद है । कहिये जैसे उद्यम करिके उद्यम करिके निपातन [रूप क्रिया] औ छेद्य (छेदनरूप क्रियाके विषयकाष्ठ) का द्वैधीभाव (काष्ठके दो टुकडे करनेरूप क्रियाका फल) उभय (दोनूं) “ छेदन करै है ” इस एकहीं [क्रियापदरूप] शब्दकरि कहिये है । फलोंकूं क्रियारूप अवसानवाले होनेतैं औ क्रियातैं व्यतिरेककरि ताके फलकी अप्रतीतितैं ॥ ॥ औ इतर^{९१४} घ्राता । इतर घ्राणकरि इतर घ्रातव्य (गंध) कूं सूंघताहै ॥ तैसें^{९१५} सर्वकूं पूर्वकी

९१३ क्रिया अरु फलकी एकशब्दकी वाच्यताविषै दृष्टांतकूं विवरण करै हैं ॥

९१४ दृष्टांतविषैवी विप्रतिपत्तिकूं आशंका करिके । अनंतर उक्त हेतुकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥ ओ यातैं “ सूंघताहै इहांवी क्रिया अरु फलकूं एकशब्दकी वाच्यता अविरुद्ध है । यह शेष है ॥

९१५ उत्तर वाक्यके अर्थकूं अनुवादकरिके वाक्यांतरों-विषै अतिदेश करै हैं ॥ इहां:—इतर द्रष्टा इतर चक्षुकरि इतर दृष्टव्यकूं देखताहै । इत्यादि देखनेकूं योग्य है । यह शेष है ॥

९१६ उत्तर वाक्यनविषैवी पूर्व वाक्यकीन्याई कर्त्ता अरु

न्याईं जानताहै । यँहँ अविद्यावान्की अवस्था है ॥ जँहां तो ब्रह्मविद्याकरि अविद्या नाशकूँ प्राप्त भयी । तहां आत्मातँ व्यतिरेककरि अन्यका अभाव है ॥ जँहांहीं इस ब्रह्मवेत्ताकूँ सर्व नाम रूपआदिक आत्माविषै हीं प्रविलापित होवैहै (आत्माहीं संवृत्त भया) कहिये जँहां ऐसँ आत्माहीं होता भया । तँहां किस करणकरि । किस द्रष्टव्य (रूप)कूँ कौन देखे । तैसँ सूँधे । जाने ॥ ॥ जँतँ सर्वत्र कारकॉकरि साध्य क्रिया होवैहै । यातँ कारकके अभाव हुये क्रियाका असंभव होवैहै औ क्रियाके कर्मके निर्देशकूँ सर्व कारकॉकी उपलक्षणता औ क्रियापदकूँ क्रिया अरु ताके फलकी वाचकता तुल्य है । ऐसँ कहैहँ ॥

९१७ “ जहांहीं ” इत्यादिरूप वाक्यके अर्थकूँ उपसंहार करै हँ ॥

९१८ “ इहांहीं याकूँ ” इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूँ कहैहँ ॥

९१९ उक्त अर्थविषै वाक्यके अक्षरनकूँ व्याख्यान करैहँ ।

९२० ताही अर्थकूँ संक्षेपसँ कहैहँ ॥ इहांः—सर्व कर्त्ता अरु करण आदिक । यह शेष है ॥

९२१ “ तहां किसकरि ” इत्यादि वाक्यकूँ व्याख्यान करै हँ ॥

९२२ किं शब्दके आक्षेपरूप अर्थकूँ कथन करै हँ ॥

अभाव हुये फलका अभाव होवैहै ॥ तातैं अ-
विद्याकेहीं होते क्रिया कारक अरु फलका व्य-
वहार है । ब्रह्मवेत्ताकूं नहीं । ^{१२३}सर्वका आत्मा
होनेतैं हीं । आत्मव्यतिरेककरि कारक क्रिया
वा फल नहीं है औ ^{१२४}अनात्मा हुया सर्व किसी-
काबी आत्माहीं नहीं होवैहै ॥ तातैं अविद्या
करिहीं अनात्मभाव परिकल्पित है । परमार्थतैं
तो आत्मातैं व्यतिरेककरि किंचित् नहीं है ।
^{१२६}तातैं परमार्थरूप आत्माकी एकताके ज्ञानके
हुये क्रिया कारक अरु फलके ज्ञानका असंभव
है । ^{१२७}यातैं विरोधतैं ब्रह्मवेत्ताकूं क्रियाओंकी औ

१२३ ननु ब्रह्मवेत्ताकेबी कारकद्वारा क्रिया आदिक
स्वीकार करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१२४ सर्वके आत्मभावकी असिद्धिकूं आशंका करिके ।
“सर्व आत्माहीं होताभया” इस श्रुतिकरि समाधान करैहैं ।

१२५ तब सर्व आत्मव्यतिरेककरि कैसें भासताहै ? यह
आशंका करिके । कहैहैं ॥

१२६ भेदभानकी अविद्याकृतताके हुये फलितकूं कहै-
हैं ॥ इहांः—तिसके हेतु अज्ञानकूं निवर्त्त होनेतैं । यह
शेष है ॥

१२७ ननु एकताके प्रत्ययतैं अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा
क्रियाआदिकके प्रत्ययके निवृत्त हुयेबी क्रियाआदिक होवैगा ?
तहां नहीं ऐसें कहैहैं ॥ इहांः—करण औ प्रमाणके अभाव
हुये कार्यकूं विरुद्ध होनेतैं । यह “यातैं” पदका अर्थ है ॥

तिनके साधनोंकी अत्यंतहीं निवृत्ति होवैहै ॥
 किं३संकरि किसकूं । यह आक्षेपके अर्थ वचनहै ।
 प्रकारांतरके असंभवके दिखावने अर्थ नहीं ।
 काहेतैं किसीबी प्रकारकरि क्रिया करण आ-
 दिक कारकोंके असंभवतैं । अर्थ यह जोः—
 किसीकरिबी । किसकूं बी । कोईबी । किसी प्रका-
 रसैं बी । नहीं देखताहै ॥ जैहांबी अविद्या अ-
 वस्थाविषै अन्य अन्यकूं देखताहै । तहांबी
 जिसकरि इस सर्वकूं जानताहै । ताकूं किस-
 करि जानै । जिंसंकरि जानताहै तिस करणके

९२८ ननु किंशब्दके प्रश्नरूप अर्थवाले प्रतीयमान हुये
 विद्वानकूं क्रिया अरु ताके साधनकी अत्यंतनिवृत्ति कैसें क-
 हियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः— किंशब्दकी
 पूर्वहीं आक्षेपार्थता उक्त है औ सो आक्षेपरूप अर्थका वचन
 विद्वानके सर्व प्रकारकी क्रिया अरु कारक आदिकके असं-
 भवके दिखावने अर्थ है । यातैं विद्वानकूं अत्यंतहीं क्रियाकी
 निवृत्ति युक्त है ॥

९२९ सर्व प्रकारके असंभवकूंहीं आकारकरि दिखावैहैं ॥

९३० केवल्य अवस्थाके प्रति स्थित होयके संज्ञाके अ-
 भावका वचन है । ऐसैं कहिके तहांहीं किंपुनर्न्यायकूं कहनेकूं
 अविद्या अवस्थाविषैबी साक्षीके ज्ञानकी अविषयताकूं कहैहैं ॥

९३१ जिस कूटस्थरूप बोधकरि व्याप्तहुया लोक । सर्वकूं
 जानता है । तिस साक्षीकं किस करणकरि वा कौन ज्ञाता

विज्ञेयविषै विनियुक्त (उपयुक्त) होनेतैं औ तातैं ज्ञाताकूं ज्ञेयविषैहीं जिज्ञासा होवैहै आत्माविषै नहीं ॥ औ अग्निकीन्यांई^{९३३} आत्माका^{९३४} विषय आत्मा नहीं होवैहै औ अविषयविषै ज्ञाताकूं ज्ञान नहीं संभवैहै । तातैं जिसकरि इस सर्वकूं जानताहै । तिस विज्ञाताकूं किस करणकरि वा कौन अन्य जानैगा ॥ जवतो

जानैगा । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— जिस चक्षुरादिकरि लोक जानता है । तिस करणकूं विषयके ग्रहणकरिहीं उपक्षीण (कृतार्थ) होनेतैं । ताकी साक्षीविषै प्रवृत्ति नहीं है ॥

९३२ आत्माकूं असंदिग्ध भाव (सत्ता)वाला होनेतैंबी प्रमेयभावकी असिद्धि है । ऐसैं कहैहैं ॥

९३३ किंवा:—आत्मा आपकरिहीं जानियेहै वा अन्य ज्ञाताकरि ? तिनमें आद्य पक्ष बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

९३४ द्वितीय पक्ष बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अन्य ज्ञाताके अभावतैं ताका विषय यह आत्मा कहातैं तिसकरि जाननेकूं शक्य होवैहै । जातैं अन्य ज्ञाता नहीं है “ इसतैं अन्य द्रष्टा नहीं है ” इत्यादि श्रुतितैं ॥

९३५ आत्माविषै प्रमाता अरु प्रमाणके अभाव हुये ज्ञानकी अविषयता फलती है । ऐसैं कहैहैं ॥

९३६ “ विज्ञाताकूं ” इत्यादि वाक्यके अर्थकूं प्रपंचन करैहैं ॥ इहां:—सो ऐसैं स्वरूपकी अपेक्षावाला विज्ञानघनप-

१०६६ श्रीबृहदारण्यकोपनिषत् ॥ [द्वितीया-

फेर परमार्थके विवेकी ब्रह्मवेत्ताकूं विज्ञाताहीं
केवल अद्वैत वर्त्तताहै । तिस विज्ञाताकूं अ-
रे ! किसकरि जानै इति ॥ १४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ४ ॥

ना है औ विशेष अविशेष विज्ञानकी अपेक्षावाला संज्ञाके अ-
भावका वचन है ॥ इस रीतिसैं दोनूँका अविरोध है । इति ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीयाध्यायगतचतुर्थब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्विती-
याध्यायस्य पंचमं मधु-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपि-
काया द्वितीयाध्यायस्य पंचमं-मधु-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—यह पृथिवी सर्व भूतनका मधु

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया
द्वितीयाध्यायस्य पंचमं मधु-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

टीकाः—^{९३७}जो ^{९३८}केवल कर्म निरपेक्ष अमृतभा-

अथ द्वितीयाध्यायगतपंचमब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

९३७ पूर्वोत्तर ब्राह्मणकी संगतिकूं कहनेकूं वृत्तकूं की-
र्तन करै हैं ॥

९३८ कैवल्यकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां सो आत्मज्ञान
कहा । ऐसैं संबंध है । तिसतैं निराकांक्षपना सिद्ध भया ।
यह चकार (औ)का अर्थ है ॥

पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चाय-
 मस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पु-
 रुषो यश्चायमध्यात्मं शारीरस्तेजोम-
 है । इस पृथिवीके अर्थ (पृथिवीके) सर्वभूत
 मधु (कार्य) हैं ॥ औ जो यह इस पृथिवी-
 विषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो
 यह अध्यात्मरूप शारीर तेजोमय अमृत-
 वका साधन है । सो कहनेकूं योग्य है । औ
 सो यातैं मैत्रेयि—ब्राह्मण आरंभ किया है । आ-
 त्मज्ञान सर्व संन्यासके अंगोंकरि विशिष्ट
 कहा [तातैं निराकांक्ष सिद्ध भया] ॥ औ आ-
 त्माके विज्ञात भये सर्व यह विज्ञात होवैहै औ
 आत्मा सर्वतैं प्रिय है । तातैं आत्मा देखनेकूं

१३९ आत्मज्ञान । संन्यासी जनोंकाहीं है । ऐसैं नियम क-
 रनेकूं विशेषण देते हैं ॥

१४० ननु तिसतैं निराकांक्षपना कहातैं होवैगा । का-
 हेतैं तिसके होतेवी अन्य विज्ञेयके संभवतैं ? यातैं कहैहैं ॥

१४१ “ प्रसिद्ध अरे ! पतिके काम अर्थ पति प्रिय नहीं
 होवैहै ” इत्यादिकविषै उक्त अर्थकूं स्मरण करावैहैं ॥

१४२ ताकी निरतिशय प्रेमकी आस्पदताकरि परमानंद-
 ताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

योऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १ ॥

मय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह आ-
त्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है । यह
सर्व है ॥ १ ॥

योग्य है औ सो श्रवण करनेकूं योग्य है । मनन
करनेकूं योग्य है अरु निदिध्यासन करनेकूं यो-
ग्य है । ऐसैं दर्शनके प्रकार (उपायके भेद)
कहे । औ तिनमें आचार्य अरु आगमकरि
श्रवण करनेकूं योग्य है औ तर्कतैं मनन करने-
कूं योग्य है । औ तैंहां (दुंदुभि आदिक ग्रंथ
विषै) तर्क पूर्व कहा है । औ आत्माहीं यह सर्व है ।

१४३ सो जब दर्शनके योग्य है । तब ताके दर्शनविषै
कौन साधन हैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां दर्शनके
प्रकार कहिये दर्शनके उपायके प्रभेद ॥

१४४ श्रवण अरु मननके स्वरूपविषै विलक्षणताकूं दि-
खावै हैं ।

१४५ कौन यह तर्क है । जिसकरि आत्मा मनन करने
योग्य होवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां दुंदुभिआदिक ग्रंथ । सप्त-
मीका अर्थ है ॥

१०६९ ————— १०६९ ॥

ऐसैं प्रतिज्ञा किये अर्थका हेतुवचन आत्मा एककी सामान्यता आत्मा एकतैं उद्भवता औ आत्मा एकविषै प्रलय है ॥ तैंहां आत्मा एकविषै सामान्य उद्भव अरु प्रलय नामक जोयह हेतु है । सो असिद्ध है ? ऐसैं आशंका करिये है ॥ तिस आशंकाकी निवृत्ति अर्थ यह (पंचम मधु) ब्राह्मण आरंभ करियेहै ॥ जैंतैं परस्पर उपकार्य्य उपकारकभूत पृथिवी आदिक सर्व जगत् है औ जो लोकविषै परस्पर उपकार्य्य उपकारकभूत है । सो एक कारणपूर्वक एक सामान्यात्मक औ एकविषै प्रलयवाला देख्या है ॥ तैंतैं यह पृथिवी आदिरूप जगत्

९४७ प्रधानादि वादकूं लेके हेतुकी असिद्धिकी शंकाके द्युये । ताके निराकरण अर्थ यह ब्राह्मण है । ऐसैं संगतिकूं कहैहैं ॥

९४८ हेतुके असिद्धिकी शंका । किस प्रकारसैं उद्धार करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां:—तातैं तिस प्रकारका होनेकूं योग्य है । ऐसैं उत्तरविषै संबंध है ॥

९४९ अन्योऽन्य (परस्पर) उपकार्य्य अरु उपकारकभूत जगत् । एक चैतन्यकरि अनुविद्ध अरु एक (प्रकृतिवाला) है । इस अर्थविषै व्याप्तिकूं कहैहैं ॥ इहां:—देख्या है स्वप्न आदिक । यह शेष है ॥

९५० दृष्टांतविषै सिद्ध अर्थकूं दार्ष्टान्तिकविषै जोडते हैं ॥

बी परस्पर कार्य करणरूप होनेतैं तिस प्रकारका होनेकूं योग्य है ॥ यँहहीं अर्थ इस ब्राह्मणविषै प्रकाश करियेहै अँथवा आत्माहीं यह सर्व है । ऐसैं प्रतिज्ञा किये अर्थके आत्माविषै उत्पत्ति स्थिति अरु लयवान्पनैरूप हेतुकूं कहिके । फेर आगमविषै प्रधान मधुब्राह्मण करि प्रतिज्ञात अर्थका निगमन करियेहै ॥ तै-
^{१५४}सँहीं नैयायिकोंनैं कहा है:-हेतुके अपदेशतैं प्रतिज्ञाका फेर कथन निगमन है ऐसैं ॥ औ अँन्यों-

१५१ तत् (तातैं) शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करै है ॥ इहाँ तथाभूत (तिस प्रकारका) । यह एक कारणपूर्वक होनेतैं । ऐसैं ग्रहण करिये है ॥

१५२ ननु विवादका विषय जो जगत् । सो एक कारणवाला है । परस्पर उपकार्य उपकारकभूत होनेतैं । स्वप्नकी न्याँई ॥ यह अनुमान अयुक्त है । काहेतैं हेतुकी असिद्धितैं ॥ जातैं सर्व जगत् । परस्पर उपकार्य उपकारकभूत नहीं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१५३ हेतुकी असिद्धिकी शंकाकूं परिहार करनेवास्ते यह ब्राह्मण है । ऐसैं संगतिकूं कहिके । अब प्रकारांतरकरि ता (संगति) कूं कहैहैं ॥

१५४ प्रतिज्ञा औ हेतुकूं क्रमसैं कहिके । हेतुसहित प्रतिज्ञारूप अर्थका फेर कथन निगमन है । इस अर्थविषै तार्किकनकी संमतिकूं कहैहैं ॥

१५५ भर्तृप्रपंचके अनुसारीनके ब्राह्मणके आरंभके प्रका-

नै व्याख्यान किया है:—दुंदुभिके दृष्टान्तपर्यंत जो आगमवचन है। सो श्रोतव्यके अर्थ है औ मधुब्राह्मणतैं पूर्व जो आगमवचन है। सो उपपत्तिके प्रदर्शनकरि मंतव्यके अर्थ है औ मधुब्राह्मणकरि तो निदिध्यासनका विधि (प्रकार) कहियेहै इति ? सर्वथा^६ (श्रवणादिककी विधेयताके हुयेबी) तो जैसे आगमकरि निश्चित है। तैसेहीं तर्कसैं मनन करनेकूं योग्य है। जैसे तर्कतैं मनन कियेका कहिये तर्क अरु आ-

रकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—द्रष्टव्यआदिक वाक्यतैं आरंभ करिके। दुंदुभिके दृष्टान्तपर्यंत जो आगमका वचन है। सो “ श्रोतव्य है ” इस प्रकारसैं उक्त श्रवणके निरूपण अर्थ है औ दुंदुभिके दृष्टान्ततैं आरंभ करिके मधुब्राह्मणतैं पूर्व उपपत्तिके दिखावनेकरि जो आगम वचन है। सो “ मंतव्य ” इस प्रकारसैं उक्त मननके निरूपण अर्थ है। औ निदिध्यासनकूं व्याख्यान करनेकूं फेर यह ब्राह्मण है ॥

९५६ इस (भर्तृप्रपंचके मत)कूं दूषण देते हैं ॥ इहां सर्वथाबी। याका श्रवणादिककी विधेयताके हुयेबी यह अर्थ है औ अन्वय व्यतिरेककरि श्रवणविषै प्रवेशभये पुरुषकूं तिसकी पुष्कलताके हुये अर्थ तैं प्राप्त जो मनन। सो विधिकूं अपेक्षा करता नहीं। जैसे तर्कतैं मनन किया तत्त्व है। तैसे

गमकरि निश्चय कियेका तैसैंहीं निदिध्यासन करियेहै । यातैं पृथक् निदिध्यासनका विधि अनर्थ कहीं है । तौतैं श्रवण मनन अरु निदिध्यासनके पृथक् प्रकरणका विभाग अनर्थक (व्यर्थ) है । यह हमारा अभिप्राय है ॥ ऐसैं सर्वथाबी (श्रवणादिककी विधिके उपगम हुयेबी) तो अध्यायद्वयका अर्थ इस ब्राह्मणविषै उपसंहार करियेहै:—यँह पृथिवी । सर्व भूतनका मधु है कहिये सर्व ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत भूतन (गणिन)का मधुके कार्य मधुकीन्यांई

तर्क अरु आगमकरि निश्चयकिये तत्वकूं उभयके सामर्थ्यतैंहीं निदिध्यासनकी सिद्धिके हुये । सो (निदिध्यासन)बी विधिकी अपेक्षासैं रहितहीं है । यह अर्थ है ॥

१५७ श्रवणादि तीनोंकूं विधिकी अपेक्षासैं रहितताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां इस हेतुतैं परकीय व्याख्यान अयुक्त है । यह शेष है ॥

१५८ ननु सिद्धांतविषैबी श्रवणादिकके विधिके उपगम (अंगीकार)तैं कैसैं परकीय प्रस्थान निषेध किया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां:—सर्वथाबी । याका तिनकी विधिके अंगीकार हुयेबी । यह अर्थ है ॥

१५९ ऐसैं ब्राह्मणकी संगतिकूं कहिके । ताके अक्षरनकूं व्याख्यान करै हैं ॥

मधु है ॥ जैसे^{९६०} एक मधु । आपूप (मिष्ट मालपू आ आदिक) । अनेक मधुकरोंकरि निर्वर्तित (उत्पादित) होवैहै । ऐसें यह पृथिवी । सर्व भू-
 तोंकरि निर्वर्तित (उत्पादित) होवैहै ॥ तैसें सर्व भूत । या पृथिवीके मधु कहिये कार्य हैं ॥
 किंवा^{९६१}:-जो यह पुरुष इस पृथिवीविषै तेजोमय (चिन्मात्र प्रकाशमय) अरु अमृतमय (अमरण धर्मवाला) पुरुष है औ जो यह अध्यात्म-
 रूप शारीर (शरीरविषै होनेवाला) पूर्वकी न्यांई^{९६२} तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ सो
 लिंगाभिमानी है औ सो सर्व भूतनका उपक-
 रण होनेकरि मधु है औ सर्व^{९६३} भूत याके मधु

९६० जो कहा “ मधुकी न्यांई मधु है ” ऐसें । ताकूं विवरण करै हैं ॥

९६१ केवल उक्त मधुद्वय नहीं है । किंतु अन्य मधुबी है ऐसें कहैहैं ॥

९६२ पुरुषशब्दकी क्षेत्र (शरीर)की विषयताकूं निवारण करैहैं ॥

९६३ ता (पुरुष)के पृथिवीकी न्यांई मधुपनैकूं कहैहैं ॥

९६४ औ सर्व भूतनके ता (पुरुष)के प्रति मधुपनैकूं दिखावै हैं ॥

हैं । यह ^{९६५} च शब्दके सामर्थ्यतैं जानियेहै ॥
^{९६६} ऐसैं यह चतुष्टय प्रथम एक है । सर्व ^{९६७} भूतनका
कार्य है औ सर्व भूत याके कार्य हैं ॥ यातैं याकूं
एककारण पूर्वकता है ॥ जातैं एक कारणतैं
यह जन्म्या है । सोई एक परमार्थतैं ब्रह्म है ।
इतर कार्य “वाणीतैं आरंभ किया विकार .नाम

९६५ ननु प्रथमकेहीं दो मधु सुने हैं औ नहीं सुने जो
पीछले दो मधु । सो तो कल्पना करनेकूं अशक्य हैं । क-
ल्पकके अभावतैं ? यातैं कहैहैं ॥

९६६ प्रथम पर्यायके अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—
पृथिवी । सर्वभूत । पार्थिव पुरुष औ शारीर पुरुष । यह च-
तुष्टय (च्यारी) एक मधु है । यह शेष है ॥

९६७ मधुशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां:—याका । इस
पदका । पृथिवीआदिकका । यह अर्थ है ॥

९६८ परस्पर उपकार्य उपकारक भावके हुये फलितकूं
कहैहैं ॥ इहां “याका” इसपदकरि जगत् कहिये है । सो पूर्व
कहा है:—जातैं परस्पर उपकार्य अरु उपकारकभूत जगत् ।
सर्व पृथिवीआदिक है । इत्यादि ॥

९६९ इस न्यायकरि सर्व मधुके पर्यायोंविषै कारणका
उपदेश होहू । परंतु ब्रह्मका उपदेश कैसें होवैगा ? यह आ-
शंका करिके कहैहैं ॥ इहां:—सो प्रकृत आत्माहीं यह च्या-
री प्रकारका उक्त भेद है । ऐसैं योजना है ॥

मात्र है” । इस रीतिसे यह सर्व मधुके पर्यायों-
का संक्षेपतै अर्थ है ॥ यहहीं सो है । जो यह
गतिज्ञात है । यह सर्व है । जो यह आत्मा
है । ऐसै यह अमृत है ॥ कहिये जो मैत्रेयीके
अर्थ अमृतभावका साधन आत्मविज्ञान क-
हा । यह सो अमृत है । यँह ब्रह्म है । जो
“ब्रह्म तेरेताँई कहताहूँ । जनाहूँगा” ऐसै अ-
ध्यायकी आदिविषै प्रकृत है औ जिंसँकू वि-
षय करनेवाली विद्या ब्रह्मविद्या ऐसै कहिये
है । यह सर्व है । जाँतै ब्रह्मके विज्ञानतै सर्व-
रूप होवैहै ॥ १ ॥

९७० इहां इदं (यह) । इस शब्दकरि च्यारी कल्पनाके
अधिष्ठानके विषयक ज्ञानकू ग्रहण करै हैं ॥ इहां च्यारीका
अधिष्ठान इदंशब्दका अर्थ है ॥

९७१ औ तृतीयविषै ताके प्रकृतपनैकू दिखावै हैं ॥
इहां:—यह सर्व । इस ठिकाने ब्रह्मज्ञान है ऐसै कहा औ
सर्व पदका सर्वकी प्राप्तिका साधन । यह अर्थ है ॥

९७२ ताहीकू स्पष्ट करैहैं ।

इमा आपः सर्वेषा भूताना मध्वा-
सामपां सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चा-
यमास्वप्सु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
यश्चायमध्यात्मं रैतसस्तेजोमयोऽमृ-
तमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदम-
मृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ २ ॥

अर्थः—ये आप (जल) सर्वभूतनकी
मधु हैं । इन आपनका सर्वभूत मधु हैं
औ जो यह इन आपोंविषै तेजोमय अ-
मृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप
रैतस तेजोमय अमृतमय पुरुष है । यहहीं
सो है । जो यह आत्मा है । यह अमृत
है । यह ब्रह्म है । यह सर्व है ॥ २ ॥

टीकाः—^{१७३}तैसैं आप अर्ध्यात्म है । रेतविषै
जलका विशेषकरि अवस्थान है ॥ २ ॥

१७३ जैसैं पृथिवी मधुपनैकरि व्याख्यानकरी । तैसैं अ-
न्यबी व्याख्यान करनेकूं योग्य हैं । ऐसैं कहैहैं ॥

१७४ रैतस । या विशेषणके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहांः—
“ आप रैतरूप होयके शिश्रके प्रति प्रवेश करत भयी ” ऐसैं
जातैं अन्य श्रुति है ॥

अयमग्निः सर्वेषां भूतानां मध्वस्या-
ग्नेः सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चायमस्मि-
न्नग्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो य-
श्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजोमयोऽमृ-
तमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-
ममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ३ ॥

अर्थः—यह अग्नि सर्वभूतनका मधु है।
इस अग्निके सर्वभूत मधु हैं औ जो यह
इस अग्निविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष
है। औ जो यह अध्यात्मरूप वाङ्मय
तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहही सो
है। जो यह आत्मा है। यह अमृत है।
यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ ३ ॥

टीकाः—^{९७५}तैसै अग्नि है। वाक्^{९७६}विषै अग्निका
विशेषकरि अवस्थान है ॥ ३ ॥

९७५ पृथिवीविषै औ जलविषै उक्त न्यायकं अग्निविषै
अतिदेश करै हैं ॥

९७६ वाङ्मय। याके अर्थकं कहैहैं ॥ इहांः— “जातैं
अग्नि वाक् होयके मुखके प्रति प्रवेश करताभया”। ऐसैं सुनी-
ये है ॥

अयं वायुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य
वायोः सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चायम-
स्मिन्वायौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयोऽमृत-
मयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदम-
मृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ४ ॥

अर्थः—यह वायु सर्वभूतनका मधु है ।
इस वायुके सर्वभूत मधु हैं औ जो यह
इस वायुविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष
है औ जो यह अध्यात्मरूप प्राण तेजो-
मय अमृतमय पुरुष है । यहहीं सो है ।
जो यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म
है । यह सर्व है ॥ ४ ॥

टीकाः—^{९७७}तैसैं प्राणरूप हुआ वायु अँध्यात्म
है । भूतनकूं शरीरका आरंभक होनेकरि उप-

९७७ अग्निविषै उक्त न्यायकूं वायुविषै जोडते हैं ॥

९७८ “ वायु प्राणरूप होयके दो नासिकाके प्रति प्रवेश
करताभया ” इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

९७९ पृथिवी आदिकनका औ एक वाक्यकरि ग्रहण

अयमादित्यः सर्वेषां भूताना म-
ध्वस्यादित्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु ।

अर्थः—यह आदित्य सर्वभूतनका मधु
है । इस आदित्यके सर्व भूत मधु हैं औ

कारतैं मधुपना है औ ताके अंतर्गत तेजोमय
आदिकनकूं करणरूप होनेकरि उपकारतैं मधु-
पना है ॥ तिसैं प्रकार कहा हैः—“तिसीहीं वा-
क्का पृथिवी शरीर है । ज्योतिरूप यह अग्नि
है” इति ॥ ४ ॥

टीकाः—तैसैं आदित्य मधु है । चक्षु अघ्या-
त्म है ॥ ५ ॥

किये तिनके अंतर्वर्ति पुरुषनका एकरूप मधुपना है ? या
शंकाकूं परिहार करते हुये अवांतर विभागकूं कहैहैं ॥

९८० पृथिवी आदिकनका कार्यपना है औ तेजोमय आ-
दिकनका करणपना है । इस अर्थविषै सप्त अन्नके अधिकार-
की संमतिकूं कहैहैं ॥

९८१ यद्यपि आदित्य तृतीयभूतविषै अंतर्भूत होवैहै ।
तथापि देवताके भेदकूं आश्रय करिके अग्निविषै उक्त न्यायकूं
तिस (आदित्य)विषै अतिदेश करै हैं ॥

९८२ “ आदित्य चक्षुरूप होयके दो नेत्रनके प्रति प्रवेश
करताभया ” इस श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृत-
मयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्ते-
जोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-
ऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्
॥ ५ ॥

इमा दिशः सर्वेषां भूतानां मध्वासां
जो यह इस आदित्यविषै तेजोमय अमृ-
तमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप
चाक्षुष तेजोमय अमृतमय पुरुष है । यह-
हीं सो है । जो यह आत्मा है । यह अमृत
है । यह ब्रह्म है । यह सर्व है ॥ ५ ॥

अर्थः—ये दिशा सर्वभूतनकी मधु हैं ।

टीकाः—तैसैं ^{१८३} दिशा मधु हैं ॥ ^{१८४} दिशाओंका य-

१८३ आदित्यविषै गत न्यायकूं दिशाओंविषै संपादन
करै हैं ॥

१८४ ननु “ दिशा श्रोत्ररूप होयके दो कणोंकेप्रति प्र-
वेश करतीभयीं ” इस श्रुतितै श्रोत्रहीं दिशाओंका अध्यात्म
है । तिस प्रकार हुये अध्यात्म श्रोत्र है । ऐसैंहीं कहनेकी यो-

दिशा* सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चाय-
 मासु दिक्षु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्म* श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कस्ते-
 जोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-
 ऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद* सर्वम्
 ॥ ६ ॥

इन दिशाओंके सर्व भूत मधु हैं औ जो इन
 दिशाओंविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है
 औ जो यह अध्यात्मरूप श्रौत्र प्रातिश्रुत्क
 तेजोमय अमृतमय पुरुष है । यहीँ सो है ।
 जो यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म
 है । यह सर्व है ॥ ६ ॥

द्यपि श्रौत्र अध्यात्म है । तथापि शब्दके प्रति
 श्रवणकी वेलाविषै तो विशेषकरि सन्निहित
 होवैहै । यातैं अध्यात्म प्रातिश्रुत्क है ॥ प्रति-
 श्रुत्क कहिये प्रतिश्रवणकी वेला । तिसविषै जो
 होवै सो प्रातिश्रुत्क कहियेहै ॥ ६ ॥

ग्यताके हुये प्रातिश्रुत्क यह विशेषण कैसेँ कहा ? यह आशं-
 का करिके कहैहैं ॥ इहां:—तथापि इस अर्थविषै तु शब्द है ॥

अयं चन्द्रः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य
चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चाय-
मस्मिंश्चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
यश्चायमध्यात्मं मानसस्तेजोमयोऽमृ-
तमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-
ममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ७ ॥

अर्थः—यह चंद्र सर्व भूतनका मधु है ।
इस चंद्रके सर्व भूत मधु हैं औ जो इस चंद्र-
विषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो
यह अध्यात्मरूप मानस तेजोमय अमृत-
मय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह आ-
त्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है । यह
सर्व है ॥ ७ ॥

टीकाः—^{९८५}तैसैं चंद्र अध्यात्म मानस है ॥ ७ ॥

९८५ दिशांओविषै व्यवस्थित न्यायकं चंद्रविषै दिखा-
वै हैं ॥

९८६ “ चंद्रमा मनरूप होयके हृदयके प्रति प्रवेश क-
रताभया ” इस श्रुतिकुं अनुसरीके कहैहैं ॥

इयं विद्युत्सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै
 विद्युतः सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चायम
 स्यां विद्युति तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्मं तैजसस्तेजोमयोऽमृ-
 तमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदम-
 तमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ८ ॥

अर्थः—यह विद्युत् सर्व भूतनकी मधु है।
 इस विद्युत्के सर्व भूत मधु हैं औ जो यह
 इस विद्युत्विषै तेजोमय अमृतमय पुरुषहै
 औ जो यह अध्यात्मरूप तैजस तेजोमय
 अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह
 आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है।
 यह सर्व है ॥ ८ ॥

टीकाः—तैसैँ विद्युत् त्वैक् है। तेजविषै हो-
 नेवाला जो तैजस है। सो अध्यात्म है ॥ ८ ॥

९८७ चंद्रकी न्याँई बीजलीकेबी मधुपनैकू कहैहैं ॥

९८८ अध्यात्म तैजस है। याके अर्थकू कहैहैं ॥

अयं स्तनयित्नुः सर्वेषां भूतानां
मध्वस्य स्तनयित्नुः सर्वाणि भूतानि
मधु । यश्चायमस्मिं स्तनयित्नुं तेजो-
मयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं
शाब्दः सौवरस्तेजोऽयममृतमयः पु-
रुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं
ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ९ ॥

अर्थः—यह स्तनयित्नु (मेघ) सर्व भू-
तनका मधु है । इस स्तनयित्नुके सर्वभूत
मधु हैं औ जो यह इस स्तनयित्नुविषै
तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो यह
अध्यात्मरूप शाब्द सौवर तेजोमय अमृ-
तमय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह
आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है ।
यह सर्व है ॥ ९ ॥

टीकाः—^{९८९}तैसैं स्तनयित्नु (मेघ) है । यद्यपि

९८९ पर्जन्य (मेघ) भी विद्युत् आदिकनकी न्याईं सर्व
भूतनका मधु होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

अयम काशः सर्वेषां भूतानां मध्व-
स्याकाशस्य सर्वाणि भूतानि मधु । य-
श्चायमस्मिन्नाकाशे तेजोमयोऽमृतमयः

अर्थः—यह आकाश सर्व भूतनका मधु
है । इस आकाशके सर्व भूत मधु हैं औ जो
यह इस आकाशविषै तेजोमय अमृतमय
शब्दविषै होनेवाला जो शाब्द पुरुष । सो अ-
ध्यात्म है । तथापि स्वरविषै विशेषकरि होवैहै ।
यातैं सौवर पुरुष अध्यात्म है ॥ ९ ॥

टीकाः—तैसैं ^{९९१} आकाश अध्यात्म है ॥ हृदया-
काश कहिये हृदय ॥ इहां आकाशपर्यंत अरु
पृथिवी आदिक भूतगण औ देवतागण । कार्य-

९९० अध्यात्म शाब्द है । याके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहांः—
यद्यपि अध्यात्म शब्दविषै होवै पेसा शाब्द पुरुष है । तथापि
स्वरविषै विशेषकरि होवैहै । यातैं अध्यात्म सौवर पुरुष है ।
ऐसैं योजना है ॥

९९१ स्तनयित्नु (मेघ) विषै उक्त न्यायकूं आकाशविषै
अतिदेश करै हैं ॥

९९२ पर्यायके अनंतर वृत्तकूं अनुवाद करिके उत्थापन
करै हैं ॥ इहां प्रति शरीरीके । याका सर्व शरीरीनके मध्य
प्रत्येकके ताई । यह अर्थ है ॥

पुरुषो यश्चायमध्यात्मं हृद्याकाशस्ते-
जोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-
ऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १०

अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य

पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप हृदयाकाश
(हृदय) तेजोमय अमृतमय पुरुष है ।
यहहीं सो है । जो यह आत्मा है । यह अ-
मृत है । यह ब्रह्म है । यह सर्व है ॥ १० ॥

अर्थः—यह धर्म सर्व भूतनका मधु है ।

करणके संघातस्वरूप होयके प्रतिशरीरीके ताँई
(सर्व शरीरीनके मध्य प्रत्येकके ताँई) उप-
कार करते हुये मधु होवैहैं ॥ जिसकरि वे प्र-
युक्त (प्रेरित) होयके शरीरीनके साथि संब-
ध्यमान हुये मधु होनेकरि उपकार करैहैं । सो
कहनेकूं योग्य है । यातैं यह आरंभ करियेहै
॥ १० ॥

टीकाः—यँहै धर्म । यह ऐसैं अप्रत्यक्ष हुया-

९९३ धर्मकूं शास्त्रैकगम्यताकरि परोक्ष होनेतैं “यह”
पेसे निर्देशकी अयोग्यताकूं आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां

धम्मस्स सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चा-
यमस्मिन्धर्मे तेजोमयोऽमृतमयः पु-
रुषो यश्चायमध्यात्मं धार्म्मस्तेजोम-

इस धर्मके सर्व भूत मधु हैं औ जो यह इस
धर्मविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ
जो यह अध्यात्मरूप धार्म तेजोमय अमृ-

बी धर्म । तिसकरि प्रयुक्त प्रत्यक्ष कार्यकरि यह
धर्म ऐसै व्यपदेश करियेहै ॥ औ प्रत्यक्षकी
न्यांई श्रुति स्मृतिरूप धर्म व्याख्यान किया ॥

यह अर्थ है:—यद्यपि धर्म अप्रत्यक्ष हुआ । “ यह ” ऐसै
निर्देशके अयोग्य है । तथापि पृथिवीआदिक धर्मके कार्यकूं
प्रत्यक्ष होनेतैं । तिसकरि कारणके औपचारिक अभेदकूं लेके
प्रत्यक्ष घटादिककी न्यांई यह धर्म है ऐसै व्यपदेशका सं-
भव है ॥

९९४ तब ता (धर्म) कूं प्रत्यक्ष होनेतैं प्रेरणालक्षणवान्-
पना नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके । गौणभाव मुख्य-
भावकरि अविरोधकूं अभिप्रायका विषयकरिके कहैहैं ॥

९९५ ननु कौन यह धर्म है । जाका प्रत्यक्षताकरि व्यप-
देश है ? तहां कहैहैं ॥ इहां:—आदिविषै व्याख्यान किया
है “ तिस श्रेयंरूप धर्मकूं स्रजताभया ” इत्यादिकविषै । यह
शेष है ॥

योऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ११ ॥

तमय पुरुष है । यहीं सो है । जो यह
आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है । यह
सर्व है ॥ ११ ॥

^{१९६}क्षत्रिय आदिकनकावी नियंता । जगत्की वि-
चित्रताका कर्ता । पृथिवी^{१९८} आदिकनके परिणा-
मका हेतु होनेतैं औ प्राणीओंकरि अनुष्ठीयमान
रूप है । तिसकरिबी यह “धर्म” ऐसैं प्रत्यक्ष-
करि व्यपदेश है ॥ औ शास्त्र अरु आचाररूप
सत्य अरु धर्मका पूर्व अभेदकरि निर्देश किया

१९६ तिसीहींविषै कार्य लिंगक अनुमानकूं सूचन करैहैं ॥
१९७ तहांहीं अनुमानांतरकूं कहनेकूं इच्छिके कहा है ॥
१९८ जगत्की विचित्रताकी कारीताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥
१९९ धर्मके प्रत्यक्षकरि व्यपदेशविषै अन्य हेतुकूं क-
हैहैं:—तिसकरि याका अनुष्ठीयमान आचारसैं धर्मकी वक्ष्य-
माणता करी । यह अर्थ है ॥

१००० ननु तृतीय (प्रथम) अध्यायविषै “ जोई सो
धर्म है । सत्यहीं सो है ” ऐसैं सत्य अरु धर्मके अभेदके व-
चनतैं तिन दोनूके भेदकरि इहां दो पर्यायोंका ग्रहण अघ-
टित है ? यातैं कहैहैं ॥

औं इहां तो भेदकरि व्यपदेश जो है सो । एकताके होतेबी ^{१००१}दृष्ट अरु ^{१००२}अदृष्टके भेदरूपकरि कार्यका आरंभ होनेतैं है ॥ जो अदृष्टरूप अपूर्व नामक धर्म है । सो तो सामान्य विशेष स्वरूप अदृष्टरूपकरि कार्यकूं आरंभ करताहै ॥ ^{१००३}सामान्यरूपकरि पृथिवीआदिकनका प्रयोक्ता होवैहै औ ^{१००४}विशेषरूपकरि कार्य अरु ^{१००५}करणके संघातका प्रयोक्ता अध्यात्म होवैहै ॥ तिनमें पृथिवी आदिकनके प्रयोक्ता इस धर्मविषै जो ^{१००६}यह तेजोमय है ॥ तैसैं अध्यात्म कार्य करणके संघातके कर्त्तारूप धर्मविषै होनेवाला धर्म है ॥ ११ ॥

१००१ ननु एकताके हुये भेदकरि कथन कैसें है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१००२ अदृष्टरूपकरि कार्यकी आरंभकताकूं प्रगट करैहैं ॥

१००३ सामान्यरूपकरि आरंभकताकूं उदाहरण करैहैं ॥

१००४ विशेषरूपकरि कार्यकी आरंभकताकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१००५ धर्मके दो भेद कहे । तिनके मध्य प्रथमकूं आश्रय करिके “ औ जो यह इस धर्मविषै ” इत्यादि वाक्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

१००६ द्वितीय (सत्यरूप) धर्मकूं विषयकरिके “औ जो यह अध्यात्म” इत्यादि वाक्य । प्रवृत्त भया है । ऐसैं कहैहैं ॥

इदं सत्यं सर्वेषां भूताना मध्वस्य
 सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चाय-
 मस्मिन्सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चाऽयमध्यात्मं सात्यस्तेजोमयो-
 ऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
 त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १२ ॥

अर्थः—यह सत्य सर्व भूतनका मधु है ।
 इस सत्यके सर्व भूत मधु हैं औ जो यह
 इस सत्यविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है
 औ जो यह अध्यात्मरूप सात्य तेजोमय
 अमृतमय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह
 आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है । यह
 सर्व है ॥ १२ ॥

टीकाः—^{१००७}तैसै दृष्टस्वरूप अनुष्ठीयमान आ-
~~चार~~रि सत्य नामक सोई धर्म होवैहै ॥
 सोबी सामान्य विशेषरूपकरि दो प्रकारकाहीं

१००७ “ यह सत्य है ” इस पर्यायविषै सत्यशब्दके
 अर्थकूं कहैहैं ॥ इहांः—सोबी । यह अपि (बी) शब्द । ध-
 र्मके उदाहरण अर्थ है ॥

इदं मानुषं सर्वेषां भूतानां मध्वस्य

अर्थः—यह मानुष (मनुष्यजाति) सर्व है ॥ सांमान्यरूप जो है । सो पृथिवी आदिकसैं समवेत है औ विशेषरूप जो है । सो कार्य करणके संघातसैं समवेत है ॥ तिनमें^{१००९} पृथिवी आदिकसैं समवेत वर्तमान क्रियारूप सत्यविषै । तैसैं^{१०१०} अध्यात्मरूप कार्य अरु करणके संघातसैं समवेत सत्यविषै होनेवाला “सत्य” कियेहै “सत्यंकरि वायु च्यारीओरतैं वाता है” इस अन्य श्रुतितैं ॥ १२ ॥

टीकाः—धर्म^{१०१२} अरु सत्यकरि प्रयुक्त यह कार्य

१००८ दोनूवी प्रकारोंके विनियोग (उपयोग)कूं विभाग करैहैं ॥ इहांः—उभयठिकाने जो समवेतशब्द है । सो तहां कारणताकरि अनुगत अर्थवाला है ॥

१००९ “औ जो यह इसविषै” इत्यादि वाक्यके विषयकूं कहैहैं ॥ इहांः—सत्यविषै औ जो । इत्यादि वाक्य है । यह शेष है ।

१०१० “जैसैं यह अध्यात्म है” इत्यादि वाक्यके विषयकूं कहैहैं ॥

१०११ “सत्यकी पृथिवी आदिकविषै औ कार्य करणके संघातविषै कारणतामें प्रमाणकूं कहैहैं ॥

१०१२ “यह मानुष” इस वाक्यविषै मानुषका ग्रहण

मानुषस्य सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चा-
यमस्मिन्मानुषे तेजोमयोऽमृतमयःपु-
रुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदङ्गष्टमिदं
ब्रह्मेदं सर्वं ॥ १३ ॥

भूतनका मधु है । इस मानुषके सर्व भूत
मधु हैं औ जो यह इस मानुषविषै तेजो-
मय अमृतमय पुरुष है । यदहीं सो है जो
यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म
है । यह सर्व है ॥ १३ ॥

अरु करणका संघात विशेष है । सो जिस जा-
तिविशेषकरि संयुक्त होवैहै । सो जातिवि-
शेष मानुषादि है ॥ ^{१०१३}तिनमें मानुष आदिक जा-
तिनकरि विशेषहीं सर्व प्राणीनके समूह । प-
रस्परके उपकार्यउपकारकभावकरि वर्त्तमान
हुये देखीयेहैं । यातैं मानुष आदिक जातिवी

सर्व जातिनका उपलक्षण है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

१०१३ फेर यह जाति । सर्व भूतनका मधु कैसें होवैहै ?
तहां कहैहैं ॥ इहां:—तहां इस सप्तमीका अर्थ भोगभूमि है ॥

अयमात्मा सर्वेषां भूताना मध्व-
स्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चा-
यमस्मिन्नात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः

अर्थः—यह आत्मा सर्व भूतनका मधु
है। इस आत्माके सर्वभूत मधु हैं औ जो
यह इस आत्माविषै तेजोमय अमृतमय पु-

सर्व भूतनका मधु है ॥ ^{१०१४} तिनमें मानुषआदिक
जातिबी बाह्य औ आध्यात्मिक। इस भेदकरि
दो प्रकारसैं निर्देशकी भजनेवाली होवैहै ॥ १३ ॥

टीकाः—औ जो कार्य करणका संघात मा-
नुषादि जातिकरि विशिष्ट है। सो यह आत्मा

१०१४ “ औ जो यह इसविषै ” इत्यादि दो वाक्यके
विषयके भेदकूं दिखावैहैं ॥ इहांः—तहां। याका व्यवहार
भूमिविषै। यह अर्थ है औ धर्मादिककीन्यांई। यह अपि (बी)
शब्दका अर्थ है औ निर्देश करनेवाले पुरुषकूं स्वशरीरविषै
स्थित जाति आध्यात्मिकी है अरु अन्य शरीरकेप्रति आश्रित
जाति तो बाह्य है। यह भेद है। औ वस्तुतैं तो उभय प्र-
प्रकारसैंबी नहीं है। इस अभिप्रायकरिके। निर्देशभाक् (क-
थनकी भागीदार) है। ऐसैं कहा ॥

१०१५ अंतके पर्यायकूं अवतार देते हैं ॥

पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतम-
यः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृत-
मिदं ब्रह्मेदं सर्वं ॥ १४ ॥

रुष है। औ जो यह आत्मा तेजोमय अमृत-
मय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आ-
त्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह
सर्व है ॥ १४ ॥

सर्व भूतनका मधु है ॥ ॥ ननु यह शरी-
रशब्दकरि निर्देश किया पृथिवीका पर्यायहीं
होवैगा? यंह कथन बनै नहीं:—काहेतैं पार्थिव
अंशकेहीं तहां ग्रहणतैं ॥ इहां तो सर्वात्मा अरु
अध्यात्म अधिभूत अधिदैव आदिक सर्व विशे-
षतैं रहित औ सर्वभूत अरु देवताके गुणकरि

१०१६ ननु आत्माकूं शरीरके साथि प्राप्तभया होनेतैं
ताकी पुनरुक्ति (फेरकथन) निरुपयोगी है? इस प्रकारसैं
प्रतिवादी शंका करै है ॥

१०१७ अवयव (शरीर) अरु अवयवी (आत्मा) रूप
भिन्न विषय वाले होनेकरि दो पर्याय हैं। वे पुनरुक्तिदो-
षसैं रहित हैं। इस रीतिसैं सिद्धांती। परिहार करै हैं ॥

१०१८ परमात्माकूं व्यावर्त्तन करै हैं ॥

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानाम-

अर्थः—सोई यह आत्मा सर्व भूतनका

विशिष्ट जो कार्य^{१०१९} करणका संघात है । सो यह आत्मा ऐसैं कहियेहै ॥ तिसैं^{१०२०} इस आत्माविषै तेजोमय अमृतमय अमूर्त्तरस सर्वात्मक पुरुष निर्देश करियेहै ॥ एकैं^{१०२१} देशकरि तो पृथिवी आदिकविषै निर्दिष्ट है । इहां अध्यात्मविशिष्टके अभावतैं । सो नहीं निर्देश करियेहै ॥

औ जो परिशिष्ट विज्ञानमय है । जिसके अर्थ यह देह अरु लिंगका संघातरूप आत्माहै । सो जो यह आत्मा है । ऐसैं कहियेहै ॥ १४ ॥

टीकाः—जिसैं^{१०२२} आत्माविषै परिशिष्ट विज्ञा-

१०१९ चेतनकूं व्यवच्छिन (भिन्न) करै हैं ॥

१०२० “ औ जो यह इसविषै ” इत्यादि वाक्यके विषयकूं कहैहैं ॥

१०२१ “ औ जो यह अध्यात्म है ऐसा क्यूं नहीं कहा यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इधरः—इहां । ऐसैं अंतके पर्यायका कथन है ॥

१०२२ “ औ जो यह आत्मा है ” याके अर्थकूं कहैहैं ॥

१०२३ “सोई यह आत्मा है” याके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—परिशिष्ट कहिये पूर्वले पर्यायोंविषै अनुपदिष्ट अरु अंतके पर्यायविषै यह आत्मा है ऐसैं उक्त जो विज्ञानमय । सो जिस आत्माविषै खिल्य दृष्टांतके वचनकरि

धिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा । तद्यथा
रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे सम-

अधिपति है । सर्व भूतनका राजा है ॥ सो
जैसैं रथकी नाभिविषै औ रथकी नेमिविषै

नमय अंतके पर्यायविषै प्रवेशित है । सो यह

आत्मा है । अविद्याकृत कार्य करणके संघात-
रूप उपाधिकरि विशिष्टरूप जीवके तिस पर-
मार्थरूप आत्मा (ब्रह्म)विषै ब्रह्मविद्याकरि प्र-
वेशित हुये सो ऐसैं उक्त अनंतर अब्राह्य सं-
पूर्ण प्रज्ञानघनभूत सर्व भूतनका यह आत्मा

सर्वकरि उपास्य सर्व भूतनका अधिपति स-

प्रवेशित है । तिस परमात्माके साथि तादात्म्यकूं प्राप्त भया
जो विद्वान् । सो इहां आत्माशब्दका अर्थ है ॥

१०२४ उक्त आत्मशब्दके अर्थकूं अनुवाद करिके “सर्व भू-
तनका” इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां:— अविद्याकृत
कार्य करणका संघातहीं उपाधि है । तिसकरि विशिष्ट जीवके
तिस परमार्थरूप आत्मा (ब्रह्म)विषै ब्रह्मविद्याकरि प्रवेशित
हुये । सोई यह आत्मा उक्त प्रकारके विशेषणोंवाला सर्वो-
करि उपास्य अरु सर्व भूतनका अधिपति है । ऐसैं संबंध है ॥

१०२५ व्याख्येय (व्याख्यान करने योग्य) पदकूं लेके ।

र्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भू-
तानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः
सर्व एत आत्मनः समर्पिताः ॥ १५ ॥

सर्व अर (काष्ठविशेष) समर्पित हैं । ऐसै-
हीं इस आत्माविषै सर्वभूत । सर्व देव ।
सर्व लोक । सर्व प्राण । सर्व ये आत्मा ।
समर्पित (अविद्याकरि कल्पित) हैं ॥१५॥

र्व भूतनके मध्य स्वतंत्र होवैहै । कुँमौर अमात्य
(मंत्री)की न्यांई नहीं ॥ किंतु सर्व भूतनका
राजा । राजभौवका विशेषण अधिपति है ।

ताके वाच्य अर्थकुं कहैहैं ॥ इहां ताहीका विवक्षित अर्थ स-
वोंकरि उपास्य है । ऐसै कहा ॥

१०२६ स्वतंत्रताकुं व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥

१०२७ ननु “सर्व भूतनका राजा है” इतनेकरिहीं उ-
क्त प्रकारके अर्थकी सिद्धिके हुये “अधिपति है” यह विशे-
षण क्युं कहा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ
है:—राजत्व जातिकरि अनाक्रांत हुयावी कोईक ता (राजा)के
उचित परिपालनादि व्यवहारवान् हुया राजा कहियेहै । यह
उपलब्ध है । फेर ताकी स्वतंत्रता नहीं है । राजाके परायण
होनेतैं । तातैं तिस (उपचारमात्र राजा)तैं भेद अर्थ “अ-
धिपति” यह विशेषण है ॥

ऐसा होवैहै ॥ कोईक राजाके उचित वृत्तिकूं
 आश्रय करिके राजा कहियेहै । परंतु सो अ-
 धिपति कहियेहै । यातैं अधिपति ऐसैं विशे-
 षण देतेहैं ॥ इस रीतिसैं सर्व भूतनका आत्मा
 विद्वान् ब्रह्मवित् मुक्त होवैहै ॥ जो कहींथा कीः—
 ब्रह्मविद्याकरि सर्वरूप होनेवाले मनुष्य मानते
 हैं । क्या सो ब्रह्म जानताभया । जातैं सो सर्व-
 रूप होता भया । ऐसैं यह सो व्याख्यान कि-
 या ॥ ऐसैं आत्माकूंहीं सर्वात्मभावकरि आ-
 चार्य अरु आगमसैं सुनिके । तर्कतैं मनन करि-
 के । ऐसैं साक्षात् जानिके । जैसेँ मधुब्राह्मण-

१०२८ राजा अरु अधिपति । इन दोनूं शब्दनकेवी विशे-
 षणविशेष्यभावकूं अभिप्रायका विषय करिके । वाक्यार्थकूं
 निगमन करैहैं ॥

१०२९ उक्त ब्रह्मविद्याके फलकी तृतीय (प्रथम) अ-
 ध्यायके साथि एकवाक्यताकूं कहैहैं ॥

१०३० ताही व्याख्यानकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां ऐसैं । याका
 मैत्रेयीब्राह्मणविषै उक्त क्रमकरि । यह अर्थ है ॥

१०३१ ऐसैं । या पदके अर्थकूं कथन करैहैं ॥ इहांः—
 मधुब्राह्मणविषै औ पूर्वब्राह्मणविषै उक्त क्रमकरि आत्माविषै
 श्रवणादिक तीनकूं संपादन करिके विद्वान् ब्रह्म होता भया ।
 ऐसैं संबंध है ॥

विषै दिखाया है ॥ ^{१०३२}ताँतैं इस लक्षणवाले ब्रह्म विज्ञानतैं पूर्वकी ब्रह्महीं हुया अविद्याकरि अब्रह्म होताभया औ सर्वहीं हुया असर्व होता भया । औ तिस ^{१०३३}अविद्याकूं इस विज्ञानतैं तिरस्कार करिके ब्रह्मवित् ब्रह्महीं हुया ब्रह्म ^{१०३४}होता भया । सर्व हुया सर्व होता भया ॥ जिस (शास्त्र)का अर्थ (विषय प्रयोजक नामक) प्रस्तुत कियाथा । सो शास्त्रार्थ परिसमाप्त भया ॥ तिस इस सर्वात्मभूत ब्रह्मवेत्तारूप सर्वात्मा विषै

१०३२ ननु मोक्षअवस्थाविषैहीं विद्वानकूं ब्रह्मभावकरि अपरिच्छिन्नभाव है । पूर्वकी अविद्यादशाविषै नहीं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां तीन पंचमी । समानाधिकरण (एक अर्थवाली)हैं औ ऐसे लक्षणवाले याका “मैं ब्रह्म हूं” ऐसे श्रवणादिकके किये ताके साक्षात्कारतैं यह अर्थ है ॥

१०३३ ननु तब अब्रह्मभाव आदिककी बुद्धिका नाश कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०३४ वृत्तकूं अनुवाद करिके उत्तर ग्रंथकूं अवतार देते हैं ॥ इहां:—जिस शास्त्रका विषय अरु प्रयोजन नामक अर्थ । ब्रह्मकंडिकाविषै औ चतुर्थ आदिकविषै प्रस्तुत किया । ताका अर्थ उक्त प्रकारके न्यायकरि निर्धार किया । यह अनुवादका अर्थ है औ सर्वात्मभूतपना कहिये सर्व आदिककी न्यांई कल्पित सर्वके आत्मभावकरि स्थितपना औसर्वात्मपना कहिये सर्व जो ब्रह्म तिस रूपपना ॥

सर्व जगत् समर्पित है । तिस इस अर्थविषै दृ-
 ष्ठांत ग्रहण करिये हैः—सो जैसेँ रथकी ना-
 भिविषै औ रथकी नेमि (धारा)विषै अर
 (काष्ठ दंडविशेष) सर्व समर्पित होवैहैं ।
 यह प्रसिद्ध अर्थ है । ऐसेँ इस आत्माविषै
 कहिये परमात्माभूत ब्रह्मवेत्ताविषै सर्वभूत ।
 ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत औ सर्व देव । अग्नि आदि-
 क औ सर्व लोक । भूरादिक औ सर्व प्राण ।
 वाक् आदिक औ सर्व ये आत्मा । जल^{१०३६}विषै
 चंद्रकीन्यांई शरीर शरीरकेप्रति पीछे प्रवेश
 करनेहारे समर्पित (अविद्याकरि कल्पित)
 हैं ।^{१०३६} सर्व जगत् इसविषै समर्पित है ॥ जो पूर्व^{१०३७}
 कहा थाः—“ब्रह्मवित् वामदेव प्राप्त होता भया ।
 मैं मनु होता भया औ सूर्य होता भया” ऐसेँ ।

१०३५ ननु “सर्व ये आत्मा” यह भेदकी उक्ति काहेतैं
 है । आत्माकी एकताकूं शास्त्रप्रतिपादित होनेतैं ? यह आ-
 शंका करिके । कहैहैं ॥

१०३६ दार्ष्टान्तिकभागके मिलित अर्थकूं कहैहैं ॥

१०३७ उक्त सर्वात्मभावकी तृतीय (प्रथम) अध्यायके
 साथि एक वाक्यताकूं निर्देश करैहैं ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्गाथर्वणोऽश्वि-

अर्थः—इस स्मरण किये तिस मधुकूँ द-

सो यह सर्वात्मभाव व्याख्यान किया । सो यह ^{१०३८} विद्वान् ब्रह्मवित् सर्व उपाधिवाला सर्वात्मा हुया सर्व होवैहै औ निरूपी^{३३}धिक हुया निरुपाख्य (शब्द अरु प्रत्ययका अगोचर) अनंतर अबाह्य संपूर्णप्रज्ञानघन अज अजर अमृत अभय अचल । ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं । अस्थूल अनणु । इस प्रकारके विशेषणोंवाला होवैहै ॥ १५ ॥

टीकाः—^{१०४०}तिस इस अर्थकूँ नहीं जानते हुये ता-

१०३८ ननु सर्वात्मभावके हुये विद्वान्कूँ सप्रपंचता होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—सर्व कल्पित द्वैतकरि सहित अधिष्ठानभूत ब्रह्मकूँ प्रत्यक् (आत्म)-भावकरि देखता हुया विद्वान् सर्व उपाधिवाला अरु तिस रूपकरि स्थित हुया सर्वरूप होवैहै । तातैं ऐसैं विद्वान्कूँ अविद्वान्की दृष्टिकरि कल्पित सप्रपंचपना अभीष्ट है ॥

१०३९ विद्वान्की दृष्टिकरि ताकी निष्प्रपंचताकूँ दिखावैहैं ॥ इहां निरुपाख्यपना कहिये शब्द अरु प्रत्ययका अगोचरपना । ब्रह्मका सप्रपंचपना अविद्याकृत है अरु निष्प्रपंचपना तात्त्विक (वास्तविक)है । ऐसैं आगमके अर्थका अविरोध कहा ॥

१०४० ननु तब तार्किक अरु मीमांसक । शास्त्रके अर्थकूँ

भ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्तद्वा-
 न्नरा सनयेदं स उग्रमाविष्कृणोमि । त-
 ध्यङ्गुथर्वणमुनि । अश्विनीकुमारनके अर्थ
 कहताभया । तिस इस (मधु) कूं ऋषि
 (मंत्र) देखता हुआ कहताभयाः—हे नरा
 (नराकार अश्विनीकुमार) ! तुझारे तिस
 लाभके अर्थ किये उग्र दंस (कर्म) कूं में
 किंक औ केईक पंडितंमन्य आगमके वेत्ता (मी-
 मांसक) । शास्त्रार्थकूं विरुद्ध मानते हुये विकल्प
 करते हुये अगाध मोहकूं पावैहैं ॥ तिस इस अर्थकूं
 ये दो मंत्र अनुवाद करैहैं “अचल है एक है मनतैं
 वेगवाला है सो चलता है सो नहीं चलता है ”
 ऐसैं ॥ औ तिसप्रकार तैत्तिरीय उपनिषद्विषै क-
 विरुद्ध देखते हुये ब्रह्म है अरु नहीं है इत्यादि विकल्पकूं क-
 रते हुये कैसैं मोहकूं पावते हैं ? तहां कहैहैं ॥

१०४१ वादीनके व्यामोहके अज्ञानरूप मूलकूं कहिके ।
 प्रकृत ब्रह्मकी द्विरूपताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहांः—तैत्ति-
 रीय श्रुतिविषै आदिशब्दकरि “ मैं अन्नकूं अरु अन्नके भक्ष-
 ककूं भक्षण करूंहूं ” इत्यादि ग्रहण करिये है औ छांदोग्य श्रुति
 विषै आदिशब्दकरि “सत्यकाम । सत्यसंकल्प । विजर । वि-
 मृत्यु” । इत्यादि ग्रहण किया है ॥

न्यतुर्न वृष्टिम् । दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो
वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाचेति ॥ १६ ॥

प्रगट करूं हूं । वृष्टिकूं तन्यतु (मेघ) की-
न्यांई ॥ जिस (मधु) कूं दध्यङ् आथर्वण ।
तुह्यारे अर्थ अश्वके शिरकरि जो कहताभया
[ताकूं में प्रगट करूं हूं] ऐसैं ॥ १६ ॥

हाहै:—“जातैं पर अपर किंचित् नहीं है । इस सा-
मकूं गायन करता हुया स्थित होवैहै । मैं अन्नहूं मैं
अन्नहूं मैं अन्नहूं ” इत्यादि औ तैसैं छांदोग्य-
विषै कहा है:—“ हसता हुया क्रीडा करताहुया
रममाण है । सो जब पितृलोकके कामनावाला
सर्वगंध सर्व रस सर्वज्ञ सर्ववित् होवैहै ” इ-
त्यादि औ अथर्वणवेदविषै कहा है:—“ दूरतैं सो
दूरविषै है औ सो इहां समीपविषै है ” औ कठव-
ल्लीविषैबी कहाहै:—“अणुतैं अतिशय अणु है । मह-
त्तैं अतिशयकरि महत् है । कौन तिस मदामद
देवकूं । सो दौडनेवाले अन्योंकूं अतिक्रमण करैहै
अरु स्थित होवैहै ” ऐसैं औ तैसैं ^{१०४२} गीताविषैबी

१०४२ श्रुतिसिद्ध ब्रह्मकी द्विरूपताविषै स्मृतिकूंबी कथन
करैहैं ॥

कहा है:—“मैं क्रतु हूं मैं यज्ञ हूं मैं इस जगत्का पिता हूं । किसीकेबी पापकूं नहीं ग्रहण करैहै । सर्व भूतनविषै सम है । विभक्तनविषै अविभक्त है । ग्रसिष्णु अरु प्रभविष्णु है ” इत्यादि आगमके अर्थकूं विरुद्धकीन्यांई भासमान मानते हुये स्वचित्तके सामर्थ्यतैं अर्थके निर्णयवास्ते विकल्प करते हुये:—^{१०४५}आत्मा है । आत्मा नहीं है ॥ कर्त्ता है । अकर्त्ता है । मुक्त है । बद्ध है । क्षणिक है । विज्ञानमात्र है औ शून्य है । इस प्रकारसैं विकल्प करते हुये पारकूं नहीं पावतेहैं । अविद्याकूं सर्वत्र (सारे) विरुद्ध धर्मकी दिखावनेहारी होनेतैं ॥ तातैं तहां जेई श्रुति अरु आचार्यकरि दर्शित मार्गके अनुसारी हैं । वेई अविद्याके पारकूं पावतेहैं औ वेई इ-

१०४३ पूर्वोक्त प्रकारकरि आगमके अर्थविषै विरोधके समाधानके विद्यमान हुयेवी । ताके अज्ञानतैं वादीनकूं विभ्रान्ति है । ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

१०४४ विकल्पकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां “सर्वत्र” याका श्रुति स्मृतिनविषै (आत्माविषै) आत्मामैं । यह अर्थ है ॥

१०४५ कौन तव ब्रह्मविद्याके पारकूं सम्यक् पावते हैं ? तहां कहैहैं ॥

१०४६ ब्रह्मज्ञानके फलकूं कहैहैं ॥

स अगाध मोहरूप समुद्रतै उतरेंगे । इतर स्व-
बुद्धिकी कुशलताके अज्ञानां नहीं ॥ अमृतभा-
वकी साधनभूत ब्रह्मविद्या परिसमाप्तकरी । जा
(ब्रह्मविद्या)कूं मैत्रेयी भर्ता (याज्ञवल्क्य)केताई
पूछतीभयी । “ जाहीकूं भगवान् अमृतभाव-
का साधन जानतेहो । सोई मेरेअर्थ कहो ”
ऐसैं । ईसैं ब्रह्मविद्याकी स्तुतिअर्थ यह आ-
ख्यायिका प्राप्त करी है । ता आख्यायिकाके सं-
क्षेपतै अर्थके प्रकारप्रयोजनवाले ये दोनूं
मंत्र होवैहैं ॥ ^{१०५१} ऐसैहीं मंत्र अरु ब्राह्मणकरि स्तुत

१०४७ “सो जैसे” इत्यादि वाक्यके अर्थकूं विस्तारसैं
कहिके वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥

१०४८ ननु जब ब्रह्मविद्या परिसमाप्त करी । तब उ-
त्तर ग्रंथसैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०४९ यह ऐसैं प्रवर्ग्यप्रकरणविषै स्थित आख्यायि-
काकूं स्मरण करैहैं ॥ इहां:—“इस स्मरण किये तिस मधु-
कूं” इत्यादिरूप ब्राह्मणनै । यह शेष है ॥

१०५० “सो यह ऋषि” इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं क-
हैहैं ॥ इहां “ता (कूरकर्म)कूं तुम दोनूके अर्थ । हे नरा
(नराकार दो अश्विनीकुमार) ! इत्यादिरूप एक मंत्र है औ
“आथर्वणके अर्थ” इत्यादिरूप दूसरा मंत्र है ॥

१०५१ मंत्र अरु ब्राह्मणकरि वक्ष्यमाण रीतिसैं ब्रह्मवि-
द्याकी स्तुतताके हुये क्या सिद्ध होवैहै ? यह आशंका करिके
कहैहैं ॥

होनेतैं ब्रह्मविद्याकूं अमृतभाव अरु सर्वकी प्रा-
 सिआदि^{१०५२} साधनता प्रकटकरी हुयी । राज-
 मार्गके प्रति प्राप्त होवैहै । जैसे आदित्य उदय
 हुया रात्रिके अंधकारकूं दूरी करैहै । ताकी न्यांई ॥
^{१०५३} किंवाः—ऐसैं स्तुत ब्रह्मविद्या है । जो इंद्र^{१०५४}राजा-
 करि रक्षित है । सो देवनकरिबी दुष्प्राप्य है ।
^{१०५५} जातैं देवनके वैद्य अश्विनीकु^{१०५६}ः।।^{१०५७} इंद्रकरि
 रक्षितविद्या बडे आयासकरि प्राप्तकरी है ॥ ब्रा-
 ह्मणें (दध्यङ्ङाथर्वा)के शिरकूं छेदन करिके । अ-
 श्वके शिरकूं प्रतिसंधान करिके । तिस (अ-
 श्वशिर)के इंद्रक^{१०५८} छेदन किये हुये । फेर स्व
 (ब्राह्मणके) शिरकूंहीं प्रतिसंधानकरिके । तिस
 ब्राह्मणके स्वशिरकरिहीं उक्त संपूर्ण ब्रह्मविद्या

१०५२ ता (ब्रह्मविद्या)की मुक्तिकी साधनताकूं दृष्टांत-
 करि स्पष्ट करैहैं ॥

१०५३ किस प्रकारकरि ब्रह्मविद्याका स्तुतपना है ? तहां
 कहैहैं ॥ इहांः—“ अपि ” शब्द । स्तावक ब्राह्मणकी संभावना
 अर्थ है औ “च” शब्द । दो मंत्रनके समुच्चय (ग्रहण) अर्थ है ॥

१०५४ एवं (ऐसैं) शब्दकरि सूचित स्तुतिके प्रकारकूं-
 हीं प्रकट करैहैं ॥

१०५५ ता (विद्या)की दुष्प्राप्यताविषै हेतुकूं कइहैं ॥

१०५६ महान् आयासकूं स्पष्ट करैहैं

श्रवणकरी ॥ तातैं ^{१०५७} तिस (ब्रह्मविद्या) तैं परतर
 (अतिशय श्रेष्ठ) कलुबी पुरुषार्थका साधनभूत
 नहीं है । वा भावि नहीं है । वर्त्तमान कहातैं-
 हीं होवैगा ऐसैं । यातैं पर (उल्कष्ट) स्तुति नहीं
 है ॥ किंवा ^{१०५८} ऐसैं ब्रह्मविद्या स्तुतिकी विषयकरि-
 येहैः—सर्व ^{१०५९} पुरुषार्थनका कर्महीं साधन है । ऐ-
 सैं लोकविषै प्रसिद्ध है औ सो कर्म । वित्तकरि
 साध्य है । तिसकरि अमृतभावकी आशाबी न-
 हीं है ॥ सो यह अमृतभाव केवल (कर्मनिर-
 पेक्ष) ^{१०६०} आत्मविद्याकरि प्राप्त होवैहै । जातैं क-
 र्मके प्रकरणविषै कहनेकूं प्राप्त हुयीबी प्रवर्ग्य
 प्रकरणविषै ^{१०६१} कर्म प्रकरणतैं ऊतरीके कर्मके सा-

१०५७ कृतार्थ इंद्रकरिबी रक्षितताके हुये विद्याकी दु-
 र्लभतारूप फलितकूं कहैहैं ॥

१०५८ केवल उक्त प्रकारकरिहीं विद्या स्तुत करियेहै
 ऐसैं नहीं । किंतु प्रकारांतरकरिबी स्तुत करिये है । ऐसैं क-
 हैहैं ॥

१०५९ ताही प्रकारांतरकूं प्रकट करैहैं ॥ इहां “केवल”
 पदका व्याख्यान । कर्मनिरपेक्ष है ॥

१०६० तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

१०६१ ननु तर्कके प्रकरणविषै प्राप्त हुयेबी । प्रकरणांतर
 विषै कयूं कथन करिये है ? तहां कहैहैं ॥

थि विरुद्ध होनेतैं केवल संन्याससहित अमृत-
 भावके साधनअर्थ अभिहित है । तातैं ^{१०६२} इसतैं
 पर पुरुषार्थका साधन नहीं है ॥ किंवा^{१०६३} ऐसैं स्तु-
 त ब्रह्मविद्या है:—जातैं सर्व लोक । द्वंद्वविषै आ-
 राम है । सोई नहीं रमता भया “ तातैं एका-
 की नहीं रमता है” इस श्रुतितैं ॥ याज्ञवल्क्य ।
 लोकसाधारण हुयावी । आत्मज्ञानके बलतैं भा-
 र्या पुत्र वित्तआदिक संसारकी रतिकूं परित्याग
 करिके प्रज्ञानतृप्त हुया आत्मरति होताभया ॥
 किंवा^{१०६४} ऐसैं स्तुत ब्रह्मविद्या है:—जातैं संसारमा-
 र्गतैं व्युत्थान करनेवालेवी याज्ञवल्क्यनैं प्रिय
 भार्याके वास्ते प्रीतिके अर्थहीं कहीहै । “तूं प्रि-
 य भौषण करतीहैं आ बैठ ” इस लिंगतैं । इ-

१०६२ प्रसिद्ध पुरुषार्थके उपायकूं “कर्म” ऐसैं कहिके ।
 विद्याविषैहीं आदरके हुये । तिसविषै अधिकारीकूं सम्यक्
 प्राप्त होवैहै । ऐसैं फलितकूं कहैहैं ॥

१०६३ प्रकारांतरकरि ब्रह्मविद्याकी स्तुतिकूं दिखावै हैं ॥
 इहां यह अर्थ है:—अनात्माविषै प्रीतिकूं छोडीके आत्मावि-
 षैहीं आत्मरतिकी हेतु होनेतैं विद्या बडी है ॥

१०६४ अन्य विद्याकरि ताकी स्तुतिकूं कहैहैं ॥

१०६५ ब्रह्मविद्या भार्याके तांई प्रीतिके अर्थ कही । यह
 कैसें जानिये है ? तहां कहैहैं ॥

१०६६

हां यह स्तुतिके अर्थ आख्यायिका है । ऐसैं हम कहतेहैं ॥ कौन फेर सो आख्यायिका है ? तहां कहियेहैः—यह ऐसैं अनंतर निर्देश कियेकूं व्यपदेश करैहै बुद्धिविषै संनिहित होनेतैं । “वै” शब्द स्मरणके अर्थ है ॥ सो यह आख्यायिका-करि निर्वृत्त (समाप्त किये) प्रकरणांतरविषै अभिहित परोक्षकूं वै शब्दकरि स्मरण करवता हुया इहां व्यपदेश करैहै ॥ जो सो प्रवर्ग्यप्रकरणविषै सूचित अरु अप्रगट किया मधु है सो यह मधु इहां “ यह पृथिवी मधु है ” इत्यादिकरि अनंतर निर्देश किया है ॥ ॥ तहां प्रकरणांतरविषै कैसें सूचना किया है ? तहां कहैहैंः—दध्यङ्ङाथर्वण नामक ऋषि। इन दो अश्वनी ~~उत्तरार्द्ध~~ अर्थ मधुनाम ब्राह्मणकूं कह-

१०६६ आख्यायिकाकी स्तुति अर्थताकूं प्रतिपादन करिके । वृत्तकूं अनुवाद करिके । आकांक्षापूर्वक ता (आख्यायिका) कूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥ इधरः—“इहां” इस सप्तमीका । ब्रह्मविद्या अर्थ है ॥

१०६७ पदार्थकूं कहिके । वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

१०६८ “दध्यङ्ङ” इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करते हुये । आकांक्षापूर्वक प्रवर्ग्यप्रकरणविषै स्थित आख्यायिकाकूं अनुकीर्त्तन करैहैं ॥

ताभया ॥ सो इन दोनूंकूं प्रीतिका स्थान होता-
 भया ॥ ताहीकूं इस वक्ष्यमाण प्रकारकरि देता
 हुयाहीं इन दोनूं अश्वनीकुमारनके आचार्य-
 भावकरि समीप गमन करताभया ॥ सो (द-

१०६९ किस प्रकारकरि कहता भया ? इस अपेक्षाके
 हुये कहते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—इन दो अश्वनीकुमा-
 रोंकूं सो मधु प्रीतिका आस्पद होता भया । ताके वशतैं तिन
 दोनूंकरि प्रार्थित हुया ब्राह्मण कहता भया ॥

१०७० जो अश्वनीकुमारोंकरि मधु प्रार्थित है । सो
 इस वक्ष्यमाण प्रकारकरि देता हुयाहीं इन दो अश्वनीकु-
 मारोंके आचार्यभावकरि ब्राह्मण । समीप गमन करता भया ।
 ऐसैं कहैहैं ॥

१०७१ आचार्यभावके अनंतर ब्राह्मणके वचनकूं दिखा-
 वैहैं ॥ इहां एतत् (यह) शब्द मधुके अनुभवकूं विषय क-
 रनेवाला है औ यत् शब्द जो है सो यदि (जब) अर्थवाला
 है अरु तत् शब्द तर्हि (तब) अर्थवाला है वा औ तुम दो-
 नूंकूं उपनयन करूंगा । याका शिष्यभावकरि स्वीकार क-
 रूंगा । यह अर्थ है औ वे दोनूं कहिये देवनके वैद्य दो अ-
 श्वनीकुमार औ शिरके छेदनरूप निमित्तवाला मरण पंच-
 मीका अर्थ है औ हमकूं उपनयन करैगा । याका । जब अपने
 शिष्यभावकरि स्वीकार करैगा । यह अर्थ है औ अथ शब्द ।
 तदा (तब) अर्थवाला है ॥ ब्राह्मणकी आज्ञाके अनंतर अथ
 ऐसैं कहा औ मधु प्रवचनके अनंतर । यह तृतीय अथ श-
 ब्दका अर्थ है औ जो अश्वका शिर ब्राह्मणविषै निबद्ध है ताके
 छेदनके अनंतर । यह चतुर्थ अथ शब्दका अर्थ है ॥

ध्यङ्ङाथर्वा) कहताभयाः—मैं इंद्रकरि गैं उक्त (उक्तिका विषय भया) हूं । सो आत्माः ज-
 ब अन्यके अर्थ कहैगा । ताहीतैं तेरे शिरकूं छे-
 दन करूंगा ऐसैं । ताहीतैं मैं भयकूं गेटाहूं ।
 जबहीं सो (इंद्र) मेरे शिरकूं नहीं छेदैगा ।
 तब मैं तुम दोनूंकूं शिष्यभावकरि स्वीकार क-
 रूंगा ऐसैं ॥ वे (देवनके वैद्य दो अश्वनीकुमार)
 कहतेभयेः— हम तेरेकूं तिस (शिरच्छेद निमि-
 त्त मरण)तैं रक्षा करेंगे ऐसैं ॥ ॥ कैसैं मुजकूं
 रक्षा करोगे ऐसैं [ऋषि कहताभया] ॥ [तहां
 अश्वनीकुमार कहैहैंः—] जब हमकूं शिष्यभा-
 वकरि स्वीकार करैगा तब तेरे शिरकूं छेदन क-
 रिके अन्य ठिकाने लेजायके स्थापन करेंगे । और
 अश्वके शिरकूं ल्यायके सो तेरेकूं प्रतिसंधान करेंगे ।
 तिसकरितूं हमकूं उपदेश करैगा । सो जब हमकूं
 उपदेश करैगा । तब तेरे तिस शिरकूं इंद्र छेदन
 करैगा । अनंतर तेरे स्वशिष्यकूं ल्यायके, ताकूं तेरे
 अर्थ हम प्रतिसंधान करेंगे । तैसैं ॥ [तब सो
 ऋषिः—] तथाऽस्तु ऐसैं कहिके । तिन दोनूंकूं
 शिष्यभावकरि स्वीकार करताभया । तिन दो-
 नूंकूं जब शिष्यभावकरि स्वीकार करते भये ।

तब याके शिरकूं छेदन करिके अन्य ठिकाने स्थापन करतेभये ॥ अनंतर अश्वके शिरकूं ल्यायके सोई याकूं अनुसंधान करतेभये ॥ तिसकरिहीं तिन दोनूके अर्थ उपदेश करताभया । सो जब इन दोनूके अर्थ उपदेश करताभया । तब याके तिस शिरकूं इंद्र छेदन करताभया ॥ अनंतर याके स्वशिरकूं ल्यायके सोई याकूं प्रतिसंधान करतेभये ॥ ॥ जहांपर्यंत तो प्रवर्ग्यकर्मका अंगभूत मधु है । तहांपर्यंतहीं तहां कहा है । परंतु आर्यज्ञाननामक कक्ष्य (गोप्य) नहीं कहा । ^{१०७२} तिसविषै यह आख्यायिका कहीहै । सो इहां ब्रह्मविद्याकी स्तुतिअर्थ दिखाईयेहै:— ईस स्मरण किये तिस मधुकूं दध्यड्डाथर्वण ऋषि । इस प्रपंचकरि अश्विनीकुमारोंकेअर्थ

१०७२ तब समस्तवी मधु । प्रवर्ग्य प्रकरणविषै दिखायाहीं है । यातैं इस ब्राह्मणनैं क्या किया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०७३ ननु प्रवर्ग्य प्रकरणविषै स्थित आख्यायिका । इहां किस अर्थ आनयन करी ? यह आशंका करिके । इस ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ यह आख्यायिका है । इस ठिकाने उक्त अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

१०७४ ब्राह्मणभागकी व्याख्याकूं निगमन करैहैं ॥

कहताभया ॥ तिसं^{१०५} इस कर्मकूं ऋषि (मंत्र) देखता हुया (उपलभमान हुया) कहता भया ॥ उहां कैसा सो दंस है । ऐसैं व्यवहितसैं संबंध है ॥ दंस यह कर्मका नाम है ॥ औ सो दंस किस विशेषणवाला है:—उग्र (क्रूर) है । तुह्यारा । हे नराकार दो अश्विनीकुमार ! औ सो कर्म किस निमित्त किया है कि:—सनि (लाभ)के अर्थ किया है ॥ जातैं लांभविषै लुब्ध हुया जो पुरुष । सो लोकविषैबी क्रूर कर्मकूं आचरता हे । तैसैंहीं ये दोनूं उपलभ्यमान होवैहैं । जैसैं लोकविषै ॥ ताकूं प्रकाश करूंहूं । जो रहस्य (एकांत)विषै तुम दोनूंनैं किया है ॥ ॥ किसकीन्यांई ? तहां कहियेहै:—वृष्टिकूं तन्यतु (मेघ)कीन्यांई ॥ इहां नकार तो ऊ-

१०७५ “तिसकूं तुह्यारे तांई” इत्यादि मंत्रकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥

१०७६ यह क्रूर कर्मका अनुष्ठान लाभके अर्थ कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥

१०७७ ननु प्रतिषेधरूप अर्थविषै मुख्य जो नकार । सो इव (न्यांई) शब्दके अर्थविषै कैसैं व्याख्यान करियेहै ? त-

परतैं उपचाररूप (कथनमात्र) है । सो वेदवि-
षै उपमाके अर्थ होवैहै । प्रतिषेधके अर्थ नहीं ॥
जैसैं अश्वंन कहिये अंश्वकीन्यांई । यह पद
है । ताकीन्यांई ॥ वृष्टिकूं मेघकीन्यांई कहिये
जैसैं मेघ मेघगर्जनाआदिक शब्दनकरि वृष्टिकूं
प्रकाशताहै । ताकीन्यांई । मैं तुह्यारे क्रूरकर्म-
कूं प्रकाश करूंहूं । ऐसैं संबंध है ॥ ॥ ननु^१ दो

हां कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—वेदविषै पदतैं ऊपर जो
नकार सुन्या है । सो निश्चयकरि उपचाररूप हुया उपमा-
रूप अर्थवालावी संभवैहै । निषेधरूप अर्थवाला नहीं ॥

१०७८ तहां उदाहरणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
“अश्विनीकुमारनैं अश्वकूं न गूढ (अश्वकी न्यांई रक्षित)”
इस ठिकाने नकार जैसैं उपमारूप अर्थवाला है । तैसैं प्रकृ-
तविषैबी है ॥

१०७९ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१०८० जैसैं । इस प्रकारसैं उपमारूप अर्थवाले नकारके
हुये । वाक्यके स्वरूपकूं अनुवाद करिके ताके अर्थकूं कथन
करैहैं ॥

१०८१ ननु विद्याकी स्तुतिद्वारा ता (गुरु)के हंता अ-
श्विनीकुमार । इहां स्तुतिके विषय नहीं करियेहैं किंतु क्रूर
कर्मके कर्त्ता होनेकरि निंदाके विषय करियेहैं । तातैंबी । आ-
ख्यायिका विद्याकी स्तुति अर्थ है । यह कथन अयुक्त है ?
इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

अश्विनीकुमारोंकी स्तुतिअर्थ ये दो मंत्र कैसे होवेंगे । जाते ये दोनों दिव्यदे वचन हैं ? यह दोष नहीं है:—यह स्तुतिही है । निंदाके वचन नहीं ॥ जाते इस प्रकारकेबी अतिक्रूरकर्मकू करनेवाले तुम दोनोंका लोम (रोम)बी नहीं क्षीण होवैहै ऐसे औ अन्य किंचित्बी नष्ट हुयेकीन्याई नहीं होवैहै । ऐसे ये दो मंत्र स्तुत होवैहैं ॥ जाते लौकिक जन दिव्यदं प्रशंसा स्मरण करैहैं । तिस प्रकार हुये प्रशंसारूप

१०८२ आख्यायिकाकी विद्यास्तुतिअर्थता अविरोध है । इस रीतिसँ सिद्धांती । परिहार करैहैं ॥ इहां:—तुम्हारा लोममात्रबी नहीं नष्ट होवैहै । ऐसे जाते कहा है । ताते विद्याकी स्तुतिकरि तिस क्रूर कर्मवाले अश्विनीकुमारोंकी स्तुतिही इहां कहनेकू वांछित है । ऐसे योजना है ॥

१०८३ यद्यपि क्रूरकर्मके करनेवाले दो अश्विनीकुमारोंकी दृष्टहानि (इस लोककी हानि) नहीं है । तथापि अदृष्टहानि (परलोककी हानि) होवैगीहीं ? यह आशंका करिके । कैमुतिक न्यायकरि कहैहैं ॥

१०८४ ननु निंदाके दृश्यमान हुये कैसे स्तुति अंगीकार करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जाते निंदा निघकू निंदा करनेकू नहीं है । किंतु विधेय (विधिबोधित) अर्थकी स्तुति करनेकू है । इस न्यायते ॥

१०८५ जैसे निंदा । निघकू निंदा करनेकू ही नहीं होवै-

निंदा लोकविषै प्रसिद्ध है ॥ दूर्ध्यङ्नाम आथ-
 र्वण ऋषि [इहां “ह” ऐसा निरर्थक निपात है]
 जो गोप्य आत्मज्ञानरूप मधु है । सो तुम दो-
 नूँके अर्थ अश्वके शिरकरि कहता भया औ
 यह आथर्वण ऋषि । जिस मधुकूं तुझारे अर्थ क-
 हताभया [इहां “ई” ऐसा अर्थरहित निपात है]
 इस स्मरण किये तिस मधुकूं [मैं प्रकाश करूं-
 हूं] इत्यादि पूर्वकी न्यांई है । सो अन्त्य मंत्रके
 प्रदर्शन अर्थ है ॥ १६ ॥

है । तैसेँ स्तुतिबी । स्तुत्य (स्तुतिके योग्य)कूं स्तुति करने-
 कूंहीं नहीं होवैहै किंतु निंदा करनेकूंबी होवैहै । तिस प्रकार
 हुये इन दो (निंदा स्तुति)का व्यवस्थितपना नहीं है । पेसैं
 कहैहैं ॥

१०८६ सो तुझारे तांई । इत्यादि मंत्रके पूर्वार्द्धकूं व्या-
 ख्यान करिके औ आख्यायिकाकी स्तुति अर्थताके विरोधकूं
 उद्धार करिके । अब उतरार्द्धकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां:—
 जो गोप्य ज्ञाननामक मधु है । सो आथर्वण मुनि तुम दो-
 नूँके अर्थ अश्वके शिरकरि कहताभया औ जिस मधुकूं यह
 (मुनि) तुझारे अर्थ कहताभया । ताकूं मैं प्रगट करूंहैं । पेसैं
 संबंध है ॥

१०८७ समान अर्थके हुये । फेर क्यूँ कहिये है ? तहां क-
 हैहैं ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्वि-
भ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् ।
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यः शिरः

अर्थः—इस स्मरणकिये तिस मधुकूँ द-
ध्यङ् आथर्वणमुनि । अश्विनीकुमारोंके अर्थ
कहताभया । तिस इसकूँ ऋषि (मंत्र) दे-
खाताहुया कहताभयाः—दध्यङ् आथर्वणके
अर्थ । हे अश्विनीकुमार ! तुह्य अश्वके स्वभूत
शिरकूँ प्राप्तकरते भये । सो तुह्यारे अर्थ जो

टीकाः—^{१०८८}तैसैं अन्यमंत्र तिसीहीं आख्यायिकाकूँ
अनुसरताभया ॥ इहां अथर्वतैं दध्यङ्नामा
आथर्वण । अन्य विद्यमान है । यातैं विशेषण
देतेहैंः—^{१०८९}दध्यङ्नामा आथर्वण ॥ तिस दधीच
आथर्वणके अर्थ । हे दो अश्विनीकुमार !

१०८८ तुल्य अर्थवाले ब्राह्मणके तात्पर्यकूँ कहैहैं ॥

१०८९ विशेषणके कृत्यकूँ दिखावते हुये व्याख्यान क-
रैहैं ॥ इहांः—प्रथम अश्वकूँ इत्यादि पदार्थका वचन है । अ-
श्वका इत्यादिकविषै छेदन करिके । ऐसैं याके कर्मका कथन
हे औ अश्वके शिरकूँ । इस ठिकाने तो अन्वयके अर्थ कहा
है । यह विभाग है ॥

प्रत्यैरयतम् । स वां मधु प्रवोचदृताय-
न्त्वाष्ट्रं यदस्रावपि कक्ष्यं वामिति ॥१७॥
लाष्ट्र (सूर्यसंबन्धी) मधु है ताकूं सत्यके तांई
पालन करनेकूं इच्छताहुया कहताभया । हे
दस्र (शत्रुनके हिंसक)! कक्ष्य (ज्ञानरूप
गोप्य मधु) कूं बी तुहारे अर्थ [कहताभ-
या] ऐसैं ॥ १७ ॥

ऐसा मंत्रदर्शीका वचन है । अश्वके स्वभूत शि-
रकूं ब्राह्मणके शिरके छेदन हुये अश्वके शिरकूं
छेदन करिके इस प्रकारके अतिक्रूरकर्मकूं क-
रिके अश्वके शिरकूं ब्राह्मणके प्रति तुम प्राप्त
करतेभये । औ सो आथर्वण मुनि । तुम दो-
नूके अर्थ तिस मधुकूं कहताभया । जो पूर्व
कहूंगा ऐसैं प्रतिज्ञा कियाथा ॥ ॥ सो (मुनि)
किस अर्थ ऐसैं जीवितके संदेहकूं आश्रय करि-
के कहताभया ? तहां कहियेहैः—जो पूर्व प्रतिज्ञा
किया सत्य है । ताकूं परिपालन करनेकूं इ-

१०९० ननु प्रेक्षापूर्वकारिन (विवेकिन)की ऐसी प्रवृत्ति
अयुक्त है ? ऐसैं शंका करिके समाधान करैहैं ॥

च्छता हुया कहताभया ॥ जातैं जीविततैंबी^{१०९१}
 सत्यरूप धर्मकी परिपालना गुरुतर है । याका
 लिंग यह है । किस प्रकारके तिस मधुकूं कह-
 ता भया ? तहां कहियेहैः—त्वाष्ट्र है कहिये
 त्वष्टा जो आदित्य ताका संबंधी यज्ञ^{१०९२}के शिर छे-
 दन किया । सो त्वष्टा होताभया । ताके प्रति
 संधान अर्थ प्रवर्ग्य कर्म है । तैंहां^{१०९३} प्रवर्ग्य क-
 र्मका अंगभूत जो विज्ञान है । सो त्वाष्ट्र मधु
 है कहिये यज्ञ^{१०९४}के शिरके छेदन अरु प्रतिसंधान
 आदिककूं विषय करनेवाला दर्शन (ज्ञान)रूप

१०९१ “सत्यकूं पालन करनेकूं इच्छता हुया” इस ठि-
 काने अर्थतैं सिद्ध अर्थकूं कथन करैहैं ॥

१०९२ “यज्ञके शिरकूं छेदन करते भये । वे दो अश्विनी-
 कुमाररूपदेवनकूं कहतेभये । हे भिषज (वैद्य) ! इस य-
 ज्ञके शिरकूं प्रतिसंधान कीया” इत्यादि अन्य श्रुतिकूं आश्रय
 करिके कहैहैं ॥

१०९३ प्रवर्ग्य कर्मके पेसैं प्रवृत्त हुयेबी प्रकृतविज्ञान-
 विषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

१०९४ उक्त अर्थकूंहीं संक्षेपसैं कहैहैं ॥ इहां जो उक्त प्र-
 कारका ज्ञान है । सो त्वाष्ट्र (त्वष्टा संबंधि) मधु है । औ
 जो सो मधु है ताकूं कहताभया । पेसैं संबंध है औ अध्याय
 द्वयकरि प्रकाशित । याका तृतीय अरु चतुर्थ (प्रथम अरु
 द्वितीय) अध्यायोंकरि प्रकट किया । यह अर्थ है ॥

इदं वै तन्मधु दध्यद्दुःशार्थर्वणोऽश्वि-
भ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् ।

अर्थः—इस स्मरणकिये तिस मधुकुं द-
ध्यद् आथर्वण । अश्विनीकुमारनके अर्थ क-
हताभया । तिस इसकुं ऋषि देखता हुया
जो त्वाष्ट्र मधु है सो । हे दस्रौ (शत्रुनकी से-
नाके उपक्षयके कर्ता वा शत्रुनके हिंसक अ-
श्विःगोदुःशार) ! [तुह्यारे अर्थ कहता भया] ॥
किंवा केवल कर्मसंबंधी त्वाष्ट्रहीं मधु तुह्यारे अ-
र्थ कहताभया ऐसैं नहीं । किंतु कक्ष्य कहिये गो-
प्य (रहस्य) परमात्मासंबंधी जो विज्ञानरूप
मधु । मधु-ब्राह्मणकरि कहा है औ दो अध्या-
योंकरि प्रकाशित है । सो तुह्यारे अर्थ कहता-
भया । ऐसैं अनुषंग है ॥ १७ ॥

टीकाः—यह स्मरण किया सो मधु है । ऐसैं
पूर्वकी न्यांई उक्त दो मंत्र । प्रवर्ग्यसंबंधी आ-
ख्यायिकाके उपसंहारके कर्ता हैं । प्रवर्ग्य कर्म-

१०९५ उक्त दो मंत्रोंकरि वक्ष्यमाण दो मंत्रोंकी अपुन-
रुक्तरूप अर्थवानताकुं कहनेकुं वृत्तकुं कीर्त्तन करैहैं ॥

१०९६ आख्यायिकाविशेषकरि प्राप्त संकोचकुं परिहार
करैहैं ॥

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः । पुरः
स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति ।

कहताभयाः—दो पादवाली पुरिनकूं करता-
भया । च्यारी पादवाली पुरिनकूं करता-
भया । प्रथम सो (परमेश्वर) पक्षी (लिंग
शरीर) होयके पुरिन (शरीरन)के प्रति
पुरुष प्रवेश करताभया ऐसैं ॥ सो प्रसिद्ध-

रूप अर्थवाले दो अध्यायनका अर्थ आख्यायि-
काभूत दो मंत्रनकरि प्रकाशित किया औ
ब्रह्मविद्यारूप अर्थवाले दो अध्यायोंका अर्थ पी-
छली दो ऋचाओंकरि प्रकाश करनेकूं योग्य है ।
यातैं प्रवर्त्त होवैहैः—^३अर्थर्वण मुनि । जो कक्ष्य
(गोप्य) मधु है । सो तुह्यारे अर्थ कहताभया ।

ऐसैं कहा ॥ ॥ फेर क्या सो मधु है ? तहां क-
हियेहैः—पुरनकूं कहिये शरीरनकूं करताभया ।

^{१०९९}

जातैं यह अव्याकृतके व्याकरण (प्रकटीकर-

१०९७ पीछले दो मंत्रनकी प्रवृत्तिकूं प्रतिज्ञा करैहैं ॥

१०९८ अब अवांतर संगतिकूं कहैहैं ॥

१०९९ हिरण्यगर्भके किये शरीरके निर्माणकूं इहां नहीं
कहियेहै किंतु प्रकरणके बलतैं ईश्वरका किया कहियेहै ।

स वा अयं पुरुषः सर्वासु पृषु पुरिशयो
नैनेन किञ्चनानावृतं नैनेन किञ्चनासं-
वृतम् ॥ १८ ॥

यह सर्व पुरिनविषै पुरिशय हुआ पुरुष क-
हियेहै । इसकरि कछुबी अनावृत नहीं । इ-
सकरि कछुबी असंवृत (भीतर अननुप्रवे-
शित) नहीं है ॥ १८ ॥

ण)की प्रक्रिया है । सो परमेश्वर अव्याकृत
(अप्रगट) नामरूपकूं प्रगट करता हुआ प्रथम
भूरादिक लोकनकूं सृजीके दो पादोंकरि उप-
लक्षित मनुष्य शरीररूप । पुरीनकूं (शरीरनकूं)
औ तैसैं च्यारीपादोंकरि उपलक्षित पशुशरीर-
रूपपुरीनकूं करताभया ॥ पूर्व सो (ईश्वर) पक्षी
(लिंगशरीर) होयके पुरन (शरीरन)के प्रति
पुरुष हुआ आवेश (प्रवेश) करताभया ।
याके अर्थकूं श्रुति कहैहैः—सोई यह पुरुष । स-

ऐसैं कहैहैं ॥ इहांः—शरीरकी सृष्टिकी अपेक्षाकरि लोक
सृष्टिकी प्रथमता है औ पुरस्तात् (पूर्व) । याका देहसृष्टितैं
अनंतर अरु प्रवेशतैं पूर्व । यह अर्थ है ॥

र्व पुरीनविषै (सर्व शरीरनविषै) “पुरविषै सोव-
ताहै सो पुरिशय है” ऐसा हुया “पुरुष” ऐसैं
कहियेहै ॥ ईसंकरि किंचत्बी अनावृत (अ-
नाच्छादित) नहींहै । तैसैं इसकरि किंचित्
बी असंवृत (भीतर अननुप्रवेशित) नहीं है
कहिये बाह्य भूतकरि औ अंतर भूतकरि अ-
नावृत नहीं है ॥ ऐसैं सोई नामरूप स्वरूप अं-
तर बाहिर भावसैं कार्य करणरूपकी व्यवस्थि-
त हुया पुरीनकूं करताभया । इत्यादिरूप मंत्र ।
संक्षेपतैं आत्माकी एकताकूं कहता है । यह अ-
र्थ है ॥ १८ ॥

११०० सोई सर्व शरीरनविषै वर्त्तमान हुया पुरीविषै
सोवताहै । इस व्युत्पत्तिकरि । पुरिशय हुया पुरुष होवैहै ।
ऐसैं कहिके । प्रकारांतरकरि पुरुष शब्दकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

११०१ दो वाक्यनकी एकार्थताकूं आशंका करिके । सर्व
जगत् ओत प्रोत भावकरि आत्मासैं व्याप्त है । इस अर्थवि-
शेषकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

११०२ आत्माकी पूर्णताके हुये “दिव्य अमूर्त्त पुरुष है”
इत्यादि श्रुतिकूं आश्रय करिके । फलितकूं कहैहैं ॥

११०३ मंत्र अरु ब्राह्मणके अर्थके भेदकूं आशंका करिके
कहैहैं ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्वि-
भ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचद्रूपं
रूपं प्रतिरूपो बभूव । तदस्य रूपं प्रतिच

अर्थः—इस स्मरण किये तिस मधुकुं
दध्यङ् आथर्वण । अश्विनीकुमारनके अर्थ
कहताभया । तिस इसकुं ऋषि देखता हु-
या कहताभयाः—रूप रूपकेताई (उपा-
धिभेदके ताई) प्रतिरूप (प्रतिबिंबरूप)

टीकाः—यहँ सो मधु है । इत्यादि पूर्वकी
न्याई है ॥ रूपरूपके ताई प्रतिरूप होताभया ।
अर्थ यह जोः—रूपकेप्रति रूपकेप्रति प्रति-
रूप (रूपांतर) होताभया ॥ वा प्रतिरूप क-
हिये अनुरूप । जिस प्रकारके संस्थान (आकार)

११०४ प्राचीनहीं ब्राह्मणकुं अनुवाद करिके । मंत्रांतरकुं अ-
वतार देते हैं ॥ इहांः—“प्रति” शब्द जो है सो तंत्रकरि उ-
च्चारण किया है । यातैं रूप रूपके ताई कहिये उपाधि भेदके
ताई प्रतिरूप (रूपांतर) कहिये प्रतिबिंबरूप होताभया ।
यह प्रतिरूप होताभया । इस ठिकाने विवक्षित है । ऐसैं यो-
जना है ॥

११०५ वा अनुरूप है । ऐसैं उक्त अर्थकुं विवरण करैहैं ॥

क्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति । अयं वै
हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि

होताभया । सो याका रूप प्रतिचक्षण (प्र-
तिख्यापन) के अर्थ है ॥ इंद्र (परमेश्वर) ।
मायाओंकरि पुरुरूप (बहुरूप) प्रतीत
होवैहै । युक्त (शरीररूप रथविषै योज-
ना किये) जातैं याके हरि (इंद्रियरूप
अश्व) दशशत (सहस्र) हैं ॥ यह (प-
रमेश्वर) हीं हरि हैं । यहीं दशसहस्र

वाले मातापिता होवैं । तिस संस्थानवाला ति-
नका अनुरूप (अनुसारी) हीं पुत्र जन्मताहै ।

जातैं चतुष्पादतैं दोपादवाला वा दो पादवाले-

तैं चतुष्पादवाला नहीं जन्मताहै ॥ सोईहीं
परमेश्वर नामरूपकूं प्रकट करता हुया रूप रूप

११०६ उक्त अर्थकूं अनुभवविषै आरूढ करैहैं ॥

११०७ रूपांतरके होनेविषै अन्य कर्त्ताकूं निवारण करै-
हैं ॥ इहां प्रतिख्यापनके अर्थ । याका शास्त्र अरु आचार्य
आदिकनके भेदकरि तत्वके प्रकाश करनेवास्ते । यह अर्थ है ॥

चानन्तानि च । तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरम-
नन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभू-
रित्यनुशासनम् ॥ १९ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य
पंचमं मधु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

औ बहु औ अनंत हैं ॥ सो यह ब्रह्म अपूर्व
(कारणरहित) अनपर (कार्यरहित) अ-
नंतर (जात्यंतररहित) बाह्य । यह आत्मा
ब्रह्म सर्वानुभू (सर्वकाअनुभवकर्ता) है ।
यह अनुशासन (सर्व वेदांतनका उपदेश)
है ॥ १९ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य पंचमं
मधु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

(उपाधिभेद)के प्रति प्रतिरूप (प्रतिबिंबरूप)
होताभया ॥ ॥ फेर ताका प्रतिरूप आगमन
किस अर्थ है ? तहां कहियेहैः—सो इस आ-
त्माका रूप प्रतिचक्षण (प्रतिख्यापन)के अ-

र्थ है ॥ जैवहीं नामरूप नहीं प्रगट करियेहै तब इस आत्माका निरुपाधिक प्रज्ञानघननामक रूप नहीं प्रख्यात होवै । जब फेर कार्य कारण स्वरूपकरि नामरूप प्रगट होवैहैं । तब याका रूप प्रख्यात होवै ॥ इंद्र (परमेश्वर) मीया-ओंकरि कहिये प्रज्ञाओंकरि वा नामरूपभूतताके किये मिथ्या अभिमानोंकरि । [परमार्थतैं तो नहीं] पुरुरूप प्रतीत होवैहै कहिये एक-रूपहीं प्रज्ञानघन हुआ अविद्यारूप प्रज्ञाओंकरि ^{११११} बहुरूप भासता है ॥ फेर किस कारणतैं कि:-

११०८ ताहीकूं व्यतिरेककरि औ अन्वयकरि स्पष्ट करैहैं ॥

११०९ मायाओंकरि कहिये प्रज्ञाओंकरि । ऐसैं पर पक्षकूं कहिके । स्वपक्षकूं कहैहैं ॥ इहां:—मिथ्याबुद्धिकी हेतुभूत अनादि अनिर्वाच्य दंडायमान अज्ञानके वशतैं यह बहुरूप भासता है । यह अर्थ है ॥

१११० प्रकारके भेदतैं तो बहुवचन है । ऐसैं वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहां:—अविद्यारूप प्रज्ञाओंकरि बहुरूप प्रतीत होवैहै । ऐसैं पूर्वके साथि संबन्ध है ॥

११११ परमात्माकी बहुरूपताविषै निमित्तकूं प्रश्नपूर्वक निवेदन करैहैं ॥ इहां:—जैसैं रथनविषै जोडे हुये वाजी (घोडे) रथीकूं स्वगोचर देशके ताई प्राप्त करनेकूं प्रवृत्त होवैहैं । तैसैं तिस प्रत्यगात्माके रथस्थानीय शरीरविषै जोडे हुये हरि (इंद्रियरूप घोडे) हैं ॥ वे स्वविषयके प्रकाश क-

रथविषै युक्त (जोडे) वाजिन (अश्वन) की न्यांई स्वविषयके प्रकाश करने अर्थ । जातैं या (प्रत्यगात्मा)के हरणकरनेतैं इन्द्रियरूपहरि (घोडे) प्राणिनके भेदकी बहुलतातैं दशशत (सहस्र) होवैहैं ॥ तातैं इन्द्रियनके विषयके बहुलतातैं तिनके प्रकाश करने अर्थहीं वे (इन्द्रिय) युक्त (जोडे) हैं । आत्माके प्रकाश करने अर्थ नहीं “स्वयंभू इन्द्रियनकूं वाहिर (बहिर्मुख करनेरूप) हिंसा

रनेके प्रति जातैं प्रवृत्त होवैहैं । तातैं इन्द्रियनकूं औ तिनके विषयनकूं बहुल होनेतैं तिनके रूपनकरि यह बहुरूप भासता है । ऐसैं योजना है ॥

१११२ हरि शब्दकी इन्द्रियनविषै प्रवृत्तिमें निमित्तकूं कहैहैं ॥ इहां प्रत्यगात्माके विषयके प्रति । यह शेष है ॥

१११३ इन्द्रियनकी बहुलताविषै तो हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां:—इन्द्रियनकी बहुलतातैं प्रत्यगात्मा बहुरूप भासता है । यह शेष है ॥

१११४ ननु आत्माकूं प्रकाश करनेकूं इन्द्रिय प्रवृत्त होवैहैं । रूपादिककूंहीं प्रकाश करनेकूं तो नहीं । तातैं तिन (इन्द्रियन)के विषयके वशतैं आत्माकी अन्यथा प्रथा कैसें होवैहै ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

करताभया”^{१११५} ऐसैं जातैं कठवल्लिविषै कहाहै ।

^{१११६} तातैं विषय स्वरूप तिन (इंद्रियन) करिहीं प्र-
तीत होवैहै । प्रज्ञानघन एकरस स्वरूपकरि नहीं ॥

॥ तब यह परमेश्वर अन्य है । हरि (अश्व)
अन्य हैं । इस प्रकारसैं प्राप्त हुये कहियेहैः—यहैं

(परमेश्वर) हीं हरि हैं औ यहहीं दश सहस्र
हैं औ बहु हैं औ अनंत हैं^{१११९} । प्राणिनके भेदकूं

१११५ तातैं इंद्रियनके विषयनकी बहुलतातैं । इस टि-
काने उक्त अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

१११६ यद्वा उक्त प्रकारकी श्रुतिके वशतैं लब्ध अर्थकूं
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं इंद्रियां बाह्य विषयविषै
प्रवृत्त होवैहैं । तातैं तिन विषय स्वरूप इंद्रियनकरिहीं यह
प्रत्यगात्मा बहुरूप प्रतीत होवैहै । अपने साधारणरूप करि
तो नहीं ॥

१११७ याके हरि (घोडे) युक्त (जोडे हुये) हैं । इस
संबंधकूं आश्रय करिके प्रतिवादी शंका करै है ॥

१११८ यह । इत्यादि वाक्यकरि । सिद्धांती परिहार करै
हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिस तिस इंद्रिय आदि रूपसैं आ-
त्माकेहीं अविद्याकरि भ्रानतैं संबंधकूं कल्पित होनेतैं अद्वैतकी
हानि नहीं है ॥

१११९ इंद्रियनकी अनंतताकेहै हेतुकूं कहैहै ॥

अनंत होनेतैं ॥ बँहुँत कहनेकरि क्या है ! सो यह ब्रह्म जो आत्मा है औ अपूर्व है । याका पूर्व (कारण) नहीं है यातैं अपूर्व है । याका अपर (कार्य) नहीं है । यातैं अनपर है । याके अंतरालविषै जात्यंतर नहीं है । यातैं अनंतर है । तैसेँ अबाह्य है । याके बाहिर नहीं है । यातैं अबाह्य है ॥ फेर क्या है:—सो निरंतर ब्रह्म यह आत्मा है ॥ कौन यह ? जो प्रत्यगात्मा द्रष्टा श्रोता मंता बोद्धा विज्ञाता अरु सर्वरूपसैं सर्वकूं अनुभव करैहै यातैं सर्वानुभू है । इस प्रकारका यह अनुशासन (सर्व वेदांतनका उपदेश) है । 'यैहै सर्व वेदांतनका उप-

११२० वाक्यार्थके व्याख्यान अर्थ ऐसैं प्राप्त वाक्यकी रचनाकरि भूमिकाकूं रचिके । तत्पर वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥

११२१ केवल उक्त दो अध्यायनकाहीं अर्थ संक्षेपसैं उपसंहार किया ऐसैं नहीं । किंतु सर्व वेदांतनका अर्थ उपसंहार किया । ऐसैं कहैहैं ॥

११३२ श्रीबृहदारण्यकोपनिषत् ॥ [द्वितीया-

संहार किया अर्थ है । 'यहै अमृत है अभय है ।

औ शीघ्रार्थ परिसमाप्त भया ॥ १८ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां

द्वितीयाध्यायस्य पंचमं मधु-ब्राह्मणं

समाप्तम् ॥ ५ ॥

११२२ ताके उभयविध पुरुषार्थरूप अर्थकूं कहैहैं ॥

११२३ वक्तव्यांतर (कहने योग्य अन्य)के परिशेषकी शंकाकूं परिहार करै हैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां

द्वितीयाध्यायगत-पंचमब्राह्मणस्य टिप्पणं

समाप्तम् ॥ ५ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्विती-
याध्यायस्य षष्ठं वंश-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अथ वंशः पौतिमाष्यो गौपवनाद्
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभा-
षादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं
वंश-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अर्थः—अब वंश है—पौतिमाष्य ॥ गौप-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया
द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं वंश-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

टीकाः—अनंतर अर्थ ब्रह्मविद्यारूप अर्थवाले
मधुकांडका वंश । ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ है

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाष्यादी-
पिकाया द्वितीयाध्यायगतषष्ठब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

११२४ ब्रह्मविद्याकूं संक्षेप अरु विस्तारकरि प्रतिपादन
करिके । अब वंश ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहांः—जातैं
महाजनौकरि परिगृहीत ब्रह्मविद्या है । तिसकरि सो महा
भागधेया है । यह स्तुति है ॥

गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौ-
पवनाद् गौपवनः कौशिकात्कौशिकः
कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्या
च्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च गौ-
तमः ॥ १ ॥

वनतें गौपवन । पौतिमाष्यतें पौतिमाष्य ।
गौपवनतें गौपवन । कौशिकतें कौशिक ।
कौण्डिन्यतें कौण्डिन्य । शाण्डिल्यतें शाण्डिल्य ।
कौशिकतें औ गौतमतें गौतम । होता-
भया ॥ १ ॥

औ ^{११२५}यह मंत्र । स्वाध्यायके अर्थ औ जपके अर्थ
है । तहां वंशकी न्यांई वंश है । जैसे वेणुरूप

११२५ ब्राह्मणके अन्य अर्थकू कहैहैं ॥ इहां—स्वाध्याय
कहिये स्वाधीन उच्चारणकी समर्थताके होते अध्यापन (पढा-
वना) औ जप तो प्रतिदिन आवृत्ति है । यह भेद है ॥

११२६ उक्त प्रकारकी नीतिकरि ब्राह्मणारंभके स्थित हुये ।
वंश शब्दके अर्थकू कहैहैं ॥

११२७ ताहीकू स्पष्ट करै हैं ॥ इहांः—शिष्यके अवसा-
नके उपलक्षणीभूत पौतिमाष्यतें आरंभ करिके तदादि कहिये

आग्निवेश्यादाग्निवेश्यः शाण्डिल्या-
 चानभिम्लाताचानभिम्लात आनभि-
 म्लातादानभिम्लात आनभिम्लातादा-
 नभिम्लातो गौतमाद् गौतमः सैतवप्रा-
 चीनयोग्याभ्यां सैतवप्राचीनयोग्यौ
 पाराशर्य्यात्पाराशर्य्यो भारद्वाजाद्भार-
 द्वाजो भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो
 भारद्वाजाद् भारद्वाजः पाराशर्य्यात्पा-

अर्थः—आग्निवेश्यतैं आग्निवेश्य । औ
 शाण्डिल्यतैं औ आनभिम्लाततैं आनभि-
 म्लात । आनभिम्लाततैं आनभिम्लात ।
 आनभिम्लाततैं आनभिम्लात । गौतमतैं
 गौतम । सैतव अरु प्राचीन योग्यतैं सैत-
 व अरु प्राचीन योग्य । पाराशर्य्यतैं पारा-
 वंश । पर्वतैं पर्वतैंहीं भेदकूं पावता है । ताकी न्यांई
 अग्रतैं आरंभ करिके मूलकी प्राप्तिपर्यंत यह

वेदनामक ब्रह्मके मूलपर्यंत यह वंश है । सो पर्वपर्वतैं भे-
 दकूं पावता है । ऐसैं संबंध है ॥

राशय्यो वैजवापायनाद्वैजवापायनः
कौशिकायनेः कौशिकायनिः ॥ २ ॥

घृतकौशिकाद् घृतकौशिकः पाराश-
य्यायणात् पाराशय्यायणः पाराश-
य्यात् पाराशय्यो जातूकर्ण्यजातूकर्ण्य
आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणस्त्रैव-
शर्य । भारद्वाजतैँ भारद्वाज । औँ भारद्वा-
जतैँ औँ गौतमतैँ गौतम । भारद्वाजतैँ भा-
रद्वाज । पाराशर्यतैँ पाराशर्य । वैजवापाय-
नतैँ वैजवापायन । कौशिकायनितैँ कौशि-
कायनि ॥ २ ॥

अर्थः—घृत कौशिकतैँ घृतकौशिक । पा-
राशय्यायणतैँ पाराशय्यायण । पाराशय्यतैँ
पाराशर्यजातूकर्ण्यतैँ जातूकर्ण्य । औँ आसु-
रायणतैँ अरु यास्कतैँ आसुरायण । त्रैवणितैँ
वंश है । अर्ध्याय चतुष्टयकी आचार्यनकी परं-
पराका जो क्रम है सो । वंश ऐसैँ कहियेहै ॥ ति-

णेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरे-
 रासुरिभारद्वाजाद् भारद्वाज आत्रेयादा-
 त्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद्गौतमो वा-
 त्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः
 कैशोर्य्यात्काप्यात्कैशोर्य्यः काप्यः कु-
 मारहारितात्कुमारहारितो गालवाद्गाल-
 वो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डि-
 न्यो वत्सनपातो बाभ्रवाद्बत्सनपाद्
 त्रैवणि । औपजन्धनितै औपजन्धनि । आसु-
 रितै आसुरिभारद्वाजतै भारद्वाज । आत्रेयतै
 आत्रेय । माण्टितै माण्टि । गौतमतै गौतम ।
 वात्स्यतै वात्स्य । शाण्डिल्यतै शाण्डिल्य ।
 कैशोर्य्यकाप्यतै कैशोर्य्यकाप्य । कुमारहा-
 रिततै कुमारहारित । गालवतै गालव । वि-
 दर्भीकौण्डिन्यतै विदर्भीकौण्डिन्य । वत्स-
 नपात् बाभ्रवतै वस्तनपात् बाभ्रव । पंथा

११२९

नमै प्रथमांत शिष्य है अरु पंचम्यंत आचार्य

११२९ अब इहां शिष्य अरु आचार्यके वाचक शब्दके अ-

वाभ्रवः पथसौभरात्पन्थाः सौभरोऽया-
 स्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूते-
 स्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वा-
 ष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्यामश्विनौ द-
 धीच आथर्वणाद्दध्यङ्ङाथर्वणोऽथर्वणो
 देवादथर्वा दैवो मृत्योः प्राध्वंसना-
 न्मृत्युः प्राध्वंसनः प्रध्वंसनात्प्रध्वंस-
 सौभरतै पंथासौभर । अयास्य आङ्गिरसतै
 अयास्य आङ्गिरस । आभूति त्वाष्ट्रतै आभू-
 ति त्वाष्ट्र । विश्वरूपत्वाष्ट्रतै विश्वरूपत्वाष्ट्र ।
 दो अश्विनीकुमारतै दो अश्विनीकुमार ।
 दधीच आथर्वणतै दध्यङ्ङाथर्वण । अथ-
 र्वा दैवतै अथर्वा दैव । मृत्युरूप प्राध्वंश-
 नतै मृत्युरूप प्राध्वंशन । प्रध्वंशनतै प्रध्वं-

११३०
 है ॥ ॥ परमेष्ठी जो विराट् । सो ब्रह्मा (हि-
 भाव हुये काहेतै व्यवस्था होवैर्गा ? यह शंका भई । तहां
 कहैहैं ॥

११३० परमेष्ठी अरु ब्रह्म शब्दकी एकार्थताकूं आशंका
 करिके कहैहैं ॥

सन एकऋषेरेकऋषिर्विप्रचित्तेर्विप्रचि-
त्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः। सनात-
नात्सनातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः
परमेष्टि ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभुब्रह्मणे नमः
॥ ३ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्या-
यस्य षष्ठं-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

शन । एकऋषितैँ एकऋषि । विप्रचित्तितैँ
विप्रचित्ति । व्यष्टितैँ व्यष्टि । सनारुतैँ स-
नारु । परमेष्टीतैँ परमेष्टी । ब्रह्मतैँ ब्रह्म । स्व-
यंभु ब्रह्मके अर्थ नमस्कार है ॥ ३ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषन्मूल मात्र-
भाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं
वंश-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

रण्यगर्भ)तैँ होताभया । तिस^{११३१} (हिरण्यगर्भ)

११३१ ननु तब ब्रह्माकूं विद्याकी प्राप्ति कहाँतेभई ? त-
हां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है,—आपहीं प्रकाशित भया है
वेद जिसकूं ऐसा जो हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) सो अन्य आचा-
र्यकूं अपेक्षा करता नहीं । काहेतैँ ईश्वरकरि अनुगृहीत ताकूं
बुद्धिविषै आविर्भूत वेदतैँहीं विद्या लाभके संभवतैँ ॥

तैं पर आचार्यकी परंपरा नहीं है ॥ फेर जो ब्र-^{११३२}
ह्म है सो नित्य अरु स्वयंभु है । तिस स्वयंभु^{११३३}
ब्रह्मके तांई नमस्कार है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभा-
षादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं
वंश-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥
समाप्तोऽयं द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

११३२ तब वेद किसतैं उपजता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—परब्रह्मकेहीं वेदरूपकरि अवस्थानतैं ताकूं नित्य होनेतैं हेतुकी अपेक्षा नहीं है ॥

११३३ आदिविषै औ अंतविषै किया है मंगल जिनके ऐसे जे ग्रंथ । वे प्रचारवाले होवैहैं । ऐसैं जनावनेकूं अंतविषै “ब्रह्मणे नमः” ऐसैं कहा है । ताकूं व्याख्यान करै हैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीयाध्यायगतषष्ठ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ६ ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीतृतीयाध्यायारंभः ३

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृ-
तीयाध्यायस्य प्रथममश्वल-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

ओं नमः परमात्मने ॥ जनको वै-
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपि-
कायास्तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वल-ब्रा-
ह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—जनक वैदेह बहु दक्षिणावाले य-
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादी-
पिकायास्तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वल-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

टीकाः—“जनक वैदेह” इत्यादिरूप याज्ञव-
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपि-
कायास्तृतीयाध्ययगत प्रथम-ब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

१ मधुकांडविषै त्वाष्ट्र औ कथ्य इस भेदतै दो भांतिका

देहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे ॥ तत्र ह कुरु-
पाञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभू-

ज्ञकरि यजन करताभया । तहां कुरु अरु
पांचाल देशके ब्राह्मण इकठ्ठे होतेभये ॥

ल्कीयकांड आरंभ करियेहै ॥ इस कांडकूं युक्ति-
प्रधान होनेतैं अतिक्रांत जो मधुकांड । तिस-
करि समान अर्थताके हुयेबी पुनरुक्तता नहींहै ॥
मधुकांड । जातैं आगमप्रधानहै औ आगम
अरु उपपत्ति । ये दोनूं जातैं आत्माकी एकताके
प्रकाशकरने अर्थ प्रवृत्त हुये करतलगत बिल्वकी
न्यांई आत्मतत्त्वकूं दिखावनेकूं समर्थ होवैहैं ॥

मधु व्याख्यान किया ॥ अब अन्य कांड (याज्ञवल्क्यकांड)-
के आरंभकूं प्रतिज्ञा करै हैं ॥

२ ननु पूर्वले दो अध्यायनविषै व्याख्यान कियाहीं तत्व ।
उत्तर अध्यायविषैबी कहियेगा । तिस प्रकार हुये पुनरुक्तितैं
मुनिकांडकरि अलं (बहुत) भया ? यह शंका भई । तहां
कहैहैं ॥

३ ननु युक्तिप्रधानता मधुकांडकीबी तुल्य है ? इस
प्रकार जो कहै । सो बने नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

४ ननु आगमरूप प्रमाणतैंहीं तत्वज्ञान उत्पन्न होवैगा ।
युक्तिकरि वा युक्तिप्रधान कांड (ग्रंथके भाग) करि क्या है ?
तहां कहैहैं ॥

वुस्तस्य जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञा-
तिस जनक वैदेहकं विजिज्ञासा होतीभयी ।

जातैं “श्रोतैव्यहै । मंतव्यहै” ऐसैं कहा है । ता-
तैं आगमके अर्थकेहीं परीक्षापूर्वक निर्धारण अ-
र्थ युक्तिप्रधान याज्ञवल्कीय कांड । आरंभक-
रियेहै ॥ आख्यायिका तो विज्ञानकी स्तुति अ-
र्थहै वा उपायके विधिपर है ॥ औ जातैं प्रसि-

५ करण (शब्द प्रमाणरूप) होनेकरि आगम । तत्वज्ञान
विषै हेतु है औ उपपत्ति (युक्ति) । उपकरणरूप होनेकरि प-
दार्थनके परिशोधनद्वारा ताका हेतु है । इस अर्थविषै प्रमा-
णकूं कहैहैं ॥

६ करण अरु उपकरणरूप आगम अरु उपपत्तिकूं तत्व-
ज्ञानकी हेतुताके हुये । सिद्धभये फलितकूं उपसंहार करैहैं ॥

७ ननु उक्त रीतिकरि कांडके आरंभके हुयेबी आख्या-
यिका क्यूं रचिये है ? तहां कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
विज्ञानवाले पुरुषनकी पूजा इहां प्रपूज्यमान (उत्कृष्ट) दे-
खीयेहै । तिस प्रकार हुये “विज्ञान । महाभागधेय है” ऐसी
स्तुति इहां विवक्षित है ॥

८ अथवा विद्याके ग्रहणविषै दाननामक उपायके प्रकारके
ज्ञापनपर आख्यायिका है । इस अन्य अर्थकूं कहैहैं ॥

९ फेर दानकूं विद्याग्रहणकी उपायता कैसें है ? तहां
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“गुरुशुश्रूपाकरि विद्या होवैहै
वा पुष्कल धनकरि” इत्यादि वाक्यविषै दाननामक विद्याके

सा बभूव । कः स्विदेषां ब्राह्मणानाम-
नूचानतम इति ॥ स ह गवां सहस्रम-

कौंन इन ब्राह्मणोंके मध्य अनूचानतम है ।
ऐसी ॥ सो गौवनके सहस्रकूं बांधताभ-

द्धउपाय विद्वानोंनें शास्त्रनविषै दान देख्या है ।
जातें दानकरि प्राणी उपनमन करैहैं ॥ प्रभूत
(पुष्कल) हिरण्य अरु गोसहस्रका दान इहां प्र-
तीत होवैहै । तातें अन्य अर्थः—के परायण शा-

ग्रहणका उपाय जातें प्रसिद्ध है । तातें ताकी तदुपायताविषै
वक्तव्य नहीं है ॥

१० “दानविषै सर्व प्रतिष्ठित है” इत्यादि श्रुतिनविषैवि-
द्वानोंनेंहीं विद्याके ग्रहणका उपाय देख्या है । तातें ता (दा-
न)की उपायताविषै विवाद करनेकूं योग्य नहीं है । ऐसैं क-
हैहैं ॥

११ दानकूं विद्याके ग्रहणकी उपायता सिद्धभई । ऐसैं
कहैहैं ॥

१२ दान । विद्याके ग्रहणका उपाय होहू । तथापि यह
आख्यायिका । ताके प्रदर्शनपर कैसैं है ? यह आशंका करिके
कहैहैं ॥

१३ ननु समुदित (इकठे हुये) ब्राह्मणनविषै ब्रह्मिष्ठतमकूं
निर्धार करनेकूं राजा पृच्छताभया । तातें अपर ग्रंथकरि वि-
द्याके ग्रहणके उपायके विधान अर्थ कैसैं आख्यायिका आरं-

वरुोध । दश दश पादा एकैकस्याः
शृङ्गयोराबद्धा बभूवुः ॥ १ ॥

या । एकएक गौके दो शृंगोंविषै दश दश
पाद आबद्ध होतेभये ॥ १ ॥

छनैबी विद्याकी प्राप्तिके उपायरूप दानके दि-
खावने अर्थ आख्यायिका आरंभकरीहै ॥ ॥

किंवाः—तिस वेद्य अर्थविषै है विद्या जिनकूं ऐसे
पुरुषनके साथि संयोग औ तिनके साथि वादका
करणरूप । विद्याकी प्राप्तिका उपाय । न्यायविद्या-
विषै देख्या है औ सो इस अध्यायविषै प्रबल-

भ करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां । तातैं शब्दका अर्थ उक्त
प्रकारका उपलंभ है ॥

१४ यातैंबी आख्यायिका विद्याकी प्राप्तिके उपायके प्रद-
र्शनपर है । ऐसैं कहैहैं ॥

१५ तिस वेद्य अर्थविषै है विद्या जिनकूं ऐसैं जे ज्ञानी ।
वे तद्विद्य कहियेहैं । तिनके साथि जब संबन्ध होवै । तब ति-
नोंसैंहीं प्रश्न अरु प्रतिवचनद्वारा वादका करना विद्याकी
प्राप्तिका उपाय है । इस अर्थविषै गमककूं कहैहैं ॥

१६ जातैं तत्वके निर्णयरूप फलवाली वीतराग पुरुष-
नकी कथाकूं इच्छते हैं । [यातैं] तद्विद्य पुरुषनके संयोग
आदिकनकूं विद्याकी प्राप्तिकी उपायताके हुयेबी प्रकृतविषै
ताके प्रदर्शनकी परता कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां तद्विद्य
पुरुषनके संयोगतैं । यह तत् शब्दका अर्थ है ॥

ताकरि दिखाइयेहै । औ प्रत्यक्षतैं विद्वानोंके संयोगके हुये प्रज्ञाकी वृद्धि होवेहै । तैंतैं विद्याकी प्राप्तिके उपायके दिखानेरूप अर्थवालीहां आख्यायिकाहै:—जनक नाम प्रसिद्ध विदेहनका सम्राट् राजा होताभया । तहां (तिसके कुलविषै) जो होवै सो वैदेह कहियेहै ॥ औ सो जनक वैदेह बहुदक्षिणावाले यज्ञकरि यजन करताभया । शाखांतरविषै प्रसिद्ध बहुदक्षिण नाम यज्ञ है वा अश्वमेध । दक्षिणाकी बहुलतातैं बहुदक्षिण इहां कहियेहै । तिसकरि यजन करताभया ॥ तिस यज्ञविषै निमंत्रित वा दर्शनकी कामनावाले कुरु देशनके अरु पंचाल देशनके ब्राह्मण

१७ केवल तर्क शास्त्रके वशतैंहीं तद्विद्य पुरुषनके संयोग हुये प्रज्ञानकी वृद्धि होवेहै ऐसैं नहीं किंतु स्वानुभवके वशतैंबी प्रज्ञाकी वृद्धि होवेहै । ऐसैं कहैहैं ॥

१८ आख्यायिकाके तात्पर्यकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—राजसूय यज्ञविषै अभिषिक्त सार्वभौम (सारी पृथिवीका पति) राजा “सम्राट्” ऐसैं कहियेहै । सो बहुदक्षिणावाले यज्ञकरि यजन करताभया ॥ अश्वमेधविषै दक्षिणाकी बहुलता । अश्वमेधके प्रकरणविषै स्थित है ॥ ब्राह्मण अभिसंगत (इकट्ठे) होतेभये । ऐसैं संबंध है ॥

[तिन देशनविषै जाँतैं विद्वानोंकी बहुलता प्रसिद्ध है] च्यारीओरतैं एकत्र (इकठ्ठे) होतेभये ॥ तहां बडे विद्वानोंके समुदायकूं देखिके । अनंतर तिस ःःः जनक वैदेह नामवाले यजमानकूं “कौन निश्चयकरि इहां ब्रह्मिष्ठ है” ऐसैं विशेषकरि जाननेकी इच्छारूप विजिज्ञासा होतीभयी ॥ ॥ कैसैंकिः^{२०}—कौन निश्चयकरि इनब्राह्मणोंके मध्य अनूचानतम (अतिशयकरि अनुवचनविषै समर्थ) है ॥ सर्व ये अनूचानहैं । कौन निश्चयकरि इनके मध्य अतिशयकरि अनूचानतमहै ॥ ऐसैं सो यजमान । अनूचानतमविषै उत्पन्नभयीहै जिज्ञासा जिसकूं ऐसा हुया ताके विज्ञानके उपाय अर्थ प्रथमवयवाली

१९ “कुरु पंचालनके” ऐसा देशोंका विशेषण किस कारणतैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां “तहां” याका यज्ञशालाविषै । यह अर्थ है ॥

२० जिज्ञासाकूंहीं आकांक्षापूर्वक बोधन करै हैं ॥ इहां अनूचानपना कहिये अनुवचनविषै समर्थपना । तिनोके मध्य अतिशयकरि अनूचानतम एक होवैहै । ऐसैं योजना है औ एक पल (च्यारी तोले)के जे च्यारी भाग । तिनके मध्य जो एक भाग । सो “ पाद (तोला) ” ऐसैं कहिये है ॥

तान्होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो

अर्थः—तिनकूं कहताभयाः—हे भगवाले

गौवनके सहस्रकूं गोष्ठ (ब्रज)विषै अवरोध करताभया ॥ ॥ किस विशेषणवाली वे गौवां अवरोधकरीहैं ? तहां कहियेहैंः—सुवर्णके पलका चतुर्थभाग पाद कहियेहै । तैसे दश दश पाद एक एक गौके दो शृंगनविषै आवद्ध (बंधनकूं प्राप्त) होतेभये । एक ऐक शृंगविषै पांच पांच पाद बंधनकूं प्राप्त होतेभये ॥ १ ॥

टीकाः—गौवनकूं ऐसैं अवरोधकरिके । तिन ब्राह्मणनकूं कहताभयाः—हे भगवान् (सर्वज्ञ) ब्राह्मण ! ऐसैं बुलायके । जो तुह्यारे मध्य ब्रह्मिष्ठ होवै ॥ सर्व तुम ब्रह्मके अतिशयक विवेत्ते हो । तुह्यारे मध्य ब्रह्मिष्ठ होवै सो इन गौवनकूं

२१ प्रत्येक शृंगकेविषै दश दश पाद बांधेथे । इस आशंकाके निराकरण करनेकूं विभाग करै हैं ॥ इहां एक एक शृंगविषै बद्ध होते भये । ऐसैं पूर्वके साथि संबंध है औ वेदाध्यायनकरि संपन्न अरु तिसके अर्थविषै निष्ठावाले इहां ब्राह्मण कहियेहैं । तिनके प्रति । “लेजाओ” ऐसैं कहताभया । यह अर्थ है ॥

वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति ॥
 ते ह ब्राह्मणा न दधृषुरथ ह याज्ञव-
 ल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सौ-
 म्योदज सामश्रवा ३ इति ता होदाच-
 ब्राह्मणो । जो तुह्यारे मध्य ब्रह्मिष्ठ (ब्रह्मवे-
 ता) होवै सो इन गौवनकूं लेजाओ ऐसै ॥
 वे ब्राह्मण न ले जातेभये । अनंतर याज्ञ-
 वल्क्य । अपने ब्रह्मचारी (विद्यार्थी)कूं क-
 हताभयाः—हे सौम्य ! इन गौवनकूं लेजा ॥
 हे सामश्रवा (सामविधिका श्रोता) सो [शि-
 स्वग्रहके प्रति ले जाओ ॥ वे ब्राह्मण । ऐसैं
 उक्तहुये । आपकी ब्रह्मिष्ठताकूं प्रतिज्ञा करनेकूं
 नहीं प्रगल्भ होते भये ॥ तिन अप्रगल्भभूत-
 नविषै अनंतर याज्ञवल्क्य । अपनेहीं ब्रह्म-
 चारी (शिष्य)केप्रति कहताभयाः—हे सौम्य
 (प्रियदर्शन) ! इन गौवनकूं हमारे गृहनके प्रति
 लेजा ॥ हे सामश्रवः ! [सामकी विधिकूं जातैं
 सुनताहै यातैं ॥ अर्थतैं च्यारी वेदवाला याज्ञव-

कार । ते ह ब्राह्मणाश्चक्रुधुः कथं नो
ब्रह्मिष्ठो ब्रवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदे-
हस्य होताऽश्वलो बभूव । सहैनं पप्रच्छ ।

प्य] ऐसैं तिन गौवनकूं लेजाताभया ॥
वे ब्राह्मण क्रोध करतेभये । तूं हमारेमध्य
कैसैं ब्रह्मिष्ठ हूं यह कहै ॥ अनंतर ज-
नक वैदेहका होता अश्वल होताभया ।

ल्क्य है] ऐसैं सो तिन^{२२} गौवनकूं आचार्यके गृहके
प्रति ले जाताभया । याज्ञवल्क्यनैं ब्रह्मिष्ठके प-
णके स्वीकारकरि आपकी ब्रह्मिष्ठता प्रतिज्ञातक-
री ॥ वे ब्राह्मण क्रोध करतेभये ॥ तिनके क्रो-
धके अभिप्रायकूं कहैहैः—हमों एक एक प्रधानों-

२२ जातैं यजुर्वेदके वेत्ता याज्ञवल्क्यतैं ब्रह्मचारी साम-
विधिकूं सुनताहै औ ऋचाओंविषै अध्यारूढ साम गायन
करियेहै औ तीनहीं वेदोंविषै अंतर्भूत अथर्व वेद है । तातैं
अर्थात् यजुर्वेदी मुनिके शिष्यकूं सामवेदके अध्ययनके असं-
भवतैं वेद चतुष्टयकरि विशिष्ट याज्ञवल्क्य मुनि है । सो क-
हताभया ऐसैं कहैहैं ॥

२३ निमित्तके निवेदनपूर्वक सभाविषै स्थित ब्राह्मणन-
की क्रोधप्राप्तिकूं दिखावै हैं ॥

त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसी
 ३ इति । स होवाच नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय
 सोई या (याज्ञवल्क्य) क्वं पूछताभयाः—
 हे याज्ञवल्क्य ! तूं हमारे मध्य ब्रह्मिष्ठ हैं
 क्या ? ऐसैं ॥ सो कहताभयाः—हम ब्रह्मि-
 ष्ठके तांई नमस्कार करैहैं । [अबी] हम
 के मध्य “मैं ब्रह्मिष्ठहूं” यह कैसे कहै ऐसैं ॥
 अनंतर ऐसैं क्रोधवान् ब्राह्मणोंविषै जनक वै-
 देह नामक यजमानका होता (होम करनेवा-
 ला) ऋत्विक् अश्वल नाम होताभया । सो
 ऐसैं ब्रह्मिष्ठाभिमानी औ रौजाके आश्रयवाला
 होनेतैं धृष्ट (निभर्य) हुया इस याज्ञवल्क्यके प्र-
 ति पूछताभया ॥ ॥ कैसेकि ? हे याज्ञवल्क्य !
 ऐसैं कहताभयाः—हे याज्ञवल्क्य ! तूं निश्चय-

२४ क्रोधकी अनंतरतारूप अथ शब्दके अर्थकूं कथन क-
 रैहैं ॥

२५ अश्वल मुनिके प्रश्नकी प्रथमताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥
 इहां “याज्ञवल्क्यके तांई” ऐसा अनुवाद । अन्वयके दिखावने
 अर्थ है ॥

२६ प्रश्नकूंहीं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करै हैं ॥

कुम्भो गोकामा एव वयं स्म इति ।
तं ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताऽश्वलः॥२॥

गौवकी कामनावालेहीं है ऐसैं ॥ ताहीतैं ता-
कूं होता अश्वल पूछनेकूं मन धारण कर-
ताभया ॥ २ ॥

करि हमारे मध्य ब्रह्मिष्ठहैं ऐसैं । ऐसी पुति
(उच्चगति) निंदाके अर्थ है ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य
कहताभयाः—हम ब्रह्मिष्ठके तांई नमस्कार
करैहैं ॥ अंबी हम गौवनकी कामनावालेहैं
ऐसैं ॥ तिस ब्रह्मिष्ठकी प्रतिज्ञावाले हुये याज्ञ-
वल्क्यकूं तांहीतैं (ब्रह्मिष्ठके पणके स्वीकरणतैं)
होता अश्वल प्रश्न करनेकूं मन धारण कर-
ताभया ॥ २ ॥

२७ अनौद्धत्य (उच्छृंखलताके अभाव)रूप ब्रह्मवेत्ताके
लिंगकूं सूचन करै हैं ॥

२८ ननु तव स्वगृहके प्रति ब्रह्मनिष्ठताकी पणभूत गौवा
क्यूं भेजी ? तहां कहैहैं ॥

२९ ननु ता (याज्ञवल्क्य)की तैसी प्रतिज्ञा नहीं भासती
है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच । यदिदं सर्वं
मृत्युनाऽऽप्तं सर्वं मृत्युनाऽभिपन्नं केन

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभ-
याः—जो यह सर्व मृत्युकरि आप्त है । सर्व
मृत्युकरि अभिपन्न है । किसकरि यजमान

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
तैंहां मधुकांडविषै दर्शनकरि समुच्चित पांक्त-
कर्मकरि यजमानके मृत्युका नाश व्याख्यान
किया । उद्गीथप्रकरणविषै [आसंगपापरूप मृत्यु-

३० तहां प्रथम मुनिकी अभिमुखताकूं आपादन करनेकूं
संबोधन देता है ॥

३१ उक्त रीतिसैं अश्वल-प्रश्नके प्रसंगविषै प्राप्तभये ताकी
उद्गीथ-प्रकरणके साथि संगतिकूं कहैहैं ॥ इहां पूर्व व्याख्यान
किये मधुकांडविषै जो उद्गीथ प्रकरण है । तिसविषै आसं-
गमय पापरूप मृत्युका नाश समुच्चितकर्मकरि संक्षेपतैं व्या-
ख्यान किया । ऐसैं संबंध है ॥ “औ तिसीहींकी” याका उद्गीथ
दर्शनकी । यह अर्थ है ॥ औ परीक्षाका विषय कहिये वि-
चारकी भूमिरूप यह प्रश्न उत्तररूप ग्रंथ है । यह अर्थ है ॥
औ “तद्गत” इहां जो तत् शब्द है । सो समनंतरनिर्देश किये
ग्रंथकूं विषय करने हारा है ॥ औ तद्गतदर्शन कहिये उद्गी-
थका उपासन । ताका विशेष जो वाक् आदिककी अग्नि आ-
दि स्वरूपताका विज्ञान । ताकी सिद्धि अर्थ । यह क्रम है ॥

यजमानो मृत्योराप्तिमतिमुच्यत इति ॥
होत्रत्विजाऽग्निना वाचा । वाग्वै यज्ञस्य

मृत्युकी आप्तिकं अतिक्रमण करिके मुक्त
होवैहै ? ऐसैं ॥ होता ऋत्विक् अग्निरूप
वाक्करि ॥ वाक्हीं यज्ञका होता है । सो जो

का नाश समुच्चित कर्मकरि] संक्षेपतैं व्याख्या-
नकिया ॥ तिसी (उद्गीथके दर्शन) कीहीं परी-
क्षाकूं विषय करनेवाला (विचारकी भूमि) यह
(प्रश्नोत्तररूप ग्रंथ) है । ऐसैं तद्गत दर्शनवि-
शेषके अर्थ यह विशेष आरंभ करियेहै । ३२ जो यह
नरके कर्मके साधनका समूह ऋत्विक् अरु अग्नि
आदिक है । सो सर्व स्वाभाविक आसंगसहित
कर्मरूप मृत्युकरि व्याप्तहै । केवल व्याप्त नहीं
किंतु सर्व मृत्युकरि अभिपन्न (वशीकृत) है ॥

३२ ऐसैं अवांतर संगतिकूं कहिके । अब प्रश्नके अक्षरनकूं
व्याख्यान करै हैं ॥

३३ “मृत्युकरि व्याप्त” इस कथनकरि । मृत्युकरि अभिपन्न
(वशीकृत) इस कथनकी अगतार्थता होवैगी ? यह आशंका
करिके कहैहैं ॥

होता । तद्येयं वाक् सोऽयमग्निः स होता
स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ३ ॥

यह वाक् है सो यह अग्नि है । सो होता
है । सो मुक्ति है । सो अतिमुक्ति है ॥ ३ ॥

किस^{३४} दर्शनरूप साधनकरि यजमान । मृत्यु-
की प्राप्तिकूं उल्लंघन करिके कहिये मृत्युकी
गोचरताकूं अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै ।
अर्थ यह जो स्वतंत्र हुया मृत्युके अवश्य होवैहै
ऐसैं ॥ ॥ नैनु जिस मुख्य प्राणात्माके स्वरूपके
दर्शनकरि अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै । सो उ-
द्गीथविषैहीं कहाहै ? ऐसैं जो कहो । तो बाँढ

३४ कर्मकूं मृत्युरूप होनेतैं तिसकरि मृत्युके नाशके अ-
योगतैं ताके नाशका साधनरूप कलुक उपासनहीं कहनेकूं
योग्य है ? इस अभिप्रायकरि पूछताहै ॥

३५ दर्शन विषयक प्रश्नके प्रति याज्ञवल्क्य मुनि आक्षेप
करै हैं ॥ इहां:—जिस मुख्य प्राणात्माके उपासनकरि मृत्यु-
तैं अतिमुक्त होवैहै । सो उपासन । उद्गीथप्रक्रियाविषैहीं
कहा । तैसैं हुये मृत्युके नाशके उपायरूप विज्ञानकूं ज्ञात
होनेतैं “किसकरि” इस प्रश्नका असंभव है । ऐसैं योजना है ॥

३६ “तिसीहींकी परीक्षाकूं विषय करनेवाला यह ग्रंथ
है” इत्यादि स्थलविषै उक्त अर्थकूं लेके अश्वलमुनि परिहार
करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—उद्गीथप्रकरणविषै वाक्आ-

(सत्य) है। तहां (उद्गीथ प्रकरणविषै) उक्त जो विशेष। सो अनुक्त है। ताके अर्थ यह आरंभ-है। यातैं अदोष है ॥ होतारूप ऋत्विक्कारि औ अग्निरूप वाक्कारि। ऐसैं याज्ञवल्क्य क-कहताभया ॥ याँके अर्थकूं व्याख्यान करैहैं:—कौ-नैं फिर होता (होमका कर्त्ता) है। जिसकरि मृत्युकूं अतिक्रमण करैहै? तहां कहियेहै:—वा-कूहीं यज्ञ (यजमान)की “यँज्ञहीं यजमान है” इस श्रुतितैं यज्ञरूप यँजमानकी जो वाक् (अ-

दिकके अग्निआदिक स्वरूपका दर्शनरूप जो विशेष वक्तव्य-बी था। सो पूर्व कहा नहीं। ताके कथन अर्थ यह प्रश्न उ-त्तररूप ग्रंथ है। ऐसैं करिके “किसकरि” इत्यादि प्रश्नका संभव है ॥

३७ ननु फेर मृत्युके जयका साधन “होता” इत्यादि स्थलविषै कहा जो उपासन। सो किस प्रकारका है? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहां वाक्ही यज्ञका। इत्यादिकरि व्याख्यान करै हैं। यह शेष है ॥

३८ व्याख्यानकूहीं स्पष्ट करनेकूं याज्ञवल्क्यमुनि पूछते हैं ॥

३९ उपासनाके विषयकूं दिखावनेकूं उत्तर कहैहैं ॥

४० ननु यज्ञशब्दका यजमानविषै वृद्धोंका प्रयोग नहीं है? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

४१ यजमानकी जो अध्यात्मरूप वाक् है। सोई अधिय-

ध्यात्म) है । सोई अधियज्ञविषै होता होहू ॥
 कैसेँ कि:-^{४३}तहां जो यह यज्ञरूप यजमानकी वा-
 क् है । सो यह प्रसिद्ध अग्निरूप अधिदैवतहै ।
 सो यह अन्नके प्रकरणविषै व्याख्यान किया औ
^{४४}सो अग्नि होताहै “अग्निहीं होताहै” इस श्रुतितैं ।
^{४५}सो यह यज्ञके साधनोंका द्वय है । होता औ ऋ-
 त्विक् अधियज्ञ औ अध्यात्म वाक् । यह उभय
 (साधनद्वय)परिच्छिन्न हुया मृत्युकरि कहिये स्वा-
 भाविक अज्ञानरूप आसंगकरि प्रेरित कर्मरूप
 मृत्युकरि व्याप्तहै कहिये प्रतिक्षण अन्यथाभाव-

ज्ञविषै होता होहू । तथापि तिन दोनूंकी देवतास्वरूपसैं
 उपासन कैसेँ है ? तहां कहैहैं ॥

४२ तिन दोनूंके अग्निस्वरूपसैं उपासनकूं उत्तरवाक्यके
 आश्रयकरि व्याख्यान करै हैं ॥

४३ ननु फेर वाक् अरु अग्निकी एकता कैसेँ है ? सो क-
 हैहैं ॥

४४ तिन दोनूंकी एकताके हुयेबी होताकी तिनके साथि
 एकता काहेतैं होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

४५ “ सो मुक्ति है ” इस वाक्यकूं अवतार देनेकूं भू-
 मिकाकूं करै हैं ॥

४६ केवल यह दोनूं । मृत्युकरि सम्यक् स्पर्शकियार्हीं है
 ऐसेँ नहीं । किंतु तिसकरि वशीकृतबी है ऐसेँ कहैहैं ॥

कूं प्राप्तहुया वशीकृत है । सो इस अधिदैवतरूप अग्निकरि दृश्यमान हुया यजमानके मृत्युकी अतिमुक्तिके अर्थ होवै है ॥ तिसँ इसकूं कहै हैं:—सो मुक्तिहै कहिये सो होतारूप अग्नि मुक्तिहै (अग्नि^{४९}के स्वरूपका दर्शनहीं मुक्तिहै) । जँवहीं साधनद्वयकूं अग्निरूपकरि देखताहै । तबीहीं जातैं स्वाभाविक परिच्छिन्नरूप आध्यात्मिक औ अधिभौतिक आसंगरूप मृत्युतैं विमुक्त होवै है । तातैं सो होता अग्निरूपकरि देख्या हुया मुक्ति

४७ “ मृत्युकरि व्याप्त है औ मृत्युकरि वशीकृत है” इन दोनूं वाक्यनके अर्थकूं अनुवाद करिके “होताकरि” इत्यादि वाक्यके अर्थकूं अनुवाद करै हैं ॥ इहां दोनूं साधन तत्शब्दका अर्थ है औ यजमानका ग्रहण जो है सो होताका उपलक्षण है ॥

४८ उक्त अर्थविषे समनंतर वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां “मुक्ति” शब्द जो है सो ताके साधनकूं विषय करनेवाला है ॥

४९ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहै हैं ॥ इहां वाक्का औ होताका अग्निस्वरूपसँ उपासनहीं मुक्तिका हेतु है । यह अर्थ है ॥

५० उक्त अर्थकूं प्रपंचन करै हैं ॥

५१ “सो मुक्ति है” या वाक्यके अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

(मुक्तिका साधन) है। यजमानकूं^{५२} सो अतिमुक्ति है ॥ औ जोई मुक्ति है सो अतिमुक्ति है। अर्थ यह जो अतिमुक्तिका साधन है ॥ परिच्छिन्नरूप^{५३} दो साधनोंकी जो अधिदेवतारूप अपरिच्छिन्न अग्निरूपसैं दृष्टि है। सो मुक्ति है जो यह मुक्ति अधिदेवताकी दृष्टि है। सोई अध्यात्म अधिभूतरूप परिच्छेदकूं विषय करनेवाले आसंगके आस्पंदरूप मृत्युकूं अतिक्रमणकरिके अधिदेवताभावरूप अग्निभावकी प्राप्ति है। “जो फलभूत है। सो अतिमुक्ति ऐसैं कहिये है। तिसैं अतिमुक्तिका मुक्ति ही साधन है। ऐसैं करिके सो अतिमुक्ति है ऐसैं कहै है। जातैं यैजमानकी अतिमुक्ति वाक् आदिकनका अग्निभाव है। ऐसैं उद्गीथ प्रकरणविषै

५२ वाक्यांतरकूं उठायके व्याख्यान करै हें ॥

५३ मुक्ति अरु अतिमुक्तिके अग्निभावकूं दिखावै हें ॥ इहां प्राप्ति अतिमुक्ति है। ऐसैं संबंध है ॥

५४ ताहीकूं संक्षेपकरि कहै हें ॥

५५ फलभूत अग्निआदि देवताकी प्राप्तिके हुये अतिमुक्ति शब्दकी उपपत्ति कैसैं है ? यह आशंका करिके कहै हें ॥

५६ ननु वाक् आदिकनका अग्निआदिभाव इहां सुनिये है। यजमानका कछुबी नहीं कहिये है ? तहां कहै हें ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच । यदिदं स-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—

व्याख्यान कियाहै । तँहां सामान्यकरि मुख्यप्राणका दर्शनमात्र मुक्तिका साधन कहा । ताका विशेष जो वाक् आदिकनका अग्नि आदिक रूपसैं दर्शन । सो नहीं कहा । इहां विशेष वर्णन करियेहै । मृत्युकी प्राप्तितैं अतिमुक्ति तो सोई फलभूतहै जो उद्गीथब्राह्मणनैं “मृत्युकूं अतिक्रान्त हुया प्रकाशताहै” इत्यादिरूप व्याख्यान करीहै ॥ ३ ॥

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
स्वाभाविक अज्ञानरूप आसंगे; किये कर्मरूप मृत्युतैं अतिमुक्ति व्याख्यानकरी । तिस कर्मरूप आसंगमय मृत्युके आश्रयभूत दर्श पूर्णमा-

५७ ननु तव तिसीहींकरि गतार्थ होनेतैं यह ब्राह्मण व्यर्थ है ? यह आशंका करिके । “बाढ (सत्य) है” इत्यादि वाक्यकरि उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ॥

५८ उपासनकी न्यांई फलविषैबी विशेष होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५९ प्रश्नांतरकूं प्रगट करिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

६० आश्रयभूत वे कौन हैं ? यह आशंका करिके । क-

र्वमहोरात्राभ्यामाप्तं सर्वमहोरात्रा-
भ्यामभिपन्नं ॥ केन यजमानोऽहोरात्र
योराप्तिमतिमुच्यत इत्यध्वर्युणत्वि-

जो यह सर्व अहोरात्रकरि आप्त है । सर्व
अहोरात्रकरि अभिपन्न है । किसकरि य-
जमान अहोरात्रकी आप्तिक्रं अतिक्रमण-
करिके मुक्त होवैहै ? ऐसैं ॥ अध्वर्यु ऋ-

स आदिक कर्मके साधनोंके परिणामका हेतु जो
काल है । तिसकालतैं पृथक् अतिमुक्ति कहनेकूं
योग्य है । यातैं यह आरंभ करियेहै । काहेतैं क्रि-
योंके अनुष्ठानके व्यतिरेककरिवी क्रियातैं आगे

हैंहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्रतिक्षण अन्यथाभाव विपरिणाम
कहियेहै । अग्निआदि साधनोंकूं आश्रय करिके मृत्युशब्द-
का वाच्य काम्यकर्म उत्पन्न होवैहै । तिन साधनोंकूं विप-
रिणामके हेतु होनेतैं काल मृत्यु कहिये है । तातैं अतिमुक्ति
कहनेकूं योग्य है । यातैं उत्तर ग्रंथका आरंभ है ॥

६१ कर्मतैं जब मुक्ति कही । तब कालतैंवी सो कहीहीं
है । काहेतैं ताकूं कर्मविषै अंतर्भावकरि मृत्युरूप होनेतैं ? यह
आशंका करिके । कहैहैं ॥

६२ कर्मकी निरपेक्षताकरि कालके मृत्युभावकूं प्रतिपादन
करै हैं ॥

जा चक्षुषाऽऽदित्येन । चक्षुर्वै यज्ञस्या-
ऽध्वर्युस्तद्यदिदं चक्षुः सोऽसावादित्यः
सोऽध्वर्युः स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥४॥

त्विक् आदित्यरूप चक्षुकरि ॥ चक्षुहीं य-
ज्ञका अध्वर्यु है । सो जो यह चक्षु है सो-
यह आदित्य है । सो अध्वर्यु है । सो मु-
क्ति है । सो अतिमुक्ति है ॥ ४ ॥

औ पीछे साधनके विपरिणामकी हेतुताकरि का-
लके व्यापारके देखनेतैं ॥ तैंतैं कालतैं पृथक् अ-
तिमुक्ति कहनेकूं योग्यहै ? यातैं कहैहैं:—जो यह
सर्व अहोरात्र (रात्रिदिवस) करि व्याप्त है औ
सो काल दो रूपवाला है । अहोरात्रादिरूप औ
तिथि आदिकरूप । तिनमें अहोरात्रादिरूप का-

६३ कालके पृथक् पृथक् मृत्युभावके सिद्धभये फलितकूं
कहैहैं ॥

६४ उत्तर ग्रंथविषै स्थित दोनूं प्रश्नोंके विषयकूं भेदन
करनेकूं कालकूं भेदन करै हैं ॥ इहां आदित्य औ चंद्र ऐसैं
कर्त्ताके भेदतैं द्विविधता कल्पना करनेकूं योग्य है ॥

६५ कालकी द्विरूपताविषै सत्यादि कंडिकाके विषय (अ-
र्थ)कूं कहैहैं ॥

लतैं प्रथम अतिमुक्तिकूं कहैहैं:—जातैं अहोरात्र-
करि सर्व जन्मता है । वढता है औ विनाशः
पावता है औ तैसैं यज्ञका साधन है । यजमान-
नरूप यज्ञका चक्षु अध्वर्यु है । शिष्ट (अवशे-
षरहे) अक्षर पूर्वकी न्यांई ल्यावनेऽं योग्य हैं
औ यजमानका चक्षुरूप अध्वर्यु । अध्यात्म अरु
अधिभूतके परिच्छेदरूप साधनद्वयकूं छोडिके अ-
धिदैवत स्वरूपकरि जो देख्या है । सो मुक्ति है ।

६९
सो अध्वर्यु आदित्यके भावकरि देख्याहुया मु-
क्तिहै । सोई मुक्तिहीं अतिमुक्ति है ॥ ऐसैं प्र-
र्वकी न्यांई आदित्यके आत्मभावके तांई प्राप्त-
भयेकूं जातैं अहोरात्र नहीं संभवै हैं ॥ ४ ॥

६६ दिवस अरु रात्रिके मृत्युभावके सिद्धभये तिन दोनूतैं
अतिमुक्ति कहनेकूं योग्य है । सोई कैसें है ? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥ इहां यज्ञका साधनवी तैसैं तिन दोनूकरि उ-
पजता है वढता है औ नाश होवैहै । ऐसैं संबध है ॥

६७ प्रतिवचनके व्याख्यानविषै यज्ञ शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

६८ “ सो मुक्ति है ” या वाक्यके तात्पर्यरूप अर्थकूं क-
हैहैं ॥

६९ तिसीहीं वाक्यके अक्षरार्थकूं कहैहैं ॥

७० उक्त रीतिकरि आदित्य स्वरूपताके हुयेवी अहोरा-
त्ररूप मृत्युतैं अतिमुक्ति कैसें है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अ-

याज्ञवल्क्येति होवाच। यदिदं सर्वं
पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यः ॥ ७१ ॥ सर्वं पूर्वप-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य ? ऐसैं कहताभ-
याः—जो यह सर्व पूर्वपक्ष अपरपक्षकरि

टीकाः—अँव तिथि आदिकरूप कालतैं अति-
मुक्ति कहिये हैः—जो यह सर्व । पूर्व पक्ष अरु
अपर पक्षकरि व्याप्त है ॥ इहां अविशिष्ट अ-
होरात्रिका कर्त्ता जो आदित्य है । सो प्रतिपत्
आदिक तिथिनका कर्त्ता नहीं है । तिन प्रति-
पत् आदिक तिथिनका तो वृद्धि अरु क्षयकी प्रा-
प्तिकरि चंद्रमा कर्त्ता है । याँतैं तिस (चंद्रमा)

र्थ हैः—“न उदय होवैहै । न अस्त होवैहै” इत्यादिरूप श्रु-
तितैं आदित्यविषै वस्तुतैं अहोरात्र नहीं हैं । तैसैं हुये तिस
स्वरूप विद्वानविषैबी वे (अहोरात्र) नहीं संभवते हैं ॥

७१ अन्य कंडिकाके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

७२ ननु अहोरात्रादिरूप कालविषै तिथि आदिरूप काल-
के अंतर्भावतैं तिसतैं अतिमुक्तिके कहे हुये तिथिआदिरूप
कालतैंबी अतिमुक्ति कहीहीं है । यातैं पृथक् आरंभसैं क्या
किया ? तहां कहैहैं ॥ इहां अविशिष्ट पदका वृद्धि अरु
क्षयकरि शून्य । यह अर्थ है ॥

७३ तब तिथिआदिरूप कालतैं अतिमुक्ति कैसें है ? यातैं
कहैहैं ॥

क्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं । केन यजमानः
पूर्वपक्षापरपरपक्षयोरप्राप्तिमतिः च्यत

आप्त है । सर्व पूर्वपक्ष अपरपक्षकरि अभि-
पन्न है । किसकरि यजमान पूर्वपक्ष अप-
रपक्षकी आप्तिकूं अतिक्रमण करिके मुक्त
की प्राप्तिकरि पूर्वपक्ष अरु अपरपक्षका अत्यय
(नाश) होवैहै । आदित्यकी प्राप्तिकरि अहोरा-
त्रके अत्ययकी न्यांई ॥ तँहां यजमानका प्राण-
वायु सोई उद्गाता है । ऐसैं उद्गीथ ब्राह्मणविषै
निश्चित है औ “जातैं वाँकूकरिहीं अरु प्राणक-
रि सो उद्गानकूं करताभया” ऐसैं निर्धार किया

७४ चंद्रकी प्राप्तिकरि तिथिआदिकका नाश माध्यंदिन
श्रुतिकरि कहिये है । काण्व श्रुतिकरि तो वायुभावकी प्राप्ति-
करि तिनका नाश कहा है । तिस प्रकारसैं द्युये दोनूं श्रुति-
नके विरोधविषै कौन समाधान है ? यह आशंका करिके
कहैहैं ॥ इहां तहां इस पदका काण्व श्रुतिविषै यह अर्थ है ॥

७५ उद्गाताकीबी प्राणस्पंदरूप वायुरूपताकूं दोनूं श्रुतिके
अनुसारकरि दिखावै हैं ॥

७६ उद्गाताका प्राणभाव । केवल प्रतिज्ञामात्रकरि घटित
नहीं किंतु विचार करिके निर्धारित है । ऐसैं कहैहैं ॥

इत्युद्गात्रत्विजा वायुना प्राणेन । प्राणो वै
यज्ञस्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स
उद्गाता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ५ ॥

होवैहै ? ऐसैं ॥ उद्गाता ऋत्विक् वायुरूप
प्राणकरि ॥ प्राणहीं यज्ञका उद्गाता है । सो
जो यह प्राण है सो वायु है । सो उद्गाता
है । सो मुक्ति है । सो अतिमुक्ति है ॥ ५ ॥

है ॥ औ “अनंतरँ इस प्राणका आप शरीर है ।
ज्योतिरूप यह चंद्र है” ऐसैं प्राणवायु अरु चं-
द्रमाकूं एक होनेतैं चंद्रमाकरि अरु वायुकरि उ-
पसंहारसैं कोईबी विशेष है । ऐसैं मानती हुयी
श्रुति । अधिदैवतरूप वायुकरि उपसंहार करै

७७ प्राण अरु चंद्रमाकी एकता । सतान्न-ब्राह्मणविषै निर्धा-
रित है । ऐसैं कहैहैं ॥

७८ उक्त रीतिसैं प्राण आदिकनकी एकताके हुये दोनूं
श्रुतिनके अविरोधरूप फलितकूं कहैहैं ॥ इहांः—मन अरु ब्र-
ह्माके चंद्रमाके प्राण अरु उद्गाताके वायुस्वरूपसैं उपास्यभा-
वकरि ग्रहण किये हुये मृत्युके तरणविषै विशेष नहीं है । ऐसैं
दोनूं श्रुतिनका विकल्पकरि संभव है । यह अर्थ है ॥ औ
उपसंहार करै है । यापदका प्राणकूं औ उद्गाताकूं तिस रूपसैं
उपास्यताकरि काण्व श्रुति ग्रहण करै है । यह अर्थ है ॥

है ॥ किंवाः—जातें चंद्रमाके वृद्धि अरु क्षय । वायुरूप निमित्तवाले हैं । तिसैं हेतुकरि तिथि आदिरूप कालके कर्त्ता (चंद्रमा)का कारयिता वायु (सूत्रात्मा) है । रीतें वायु उपपन्न हुआ तिथिआदिक कालतें अतीत होवैहै । यह उपपन्नतर होवैहै ॥ तिसैं हेतुकरि अन्यश्रुतिविषै चंद्ररूपकरि जो दृष्टि । सो मुक्ति औ अतिमुक्ति है ॥ इहांतो काण्वोंकी श्रुतिनविषै दो साधनोंकी तिनके कारणरूप वायुस्वरूपकरि जो दृष्टि

७९ कहनेके हेतुतैंवी काण्व श्रुति घटित है । ऐसैं कहै-हैं ॥ इहां वायु कहिये सूत्रात्मा तिसरूप निमित्तवाले अपने अवयवरूप चंद्रमाके वृद्धि अरु हास हैं । जातें सूत्रात्माके आधीन चंद्रादिरूप जगत्की चेष्टा है । यह अर्थ है ॥

८० वृद्धि आदिककी हेतुताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ कर्त्ताकी कहिये चंद्रमाकी । यह अर्थ है ॥

८१ वायुके चंद्रमाविषै करयिताभावके हुयेबी प्रकृतविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

८२ उदित अरु अनुदित होमकी न्याईं विकल्पकूं अंगीकार करिके अविरोधकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहांः—श्रुत्यंतर कहिये माध्यंदिन श्रुति । औ साधनद्वयका । यह पद दोनूं-ओर संबंधकूं पावता है । तहां आदिविषै मनका अरु ब्रह्माका औ उत्तर वाक्यविषै प्राणका औ उद्गाताका । यह अर्थ है ॥ औ तत् शब्द । चंद्रमाकूं विषय करनेवाला है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच॥यदिदमन्त-
रिक्षमनारम्बणमिव केनाऽऽक्रमेण य-
जमानः स्वर्गलोकमाक्रमत इति ॥ ब्र-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
जो यह अंतरिक्ष अनालंबनकीन्यांई है ।
किस आक्रमकरि यजमान स्वर्ग लोककूं पा-
है । सो मुक्ति औ अतिमुक्ति है । यातैं दोनूं
श्रुतिनका विरोध नहीं है ॥ ५ ॥

टीकाः—कौलरूप मृत्युतैं यजमानकी अतिमु-
क्ति व्याख्यानकरी। सो अतिमुच्यमान हुया किस
आश्रयकरि परिच्छेदके विषय मृत्युकूं अतिक्रम-
ण करिके फलकूं पावताहै कहिये अतिमुक्त हो-
वैहै? ऐसैं कहिये हैः—जो र्यह प्रसिद्ध अंतरि-
क्ष (आकाश) अनालंबनकी न्यांई है । इहां
इव (न्यांई) शब्दतैं सो आलंबन हैहीं। परंतु सो

८३ “ जो यह अंतरिक्ष है ” इत्यादिरूप अन्य प्रश्नकूं वृ-
त्तके अनुवादपूर्वक ग्रहण करै हैं ॥ इहां व्याख्यान अरु व्या-
ख्येयभावकरि दोनूं क्रियापद ग्रहण करनेकूं योग्य हैं । ऐसैं
यह प्रश्नका रूप समनंतर वाक्यकरि कहिये है । यह अर्थ है ॥

८४ ताकूं व्याख्यान करै हैं ॥

ह्यणर्त्विजा मनसा चन्द्रेण । मनो वै य-
ज्ञस्य ब्रह्मा । तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः
वताहै ? ऐसैं ॥ ब्रह्मा ऋत्विक् चंद्ररूप म-
नकरि ॥ यहहीं यज्ञका ब्रह्मा है । सो जो
नहीं जानियेहै । यह अभिप्राय है ॥ औं 'जो
सो अज्ञायमान आलंबन है । सो सर्वनाम कि-
सकरि (किं शब्दकरि) ऐसैं पूछियेहै । अन्यथा
फलकी प्राप्तिके असंभवतैं ॥ जिस आश्रयरूप
आक्रमकरि यजमान कर्मफल स्वर्गलोककूं
प्राप्त हुआ अतिमुक्त होवैहै । सो क्या है ? य-
ह प्रश्नका विषय है ॥ किस क्रमकरि यजमान
स्वर्गलोककूं आक्रमण करैहै ऐसैं । अर्थ यह जो
स्वर्गलोकरूप फलकूं पावताहै (अतिमुक्त होवै
है) ब्रह्मारूप ऋत्विक्करि औं मनोमय चं-
द्रकरि ॥ ऐसैं अक्षरनका न्यास पूर्वकी न्याईं

८५ " किसकरि " या प्रश्नके विषयकूं कहै हैं ॥

८६ प्रश्नके विषयकूं प्रपंचन करै हैं ॥

८७ प्रश्नके अर्थकूं संक्षेपकरि उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—

अक्षरोंका न्यास । याका अक्षरोंकी अर्थनविषै प्रवृत्ति । यह
अर्थ है ॥

स ब्रह्मा स मुक्तिः साऽतिमुक्तिरित्यति
मोक्षा अथ सम्पदः ॥ ६ ॥

यह मन है सो यह चंद्र है । सो ब्रह्मा है ।
सो मुक्ति है । सो अतिमुक्ति है । ऐसैं अति-
मोक्ष कहे । अब संपत् कहियेहैं ॥ ६ ॥

है ॥ तहां रजमानरूप यज्ञका जो यह प्रसिद्ध
मन है । सो अध्यात्म है । सो यह चंद्र अधि-
दैव है । जातैं मन अध्यात्म है । चंद्रमा अधि-
दैवत है । यह प्रसिद्ध है ॥ सोई चंद्रमा ब्रह्मा-
रूप ऋत्विक् है । तिसैकरि अधिभूत ब्रह्माका प-
रिच्छिन्नरूप है अरु अध्यात्म मनका रूप है । इन
दोनोंकूं अपरिच्छिन्न चंद्रमाके रूपकरि देखताहै ।
तिसैं चंद्रमारूप मनोमय आलंबनगरि कर्मके
फलरूप स्वर्गलोककूं पावताहै । अभिप्राय यह

८८ “ मनहीं यज्ञका ब्रह्मा है ” इत्यादिरूप वाक्यके अ-
र्थकूं कहैहैं ॥ इहां व्यवहारभूमि “ तहां ” इस सप्तमीका
अर्थ है ॥

८९ वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहां द्वितीया जो है सो दोनों
तृतीयाओंके साथि संबंधकूं पावती है ॥

९० दर्शनके फलकूं कहैहैं ॥

जो अतिमुक्त होवैहै ॥ इहां “इति” ऐसा उपसंहारके अर्थ वचन है । यातैं इस प्रकारके मृत्युके अतिमोक्ष हैं । जातैं सर्व दर्शनके प्रकार यज्ञके अंगनकूं विषय करनेवाले इस अवसर-विषै कहै हैं । ऐसैं करिके उपसंहार है । ऐसैं अतिमोक्ष हैं । अर्थ यह जो ईस प्रकारके अतिमोक्ष हैं ॥ अब संपत् कहिये हैं ॥ संपत् नाम किंसीबी सामान्यकरि अग्निहोत्रादिक फल-

९१ वाक् आदिकनके अग्निआदि भावकरि दर्शन कहा । त्वक् आदिकनका तो वायुआदि भावकरि दर्शन कहनेकूं योग्य है । तातैं वक्तव्यके शेषके होते उपसंहारका संभव कैसें होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

९२ वाक् आदिकविषै उक्त न्यायका त्वक् आदिकविषै अतिदेश इहां कहनेकूं वांछित है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अथ शब्द । दर्शनके प्रभेदके कथनके अनंतररूप अर्थवाला है ॥

९३ यह संपत् नाम कौन है ? ऐसैं पूछता है ॥

९४ उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां:—महान् अरु फलवाले अश्वमेधादि कर्मोंके कर्मता आदिकरि सामान्यके हुये वा अल्पकर्मोंविषै विवक्षित फलकी सिद्धि अर्थ जो संपत्ति । सो संपत् ऐसैं कहिये है । अर्थ यह जो यथाशक्ति अग्निहोत्रादि कर्मके करनेकरि अश्वमेधादि मेरेकरि करियेहै ऐसा ध्यान संपत् है ॥

९५ यद्वा देवलोकादि फलकीहीं उज्वलता आदिककी समताकरि घृतआदिककी आहुतिका संपादन संपत् है । ऐसैं कहैहैं ॥

वाले कर्मोंका तिनके फल अर्थ संपादन [संपत्] है वा फलकाहीं सर्व उत्साहकरि फलके साधनके अनुष्ठानविषै प्रयत्न करनेवाले पुरुषनका किसीबी विगुणताकरि असंभव होवैगा। सो अब आहिताग्नि हुया अग्निहोत्रादिकनके मध्य यत् किंचित् कर्मकूं यथासंभव लेके (आलंबन करिके) कर्मफलकी विद्वत्ताके हुये सो ताके प्रति जिस कर्मके फलकी कामनावाला होवैहै तिसी (कर्मफल) हींकूं संपादन करैहै। अन्यथा राजसू-

९६ संपत्के अनुष्ठानके अवसरकूं दिखावै हैं ॥ इहां जब अनुष्ठानका असंभव होवै तब। यह शेष है औ कर्मिष्ठनकूंहीं संपत्के अनुष्ठानविषै अधिकार है। ऐसैं दिखावनेकूं “आहिताग्नि हुया” ऐसैं कहा औ अग्निहोत्रादिकनका। यह षष्ठी निर्धारणविषै है औ “यथा संभव” याका वर्णाश्रमके अनुसार यह अर्थ है औ लेके। याका आलंबन करिके यह अर्थ है ॥

९७ केवल कर्मिष्ठपनाहीं संपत्के अनुष्ठाताकूं अपेक्षित नहीं किंतु ताके फलकी विद्यावान्ताबी अपेक्षित है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां ताहीकूं। याका कर्म फलकूंहीं। यह अर्थ है ॥

९८ ननु कर्महीं फलवान् हैं संपत् नहीं। तातैं फलोंकूं तिनकी कार्यता कैसे है? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विहितके अध्ययनकूं अर्थके ज्ञान अह अनुष्ठान आदिककी परंपराकरि फलवान्पना इष्ट है औ अश्वमेध आदिकनविषै सर्वकूं अनुष्ठानका संभव नहीं है काहेतैं

य।अश्वमेध।पुरुषमेध।सर्वमेधरूप यज्ञोंके अधिकारी त्रैवर्णिकनकूं बी असंभव होवैगा । इन तिनकूं ताका पाठ केवल स्वाध्यायके अर्थ होवैगा ॥ जँब तिनके फलकी प्राप्तिका उपाय कोईबी नहीं होवैगा । तब ॥ ताँतैं तिन राजसूय आदिकनकी संपत्करिहीं तिस फलकी प्राप्ति होवै है ॥ ताँतैं संपदनकूंबी (कर्मोंकी न्याँई) फलवान्पना है । याँतैं वे संपत् आरंभ करिये हैं ॥ ६ ॥

कितनेक कर्मविषै अधिकारी त्रैवर्णिकनकूंबी अनुष्ठानके असंभवतैं । यातैं तिनकूं ताके अध्ययनकरि अर्थवान्ता है उपपत्तिकरि संपदाओंकूंबी फलवान्ता माननेकूं योग्य है ॥

९९ बडे अश्वमेध आदिकके फलकी अल्प संपदाकरि प्राप्ति कैसेँ होवैगी ? यह आशंका करिके । शास्त्रकी प्रमाणतातैं होवैगी । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥ इहां तब ताका पाठ स्वाध्यायके अर्थहीं होवैगा । ऐसैं पूर्वके साथि संबंध है ॥

१०० अध्ययनकी फलवान्ताके कहनेकी योग्यताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां तिनकी । याका राजसूयादिकनकी । यह अर्थ है ॥

१०१ ब्राह्मणादिकनकूं राजसूय आदिकनके अध्ययनके सामर्थ्यतैं तिनकूं संपत् करिहीं तिस फलकी प्राप्तिके हुयेबी क्या सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां कर्मोंकी न्याँई ऐसैं दृष्टांत अर्थ अतिशब्द है ॥

१०२ तिनकी फलवान्ताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच । कतिभिरय-
मद्यग्भिर्होताऽस्मिन्यज्ञे करिष्यतीति ।
तिसृभिरिति ॥ कतमास्तास्तिस्त्र इति ॥

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य ! ऐसै कहताभया ?
यह होता अब कितनी ऋचाओंकरि इस
यज्ञविषै करैगा ? ऐसैं ॥ तीन [ऋचाओं-
करि] ऐसैं [कहतेभये] ॥ कौनसी वे तीन

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं अभिमुख
करणे अर्थ कहताभयाः—कितनी (कति सं-
ख्यावाली) ऋचाओं (ऋचाओंकी जातिन)
करि यह होता नामक ऋत्विक् अब इस
यज्ञविषै करैगा (शस्त्रकूं प्रशंसा करैहै) ? ॥ ॥
तहां इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैः—तीन ऋ-
चाओंकी जातिनकरि ॥ ॥ ऐसैं कहनेवाले
याज्ञवल्क्यके प्रति इतर (अश्वल) कहैहैः—

१०३ संपदाओंके आरंभकूं उपपादन करिके अब प्रश्नके
वाक्यकूं उठावते हैं ॥

१०४ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृ-
तीया ॥ किन्ताभिर्जयतीति ॥ यत्कि-
ञ्चेदं प्राणभृदिति ॥ ७ ॥

ऋचा हैं । ऐसैं [पूछताभया] ॥ पुरोनुवा-
क्या अरु याज्या औ तीसरी शस्यार्हीं ॥
क्या तिनोकरि जयकरैहै । ऐसैं ॥ जो कछु
यह प्राणभृत् है ऐसैं ॥ ७ ॥

वे तीन कवन हैं ? यह संख्येय (गिनती क-
रने योग्य)नकूं विषय करनेवाला प्रश्न है । पू-
र्वला तो संख्याकूं विषय करनेहारा प्रश्न है ॥ ॥
पुरोऽनुवाक्या औ याज्या औ तृतीया श-
स्यार्हीं है ॥ प्रयोगकालतैं पूर्व जे प्रयोग क-
रिये हैं (उच्चारण करियेहैं) ऋचा । सो ऋ-
चाओंकी जाति “ पुरोऽनुवाक्या ” ऐसैं कहिये

१०५ कितनी ऋचाओंकी जातिओंकरि औ कौनसी ऋ-
चाओंकी जातिआं है । इन दोनूं प्रश्नोंके विषयके भेदकूं दि-
खावै हैं ॥

है ॥ यागके अर्थ जो प्रयोग करियेहैं । सो ऋचाओंकी जाति “ याज्या ” ऐसैं कहिये है ॥ शस्त्रके अर्थ जो प्रयोग करियेहैं ऋचा । सो ऋचाओंकी जाति “ शस्या ” ऐसैं कहियेहै ॥ सर्व तो जो कोईबी ऋचा हैं वे । वा स्तोत्रिणा वा अन्य हैं वे सर्व इनहीं तीन ऋचाओंकी जातिनविषै अंतर्भूत होवैहैं ॥ ॥ तिनकरि किसकूं जीतता है ? ऐसैं ॥ ॥ जो कछु यह प्राणभूत (प्राणधारिनका समूह लोकत्रय) है [ताकूं] ऐसैं ॥ ॥ औ यातैं संख्याके सामान्यतैं जो कछुबी प्राणधारिनका समूह है । तिस सर्वकूं जय करैहै । कहिये तिस सर्व फलके समूहकूं संपादन करैहै । संख्या आदिकके सामान्यकरि ॥ ७ ॥

१०६ स्तोत्रिया नामक अन्यबी कोईक ऋचाओंकी जाति है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ वा अन्य । ऐसैं शास्त्रविषै जातिका ग्रहण है औ विधेयके अभेदकरि सर्व शब्दतैं पुनरुक्ति होवैहै । यातैं संपत्तिके कारणतैं यह अर्थ है औ संख्याके सामान्यतैं । याका तीन प्रकारके अविशेषतैं । यह अर्थ है ॥ प्राणधारिनका समूह । लोकत्रय विवक्षित है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कत्ययम-
द्याध्वर्युरस्मिन्यज्ञ आहुतीर्होष्यती-
ति ॥ तिस्र इति ॥ कतमास्तास्तिस्र इ-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य ! ऐसा कहताभ-
याः—अब यह अध्वर्यु इस यज्ञविषै कितनेप्र-
कारकी आहुतिनकूं होमैगा ? ऐसैं ॥ तीन

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहताभ-
याः—[यह पूर्वकीन्यांई है] यह अध्वर्यु
अब इस यज्ञविषै कितनी आहुतिनकूं हो-
म करैगा । कहिये कितने आहुतिनके प्रका-
र हैं ? तीन हैं ऐसैं ॥ ॥ वे तीन कवन
हैं ? ऐसैं ॥ ॥ पूर्वकी न्यांई इतर (याज्ञव-
ल्क्य) कहैहैः—जे हवनकरी हुयी उज्वलतीहैं
(प्रकाश करैहैं) [वे] समिध अरु घृतकी आहु-
तियाहैं ॥ जे हवनकरी हुयी अतिशयहीं श-

१०७ प्रथम प्रश्न संख्याकूं विषय करनेवाला है औ द्वि-
तीय प्रश्न तो जिनकी संख्या करिये तिन संख्येयकूं विषय क-
रनेवाला है । इस विभागकूं लखावते हैं ॥ इहां तिस सा-
मान्यकरि । याका उज्वलताकरि । यह अर्थ है ॥

ति ॥ या हुता उज्ज्वलन्ति । या हुता अ-
तिनेदन्ते । या हुता अधिशेरते ॥ कि-
न्ताभिर्जयतीति ॥ या हुता उज्ज्वलन्ति
देवलोकमेव ताभिर्जयति दीप्यत इव हि

हैं ऐसैं ॥ कौनसी वे तीन हैं ? ॥ जे हुत-
हुयी उज्वल होवैहैं । जे हुतहुयी अतिशय
शब्दकूं करैहैं । जे हुतहुयी भूमिके नीचे
जायके प्रस्रत होवैहैं ॥ तिनकरि किसकूं
जय करैहै ? ऐसैं ॥ जे हुतहुयी उज्ज्वल होवैहैं
तिनकरि देवलोककूंहीं जय करैहै । जातैं

ब्दकूं करैहैं [वे] मांस आंदकन वी आहुतियां-
हैं ॥ जे हवनकरी हुयी भूमिकाके नीचे श-
यन करैहैं [वे] पय अरु सोमकी आहुतियांहैं ॥ ॥
तिनकरि किसकूं जीतता है कहिये ऐसैं उत्प-
न्न करी तिन आहुतिनकरि किसकूं जय करैहै ?
ऐसैं ॥ ॥ जे आहुतियां हवनकरी हुयी उ-
ज्ज्वलन करैहैं । कहिये उज्ज्वलनयुक्त आहुतियां
संपादितहैं । तिनकरि देवलोक नामक उज्ज्व-

देवलोको या हुता अतिनेदन्ते पितृलो-
कमेव ताभिर्जयत्यतीव हि पितृलोको
देवलोक दीप्त हुयेकी न्याई है ॥ जे हुत-
हुयी अतिशय शब्दकूं करै हैं । तिनकरि
पितृलोककूं हीं जय करै है । जातैं पितृलोक
लहीं फलकूं तिस सामान्यकरि (उज्ज्वलत्वकरि)
जय करै है ॥ जे मुजकरि ये उज्ज्वल करनेवाली-
यां आहुतियां संपाद्यमानहैं । वे ये साक्षात् देव-
लोकमय कर्मफलके रूप हैं । देवलोक नामक फ-
लहीं मुजकरि संपादन करिये है । ऐसैं संपादन
करै है ॥ जे आहुतियां हवनकरी हुयी अति-
शयहीं शब्दकूं करै हैं । तिनकरि पितृलोककूं-
हीं जय करै है । कुत्सित शब्दके कर्त्तापनैके सा-
मान्यकरि ॥ जातैं पितृलोकसैं संबद्ध संयमिनी
पुरीविषै वैवस्वत (यमराज) करि पात्यमान
जीवनका “हा हत भयेहैं । छोडछोड” ऐसा श-
ब्द होवै है । तैसैं अवदानरूप आहुतियां शब्दकूं
करै हैं । तिसकरि पितृलोकके सामान्यतैं पितृ-

१०८ उक्त अर्थकूं संक्षेपकरि कहै हैं ॥

१०९ ननु मांस आदिककी आहुतिनकूं पितृलोकके सा-

या हुता अधिशेरते मनुष्यलोकमेव ता-
भिर्जयत्यध इव हि मनुष्यलोकः ॥ ८ ॥

अतिशयहीं शब्द करैहै ॥ जे हुतहुयी च्या-
री ओरतैं प्रस्रत होवैहैं । तिनकरि मनुष्य
लोककूंहीं जय करैहै । जातैं मनुष्य लोक
नीचेकी न्यांई है ॥ ८ ॥

लोकहीं मुजकरि संपादन करियेहै । ऐसैं संपा-
दन करैहै ॥ जे आहुतियां हवनकरी हुयी भू-
मिकाके नीचे शयन करैहैं । तिनकरि मनु-
ष्यलोककूंहीं जय करैहै । भूमिकाके उपरि सं-
बंधके सामान्यतैं । जातैं अधकी न्यांई अधहीं
मनुष्यलोक है । उपरके साधने योग्य लोकनकूं
अपेक्षाकरिके । अथवा अधोगमनकूं अपेक्षा क-
रिके ॥ यातैं मनुष्यलोकहीं मुजकरि संपादन

थि उक्त प्रकारका सामान्य कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां अ-
धोगमनके प्रति अपेक्षा करिके । याका सोम आदिकनकी अ-
हुतिनका अधोगमनहीं है औ पापप्रचुर मनुष्य लोकका तैसा
गमन है । ताकूं अपेक्षा करिके । यह अर्थ है औ यातैं याका
सामान्यतैं । यह अर्थ है औ दक्षिणतैं आहवनीयका । यह
शेष है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कतिभिर-
यमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताभिर्गो-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहता भयाः—
अब कितनी देवताओंकरि यह ब्रह्मा द-
क्षिणबाजू यज्ञकूं रक्षण करैहै ? ऐसैं ॥ एक
करिये है । ऐसैं संपादन करैहै । पय अरु सोम-
की आहुतिनके देनेके कालविषै ॥ ८ ॥

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहता भयाः—
[यह पूर्वकी न्यांई है] यह ब्रह्मा नामक ऋत्वि-
क् दक्षिणतैं (दक्षिण दिशाके बाजू) । ब्रह्मास-
नविषै स्थित होयके यज्ञकूं रक्षण करैहै । सो ।
कितनी देवताकरि रक्षण करैहै ? यह बहुव-
चन प्रासंगिकहै । जातैं एँकहीं देवताकरि यह
रक्षण करैहै ऐसैं जाने हुये आपहीं जाननेवालेकूं
बहुवचनकरि प्रश्न नहीं संभवै है । तातैं पूर्वकी
दो कंडिकामैं प्रश्न अरु प्रतिवचनोंविषै “ कि-
तनीकरि कितनीकरि । तीनकरि तीनहैं ” ऐसैं

११० प्रासंगिक बहुवचन है । इस प्रकारसैं उक्त अर्थकूं
प्रकट करै हैं ॥

पायतीत्येकयेति ॥ कतमा सैकेति । म-
 देवताकरि ॥ कौन सो एक देवता है ? ऐसैं
 प्रसंगकूं देखीके इहांबी बहुवचनकरि हीं प्रश्नका
 उपक्रम करियेहै । अर्थवा प्रतिवादी (वक्ता) के
 व्यामोहअर्थ बहुवचनहै ॥ इतर (याज्ञवल्क्य) कहै
 है:—एक (देवता) करि [रक्षणकरैहै] ऐसैं । एक
 सो देवताहै जिसकरि दक्षिणतैं ब्रह्मासनविषै
 स्थित होयके यज्ञकूं रक्षण करैहै ॥ ॥ सो एक
 देवता कौनसीहै ? ऐसैं ॥ ॥ मनहीहै ऐसैं
 कहिये सो देवता मनहै ॥ जीतैं मनसैं ब्रह्मा
 ध्यानकरिहीं व्यापार करैहै । “तिस यज्ञके मन
 औ वाक् मार्गहैं । तिनदोनूके मध्य अन्यतर
 (वाक्) कूं ब्रह्मा मनकरि संस्कार करैहै” इस
 अन्यश्रुतितैं ॥ तिस हेतुकरि मनहीं देवताहै ।
 तिस मनकरि हीं ब्रह्मा यज्ञकूं रक्षण करैहै ।

१११ जल्पकथा प्रस्तुत है । ऐसैं हृदयविषै धारण करिके
 बहुवचनविषै अन्यगतिकूं कहैहैं ॥

११२ मनके देवतापनैकूं साधते हैं ॥ इहां यह अर्थ है ।
 तिन वाक् अरु मनरूप मार्गविषै एक वाचाकूं मन (मौन)
 करि ब्रह्मा संस्कारयुक्त करै है । वाणीका विसर्ग है । प्रायश्चित्तके
 विधानतैं । यह अन्य श्रुतिका अर्थ है ॥

न एवेत्यनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वे देवा
अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥ ९ ॥

मनहीं है ऐसैं ॥ अनंत प्रसिद्ध मन है । अ-
नंतरूप विश्व देवता हैं । सो तिसकरि अ-
नंतरूपहीं लोककूं जय करैहै ॥ ९ ॥

औ सो मन । वृत्तिनके भेदकरि अनंत है ॥ इ-
हां “वै” शब्द प्रसिद्धका प्रकाशक है । मनकी अ-
नंतता प्रसिद्ध है । तिसकी अनंतताके अभि-
मानिनी सर्व देवता अनंतहैं “सर्व देव जहां ए-
क होवैहै” इस अन्यश्रुतितैं । तिसैं अनंतता-
के सामान्यतैं सो तिसकरि अनंतहीं लोककूं
जयकरैहै ॥ ९ ॥

११३ तथापि संपत्की सिद्धि कैसें होवैगी ? तहां कहै-
हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जिसमनविषै सर्व देव एकरूप हो-
वैहैं कहिये अभिन्नताकूं पावते हैं तिसविषै विश्वेदेवकी दृ-
ष्टिकरि अनंतलोककी प्राप्ति होवैहै । यह अन्य श्रुतिका अर्थ है ॥

११४ अनंतकूंहीं । इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥
इहां तिसकरि याका उक्त प्रकारकरि यह अर्थ है । औ ति-
सकरि मनविषै विश्वेदेवकी दृष्टिके अध्यासकरि । यह अर्थ है
औ सो ऐसैं उपासकका कथन है औ पूर्ववत् याका अभिमुख
करनेवास्ते है । यह अर्थ है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कत्ययम-
द्योद्गाताऽस्मिन्यज्ञे स्तोत्रियास्तोष्य-
तीति ॥ तिस्र इति ॥ कतमास्तास्तिस्र इ-
ति ॥ पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यै-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
अब कितनी स्तोत्रियाहैं । यह उद्गता इस
यज्ञविषै स्तुति करैगा? ऐसैं ॥ तीन हैं ऐसैं ॥
कौनसी वे तीन हैं? ऐसैं ॥ पुरोनुवाक्या ।
अरु याज्या औ तीसरी शस्याहीं ॥ कौनसी

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहताभ-
याः—[यह पूर्वकी न्यांई है] [जितनीकरि] अब
यह उद्गाता स्तुति करैहै । वे स्तोत्रिया
ऋचा कितनी हैं ? । कहिये स्तोत्रिया नाम ऋ-
क् सामसमूह है ॥ कितनी ऋचाओंका समु-
दाय है ? स्तोत्रिया वा शस्या वा जे कोईबी ऋ-

प्रतिवचनकूं ग्रहण करै हैं ॥ इहां प्रगीत जो ऋ-
चाओंका समूह । सो स्तोत्र कहिये है औ अप्रगीत जो ऋचा-
ओंका समूह । सो शस्य कहिये है ॥

व तृतीया ॥ कतमास्ता या अध्यात्म-
मिति ॥ प्राण एव पुरोऽनुवाक्याऽपानो
याज्या व्यानः शस्या ॥ किन्ताभिर्जय-
वे ऋचा हैं जे अध्यात्मरूप होवैहैं ? ऐसैं ॥
प्राणहीं पुरोनुवाक्या है । अपान याज्या है ।
व्यान शस्या है ॥ तिनकरि किसकूं जय क-
चा हैं वे सर्व तीनहीं हैं । ऐसैं कहैहैं^{११६} :—औ वे
व्याख्यान करी । पुरोऽनुवाक्या औ याज्या
औ तीसरी शस्याहीं है ऐसैं ॥ तहां^{११७} पूर्व क-
हाथाकिः—जो कळु यह प्राणभृत् है तिस सर्वकूं
जय करैहै^{११८} ऐसैं । सो किस सामान्यकरि जय क-

११६ कौनसी वे ऋचा हैं । इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

११७ प्रश्नांतररूप वृत्तकूं अनुवाद करिके । ग्रहण करैहैं ॥
इहां “तहां” इस सप्तमीका यज्ञाधिकार अर्थ है ॥

११८ ननु पुरोनुवाक्या आदिककरि लोकत्रयका जयरूप
फल किस सामान्यकरि होवैहै ? इस अपेक्षाके हुये । संख्या
विशेषकरि होवैहै । ऐसैं उक्त अर्थकूं स्मरण करावैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कत्ययम-
द्योद्गाताऽस्मिन्यज्ञे स्तोत्रियास्तोष्य-
तीति ॥ तिस्र इति ॥ कतमास्तास्तिस्र इ-
ति ॥ पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यै-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
अब कितनी स्तोत्रियाहैं। यह उद्गता इस
यज्ञविषै स्तुति करैगा? ऐसैं ॥ तीन हैं ऐसैं ॥
कौनसी वे तीन हैं? ऐसैं ॥ पुरोनुवाक्या।
अरु याज्या औ तीसरी शस्याहीं ॥ कौनसी

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभ-
याः—[यह पूर्वकी न्याई है] [जितनीकरि] अब
यह उद्गाता स्तुति करैहै। वे स्तोत्रिया
ऋचा कितनी हैं?। कहिये स्तोत्रिया नाम ऋ-
क् सामसमूह है ॥ कितनी ऋचाओंका समु-
दाय है? स्तोत्रिया वा शस्या वा जे कोईबीऋ-

११८४ प्रतिवचनकूं ग्रहण करै हैं ॥ इहां प्रगीत जो ऋ-
चाओंका समूह। सो स्तोत्र कहिये है औ अप्रगीत जो ऋचा-
ओंका समूह। सो शस्य कहिये है ॥

व तृतीया ॥ कतमास्ता या अध्यात्म-
मिति ॥ प्राण एव पुरोऽनुवाक्याऽपानो
याज्या व्यानः शस्या ॥ किन्ताभिर्जय-
वे ऋचा हैं जे अध्यात्मरूप होवैहैं ? ऐसैं ॥
प्राणहीं पुरोनुवाक्या है । अपान याज्या है ।
व्यान शस्या है ॥ तिनकरि किसकूं जय क-
चा हैं वे सर्व तीनहीं हैं । ऐसैं कहैहैं^{११६} :—औ वे
व्याख्यान करी । पुरोऽनुवाक्या औ याज्या
औ तीसरी शस्याहीं है ऐसैं ॥ तहां पूर्व क-
हाथाकिः—जो कलु यह प्राणभृत् है तिस सर्वकूं
जय करैहै^{११८} ऐसैं । सो किस सामान्यकरि जय क-

११६ कौनसी वे ऋचा हैं । इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

११७ प्रश्नांतररूप वृत्तकूं अनुवाद करिके । ग्रहण करैहैं ॥
इहां “तहां” इस सप्तमीका यज्ञाधिकार अर्थ है ॥

११८ ननु पुरोनुवाक्या आदिककरि लोकत्रयका जयरूप
फल किस सामान्यकरि होवैहै ? इस अपेक्षाके हुये । संख्या
विशेषकरि होवैहै । ऐसैं उक्त अर्थकूं स्मरण करावैहैं ॥

तीति ॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया
जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया । द्युलोकं
रैहै ? ऐसैं ॥ पुरोनुवाक्याकरि पृथिवीकूंहीं
जय करैहै । याज्याकरि अंतरिक्ष लोककूं
रैहै । यह कहियेहै:—कौनसी वे तीन ऋचा
हैं ? जे अध्यात्म होवैहैं । ऐसैं प्राणहीं पुरो
ऽनुवाक्या है अपशब्दके सामान्यतैं ॥ अपान
याज्या है अनंतर होनेतैं । जातैं अपानकरि द-
त्त हविकूं देवता प्रसतेहैं औ याग प्रदान है ॥
व्यान शस्या है “ प्राणनैकूं करता हुआ अपा-

११९ उक्त अधियज्ञकूं स्मरण करायके अध्यात्म विशेष-
षकूं दिखावनेकूं उत्तर ग्रंथ है । ऐसैं कहैहैं ॥

१२० प्राण आदिकविषै औ पुरोनुवाक्या आदिकविषै
पृथिवी आदिक लोकनकी दृष्टि होवैहै । ऐसैं प्रश्नपूर्वक क-
हैहैं ॥

१२१ अपानविषै याज्याकी दृष्टिविषै हेतु अंतरकूं कहैहैं ॥
इहां अपानकरि याका । हस्त आदिकसैं आदानरूप व्यापारक-
रि । यह अर्थ है ॥

२२२ प्राण अरु अपानके व्यापार विना शस्त्रके प्रयोगकूं
अन्य श्रुतिविषै सिद्ध होनेतैं व्यानविषै शस्याकी दृष्टि होवैहै ॥
इहां “तहां” इस सप्तमीका पुरोनुवाक्या आदिकनविषै । यह

शस्यया ॥ ततो ह होताऽश्वल उपराम ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
प्रथममश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

जय करैहै । शस्याकरि स्वर्ग लोककूं जय
करैहै ॥ तदनंतर होता अश्वल । प्रश्नतैं उ-
पराम होताभया ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी-
पिकायां तृतीयाध्यायस्य प्रथम-म-
श्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

ननकूं न करता हुया ऋचाकूं उच्चारण करैहै ”
इस अन्य श्रुतितैं ॥ ॥ तिन ऋचाओंकरि कि-
सकूं जय करैहै ? यह व्याख्यानकिया ॥ तहां
(पुरोऽनुवाक्यादिकनविषै) विशेष संबंधका सा-
मान्य नहीं कहा है । सो इहां कहियेहै । अ-
न्य सर्व व्याख्यान किया ॥ लोक^{१३३} संबंधके सा-

अर्थ है ॥ इहां । ऐसैं अनंतर वाक्यका कथन है औ अन्य
सर्व । ऐसैं संख्याके सामान्यका कथन है ॥

१२३ क्या सो विशेष संबंधका सामान्य है ? सो कहैहैं ॥

तीति ॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया
जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया । द्युलोकं
रैहै ? ऐसैं ॥ पुरोनुवाक्याकरि पृथिवीकूंहीं
जय करैहै । याज्याकरि अंतरिक्ष लोककूं
रैहै । यह कहियेहैः—कौनसी वे तीन ऋचा
हैं ? जे अध्यात्म होवैहैं । ऐसैं प्राणहीं पुरो
ऽनुवाक्या है अपशब्दके सामान्यतैं ॥ अपान
याज्या है अनंतर होनेतैं । जातैं अपानकरिद-
त्त हविकूं देवता ग्रसतेहैं औ याग प्रदान है ॥
व्यान शस्या है “ प्राणैकूं करता हुआ अपा-

११९ उक्त अधियज्ञकूं स्मरण करायके अध्यात्म विशेष-
कूं दिखावनेकूं उत्तर ग्रंथ है । ऐसैं कहैहैं ॥

१२० प्राण आदिकविषै औ पुरोनुवाक्या आदिकविषै
पृथिवी आदिक लोकनकी दृष्टि होवैहै । ऐसैं प्रश्नपूर्वक क-
हैहैं ॥

१२१ अपानविषै याज्याकी दृष्टिविषै हेतु अंतरकूं कहैहैं ॥
इहां अपानकरि याका । हस्त आदिकसैं आदानरूप व्यापारक-
रि । यह अर्थ है ॥

२२२ प्राण अरु अपानके व्यापार विना शस्त्रके प्रयोगकूं
अन्य श्रुतिविषै सिद्ध होनेतैं व्यानविषै शस्याकी दृष्टि होवैहै ॥
इहां “तहां” इस सप्तमीका पुरोनुवाक्या आदिकनविषै । यह

शस्यया ॥ ततो ह होताऽश्वल उपररा-
म ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
प्रथममश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

जय करैहै । शस्याकरि स्वर्ग लोककूं जय
करैहै ॥ तदनंतर होता अश्वल । प्रश्नतैं उ-
पराम होताभया ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी-
पिकायां तृतीयाध्यायस्य प्रथम-म-
श्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

ननकूं न करता हुया ऋचाकूं उच्चारण करैहै ”
इस अन्य श्रुतितैं ॥ ॥ तिन ऋचाओंकरि कि-
सकूं जय करैहै ? यह व्याख्यानकिया ॥ तहां
(पुरोऽनुवाक्यादिकनविषै) विशेष संबंधका सा-
मान्य नहीं कहा है । सो इहां कहियेहै । अ-
न्य सर्व व्याख्यान किया ॥ लोक^{३३} संबंधके सा-

अर्थ है ॥ इहां । ऐसैं अनंतर वाक्यका कथन है औ अन्य
सर्व । ऐसैं संख्याके सामान्यका कथन है ॥

१२३ क्या सो विशेष संबंधका सामान्य है ? सो कहैहैं ॥

मान्यकरि पृथिवी लोककूंहीं पुरोऽनुवाक्या-
 करि जय करैहै ॥ अंतरिक्ष लोककूं याज्या-
 करि जय करैहै । मध्यभावके सामान्यतैं ॥
 द्युलोककूं शस्याकरि जय करैहै । ऊर्ध्वभा-
 वके सामान्यतैं ॥ तातैं आपके प्रश्नके निर्णयतैं
 यह होता अश्वल उपराम होताभया । यह
 हमारा गोचर (विषय) नहीं है । ऐसैं [जा-
 निके] ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
 तृतीयाध्यायस्य प्रथम-मश्वल-ब्राह्मणं
 समाप्तम् ॥ १ ॥

इहां यह अर्थ है:—पृथिवीरूप लोकके साथि प्रथमताकरि
 संबंधका सामान्य पुरोनुवाक्याविषै है । तिसकरि पृथिवी लो-
 ककूंहीं पावता है ॥

१२४ तूर्णीभावकूं भजनेहारे अश्वल मुनिके अभिप्रायकूं
 कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
 तृतीयाध्याय-गत-प्रथम ब्राह्मणस्य टिप्पणं
 समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य द्वितीय-मार्त्तभाग-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

अथ हैनं जारत्कारव आर्त्तभागः प-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभा-
षादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य द्विती-
य-मार्त्तभाग-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥२॥

अर्थः—अनंतर या (याज्ञवल्क्य) कूं जा-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया
स्तृतीयाध्यायस्य द्वितीय-मार्त्तभाग-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः—आख्यायिकाका संबंध प्रसिद्धीं है ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषा-
दीपिकायास्तृतीयाध्याय-गत-द्वितीय-
ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

१२५ अन्य (द्वितीय) ब्राह्मणकूं अवतार देते हुये आ-
ख्यायिका किस अर्थ है । ऐसैं शंका करनेवालेके प्रति कहैहैं ॥
इहां यह अर्थ हैः—जातैं याज्ञवल्क्य विद्याके प्रकर्षके वशतैं
इहां पूजाभागी लखीयेहै । तैसैं आर्त्तभाग नहीं ॥ विद्याकी
मंदतातैं । यातैं विद्याकी स्तुति अर्थ यह आख्यायिका है ॥

प्रच्छ । याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कति-
ग्रहाः कत्यतिग्रहा इत्यष्टौ ग्रहा अष्टा-
रत्कारव आर्त्तभाग पूछताभया । हे याज्ञव-
ल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—कितने ग्रह हैं । कित-
ने अतिग्रह हैं ! ऐसैं ॥ अष्ट ग्रह हैं । अष्ट अ-
कालरूप औ कर्मरूप मृत्युतैं अतिमुक्ति व्या-
ख्यानकरी ॥ कौनै^{१२७} फेर यह मृत्यु है जिसतैं
अतिमुक्ति व्याख्यान करी है औ सो मृत्यु स्वा-
भाविक अज्ञानतैं होनेवाले आसंगका आस्पद
(विषय) हीं है आस्पद जिसका ऐसा है औ
अध्यात्म अरु अधिभूत विषयकरि परिच्छिन्न
अरु ग्रह^{१२८} अतिग्रहरूप है ॥ तिसैं^{१२९} परिच्छिन्नरूप

१२६ अब ब्राह्मणके अर्थकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥

१२७ मृत्युके स्वरूपकूं पूछता है ॥

१२८ ताके स्वरूपके निरूपण अर्थ ब्राह्मणकूं उठावतेहैं ॥
इहां सो मृत्यु ऐसैं संबंध है औ स्वाभाविक कहिये नैसर्गिक
(अनादिसिद्ध) जो अज्ञान । तिसतैं जो आसंग होवैहै । ता-
का आस्पदहीं है आस्पद (स्थानक) जाका ऐसा जो मृत्यु ।
सो स्वाभाविकाज्ञानासंगास्पद कहियेहै । ऐसैं विग्रह है ॥

१२९ ताके विषयकूं कहिके व्याप्तिकूं कहैहैं ॥

१३० ताके स्वरूपकूं कहैहैं ॥

१३१ अग्नि आदिकनके मध्य उक्त प्रकारके मृत्युकी व्या-

वतिग्रहा इति ॥ ॥ ये तेऽष्टौ ग्रहा अष्ट
वतिग्रहाः कतमे त इति ॥ १ ॥

तिग्रह हैं ऐसैं ॥ जे वे अष्ट ग्रह हैं । अष्ट
अतिग्रह हैं । वे कौनसे हैं ? ऐसैं ॥ [पूछ-
ताभया । तहां कहैं] ॥ १ ॥

मृत्युतैं अतिमुक्तके अग्नि आदित्य आदिकरूप
उद्गीथ प्रकरणविषै व्याख्यानकिये औ अश्वलके
प्रश्नविषै उद्गत विशेष (अग्नि आदिगत दृष्टि-
भेद) कोईवी व्याख्यानकिया औ सो यह (अ-
ग्नि आदित्य आदि स्वरूप सूत्रात्माका पदरूप)
उपासन सहित कर्मनका फल^{१३२} [उक्त प्रकारके मृ-

त्तिकूं कथन करै हैं ॥ इहां:—वेवी ग्रह अरु अतिग्रहकरि
गृहीत हैं । अर्थ अरु इंद्रियनके संबन्धि होनेतैं यह अर्थ है औ
तद्गतविशेष । याका अग्नि आदिगत दृष्टिका भेद । यह अर्थ
है औ कोईकवी व्याख्यान किया । ऐसैं संबन्ध है ॥

१३२ सूत्रात्माकेवीमृत्युकरि ग्रस्तपनैकूं अभिप्रायका विषय
करिके । कहैं हैं ॥ इहां अग्नि अरु आदित्यादिस्वरूप । याका
सौत्र (सूत्रात्माका) पद । यह अर्थ है औ फल जो है
सो उक्त प्रकारके मृत्युकरि ग्रस्त है । यह शेष है ॥

१३३ ननु बंधनरूप मृत्युका स्वरूप क्यूं कहियेहै ? त-
हां कहैं हैं ॥

त्युकरि प्रस्त] है । इस साध्य साधनरूप सं-
सारतैं मोक्ष कर्त्तव्य है । यातैं बंधनरूप मृत्युका
स्वरूप कहियेहै । जातैं बद्ध (बांधे हुये)का
मोक्ष कर्त्तव्य है ॥ यद्यपि अतिमुक्तका स्वरूप-
कहा । तहांबी सो अतिमुक्त मृत्युरूप ग्रह अरु
अतिग्रहतैं अविनिर्मुक्तहीं है ॥ तिसैं प्रकार क-
हा है:—“अशनाया (क्षुधा) मृत्यु है । यहहीं
मृत्यु है” ऐसैं आदित्यविषै स्थित पुरुषकूं अं-
गीकार करिके कहैहै औ “एकं मृत्यु बहुत है”
ऐसैं तैदात्मभावकूं प्राप्तभया । मृत्युकी प्राप्तिके

१३४ ननु मोक्षके कर्त्तव्य हुये बंधनरूपका उपवर्णन अ-
नुपयुक्त है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१३५ अग्नि आदिकनके मध्य कही जो उक्त प्रकारके मृत्युकी
व्याप्ति ताकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां अविनिर्मुक्तहीं अतिमुक्तबी ।
यह शेष है ॥

१३६ तथापि सूत्रकूं यथोक्त मृत्युकी व्याप्ति कैसें है ? त-
हां कहैहैं ॥

१३७ अग्नि आदिकनकूं मृत्युकी व्याप्ति कैसें है । जातैं
तहां प्रमाण नहीं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां बहुत हैं । यह पद
छांदस है ॥

१३८ तथापि मृत्युतैं अतिमुक्त विद्वानकूं ताकी प्राप्ति न-
हीं होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

तांई अतिमुक्त होवैहै ? तहां कहियेहै:—औ त-^{१३९}
 हां (सूत्रात्माके पदविषै) मृत्युरूप ग्रह अरु
 अतिग्रह नहींहैं ऐसैं नहीं “अब इस मनका द्यौ
 (स्वर्गलोक) शरीरहै । ज्योतीरूप यह आदि-
 त्यहै ॥ औ मनं ग्रहहै । सो कामरूप अतिग्रह-
 करि गृहीतहै” ऐसैं यह उपनिषद् कहैगी औ
 “प्राणहीं ग्रहहै । सो अपानरूप अतिग्रहकरि
 गृहीतहै ॥ ऐसैं वाक्हीं ग्रहहै । सो नाममय अ-
 तिग्रहकरि गृहीतहै” ऐसैं कहैगी ॥ तैसैं तीन^{१४१}
 अन्नके विभागविषै हमनैं व्याख्यान कियाहै
 औ यह सुष्ठुप्रकारसैं विचार कियाहै:—जोई प्र-

१३९ सूत्रात्माके पदविषै मृत्युकी व्याप्तिकूं प्रकाशंतरकरि
 प्रकट करै हैं ॥

१४० मनविषै कार्य अरु करणरूपकरि स्वर्गकी औ आ-
 दित्यकी एकता होहै । तथापि सूत्रात्माकूं ग्रह अरु अतिग्रह-
 करि गृहीतपना कैसें है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१४१ वाक् आदिककी औ वक्तव्य आदिककी ग्रहरूपता
 औ अतिग्रहरूपताके हुये हिरण्यगर्भविषै क्या आया ? यह आ-
 शंका करिके । कहैहैं ॥

१४२ औ कर्मफलकूं संशयहोनेतैं ता (कर्म) का
 फलरूप सूत्रात्माका पद मृत्युकरि ग्रस्तहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥
 इहां यह अर्थ है:—जोई कर्मबंधकी प्रवृत्तिका प्रयोजक (का-

वृत्तिका कारण है। सोई निवृत्तिका कारण नहीं होवै है ॥ ॥ केईकतो सर्व कर्मकूंहीं निवृत्तिका कारण मानते हैं। ईसैं कारणतैं पूर्व पूर्व मृत्युतैं मुक्त होवै है। उत्तर उत्तरकूं प्रतिपद्यमान होवै है। सो व्यावृत्तिके अर्थहीं प्रतिपद्यमान होवै है! परंतु तिसतिस पदकी प्राप्ति अर्थ नहीं।

रण) है सोई बंधनिवृत्तिका कारण नहीं है। यातैं कर्मका फल हिरण्यगर्भका पद बंध नहीं है ॥

१४३ स्वमतकूं कहिके। मतांतरकूं कहै हैं ॥ इहां:—सर्वहीं कर्म यह शेष है औ स्वर्गकाम वाक्यविषै देहके आत्मभावकी निवृत्ति है औ गोदोहन वाक्यविषै स्वतंत्र अधिकारकी निवृत्ति है। नित्यनैमित्तिक विधिनविषै अन्य अर्थके उपदेशकरि स्वाभाविक प्रवृत्तिका निरोध होवै है। निषेध वाक्यनविषै साक्षात्हीं स्वाभाविक प्रवृत्तिआं निरोधकूं पावतिआं हैं। तातैं ऐसैं सर्वहीं कर्मकांड निवृत्तिरूप द्वारकरि मोक्षपर है। यह अर्थ है ॥

१४४ ननु शास्त्रीय कर्मरूप हेतुतैं उत्तर उत्तर पूर्वतैं अतिशय वाले कार्यकरणके संघातकूं प्राप्त हुया पूर्व संघाततैं मुक्त होवै है। तातैं कर्मकांडकूं निवृत्तिपरता कैसैं होवैगी? यह आशंका करिके। कहै हैं ॥ ॥ इहां यह अर्थ है:—जो यह उत्तर उत्तर सातिशय फलरूप प्रजापतिका पद है। सोबी प्रासादके आरोहणके क्रमकरि व्यावृत्तिद्वारा मोक्षके प्रति अवतार देनेकूं है। परंतु तिसीहीं प्रजापतिके पदविषै श्रुतिका तात्पर्य नहीं है काहेतैं ताकूंबी निरतिशय फलरूपताके अभावतैं ॥

१४५
 यातैं कहैहैं:—द्वैतके क्षयतैं (द्वैतके क्षयपर्यंत)
 सर्व मृत्युहै । द्वैतके क्षय हुये तो परमार्थतैं मृ-
 त्युकी प्राप्तिकूं अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै ॥
 यातैं अंतरालविषै जो मुक्ति होवैहै सो आपे-
 क्षिकी हुई गौणीहै ॥ ॥ सर्व यह ऐसें बृहदा-
 ण्यक उक्त नहीं है ॥ ॥ नैनुं सर्वसैं एकतारूप

१४५ फलितकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं पूर्व पूर्वकूं
 परित्याग करिके उत्तर उत्तरकूं प्राप्तभया पुरुष । तिस तिसकी
 निवृत्तिद्वारा मुक्तिके अर्थहीं सो प्राप्त होवैहै । परंतु तिस तिस
 पदकी प्राप्ति अर्थहीं वाक्य पर्यवसानकूं प्राप्त नहीं है । काहेतैं
 ताकूं अंतवान् होनेकरि अफलरूप होनेतैं । तातैं द्वैतके क्षय
 पर्यंत सर्ववी फलविशेष मृत्युकरि प्रस्त होनेतैं “प्रासाद आरो-
 हण” न्यायकरि मोक्षके अर्थ स्थित होवैहै । हिरण्यगर्भके प-
 दकी प्राप्तिकरि द्वैतके क्षय भये तो वस्तुतैं मृत्युकी प्राप्तिकूं
 उल्लंघनकरिके परमात्मरूपसैं जो स्थित होवैहै सो मुक्त होवैहै ।
 तिस प्रकार हुये मनुष्यभावतैं पीछे औ परमात्मभावतैं आगे
 मध्यमें जो तिसतिस पदकी प्राप्ति है । सो प्रसिद्ध आपेक्षिकी
 हुयी गौणी मुक्ति है । मुख्या तो पूर्व उक्तहीं है ॥

१४६ सर्व यह उत्प्रेक्षामात्रकरि आरन्ध्रित है परंतु बृह-
 दारण्यकका औ अन्य श्रुतिका अर्थ नहीं है । इस रीतिसैं सि-
 द्धांती दूषण देते हैं ॥

१४७ सर्वकी एकतामय मोक्षरूप बृहदारण्यकका अर्थहीं
 हमोंकरि कहिये है । तातैं हमारा कथन बृहदारण्यकका अर्थ
 नहीं कैसें है ? इस प्रकार प्रतिवादी (पूर्वपक्षी) शंका करैहै ॥

मोक्षहै “तातैं सो सर्व होता भया” इस श्रुति-
 तैं? तहां सिद्धांती कहैहैं बाँढ (सत्य) है । यँह
 (सर्वसैं एकत्वरूप बृहदारण्यकका अर्थ) हो-
 वैहैबी ॥ परंतु ^{१५०} “ग्रामकी कामनावाला यजन
 करै । पशुकी कामनावाला यजनकरै” इत्यादि
 कर्मश्रुतिनकूं तिस अर्थता (उक्त प्रकारके मो-
 क्षकी अर्थता) नहीं घटेहै ॥ जँवहीं इन श्रुति-
 नकूं अद्वैतरूप अर्थताहीं होवै औ ग्राम पशु अरु
 स्वर्ग आदिरूप अर्थवान्ता नहीं होवै । तब उक्त
 श्रुतिनकरि ग्राम पशु अरु स्वर्ग आदिक नहीं
 ग्रहणकिये जाते औ कर्मफलकी विचित्रता वि-
 शेष तो ग्रहण करियेहैं । [तातैं तिनकर्म श्रु-

१४८ सिद्धांती अंगीकार करै हैं ॥

१४९ अंगीकार किये अंशकूं स्पष्ट करै हैं ॥ यह ॥ इहां:—
 सर्वकी एकता आरण्यकका अर्थ होवैबी है पेसैं योजना है ॥

१५० तब सर्व यह बृहदारण्यक उक्त नहीं है । यह कैसे
 कहा ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तातैं उक्त रीतिकरि
 कर्मश्रुतिनकूं उक्त प्रकारके मोक्षकी अर्थता नहीं घटती है ।
 तिसकरि सर्व यह कल्पनामात्र है। श्रौत (श्रुतिका अर्थ)
 नहीं है ॥

१५१ कर्मश्रुतिनकी मोक्षार्थताके अभावकूं समर्थन करै
 हैं ॥ इहां:—तातैं तिनकी मोक्षार्थता नहीं है । यह शेष है ॥

ध्याय । ३] द्वितीय-आर्त्तभाग-ब्राह्मण ॥ २ ॥ ११९७

तिनकूं मोक्ष अर्थता नहीं है] ॥ ॥ औ जब^{१५३} वैदिककर्मनकूं मोक्षार्थताहीं होवै तब संसारहीं नहीं होवैगा ॥ ॥ औ कर्मनकूं मोक्षार्थताके हुयेवी अनुनिष्पादित पदार्थ (कर्म) का स्वभाव संसारहै ॥ जैसे^{१५४} आलोकविषै रूपदर्शनके अर्थ-वाला सर्ववी तहां स्थित पदार्थ प्रकाशकरिये-हीं है । तैसें ॥ इस प्रकार जो कहै ? सो बनै नहीं :— काहेतैं प्रमाणके असंभवतैं कहिये विधी^{१५५}सहित वैदिककर्मनकी अद्वैतार्थताके हुये अन्य (बंध) की अनुनिष्पादितता (पीछे उत्पाद्यता) विषै

१५२ किंवा:—संसार । प्रथम धर्म अधर्म हेतुवाला है औ वे (धर्म अधर्म) विधिनिषेधके आधीन हैं । तिन (विधि-निषेध) कूं जब तुजकरि उक्त रीतिकरि मोक्षार्थता होवै । तब हेतुके अभावतैं संसारहीं नहीं होवैगा । ऐसें कहै हैं ॥

१५३ विधिनिषेधकूं निवृत्तिद्वारा मुक्तिरूप अर्थवान्ताके हुयेवी विधि आदिकके ज्ञानतैं अनंतर उत्पादनकिया यह कर्मपदार्थ ताका यह स्वभाव है । जो कर्त्ताकूं अनर्थके साथि जोडता है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

१५४ मोक्षरूप अर्थवाला कर्मकांडवी संसारके अर्थ होवैहै । ऐसें प्रतिवादी । दृष्टांत सहित कहैहै ॥

१५५ प्रमाणके अभावकरि सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

१५६ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

प्रमाणका असंभवहै ॥ प्रत्यक्ष प्रमाण नहींहै । अनुमान नहींहै औ याहीतैं आगम (शास्त्ररूप प्रमाण) नहीं है ॥ ॥ ननु उभय एक वाक्यकरि दिखाइयेहै । कुल्याप्रणयन अरु आलोक आदिककी न्यांई? ऐसैं जो कहै । सो वनै नहीं:—काहेतैं ऐसैं वाक्यधर्मके असंभवतैं औ एक वाक्यगत अर्थकूं प्रवृत्तिकी अरु निवृत्तिकी

१५७ असंभवकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१५८ कर्मश्रुतिके वाक्यका अवांतर तात्पर्य यथाश्रुत अर्थविषै ग्रहण करियेहै । निवृत्तिद्वारा मुक्तिविषैतो महा तात्पर्य है? ऐसैं अंगीकार करिके। वही प्राचीनवृत्तिकार (भर्तृप्रपंच) शंका करै है ॥

१५९ कृत्रिम क्षुद्र नदीयां कुल्या कहिये हैं । तिनकी रचना । शाली (धान्यविशेष)के अर्थ जलपान अर्थ औ आचमन आदिक अर्थ है अरु प्रदीप जो है सो प्रासादकी सोभा अर्थ कियाहुया गमनादिकका हेतुबी होवैहै अरु वृक्षके मूलविषै जलकासेचन अनेक अर्थवाला होवैहै । तैसैं कर्मकांड अनेक अर्थवाला है? ऐसैं प्रतिवादी उपपादन करै है ॥

१६० एक वाक्यका यथाश्रुत अर्थकरि अर्थवान्ता संभवै है । इहां तात्पर्य । कल्पना करने योग्य नहीं । कल्पकके अभावतैं औ तेरेकरि उक्त रीतिसैं अनेक अर्थवान्तरूप धर्म । एक वाक्यकूं नहीं संभवै है “ अर्थकी एकतातैं एक वाक्य है ” इस न्यायतैं । इस रीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

१६१ वाक्यकूं अनेकार्थताके अभाव हुयेवी ताके अर्थरूप

साधनता जाननेकूं शक्य नहीं है ॥ कुर्ल्यो^{१६३}प्रणयन
अरु आलोक आदिकविषै अर्थकूं प्रत्यक्ष होनेतैं
अदोष है ॥ ॥ यद्यपि^{१६४} इस अर्थविषै मंत्र देखे हैं ।
यातैं हमोंकरि कहियेहै? ऐसैं जो कहै तो । यहुँ-
हीं तो प्रथम अर्थ हैः—प्रमाणकरि अगम्य मंत्र
फेर क्या इस अर्थविषै हैं अथवा अन्य अर्थवि-
षै हैं । यह विचारनेकूं योग्यहै ॥ तातैं ग्रह अरु
अतिग्रहरूप मृत्यु बंधहै । तिसतैं मोक्ष कहनेकूं

कर्मकूं बंध मोक्षनामक अनेकार्थता होवैगी ? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥

१६२ प्रतिवादीकरि उक्त दृष्टांतकूं विपरीत घटावते हैं ॥

१६३ “विद्याकूं औ अविद्याकूं” इत्यादि मंत्र समुच्चयपर
देखे हैं । जब समुच्चय होवै तब कर्मकांडकूं निवृत्तिद्वारा मो-
क्षार्थता है । इस अर्थविषै सिद्ध होवैहै? इस प्रकार प्रतिवादी ।
शंका करै है ॥

१६४ कर्मकांडकी उक्त रीतिसैं मोक्षार्थताविषै प्रमाण नहीं
है । इस रीतिसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

१६५ मंत्रनकूं समुच्चयपर होनेतैं औ ताकूं उक्त अर्थकी अ-
पेक्षावाला होनेतैं इस अर्थका प्रमाण कहातैं प्राप्त होवैगा ?
यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिन मं-
त्रनकूं समुच्चयपरता नहीं है । यह आगे स्पष्ट होवैगा ॥

१६६ परमतके असंभव हुये स्वमतकूं उपसंहार करै हैं ॥

१६७ बंधका निरूपण अनुपयोगी है ? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥

योग्य है । यातैं यह आरंभ करनेकूं योग्य है ।

^{१६८} औ विषयकी संधिरूप अंतरालविषै अवस्थानकीन्यांई अरु अर्द्धजरतीय कौशलकी न्यांई ^{१६९} [व्याख्यान करनेकूं] हम नहीं जानते हैं ॥ औ जो मृत्युकी प्राप्तिकूं अतिक्रमणकरिके मुक्त होवैहै ऐसैं कहिके । ग्रह अरु अतिग्रह कहिये हैं । सो यह सर्व साध्यसाधनरूप बंध अर्थके संबंधतैं है । कहिये ग्रहं अरु अतिग्रहके अवि-

१६८ औ जो कर्मकांड । बंधके अर्थ वा मुक्तिके अर्थ नहीं होवैहै किंतु बीचमें अवस्थानका कारण है ? ऐसैं कहै ? ताकूं दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं न जागता है नसोवता है । इस प्रकार विषय ग्रहणके छिद्ररूप अंतरालविषै अवस्थान दुर्घट है औ जैसैं कुकुरी (कूकडी) का अर्ध पाकके अर्थ है औ अर्ध प्रसवके अर्थ है । ऐसा कौशल नहीं देखीये हैं ॥ तैसैं कर्मकांड । बंधके अर्थ नहीं है अरु साक्षात् मोक्षके अर्थबी नहीं है । ऐसा व्याख्यान करनेकूं हम नहीं जानते हैं ॥

१६९ औ जो श्रुतिहीं उत्तर उत्तर पदकी प्राप्तिके कथनके मिषकरि मोक्षविषै पुरुषकूं प्रवेश करावती है ऐसैं कहा ? तहां कहैहैं ॥ इहां ऐसैं योजना है:—मृत्युकी प्राप्तिकूं उल्लंघन करिके मुक्त होवैहै । ऐसैं कहिके जो यह ग्रह अरु अतिग्रहका वचन है । सो यह सर्व साध्यसाधन रूप बंध है । इस अभिप्रायकरि कहियेहै काहेतैं ताके अर्थरूप मृत्युपदार्थके साथि अन्वय पदके देखनेतैं ॥

१७० अर्थके संबंधतैं । ऐसैं कथनकिये अर्थकूं स्पष्ट करै-

ध्याय । ३] द्वितीय-आर्त्तभाग-ब्राह्मण ॥ २ ॥ १२०१

निर्मोकतैं है । जातैं निर्गुंड (शृंखलाबंधन)के जाने हुये निगडित (शृंखलाकरि बद्ध)के मोक्ष अर्थ यत्न कर्त्तव्य होवैहै । तातैं तिस अर्थ-^{१७२}ताकरि ब्राह्मणका आरंभ है:—अनंतर (अश्व-लके उपरत हुये) या (प्रकृत याज्ञवल्क्य)कूं जरत्कारु गोत्रवाला जारत्कारव ऋतभागका अपत्य (पुत्र) आर्त्तभाग पूछताभया । अभिमुख करने अर्थ हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कह-^{१७३}ताभया:—पूर्वकी न्यांई ॥ कितने ग्रह हैं । कि-तने अतिग्रह हैं । यह प्रश्न है ॥ इहां इति

हैं ॥ इहां यह भाव है:—यहहीं श्रुति । बंधकूंहीं प्रतिपादन करै है । परंतु मोक्षविषै पुरुषकूं नहीं प्रवृत्त करै है ॥

१७१ ननु पुरुषकूं अपेक्षित जो मोक्ष सो प्रतिपादन करनेकूं योग्य है । अनर्थके स्वरूपका बोध क्यूं प्रतिपादन करिये है ? तहां कहैहैं ॥

१७२ बंधके ज्ञानविना तिसतैं छूटनेके अयोगतैं मुमुक्षुकूं सप्रयोजक बंधके ज्ञानरूप अर्थवान् होनेकरि अनंतरके ब्राह्मणकी प्रवृत्ति है । ऐसैं उपसंहार करै हैं ॥

१७३ कितने ग्रह हैं । इत्यादिरूप प्रथम संख्याकूं विषय करनेवाला प्रश्न है औ कौनसे वे हैं । यह द्वितीय संख्येयकूं विषय करनेवाला प्रश्न है । ऐसैं कहैहैं ॥

शब्द वाक्यकी परिसमाप्ति अर्थ है ॥ ॥ तँहँं
 ग्रह अरु अतिग्रहके ज्ञात हुये प्रश्न होवँहँ वा
 अज्ञात हुये? जब प्रथम ग्रह औ अतिग्रह ज्ञात
 होवँ । तब तद्गत गुणरूप संख्याकूंबी ज्ञात हो-
 नेतँ कितने ग्रह हँ । कितने अतिग्रह हँ । ऐसा
 संख्याकू विषय करनेवाला प्रश्न बनै नहीं ॥ औ
 जो कहै वे अज्ञात हँ । तँसँ संख्यावालेकू विष-
 य करनेवाला प्रश्न है ॥ तो कौन ग्रह हँ । कौं-
 न अतिग्रह हँ । तँसँ पूछनेकू योग्य है । परंतु
 कितने ग्रह हँ । कितने अतिग्रह हँ । ऐसा प्र-
 श्न बनै नहीं ॥ ॥ किँवाँ:—ज्ञात सामान्यवाले
 वस्तुनके हुये विशेष विज्ञान अर्थ प्रश्न होवँहँ ।
 जँसँ कौनसे इहां कठ (ऋग्वेदके पढनेवाले वि-
 द्यार्थी) हँ । कौनसे इहां कलाप (समूह) हँ ।
 तँसँ [विशेष विज्ञानके अर्थ प्रश्न होवँहँ] औ
 इहां ग्रह अरु अतिग्रह नाम पदार्थ कोईबी
 लोकविषै प्रसिद्ध नहीं है । जिसकरि विशेष

१७४ अब प्रश्नके प्रति पूर्ववादी आक्षेप करै है ॥

१७५ आद्य प्रश्नके प्रति आक्षेप करिके । द्वितीयके प्रति
 आक्षेप करै है ॥ इहां विशेषतँ ज्ञात पदार्थनविषै । यह “च”
 शब्दका अर्थ है ॥

ध्याय । ३] द्वितीय-आर्त्तभाग-ब्राह्मण ॥ २ ॥ १२०३

अर्थ प्रश्न होवै ॥ ॥ ननु “ अतिमुक्त होवैहै ”
ऐसैं प्रथम ब्राह्मणविषै कहा है । जातैं ग्रहकरि
ऋहोत्तक मोक्ष होवैहै । सो मुक्ति है । सो अ-
तिमुक्ति है । ऐसैं जातैं दोवार कहा है । तातैं
प्राप्त ग्रह अरु अतिग्रह हैं ॥ ॥ तहां आक्षेप-
का कर्त्ता कहैहैः—ननु तहांबी (वाक्हीं यज्ञका
होता है इत्यादि वाक्यविषैबी) च्यारी ग्रह अरु
अतिग्रह ज्ञात हैं । वाक् चक्षु प्राण अरु मन ॥ त-
हां “ कितने ” ऐसा प्रश्न नहीं संभवैहै विशेष-
षकूं ज्ञात होनेतैं ? यह कथन वनै नहींः—काहे-

१७६ मुक्ति अरु अतिमुक्ति इन दो पदार्थनके प्रतियोगी
बंधन नामवाले ग्रह अरु अतिग्रह सामान्यकरि प्राप्त हैं । प्रश्न
तो विशेष जाननेकी इच्छाविषै होवैहै ? ऐसैं पूछनेवाला प्रश्न
करै है ॥

१७७ तथापि (तौबी) दोनूं प्रश्न अघटित हैं ? ऐसैं आ-
क्षेपका कर्त्ता कहैहै ॥ इहां “तहां” इसपदका “वाक्हीं यज्ञका-
होता है” इत्यादि वाक्यविषै । यह अर्थ है औ विशेषकूं ज्ञात
होनेतैं । यह शेष है ॥

१७८ अतिमोक्षके उपदेशकरि त्वक् आदिकनकूंबी सू-
चित होनेतैं तिनोंविषै च्यारीके निर्धारणतैं अविशेषकरि प्राप्त
वाक् आदिकनविषै विशेष जाननेकी इच्छाके हुये संख्या आ-
दिककूं विषय करनेवाला होनेकरि प्रश्नकूं घटितार्थ होनेतैं

तैं? अनवधारणवाले अर्थके होनेतैं ॥ जाँतैं त-
 हां (पूर्व ब्राह्मणविषै वाक् आदिकनमें) च्या-
 रीपना विवक्षित नहीं है । ईहां तो ग्रह अरु अ-
 तिग्रहके ज्ञान हुये अष्टपनैरूप गुणके कथन क-
 रनेकी इच्छाकरि “ कितने ” ऐसा प्रश्न घटता-
 हीं है ॥ ताँतैं “ सो मुक्ति है । सो अतिमुक्ति
 है ” ऐसैं मुक्ति अरु अतिमुक्ति दो कही [तिस-
 सकरि ग्रह अरु अतिग्रहवी सिद्धभये] । यातैं
 कौनसी संख्यावाले ग्रह हैं वा कितने अतिग्रह हैं ।
 ऐसैं पूछताहै ॥ ॥ तहां इतर (याज्ञवल्क्य)
 कहैहै:-आठ ग्रह हैं । आठ अतिग्रह हैं ।
 ऐसैं ॥ ॥ जे वे अष्ट ग्रह औ अष्ट अतिग्रह

तेरे आक्षेपका संभव नहीं है । इस रीतिसैं सिद्धांती समाधान
 करै हैं ॥

१७९ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां “तहां”याका पूर्व ब्रा-
 ह्मणमें वाक् आदिकनविषै । यह अर्थ है ॥

१८० फलितरूप प्रथम प्रश्नके संभवकूं कथन करै हैं ॥

१८१ ननु ग्रहनकूं हीं पूर्वताके उपदेश अरु अतिदेशकरि
 प्राप्त होनेतैं तिनोंविषै विशेष जाननेकी इच्छाके हुये “कितने
 ग्रह हैं” इस प्रश्नके हुयेबी । अतिग्रहोंकूं अप्रसिद्ध होनेतैं
 “ कितने अतिग्रह हैं” यह प्रश्न कैसें होवैगा ? यातैं कहै-
 हैं ॥ “इहां ताँतैं” याका पूर्व ब्राह्मणतैं । यह अर्थ है ॥

प्राणो वै ग्रहः सोऽपानेनातिग्रहेण
गृहीतोऽपानेन हि गन्धाञ्जिघ्रति ॥ २ ॥

अर्थः—प्राण प्रसिद्ध ग्रह है । सो अपानरूप अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं अपानकरि गंधनकूं सूंघताहै ॥ २ ॥

कहे । कौनसे वे निर्यमकरि ग्रहण करनेकूं योग्य हैं ? ऐसैं पूछ्या । तहां कहैहैं ॥ १ ॥

टीकाः—प्राण प्रसिद्ध ग्रह है [इहां प्राण ऐसैं घ्राण इंद्रिय कहियेहै । प्रकॅरणतैं] वायु सहित अपान (गंध)रूप अतिग्राहकरि गृहीतहै ॥ इहां अपानकरि याका गंधकरि यह

१८२ वाक् आदिक औ वक्तव्य आदिक च्यारी ग्रह अरु अतिग्रह यद्यपि विशेषकरि ज्ञात हैं । तथापि अतिदेशकरि प्राप्त च्यारी विशेषतैं नहीं जानीये हैं । तिसकरि तिनोविषै विशेषतैं ज्ञानकी सिद्धि अर्थ प्रश्न है । इस अभिप्राय करिके विशेषण देते हैं ॥

१८३ द्वितीय प्रश्नविषै परिहारकूं उठावते हैं ॥

१८४ प्राण शब्दकी घ्राण विषयताविषै पूर्व उत्तर ग्रंथन-विषै वाक् आदिकनके प्रकृतपनैरूप हेतुकूं कहैहैं ॥

१८५ ताके गंधकरि गृहीतपनैकी सिद्धि अर्थ विशेषण देते हैं ॥

वाग्वै ग्रहः स नाम्नाऽतिग्राहेण गृही-
तो वाचा हि नामान्यभिवदति ॥ ३ ॥

अर्थः—वाक् प्रसिद्ध ग्रह है। सो नाम
अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं वाक्करि ना-
मांकूं कहताहै ॥ ३ ॥

अर्थ है। अपानका सहायक होनेतैं अपान गं-
ध कहियेहै। जातैं अपानकरि उपहृत (गृहीत)
गंधकूं घ्राणकरि सर्वलोक सूंघताहै। सो यह
कहियेहैः—जातैं अपानकरि गंधनकूं सूंघता-
है ऐसैं ॥ २ ॥

टीकाः—वाक् प्रसिद्ध ग्रह है ॥ जातैं आ-

१८६ अपान शब्दकी गंधविषयताविषै गंधके अपानकरि
अभावरूप हेतुकूं कहैहैं ॥

१८७ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां अपश्वास अपान
शब्दका अर्थ है ॥

१८८ उक्त अर्थविषै वाक्यकूं गेरते हैं ॥

१८९ वाक्की ग्रहरूपताकूं उपपादन करै हैं ॥ इहां आ-
संगकाविषय शब्दादिकहीं है आस्पद जिसवाक्का सो आसं-
गविषयास्पद है। ऐसैं विग्रह है औ ताकी सिद्धि अर्थ अ-
ध्यात्मरूपसैं परिच्छिन्न है। यह विशेषण है औ असत्य क-
हिये पर पीडाकर मिथ्यावचन। सोई स्वदृष्टमात्रका विरोधी

जिह्वा वै ग्रहः स रसेनातिग्राहेण गृ-
हीतो जिह्वया हि रसान्विजानाति ॥ ४ ॥

चक्षुर्वै ग्रहः स रूपेणातिग्राहेण गृ-
हीतश्चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति ॥ ५ ॥

अर्थः—जिह्वा प्रसिद्ध ग्रह है । सो रस-
रूप अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं जिह्वा-
करि रसोंकूं जानताहै ॥ ४ ॥

अर्थः—चक्षु प्रसिद्ध ग्रह है । सो रूप-
मय अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं चक्षुकरि
रूपनकूं देखताहै ॥ ५ ॥

संगके विषयरूप आस्पदवाली । अध्यात्मरूप
करि परिच्छिन्न असत्य अनृत असभ्य बीभत्स
आदिक वचनोंविषै व्यापृत (व्यवहारवाली)
वाक्करि लोक गृहीत (अपहृत) होवैहै । ति-
स हेतुकरि वाक् ग्रह है ॥ सो नाममय अति-
ग्राहकरि गृहीतहै कहिये सो वाक् नामक ग्र-

हुया अमृतरूप वा विपरीत होवैहै । आदिपदकरि इष्ट अह अ-
निष्टके कथनका ग्रहण है ॥

१९० प्रकृत वाचाविषै “सो नामकरि” यह कैसें कहिये
है ? तहां कहैहैं ॥

श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनातिग्राहेण
गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दाञ्छृणोति ॥६॥

मनो वै ग्रहः स कामेनातिग्राहेण गृ-
हीतो मनसा हि कामान्कामयते ॥७॥

अर्थः—श्रोत्र प्रसिद्ध ग्रह है । सो शब्द-
रूप अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं श्रोत्र-
करि शब्दनकूं सुनता है ॥ ६ ॥

अर्थः—मन प्रसिद्ध ग्रह है । सो काम-
रूप अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं मन-
करि कामोंकूं कामना करैहै ॥ ७ ॥

ह । नाम (वक्तव्यविषय) मय अतिग्रहकरि गृ-
हीत होवैहै ॥ इहां अतिग्राहकरि । यह दीर्घ-
पना छांदस नाम है ॥ जातैं वक्तव्यरूप अर्थ-
वाली वाक् है । तिसैकरि वक्तव्यरूप अर्थकरि
प्रयुक्त (प्रेरित) वाक् तिसकरि वशीकृत है ।

१९१ वक्तव्यकरि वाक्के वशीकृतपनैकूं साधते हैं ॥ इहां
तादर्थ्यकरि याका वचनकरणताकरि । यह अर्थ है ॥

१९२ वचनके अर्थ वाक्की वक्तव्यकरि वशीकृतताके हुये
फलितकूं कहैहैं ॥ इहां ताका कार्य वचन है औ असाधारण
देवताके स्वरूपविषै पर्यवसान मोक्ष है ॥

हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणाऽतिग्राहेण
गृहीतो हस्ताभ्यां हि कर्म करोति ॥ ८ ॥

त्वग्वै ग्रहः स स्पर्शनातिग्राहेण गृही-
तस्त्वचा हि स्पर्शान्वेदयत इत्येतेऽष्टौ
ग्रहा अष्टावतिग्रहाः ॥ ९ ॥

अर्थः—दो हस्त प्रसिद्ध ग्रह हैं। सो क-
र्मरूप अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं दो
हस्तोंकरि कर्मकूं करैहै ॥ ८ ॥

अर्थः—त्वक् प्रसिद्ध ग्रह है। सो स्पर्श-
रूप अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं त्वचा-
करि [पुरुष] स्पर्शोंकूं जानता है। ऐसैं ये
अष्ट ग्रह। अष्ट अतिग्रह हैं ॥ ९ ॥

तिसकरि ताके कार्य (वचन)कूं नकरिके ता
(वाक्)का मोक्ष नहीं होवैहै। यातैं नाममय
अतिग्रहकरि गृहीत वाक् है ॥ जातैं वक्तव्यके

१९३ वक्तव्य अर्थके कथनविना वाक्के पर्यवसानके हुये
सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

१९४ वाक्के अतिग्रहकरि गृहीतपनैकूं अनुभवकरि सा-
धते हैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यदिदं सर्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता यस्या

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
जो यह सर्व मृत्युका अन्न है। कौनसी सो

आसंगकरि प्रवृत्त हुयी वाक्। सर्व अनर्थोंके साथि योजना करियेहै ॥ अन्न्य अर्थ समान है ॥

इसरीतिसैं ये त्वचापर्यंत अष्ट ग्रह हैं औ स्पर्श पर्यंत ये अष्ट अतिग्रह हैं। इति ॥ ३ ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

टीकाः—ग्रह अरु अतिग्रहनके उपसंहार हुये आर्त्तभागमुनि कहैहै। फेर हे याज्ञवल्क्य!

ऐसैं कहताभयाः—जो यह सर्व मृत्युका अ-

१२५ “वाक्करिहीं” इत्यादिककी “अपान करिहीं” इत्यादिकसैं तुल्य अर्थतातैं अव्याख्येयताकूं कहैहैं ॥

१२६ घ्राण। वाक्। जिह्वा। चक्षु। श्रोत्र। मन। दो हस्त। औ त्वचा। ऐसैं उक्त ग्रहनकूं सूचना करैहैं ॥

१२७ गंध। नाम। रस। रूप। शब्द। काम। कर्म। स्पर्श ॥ इन अष्ट अतिग्रहनकूं निगमन करैहैं ॥

१२८ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—जो यह व्याकृत जगत् है सो सर्व मृत्युका अन्न है। ऐसैं योजना है ॥

मृत्युरन्नमित्यग्निर्वै मृत्युः । सोऽपामन्न-
मप पुनर्मृत्युं जयति ॥ १० ॥

देवता है जाका मृत्यु अन्न है ? ऐसैं ॥ अग्नि
प्रसिद्ध मृत्यु है । सो जलका अन्न है । पुनर्मृ-
त्युकं अपजय करैहै ॥ १०

न्न है । सर्व उपजताहै अरु विनाशकूं पावताहै ।
ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युकरि ग्रस्तहै ॥ कौन-
सी सो देवता होवैहै जिस देवताका मृत्यु-
वी अन्न होवै “मृत्यु जाका उपसेचन (शाक)
है” इस अन्य श्रुतितैं ॥ ॥ इहां पूछनेवालेका
यैहै अभिप्रायहै:—जब मृत्युके मृत्युकूं कहैगा
तब अनवस्था होवैगी औ जब नहीं कहैगा त-
ब इस ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युतैं मोक्ष न-

१९९ ताकी तिसकी अन्नरूपताकूं साधते हैं ॥

२०० मृत्युकी अन्नरूपताकी संभावनाविषै अन्य श्रुतिकूं
कथन करैहैं ॥

२०१ मृत्युके मृत्युकूं आश्रय करिके प्रश्नकी करटदंत (का-
कदंत)के निरूपणकी न्याई अप्रयोजनताकूं आशंका करिके क-
हैहैं ॥

हीं संभवैहै । यातें ग्रह^{२०२} अरु अतिग्रहरूप मृत्युके विनाशके हुये मोक्ष होवैहै । सो जब मृत्युकावी मृत्यु होवै तब ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युका विनाश होवै । यातें दुर्वचन (दुरुत्तर) प्रश्नकूं मानताहुया आर्त्तभाग “कौनसी सो देवता है” ऐसैं पूछताहै ॥ प्रथम^{२०३} मृत्युका मृत्यु है ॥ नैनु^{२०४} अनवस्था होवैगी । ताकावी अन्य मृत्यु है ? ऐसैं ॥ अनवस्था नहीं है:—काहेतैं सर्वका मृत्युहै ताके स्वातिरिक्त अन्य मृत्युके असंभवतैं

२०२ ननु ग्रह अरु अतिग्रहके होतेहीं मृत्युतैं मोक्ष होवैगा? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै । तो सो वनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

२०३ तब ग्रह अरु अतिग्रहके नाश हुये मुक्ति होइ ? यह प्रतिवादीनैं कहा । यातें कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—मृत्युका मृत्यु नहीं है अनवस्थादोपतैं । ऐसैं कहा औ अस्ति पक्षविषै अनवस्था है अरु नास्ति पक्षविषै अमुक्ति है । यह अतः (यातें) शब्दका अर्थ है ॥

२०४ अस्ति पक्षकूं ग्रहण करै हैं ॥

२०५ मृत्युका मृत्यु ब्रह्मात्माका साक्षात्कार विवक्षित है । ताकावी जब अन्य मृत्यु है तब अनवस्था होवैगी औ जब नहीं है तब ताके हेतु अज्ञानकीबी स्थितितैं अमुक्ति होवैगी ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

२०६ तिनमें अस्ति(है)पक्षकूं ग्रहण करिके सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—उक्त प्रकारके ज्ञानरूप मृत्युकूं स्वपरका विरोधि होनेतैं कलुषी दोष नहींहै ॥

ध्याय । ३] द्वितीय-आर्त्तभाग-ब्राह्मण ॥ २ ॥ १२१३

॥ ॥ फेरं^{३००} मृत्युका मृत्यु । है यह कैसें जानियेहै ?
दृष्ट होनेतैं [जानियेहै] ॥ अग्नि^{३००} जो है । सो प्र-
थम सर्वका दृष्ट (प्रत्यक्ष) मृत्यु है । विनाश-
क होनेतैं । सो (अग्नि) जलोंकरि भक्षण क-
रियेहै । सो अग्नि जलनका अन्न है । तब मृ-
त्युका मृत्यु है । ऐसें ग्रहणकर (जान) ॥ तिसैं^{३००}
मृत्युके मृत्यु (आत्मज्ञान) करि सर्व ग्रह अरु
अतिग्रहनका समूह भक्षण करियेहै । तिसैं^{३००} बं-
धनके नाशितभये (मृत्युकरि भक्षित हुये) सं-
सारतैं मोक्ष उपपन्न (सिद्ध) होवैहै ॥ जीतैं^{३००}
ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन कहा औ तातैं मो-
क्ष संभवैहै यह । “ मृत्युका मृत्यु है ” ऐसें दि-
खानेकरि प्रसाधित किया ॥ जीतैं^{३००} बंध मोक्षके

२०७ उक्त पक्षकं प्रश्नद्वारा प्रमाणाऽऽरूढ करैहैं ॥

२०८ दृष्टताकं स्पष्ट करैहैं ॥

२०९ दृष्ट फलकं कथन करैहैं ॥

२१० ताके कार्यकं कथन करैहैं ॥

२११ “ पुनर्मृत्युकं अपजय करैहै ” या वाक्यकी भूमि-
काकं करैहैं ॥

२१२ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां मृत्युकाभी मृ-
त्यु है इस दिखावनेकरि प्रसाधितभया । यह शेष है ॥

२१३ मोक्षकी उपपत्तिके हुये फलितकं कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्राऽयं पुरुषो म्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्या-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—जिस कालविषै यह ज्ञानी पुरुषमरताहै इस (मरनेहारे ज्ञानी) तैं प्राण ऊर्ध्वकूं गमन अर्थ पुरुषका प्रयास सफल होवैहै। यैंतैं (ज्ञानतैं) फेर अपमृत्युकूं जय करैहै ॥ १० ॥

टीकाः—परैमात्माके दर्शन (ज्ञान)रूप अन्य मृत्युतैं [ग्रहातिग्रहरूप बंधमय] मृत्युविषै जो यह मुक्तभया विद्वान है। सो यह पुरुष जिस कालविषै मरता है (देहकूं छोडताहै) तब इस (म्रियमाण ब्रह्मवित्)तैं प्राण कहिये वाक्आ-

२१४ पुरुषके प्रयास समाधिपूर्वक श्रवणादि । ताके फल ज्ञानके फलकूं दिखावते हुये वाक्यकूं योजना करैहैं ॥ इहां यातैं इस सप्तमीका अर्थ ज्ञान है । सम्यक् ज्ञानका फल पुनर्मृत्युकूं अपजय करैहै ॥

२१५ फलकूं स्पष्ट करनेकूं प्रश्नांतरकूं उठावते हैं ॥ इहां परमात्माके दर्शनरूप पर मृत्युकरि। ऐसैं संबन्ध है औ ग्रहातिग्रहरूप बंध मृत्युविषै इस सप्तमीका अर्थ है ॥ ग्रह शब्दकरि प्रयोज्यराशि ग्रहण कियाहै ॥

हो ३ नेति ॥ नेति होवाच याज्ञवल्क्योऽ-
करैहैं अथवा नहीं? ऐसैं ॥ याज्ञवल्क्य
कहतेभयेः—नहीं उत्क्रमण करैहैं किंतु इस
दिक ग्रह अरु नाम आदिक अतिग्रह । वासना-
रूप अंतरविषै स्थित संप्रयोजक हुये उत्क्रमण
करैहैं (ऊर्ध्वकूजाते हैं) । अथवा नहीं? ऐसैंः—
तैंहीं याज्ञवल्क्य कहताभयाः—नहीं ऐसैं
कहिये उत्क्रमण नहीं करैहैं किंतु इहांहीं स-
म्यक् विलीन होवैहैं कहिये कार्य वा करण
सर्व परमात्माके साथि अविभाग (अभेद) कूं

२१६ स्थूल नामादिकनकूं वाहीर स्थितताके हुये स्वरस-
करि त्यक्त होनेतैं तिनकी उत्क्रांति कैसैं पूछीये है? तहां क-
हैहैं ॥

२१७ तिनकी अनुत्क्रांतिके हुये मुक्तिके असंभवकूं सूचन
करैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—उत्क्रांतिके पक्षविषै “मृतका
निश्चित जन्म होवैहै” इस न्यायतैं फेर उत्पत्ति होवैगी औ
अनुत्क्रांतिके पक्षविषै मरणकी प्रसिद्धि विरोधकूं पावैगी ॥

२१८ द्वितीय पक्षकूं ग्रहण करिके सिद्धांती परिहार करै
हैं ॥ इहांः—कार्य वा करण सर्व परमात्माके साथि विमार्ग
(अमार्ग)के तांई जाते हुये इसीहीं चिदान्विषै विलीन हो-
वैहैं । ऐसैं संबंध है ॥

त्रैव समवनीयन्ते उच्छ्रयत्याध्माय-
त्याध्मातो मृतः शेते ॥ ११ ॥

विषैहीं प्रलीन होवैहैं । [जातैं सो] पुष्ट-
ताकूं पावताहै । अरु बाह्य वायुकरि पूर्ण
होवैहै औ वायुकरि पुरित मृत हुया सो-
वताहै ॥ ११ ॥

पावते हुये इसीहीं विद्वान्विषै सम्यक् लीन
होवैहैं नाम स्वयोनिरूप परब्रह्मतत्त्वविषै स-
म्यक् अवनयनकूं पावतेहैं (एकीभावकरि
स्थित होवैहैं) अर्थ यह जो समुद्रविषै उर्मि-
नकीन्यांई प्रलीन होवैहैं ॥ तिस प्रकार हुये
अन्यश्रुति । कला शब्दके वाच्य प्राणोंके परमा-

२१९ तिनके विद्वान्में विलयविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां
यह अर्थ है:—विद्वान्हीं पूर्व अविद्याकरि तिनका योनि हो-
ताभया । तिसविषै विद्यादशामैं ताके बलतैं अविद्याके दूरी-
भये परिपूर्ण तत्त्वविषै तिनका पर्यवसान संभवै है ॥

२२० कारणविषै कार्योंके विलयमें दृष्टान्तकूं कहैहैं ॥

२२१ ननु प्राणादिनका जब कारणके साथि संसर्ग ना-
मक लय होवै । तब फेर उत्पत्ति होवैगी ? यह आशंका करि-
के । ज्ञानके होते अज्ञानके ध्वंसतैं ऐसैं बनै नहीं । इस अभि-
प्राय करिके कहैहैं ॥

त्माविषै प्रलयकूं दिखावैहैः—“ऐसैहीं इस परि-
 द्रष्टाकी ये षोडशकला पुरुषरूप आश्रयवाली हुई
 पुरुषकूं पायके अस्तकूं पावतियाहैं” ऐसैं । इस-
 रीतिसैं परमात्माके साथि अविभागकूं पावती-
 याहैं ऐसैं दिखाया ॥ ॥ तैव मृत नहीं होवैहै
 ऐसैं नहीं । जातैं सो (ज्ञानी) उच्छूनताकूं पा-
 वताहै । बाह्यवायुकरि पूर्णकरियेहै । भस्त्रा
 (लोहारकी धमिनी) की न्याई । च्यारीओ-
 रतैं बाह्य वायुकरि पूरित । मृत (निश्चेष्ट)
 हुया सोवताहै । तातैं यह मृत भयाहै ॥ बं-
 धनके नाश हुये मुक्त पुरुषका कहींबी गमन
 नहीं होवैहै । यह वाक्यका अर्थ है ॥ ११ ॥

२२२ विषय सहित एकादश इंद्रियां औ पांच वायु। ये षो-
 डश कला हैं । तिनके स्वतंत्रपनैकूं औ अन्य आश्रयकूं नि-
 वारण करैहैं ॥

२२३ औ तिनकी निवृत्ति पुरुषविना नहींहै यातैं पुरु-
 षकूं पायके प्राण जब उत्क्रमण नहीं करैहैं तब मृत नहीं
 होवैहै । ऐसैं प्रतीतिके विरोधकूं शंका करिके सिद्धांती प-
 रिहार करैहैं ॥ इहां दृष्टिशब्द भस्त्रा (लोहारकी धमण)कूं
 विषय करनेवाला है ॥

२२४ प्रकृत वाक्य प्रत्यक्ष सिद्ध देह मरणका अनुवादक
 है । इस अभिप्राय करिके । कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति । ना-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—जिस कालविषै यह पुरुष मरताहै । क्या इसकूं नहीं त्यागताहै? ऐसैं ॥ नाम [इसकूं

टीकाः—मुक्तके क्या प्राणहीं प्रलीन होवैहैं । अथवा ताका प्रयोजकबी सर्व ॥ जो कहो प्राणहीं प्रलीन होवैहैं । ताका प्रयोजक सर्व नहीं । तो प्रयोजकके विद्यमान हुये फेर प्राणोंका प्रसंग होवैगा औ जब सर्वहीं काम कर्म आदिक प्रलीन होवैहै । तातैं मोक्ष बनैहै ॥ इस प्रकारके अर्थवाला उत्तर (पीछला) प्रश्न है ॥ हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—जहा यह पुरुष

२२५ प्राण उत्क्रमण करै हैं । इस विशेषणकूं आश्रयकरिके । प्रश्नांतरकूं ग्रहण करै हैं ॥

२२६ दोनूं पक्षनविषैबी प्रयोजनकूं कथन करै हैं ॥

२२७ जो पुत्रक्षेत्रादिक होताभया सो अब नाममात्र अवशेष है । इस कथनकरि अवशिष्ट किंचित् रहैहै । यह जैसैं जानिये है । तैसैं इहांबी म्रियमाण विद्वान्कूं नाममात्र नहीं त्यागता है । इस कथनकरि किंचित् अवशिष्ट रहैहै यह दृष्टि होवैगी । ऐसैं प्रत्युत्तरके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

मेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वे देवा
अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥१२॥
नहीं त्यागताहै] ऐसैं ॥ अनंतहीं नाम है।
अनंत सर्व देवहैं । सो तिसकरि अनंतहीं
लोककूं जयकरै है ॥ १२ ॥

मरताहै तहां कौन इसकूं नहीं छोडताहै ?
ऐसैं पूछ्या । तहां इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैं:—
नाम [इसकूं छोडता नहीं] ऐसैं । सर्व प्रली-
न होवैहै । यह अर्थ है । नाम^{२२२}मात्रतो नहीं लीन
होवैहै । आकृतिके साथि संबंधतैं ॥ या^{२२१}तैं नाम
नित्य है [तातैं] अनंतहीं नाम है । नाम^{२३३}की

२२८ यथा श्रुत अर्थकूं आश्रयकरिके प्रत्युत्तरकूं व्याख्या-
न करैहैं

२२९ विद्वान्के नामकी नित्यताविषे अन्य हेतुकूं उत्तर
वाक्यके आश्रयकरि दिखावैहैं ॥

२३० अनंत शब्द नामकी व्यक्तिकी बहुलताविषे भा-
सता है ताकी नित्यता काहेतैं होवैगी ? यह आशंका करिके ।
कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—व्यक्तिके भेदकूं प्रसिद्ध होनेतैं
सो कहनेकूं योग्य नहीं । ब्रह्मवेत्ताका स्वदृष्टिकरि नामबी नहीं
शेष रहताहै । परदृष्टिकरि ताके अवशेषकी उक्ति है । शुक
मुक्तभया । इत्यादि व्यापदेशके देखनेतैं । यातैं नामकी नि-
त्यता व्यावहारिक है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्रास्य पु-
रुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति । वातं
प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
जिस कालविषै इस मृत पुरुषके अग्निके
प्रति वाक् लीन होवैहै । वायुके प्रति प्राण ।
आदित्यके प्रति चक्षु । चंद्रके प्रति मन ।
नित्यताहीं अनंतता है ॥ तिसैं^{३३१} (नाम)की अनं-
तताविषै अधिकारी अनंतहीं सर्व देव हैं । ति-
सकरि सो अनंतहीं लोककूं जीतताहै कहि-
ये तिसैं^{३३२} नामकी अनंतताविषै अधिकारी सर्व
देवनकूं आत्मभावकरि प्राप्त होयके तिस अनंत-
ताके दर्शनकरि अनंतहीं लोककूं जय करैहै ॥१२॥

टीकाः—^{३३३}अरु अतिग्रहरूप मृत्युरूप बंध-

२३१ मैं ब्रह्म हूं । इस ज्ञानकरि विश्वे देवनकूं आत्मभा-
वकरि जानिके अनंत लोककूं जीतता है । यह सिद्धोंका अ-
नुवाद ब्रह्मविद्याकी स्तुति करनेकूं है । इस अभिप्राय करिके
अनंतर वाक्यकूं ग्रहण करैहैं ॥

२३२ तिस वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

२३३ “ जहां याका ” इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूं वृ-
त्तके अनुवादपूर्वक कथन करैहैं ॥

पृथिवीं शरीरमाकाशमात्मौषधीर्लो-
मानि वनस्पतीन्केशा अप्सु लोहितञ्च
रेतश्च निधीयते ॥ कायं तदा पुरुषो भ-
श्रोत्रके प्रति दशा । पृथिवीके प्रति शरीर ।
आकाशके प्रति आत्मा (हृदयाकाश) ।
औषधिनके प्रति लोम । वनस्पतिनके प्रति
केश । जलनकेविषै लोहित औ रेत । निधान
करियेहै । तव यह पुरुष (जीव) कहां हो-
वैहै ? ऐसैं [आर्त्तभाग पूछताभया । तव
न कहा औ तिस मृत्युके सद्भावतैं मोक्षवी बनै
है औ सो मोक्ष ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युनका
इहांहीं प्रलय है । प्रदीपके निर्वाणकीन्यांई ॥
जो सो ग्रह अरु अतिग्रह नामक बंधन मृत्यु-
रूप है । ताका जो प्रयोजक है । ताके स्वरूपके
निर्द्धारण अर्थ यह आरंभ करियेहैः—हे याज्ञ-
वल्क्य ! ऐसैं कहताभयाः—इहां (कौन इस-

२३४ “क्या इसकूं” इत्यादि वाक्यकी स्व व्याख्याकूं
कहीके औ “जहां” इत्यादि वाक्यका तात्पर्य कहा । अब
भर्तृप्रपंचके प्रस्थान (मत) कूं उठावते हैं ॥ इहां । याका
“क्या इसकूं” इत्यादि वाक्यविषै । यह अर्थ है ॥

वतीत्याहर सोम्य हस्तमार्त्तभागाऽऽवा-
मेवैतस्य वेदिष्यावो न नावेतत् सजन
याज्ञवल्क्य कहैहैंः—] हे सोम्य आर्त्तभाग !
हस्तकूं ग्रहणकर । हम दोनूँहीं याके विष-
यकूं जानेंगे । हम दोनूँके इसवस्तुकूं सजन
कूं नहीं छोडताहै इत्यादि वाक्यविषै) केईक
(भर्तृप्रपंचके अनुसारी) वर्णन करैहैंः—प्रयोज-
क सहित ग्रह औ अतिग्रहके विनाश हुयेवी
नामैकरि अवशिष्ट ऊपर स्थानीय स्वात्मातें प्र-
भववाली अविद्याकरि परिच्छिन्न औ भोज्य ज-
गत्तें व्यावृत्त उच्छिन्न^{३३} कामकर्मवाला हुया

२३५ समुच्चयके अनुष्ठानतें सप्रयोजक दोनूँ देहनके ना-
श हुयेवी जब पुरुषकूं मुक्ति नहीं होवै । तब ताकूं बद्धताके
अयोगतें यह कौन दशाकूं आश्रय करैगा ? यह सिद्धांतीकी
आशंका मनमें ल्यायके कहैहै ॥

२३६ पृथिवीके ऊपरकी न्याँई अवस्थित आत्माकी वि-
द्याकरि परमात्मातें परिच्छिन्न जब आत्मा होवै तब बंध प-
क्षकाहीं होवैगा परंतु भोगने योग्य जगत्तें व्यावृत्ति नहीं हो-
वैगी ॥ इहां यह अर्थ हैः—सर्व कर्मादिकके फलरूप समु-
च्चयकरि प्राप्त सूत्रात्माके भोगतें अप्राप्त अर्थके अभावतें का-
मकी असिद्धिकरि कर्मके अभावतें प्रयोजककी राशिका उच्छे-
द होवैहै ॥

इति ॥ तौ होत्क्रम्य मन्त्रयाञ्चक्राते । तौ
ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रश-
शं सतुः कर्म हैव तत्प्रशशं सतुः पु-

(जनसमुदाय) विषै नहीं ऐसैं ॥ फेर वे
दोनुं तहांतैं गमन करिके विचार करतेभये ।
वेदोनुं जो कहतेभये । कर्महीं सो कहतेभये ।
अनंतर जिसकूं प्रशंसा करतेभये तिस क-

अंतराल (मध्य) विषै व्यवस्थित होवैहै । तौं
(विद्याके अधिकारी) कूं परमात्माकी एकताके
ज्ञानकरि द्वैतका दर्शन दूरी करनेकूं योग्य है ।
ऐसैं [वर्णन करैहैं] यातैं परे परमात्माका द-
दर्शन आरंभ करनेकूं योग्य है । ऐसैं अपवर्ग

२३७ “क्या इसकूं” इत्यादि वाक्यविषै अंतर अवस्था-
वाले विद्याधिकारीके निर्धारणतैं ताकूं अपेक्षित विद्याकी अ-
वशेषताकरि उपस्त प्रश्न आदिकके आरंभकूं संभावना करैहै ॥
इहां इति शब्द वर्णन करै है । याके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

२३८ तब जहां उपस्त प्रश्न आदिकविषै ब्रह्मविद्या कहि-
येहै ताहीका आरंभ युक्त है “जहां याका” इत्यादिक तो
वृथा है ? यह आशंका करिके । फलवाली विद्याकी प्राप्तिका
शेष (साधन) होनेकरि निवर्त करने योग्य मृत्युके प्रयोज-

ण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति । पापः
 मकूँहीं प्रशंसा करतेभये ॥ पुन्यहीं पुन्यकर्म
 करि होवैहै । पाप पापकरि ऐसैं ॥ तदनंतर
 नामक अंतराल अवस्थाकूं कल्पना करिके उ-
 त्तर ग्रंथके संबंधकूं करैहैं ॥ ॥ तैहां तुमकरि क-
 हनेकूं योग्य है किः—कैरूँणोंके विनाशित हुये वि-
 देह (देहरहित)कूं परमात्माका दर्शन श्रवण
 मनन अरु निदिध्यासन कैसैं होवैंगे ॥ यह जातैं
 विलीन^{२४१} प्राणवाले नाममात्रकरि अवशिष्टकूं वि-
 द्याविषै अधिकार है । ऐसैं तिनोंकरि कहियेहै
 “ मृत^{२४३} हुया सोवताहै ” ऐसैं जातैं श्रुतिविषै

कके निर्धारण अर्थ “जहां याका” इत्यादि वाक्य है। इस अ-
 भिप्राय करिके भर्तृप्रपंचके अनुसारी कहैहैं ॥

२३९ हिरण्यगर्भतैं अन्य वा अनन्य विद्याका अधिकारी
 है । प्रथमविषैबी मृतकूं वा जीवतेकूं विद्याका अधिकार तु-
 जकरि विवक्षित है । ऐसैं सिद्धांती पूछते हैं ॥

२४० तहां आद्य विकल्पके प्रति आक्षेप करै हैं ॥

२४१ आक्षेपकूं स्पष्ट करनेकूं ताकी (प्राचीन वृत्तिकार-
 की) मुक्तिकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां नाममात्रकः अवशि-
 ष्टकूं विद्याविषै अधिकार है । यह शेष है ॥

२४२ समवनीत प्राणकूं । तिस अर्थविषै श्रुतिकूं कथन
 करैहैं ॥

ध्याय । ३] द्वितीय-आर्त्तभाग-ब्राह्मण ॥ २ ॥ १२२५

पापेनेति ॥ ततो ह जारत्कारव आर्त्त-
भाग उपरराम ॥ १३ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
द्वितीयमूर्त्तभाग-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

जारत्कारव आर्त्तभाग प्रश्नतै उपराम हो-
ताभया ॥ १३ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी-
पिकायां तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमा-
र्त्तभाग-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

कहा है [यातै] उपसंहृत प्राणवालेकूं मनो-
रैर्यैकरिबी यह (श्रवणादिकका अधिकारीप-
ना) उपपादन करनेकूं शक्य नहीं होवैहै ॥
२४४
औ जो कहोः—जीवता हुयाहीं अविद्यामात्र है
अवशिष्ट जिसके अरु भोज्यतै अपावृत्त (विरक्त)

२४३ इतनेकरि उक्त प्रकारके आक्षेपकी सिद्धि कैसें हो-
वैगी ? तहां कहैहैं ॥ इहां उपसंहृत प्राणकूं श्रवणादिकका
अधिकारीपना एतत् (यह) शब्दका अर्थ है ॥

२४४ द्वितीय विकल्पके प्रति सिद्धांती शंका करैहैं ॥ इहां
अपावृत्त विद्याधिकारी है । यह शेष है ॥

निर्णीत अधिकारी है । ऐसैं कल्पना करियेहै ॥

^{२४५} तो सो (भोग्यतैं व्यवर्त्तन) किस निमित्तवाला है । यह कहनेकूं योग्य है ॥ ॥ जब सैंमस्त द्वै-
तकी एकताकरि आत्माकी प्राप्तिरूप निमित्त-
वाला है । ऐसैं कहियेहै । सो पूर्वहीं निराक-
रण किया । कहिये कर्मसहित द्वैतकी एकतारूप
आत्माके दर्शनकरि संपन्न विद्वान् मृत हुया प्र-
लीन प्राणवाला होयके जगत्के आत्मभावकूं
वा हिरण्यगर्भके स्वरूपकूं प्राप्त होवै अथवा अ-
प्रलीन प्राणवाला जीवता हुयाहीं भोज्यतैं व्या-
वृत्त (विरक्त) होयके परमात्माके दर्शनकूं अ-

२४५ जीवते पुरुषकूं भोग्यतैं व्यावर्त्तन सम्यक् बुद्धिविना अशक्य है ? ऐसैं मानिके पूछते हैं ॥

२४६ अप्राप्तविषै काम होवैहै । प्राप्तविषै निवर्त होवैहै । ऐसैं प्रसिद्ध हुये कर्मसमुच्चित अपरविद्याकरि हिरण्यगर्भके प-
दकी प्राप्तिहीं निवृत्तिका कारण है ? इस प्रकारसैं सिद्धांती शंका करैहैं ॥

२४७ अपरविद्याकरि समुच्चित कर्म हिरण्यगर्भके भो-
गका प्रापक है । भोग्यतैं निवृत्तिका साधन नहीं । ऐसैं तृती-
यविषै (प्रथम अध्यायविषै) प्रतिपादन किया । इस रीतिसैं
सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

२४८ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करते हुये विभाग करै हैं ॥

भिमुख होवै । औ उभय (दोई) एक प्रयत्न-
 सैं उपजावने योग्य साधनकरि लभ्य नहीं है ॥ ॥
 जैव हिरण्यगर्भकी प्राप्तिका साधन होवै । तो
 तिसतैं व्यावृत्तिका साधन नहीं होवैगा औ
 जब परमात्माके अभिमुखीकरणरूप भोज्यतैं
 व्यावृत्तिका साधन होवै । तब हिरण्यगर्भकी
 प्राप्तिका साधन नहीं होवैगा ॥ जैतैं जो गति-
 का साधन होवै सो गतिकी निवृत्तिकाबी सा-
 धन नहीं होवैहै ॥ ॥ औ जो कहो मृत होयके
 हिरण्यगर्भकूं पायके तिसके अनंतर प्रलीन प्रा-
 णवाला नामकरि अवशिष्ट [हिरण्यगर्भ] । पर-
 मात्माके ज्ञानविषै अधिकारी होवैहै ? तो ति-

२४९ अब एकहीं समुच्चित कर्म । उभय अर्थवाला क्यूं नहीं होवैगा ? यातैं कहैहैं ॥

२५० उभय अर्थताके अभावकूंहीं प्रतिपादन करैहैं ॥

२५१ समुच्चित कर्म उभय अर्थवाला नहींहै । इस अर्थ-
 विषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

२५२ हिरण्यगर्भ विद्याका अधिकारी है इस पक्षकूं डा-
 लते हैं ॥

२५३ दूषण देते हैं ॥

सतैं अस्मदादिकके अर्थ परमात्माके ज्ञानका उपदेश व्यर्थ होवैगा । तैंतैं “ ताकूं जो जो देवनके मध्य ” इत्यादिरूप श्रुतिकरि ब्रह्मविद्या सर्वके पुरुषार्थ अर्थ उपदेश करियेहै । तैंतैं अत्यंत निरुष्ट अरु शास्त्रतैं बाह्यहीं यह (भर्तृप्रपंचकी) कल्पना है ॥ ॥ अब हम प्रकृतकूं वर्तावतेहैं:—तैंहां किसकरि प्रेरित ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन है ? याकूं निर्धार करनेकी इ-

२५४ ननु महानुभाव अरु हमतैं श्रेष्ठ पुरुषनकूंहीं उपदेशकरी हुयी ब्रह्मविद्या मोक्षके तांई फलती है । हम (मनुष्यन) कूं नहीं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

२५५ औ तेरे मतविषैवी जिसद्वारकरि श्रवणादिककूं करिके विद्याका उदय होवैहै तिस द्वारकरिहीं चिदात्माकूं मुक्तिकी सिद्धिके हुये इस ठिकाने श्रवणादिककरि प्रयोजन है ऐसैं कहनेकूं योग्य है औ द्वार भेदका अनुष्ठाताके विभागके आधीन प्रवृत्तिका किया प्रयोजन जब है तब विद्याके उदयकूं काल्पनिक होनेकरि प्रतीतिके अनुसार व्यवस्थाके संभवतैं वस्तुतैं निर्विशेष चिन्मात्रविषै अविद्या अरु विद्या बंध अरु मुक्ति नहीं है । या अभिप्राय करिके अपर पक्षके निराकरणकूं उपसंहार करिके । श्रुतिके व्याख्यानकूं सिद्धांती प्रसंगविषै प्राप्त करै हैं ॥

२५६ श्रुतिके व्याख्यानरूप कर्तव्यके हुये “जहां” इत्यादि वाक्यकूं आकांक्षापूर्वक अवतार देते हैं ॥

च्छाकी कहैहैः—जहां (जिसकालविषै) इस
 अँसम्यकूदर्शी शिर अरु पाणि आदिकवाले मृत
 पुरुषकी वाक् अग्निके प्रति लय होवैहै । च-
 क्षु आदित्यके प्रति लय होवैहै । ऐसैं सर्वत्र
 संबंध होवैहै ॥ मन चंद्रके प्रति । दश दि-
 शाके प्रति श्रोत्र । पृथिवीके प्रति शरीर ।
 आकाशके प्रति आत्मा ॥ इहां आत्माका
 अधिष्ठान (निवासका स्थान) हृदयाकाश क-
 हियेहै ॥ सो (हृदयाकाशरूप आत्मा) आ-
 काशके प्रति लय होवैहै । औषधिनके प्रति
 लोम लय होवैहैं । वनस्पतिनके प्रति केश
 लय होवैहैं ॥ जलोंविषै लोहित (रुधिर)
 औ रेत (वीर्य) निर्धान (स्थापना) करिये

२५७ तहां पुरुष शब्दकरि विद्वान् कहा अनंतर ताकी
 सन्निधि है ? यह आशंका करिके । वक्ष्यमाण । कर्मकी आश्र-
 यतारूप लिंगकरि सन्निधि बाध्य है । इस अभिप्राय करिके ।
 कहैहैं ॥

२५८ सन्निधिके बाधविषै अन्य लिंगकूं कहैहैं ॥ इहां यह
 अर्थ हैः—ताहीके फेर ग्रहणके योग्य द्रव्यके निधानविषै प्र-
 योगके देखनेतैं इहांवी फेर ग्रहण लोहितादिकका भासता
 है । यातैं प्रसिद्ध संसारीगोचरहीं यह प्रश्न है ॥

है । इहां पुनरादान (फेर ग्रहण)रूप लिंग है ॥

जातैं ^{२५९} सर्वत्र वाक् आदिक शब्दकरि देवता ग्रहण करियेहैं । परंतु करणहीं (केवल करण) अपक्रमण करते नहीं पूर्वहीं तिनके मोक्षतैं ॥ तैंहां (देवता अंशनके उपसंहार हुये) देवताओं-करि अनाश्रित करण न्यैस्त दात्र (रखदियेगा-सकाटनेके शस्त्रविशेष)की उपमावाले हैं औ ^{२६२} विदेह (देहरहित) जो कर्त्ता पुरुष है । सो अस्वतंत्र हुया किसके प्रति आश्रित होवैहै ?

२५९ अविद्वानकी वाक् आदिकके लयके अभावतैं “वाक्-मनविषै दर्शनतैं” इस न्यायतैं औ ताकी इहां श्रुतितैं विद्वानहीं पुरुष विवक्षित है । ताहीकी कलाके विलयकूं श्रुतिविषै प्रासद्ध होनेतैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

२६० वाक् आदिक शब्दनके वाच्य अग्नि आदिकके अंश-नके अपक्रमण हुयेबी करणोंके ता (अपक्रमण)के अभावतैं तिनके अधिष्ठानरूप देहकेबी भावकरि भोगके संभवतैं प्रश्नका अवकाश नहीं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां “तहां” इस शब्दका देवताके अंशनके उपसंहारकूं प्राप्त हुये । यह अर्थ है ॥

२६१ तिनकूं तिन (देवताओं)करि अनधिष्ठितताके हुये अर्थ क्रियाविषै असमर्थपना फल होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

२६२ अधिष्ठाताकरि रहित करणोंकी भोगहेतुताके हुयेबी भोक्ताके आश्रयका प्रश्न कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

ऐसैं कहिये तब कहां यह पुरुष होवैहै ऐसैं
 औ तब किसके प्रति आश्रित पुरुष होवैहै ।
 ऐसैं पूछीयेहै । कहिये जिस आश्रयकूं आश्रय
 करिके फेर कार्य करणके संघातकूं ग्रहण करैहै ।
 जिसकरि ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन जुडताहै ।
 सो क्या है ? यह प्रश्नहै ॥ इहां कहियेहै:—स्व-
 भाव, यदृच्छा, काल, कर्म, दैव, विज्ञानमात्र,
 शून्य, वादीनकरि परिकल्पित हैं ॥ यातैं अ-
 नेक विप्रतिपत्तिनका स्थान होनेतैं ऐसैं जल्प
 न्यायकरि वस्तुका निर्णय नहीं होवैगा ॥ इहां
 जो तूं वस्तुके निर्णयकूं इच्छता हैं । तो हे सो-
 म्य आर्त्तभाग ! हस्तकूं ग्रहणकर । हम दो-
 नूंहीं इस तुजकरि पूछे हुये वस्तुका जो जा-

२६३ प्रश्नकूं विवरण करै हैं ॥

२६४ “हस्तकूं ग्रहणकर” इत्यादि परिहारकूं अवतार देते
 हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मीमांसक लोकायत ज्योतिर्विद वै-
 दिक देवताकांडकेअनुसारी विज्ञानवादी औ माध्यमिक ।
 ऐसे अनेक वादी । परस्परके खंडनमात्रपर्यंत विचाररूप जल्प
 न्यायकरि विवादकूं करैहैं औ इधर “इहां” इस शब्दकरि प्र-
 श्नका कथन है ॥

है । तिसतैं विपरीत कर्मकरि विपरीत होवैहै ।
 पापरूप पापकरि होवैहै ॥ इस रीतिसें या-
 ज्ञवल्क्यकरि प्रश्नोंके निर्णीत हुये याज्ञवल्क्यकूं
 तिसतैं अशक्य प्रकंपवाला होनेतैं । जारत्का-
 रव आर्त्तभाग उपराम होताभया ॥ १३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमार्त्तभाग-

ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अथ हैनं भुज्युर्लाह्यायनिः पप्रच्छ ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपि-
कायास्तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं लाह्यायनि भुज्यु

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया
स्तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

टीकाः—अनंतर या (याज्ञवल्क्य)कूं लाह्या-
यनका पुत्र लाह्यायनि भुज्यु नामक मुनि पू-
छताभयाः—ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन कहा ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपि-
काया स्तृतीयाध्यायगत तृतीय ब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

३६८ ब्राह्मणांतरकूं अवतार देके वृत्तकूं कीर्तन करैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ मद्रेषु चरकाः
पर्यत्रजाम । ते पतञ्जलस्य काप्यस्य

पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहता-
भयाः—मद्र नामक देशोंविषै चरक हुये
हम पर्यटन करतेभये । वे हम पतञ्जल

प्रयोजक सहित जिसतैं मुक्त हुया पुरुष मुक्त
होवैहै वा जिसकरि बद्ध हुया पुरुष संसारकूं
पावताहै । सो मृत्युहै औ तातैं मोक्ष बनवता
है । जातैं मृत्युका मृत्युहै [तातैं] ॥ औ मुक्त-
की कहुंवी गति (गमन) नहीं होवैहै । औ स-
र्वका उत्साह (निवृत्ति) प्रदीपके निर्वाणकीन्यांई
नाममात्र अवशेष है । यह निश्चित है ॥ तहां

२६९ उक्तहीं ताके मृत्युपनैकूं स्पष्ट करै हैं ॥

२७० “अग्नि मृत्यु है” इत्यादि वाक्यविषै उक्त अर्थकूं
स्मरण करावै हैं ॥

२७१ “जहां यह” इत्यादि वाक्यविषै उक्त अर्थकूं अनु-
वाद करै हैं ॥

२७२ “जहां याका” इत्यादि वाक्यविषै निर्णीत अर्थकूं
फेरी कथन करै हैं ॥ इहां पूर्व ब्राह्मणविषै स्थित ग्रंथ सप्तमी-
का अर्थ है औ ताका अवधारित । ऐसैं या पदके साथि सं-
बंध है औ संसारकूं प्राप्तभये पुरुषनके औ मुक्त होनेवाले पु-

गृहानैम । तस्यासीद्दुहिता गन्धर्व्वगृ-
हीता । तमपृच्छाम कोऽसीति । सोऽब्र-
वीत्सुधन्वाऽऽङ्गिरस इति । तं यदा लो-

काप्यके गृहोंके प्रति जातेभये । ताकी गं-
धर्व्वकरि गृहीत दुहिता होतीभयी । ता
(गंधर्व)कूं हम “तूं कौन हैं” ? ऐसैं पू-
छतेभये ॥ सो कहताभयाः—में सुधन्वा
आंगिरस हूं ऐसैं ॥ ताकूं जब लोकनके अं-

(पूर्वब्राह्मणविषै) संसरनेवाले औ मुक्तभये पु-
रुषनके कार्य अरु करणोंके स्वकारणके साथि सं-
सर्गके समान हुये मुक्तनकूं अत्यंतहीं फेर अग्र-
हण होवैहै औ जिसकरि प्रेरित संसरनेवाले पु-
रुषनकूं तो फेरि फेरि ग्रहण होवैहै । सो कर्म
है । ऐसैं विचारपूर्वक निश्चित है औ ताँ (कर्म)के
क्षयभये नामके अवशेषकरि सर्वका उत्सादरूप
रुषनके जे कार्य अरु करण हैं तिनोका ऐसैं वैयधिकरण्य
है । उपादान (ग्रहण) अनुपादान (अग्रहण) ऐसैं दोनूं ठिकाने
कार्य करणोंका इस प्रकार संबंध है ॥

२७३ कर्मके भाव अभावकरि बंध मोक्ष कहे । तहां अभाव-
द्वार कर्मकी मोक्षहेतुताकूं स्पष्ट करै हैं ॥

कानामन्तानपृच्छामाथैनमब्रूम क्व पारि-
रिक्षिता अभवन्निति क्व पारििक्षिता अभ-
वन् ॥ स त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क्व
पारििक्षिता अभवन्निति ॥ १ ॥

तनकूं हम पूछतेभये । अनंतर याकूं कह-
तेभये:-कहां पारििक्षित होतेभये ऐसैं । क-
हां पारििक्षित होतेभये ? हे याज्ञवल्क्य ! सो
तुजकूं पूछता हूं:-कहां पारििक्षित होतेभ-
ये ? ऐसैं ॥ १ ॥

मोक्ष होवैहै औ सौ^{२७४} कर्म पुण्यपाप नामवाला है का-
हेतैं “पुण्यकर्मकरि पुण्य होवैहै औ पापकरि पाप
होवैहै” ऐसैं अवधारित होनेतैं याका किया संसार
है ॥ तैंहां अपुण्यकरि स्वभावसैं दुःखबहुल अरु
नरक तिर्यक् प्रेत आदिक स्थावरजंगमोंविषै फे-
री फेरी जन्मता हुया अरु मरता हुया दुःखकूं
अनुभव करैहै । यह राजमार्गकीन्यांई सर्व लो-

२७४ ताकी भावद्वारा बंधहेतुताकूं प्रकट करै हैं ॥

२७५ पुण्य अरु पाप दोनूंकूंबी संहार फलवान्ताके अविशे-
पतैं पुण्यके फलकी न्यांई पापका फल है ऐसैं इहां कहनेकूं
योग्य है । अन्यथा तिसतैं विरागके अयोगतैं ? यह आशंका

कनकं प्रसिद्ध है औ जो शास्त्रीय (सुखानुभव) है
 “पुण्यकर्मकरि पुण्यहीं होवै है” इस श्रुतिकरि
 इस ब्राह्मणविषै तहांहीं आदर करिये है ॥
 पुण्यहीं कर्म सर्व पुरुषार्थका साधन है । ऐसैं
 सर्व श्रुति स्मृतिनके वाद हैं । मोक्षकोंबी पुरु-
 षार्थरूप होनेतैं तिसकी साध्यता प्राप्त भयी ।
 जितना पुण्यका उत्कर्ष है । तितने
 तितने फलके उत्कर्षकी प्राप्ति होवै है । तातैं
 उत्तम पुण्यके उत्कर्षकरि मोक्ष होवैगा ?
 ऐसी आशंका होवै है । सो निवर्त्त करनेकूं योग्य

करिके । अब आगे कहनेके ग्रंथके कहनेकूं भूमिकाकूं करै हैं ॥
 इहां “तहां” यह सप्तमी पुण्योविषै औ अपुण्योविषै निर्द्धारण
 अर्थ है औ स्वभावसैं दुःख बहुलोविषै यह पद । दोनूं ओरतैं
 संबन्धकूं पावता है ॥

२७६ तव पुण्योका फलवी सर्व लोकविषै प्रसिद्ध होनेतैं
 इहां कहनेकूं योग्य नहीं ? यह आशंका करिके कहै हैं ॥ इहां
 शास्त्रीय सुखानुभव है । यह शेष है औ “इहां” ऐसैं ब्राह्म-
 णका कथन है ॥

२७७ शास्त्रीय कर्म सर्ववी संसाररूप फलवालाहीं है ऐसैं
 कहनेकूं ब्राह्मण है । यातैं उक्त आशंकाका उत्तर होनेकरि ताकूं
 अवतार देते हैं ॥

२७८ मोक्षकी पुण्यसाध्यताकूं प्रकारांतरकरि साधते हैं ॥

है:—ज्ञानसहित प्रकृतकर्मकी इतनी (संसार-
रूप) गति है । काहेतैं कर्मकूं औ ताके फलकूं
व्याकृत नामरूपमय आस्पदवाला होनेतैं ॥ प-

२८१

रंतु अकार्य नित्य अव्याकृतधर्मवाले अनाम
रूपक अरु क्रिया कारक औ फल स्वभावसैं
वर्जित मोक्षविषै कर्मका व्यापार नहीं है औ
जहाँ व्यापार है सो संसारहीं है । ईस अर्थके

२७९. ता शंकाका निवर्तन कैसें होवैगा ? यह आशंका
करिके । कहैहैं ॥

२८०. समुच्चित कर्मबी संसाररूप फलवालाहीं है । तिस
अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

२८१. मोक्षविषैवी स्वर्गआदिककी न्याईं पुरुषार्थपनैके अ-
विशेषतैं कर्मका व्यापार होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥
इहां अकार्यता कहिये उत्पत्तिरहिता । नित्यता कहिये नाश-
शून्यता । अव्याकृतधर्मिता कहिये व्याकृत नामरूपसैं रहितता ॥

२८२. “ अशब्द अस्पर्श ” इत्यादि श्रुतिकूं आश्रय करि-
के । कहैहैं ॥

२८३. “ निष्कल है निष्क्रिय है ” इत्यादि श्रुतिकूं आश्रय
करिके । कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—चतुर्विधक्रियाके फलतैं
विलक्षण मोक्षविषै कर्मका व्यापार नहीं संभवै है ॥

२८४. ननु स्थाणु (शिव) पर्यंत औ प्रजापति पर्यंत सर्व
कर्मके व्यापारतैं प्रजापतिभावरूप मोक्षविषै कैसें ताका व्या-
पार नहीं है ? तहां कहैहैं ॥

२८५. कर्मफलकूं सर्व संसाररूपताहीं काहेतैं सिद्ध हो-
वैहै ? तहां कहैहैं ॥

दिखावनेअर्थ यह ब्राह्मण आरंभ करियेहै ॥ ॥

२८६
औ जो कितनैक वादीनकरि कहियेहै:—विद्या-
सहित निष्कामकर्म विष अरु दधि आदिककी
न्यांई कार्यांतरकूं आरंभ करैहै ऐसैं? सो बनै
२८७
नहीं:—काहेतैं मोक्षकूं अनारभ्य होनेतैं । बंधन
नाशहीं प्रसिद्ध मोक्ष है । कार्यभूत नहीं औ बं-
धन अविद्या है । ऐसैं हम कहतेहैं । औ अ-
विद्याका नाश कर्मकरि वनता नहीं । काहेतैं

२८६ विद्यासहित कर्मवी संसाररूप फलवाला है वि-
द्याहीं मोक्ष अर्थ है । ऐसे स्वपक्षकी शुद्धिअर्थ विचार करते
हुये पूर्वपक्ष करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं केवल विष औ
दधि आदिक । मरण औ ज्वर आदिकका कारण है । तोवी मं-
त्र अरु शर्करा आदिककरि युक्त हुया जीवन अरु पुष्टि आ-
दिककूं आरंभ करै है । तैसैं स्वतः बंधरूप फलवालावी कर्म।
फलाभिलाषा विना अनुष्ठान किया अरु विद्याकरि समुच्चित
हुया मोक्षके अर्थ समर्थ है ॥

२८७ मुक्तिकी साध्यताके अंगीकार हुये समुच्चित कर्म-
करि साध्यता होवै । परंतु ताकी साध्यता नहीं है काहेतैं ज्ञान-
नमात्रकरि नियमित होनेतैं । ऐसैं उत्तरकूं कहैहैं ॥

२८८ हेतुकूंहीं साधते हैं ॥

२८९ सो बंधन क्या है ? सो कहैहैं ॥

२९० ननु अविद्यानाशवी कर्मकरि आरभ्य होवैगा ? ऐसैं
जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अनुमानरूप

२९१
 कर्मके सामर्थ्यकूं दृष्टविषयवाला होनेतैं ॥ जातैं
 उत्पत्ति प्राप्ति विकार औ संस्कार । कर्मके सामर्थ्य-
 का विषय है ॥ उत्पादन करनेकूं प्राप्त करनेकूं वि-
 कार करनेकूं औ संस्कार करनेकूं कर्मका सामर्थ्य
 है । यातैं व्यतिरिक्त विषय कर्मके सामर्थ्यका नहीं
 है । काहेतैं लोकविषै अप्रसिद्ध होनेतैं औ मो-^{२९४}
 क्ष जो है सो इन पदार्थनके मध्य अन्यतम नहीं
 किंतु अविद्यामात्रकरि व्यवहित है । ऐसैं हम क-

अर्थ है:—मोक्ष । कर्म साध्य नहीं है । अविद्याका नाशरूप हो-
 नेतैं । रज्जु अविद्याके नाशकी न्याई ॥

२९१ तहांहीं अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां कर्मसाध्य मुक्ति
 नहीं है । यह शेष है ॥

२९२ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

२९३ उक्तहीं कर्मके सामर्थ्यके विषयरूप अर्थकूं अन्वय
 अरु व्यतिरेकरि साधते हैं ॥

२९४ ननु उत्पत्ति आदिकनके मध्य अन्यतम होनेतैं मो-
 क्षकूंबी कर्मके सामर्थ्यकी विषयता होवैगी ? इस प्रकार जो
 कहै । सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां नित्य होनेतैं आत्मा
 होनेतैं कूटस्थ होनेतैं नित्यशुद्ध होनेतैं औ निर्गुण होनेतैं
 यह अर्थ है ॥

२९५ ननु आत्मभूत उक्त प्रकारका जब मोक्ष है । तब
 सर्वकूं प्रथमतैं क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

हतेहैं ॥ ॥ तहां पूर्वपक्षी कहैहै:-^{३०६}वौंढं (सत्य है) ! केवल^{३०७}हीं कर्मका ऐसा स्वभाव होहू। विद्यासंयुक्त अरु निष्काम कर्मका तो यातैं अन्यथा स्वभाव होवैहै ॥ जातैं अन्यशक्तिमान् होनेकरि अज्ञातवी विष दधिआदिक पदार्थनका विद्या मंत्र अरु शर्कराआदिककरि संयुक्त भये तिनका अन्य (कार्यांतर) विषै सामर्थ्य है ॥ तै^{३००}सैं कर्मकाबी होहू ? इसप्रकार जो प्रतिवादी क^{३०१}है । सो बनै नहीं:-काहेतैं प्रमाणके अभावतैं । जातैं तहां कर्मके उक्त विषयसैं व्यतिरेककरि विषयांतरविषै सामर्थ्यके सद्भावविषै प्रत्यक्ष प्र-

२९६ उक्त कर्मके सामर्थ्यकूं पूर्ववादी अंगीकार करैहै ॥

२९७ अंगीकारकूंहीं स्पष्ट करै है ॥

२९८ ऐसैं स्वभावतैं उत्पादन आदिकविषै कर्मकी समर्थता जब है तब कौन विप्रतिपत्ति है ? तहां कहैहैं ॥ इहां अन्यथास्वभाव । याका चतुर्विध क्रियाके फलतैं विलक्षण मोक्षविषैवी समर्थता है । यह अर्थ है ॥

२९९ उत्पत्ति आदिकविषै समर्थ विद्यासंयुक्त कर्मका तिसतैं विलक्षण मोक्षविषैवी सामर्थ्य है । इस अर्थविषै प्रतिवादी दृष्टान्तकूं कहैहै ॥

३०० उक्त दृष्टान्तके वशतैं संसाररूप फलवाले केवल कर्मकूंवी विद्याके संयोगतैं मुक्तिरूप फलवान्तायी होवैगी ॥

३०१ सिद्धांती समाधान करैहैं ॥

माण नहीं है। अनुमान नहीं है। उपमान नहीं है। अर्थापत्ति नहीं है। शब्द नहीं है ॥ ॥ ननु फलांतरके अभाव हुये चोदनाकी अनुपपत्तिरूप प्रमाण है इति ॥ ॥ जाँतैं नित्यकर्मोंका फल विश्वजित् यागके न्यायकरि नहीं कल्पना करियेहै औ श्रुतैं

३०२ अतीन्द्रिय होनेतैं कर्मकी मोक्षसाधनताविषै प्रत्यक्ष आदिकके असंभव हुयेबी अर्थापत्ति है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—नित्यकर्मोंविषै मोक्षतैं अतिरिक्त श्रुतफलके अभाव होते तिसविषै उपलभ्यमान चोदनाकी मोक्षफलवान्ताविना अनुपपत्ति जो है सो कर्मोंकी मोक्षसाधनताविषै प्रमाण है ॥

३०३ ननु “विश्वजित् यागकरि यजन करो” इस ठिकाने यागकी कर्तव्यतारूप नियोग जानिये है । ताकूं नियोज्यकी अपेक्षावाला होनेतैं स्वर्ग होवैगा । सर्वके प्रति अविशिष्ट होनेतैं । इस न्यायकरि स्वर्गकाम नियोज्य अंगीकार किया है । तैसैं नित्यकर्मोंविषैबी नियोज्यका विशेषण स्वर्ग होवैगा ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“जीवता हुया होमकूं करै” ऐसैं जीवनविशिष्ट नियोज्यके लाभतैं नित्यकर्मोंविषै स्वर्ग नियोज्यका विशेषण नहीं होवैगा ॥

३०४ ननु जीवविशिष्ट पुरुषबी फलके अभावकरि नियोज्य होवैहै । तैसैं हुये “कर्मकरि पितृलोक होवैहै” ऐसैं सुन्या जो फल सो तिनोविषै कल्पना करियेगा ? यह कथन बने नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—नित्यविधिके प्रकरणविषै पितृलोकके वाक्यके अश्रवणतैं ॥

फलवी नहीं है औ वे (नित्यकर्म) चोदनाके विषय करियेहैं ॥ परिशेषतें^{३०६} तिनका फल मोक्ष है ऐसैं जानियेहै । जातैं^{३०७} अन्यथा पुरुष नहीं प्रवृत्त होवेंगे ॥ ॥ नैनु^{३०८} विश्वजित्का न्यायहीं आया । मोक्षरूप फलकूं कल्पित होनेतैं औ मोक्षके वा अन्य फलके अकल्पित (कल्पना नहीं किये) हुये पुरुष नहीं प्रवृत्त होवेंगे । यातैं श्रुतार्थापत्तिकरि कहिये श्रुत विधिके प्रवर्तककी अनुपपत्ति-

३०५ तव फलके अभावतें चोदनाहीं नहीं होवैगी ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं । इस प्रकार कहैहैं ॥

३०६ तथापि फलांतर कल्पना करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके । कल्पकके अभावतें ऐसैं बनै नहीं इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

३०७ मुक्तिका जो कल्पक है । सोई फलांतरकावी कल्पक क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके । ताकूं निरतिशय फलकूं विषय करनेवाला होनेतैं मुक्तिका कल्पकहीं है इस अभिप्रायकरिके कहैहैं ॥

३०८ जब अनुपपत्तिकरि नियोज्यके लाभ अर्थ नित्यकर्मोंविषै फल कल्पना करियेहै तब विश्वजित् न्याय कैसैं नहीं प्राप्त होवैगा । इस रीतिसैं सिद्धांती प्रत्युत्तर कहैहैं ॥

३०९ उक्त अर्थकूंहीं विवरण करै हैं ॥ इहां श्रुतार्थापत्तिकरि याका श्रुतविधिके प्रवर्तककी अनुपपत्तिकरि । यह अर्थ है ॥

करि मोक्षरूप फल कल्पना करिहेहै । जैसे विश्वजित् यागविषै है । तैसें ॥ ॥ कहिये [ननु]^{३१०} ऐसें हुये विश्वजित् न्याय नहीं होवैहै । यह कैसें कहियेहै औ फल^{३११} कल्पना करियेहै अरु विश्वजित् न्याय नहीं होवैहै यह विरुद्ध तेरेकरि कैसें कहियेहै ॥ ॥ जो कहै । मोक्ष फलहीं^{३१२} नहीं होवैहै ? सो बनै नहीं:—काहेतैं प्रतिज्ञाके त्यागतैं । जातैं कर्म^{३१३} जो है सो विष अरु दधि आदिककीन्यांई कार्यातरकूं आरंभ करैहै । यह तेरेकरि प्रतिज्ञात है । सो जब मोक्ष होवै तब कर्मका कार्य फलहीं नहीं होवैहै सो प्रतिज्ञा नष्ट होवैगी औ कर्मकी कार्यताके हुये मो-

३१० विश्वजित् यागकी न्यांई नित्यकर्मोंविषै मोक्षरूप फलके कल्प्यमान हुये फलितकूं कहैहैं ॥

३११ कैसें । इस प्रकारसें उक्त अनुपपत्तिकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

३१२ फल कल्पनाविषै विश्वजित् न्याय अवतरताहै मोक्षतो स्वरूपकी स्थितिरूप होनेकरि अनुत्पाद्य होनेतैं फलहीं नहीं होवैहैं ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३१३ निग्रहकूं उद्भव करते हुये सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

३१४ प्रतिज्ञाकी हानिकूं प्रकट करै हैं ॥

३१५ कर्मकी कार्यता मुक्तिकूं अंगीकार करिके कहा सोई अयुक्त है । ऐसें कहैहैं ॥

क्षका स्वर्गादि फलोंतैं विशेष वक्तव्य है ॥ औ ^{३१६} औ जब कर्मका कार्य नहीं होवैहै ? तब नित्यकर्मोंका फल मोक्ष है । इस तेरी वचन व्यक्तिका कौन अर्थ है ॥ यह कहनेकूं योग्य है औ कार्य अरु फल शब्दके भेदमात्रकरि विशेष कल्पना करनेकूं शक्य है ॥ औ ^{३१७} अंफलरूप मोक्ष नित्यकर्मोंकरि करियेहै । औ सो ^{३१८} नित्यकर्मोंका फल है । कार्य नहीं । ऐसा यह अर्थ । विरुद्ध (व्याघातदोषयुक्त) कहियेहै । जैसे अग्नि शीत है । तैसें इति ॥ ॥ ^{३१९} नैनु विज्ञानकीन्याई ?

३१६ फलरूपताके हुयेवी कर्मकी कार्यता मुक्तिकूं नहीं है । ऐसें उक्त दोषकूं परिहार करनेकूं प्रश्न करैहैं ॥

३१७ प्रतिज्ञाके विरोधकरि सन्मुख पूछते हैं ॥

३१८ फलरूपताकूं अंगीकार करिके कार्यरूपताके अनंगीकार किये कैसें व्याघात होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

३१९ विशेष अर्थगत ऐसें दोष फलरूपताकूं अंगीकार करिके कार्यरूपताके अनंगीकारविषै व्याघातकूं कहिके विपरीतताविषैवी ताकूं प्रतिपादन करैहैं ॥

३२० पहिले व्याघातकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

३२१ दृष्टांतकरि व्याघातकूं परिहार करता हुया पूर्ववादी आशंका करैहै ॥

ऐसैं जो कहै कहिये जैसेँ^{३२२} तुह्यारे मतविषै ज्ञान-
का कार्य मोक्ष ज्ञानकरि अक्रियमाण हुयाबी
कहियेहै । तैसेँ हमारे मतविषै मोक्षकूं कर्मकी
कार्यता है ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै ।
सो बनै नहींः—काहेतैं ज्ञानकूं अज्ञानका निव-
र्त्तक होनेतैं । ज्ञानकूं अज्ञानरूप व्यवधानका
निवर्त्तक होनेतैं मोक्ष ज्ञानका कार्य है । ऐसैं उ-
पचार करियेहै ।^{३२३} परंतु कर्मकरि निवर्त्त करने
योग्य अज्ञान नहीं है औ अज्ञानसेँ व्यतिरेक
करि मोक्षका अन्य व्यवधान (आच्छादक) क-
ल्पना करनेकूं शक्य नहीं है । काहेतैं मोक्षकूं नि-

३२२ ताहीकूं स्पष्ट करैहै ॥

३२३ अब सिद्धांती दृष्टांतकूं खंडन करैहैं ॥ इहां यह
अर्थ हैः—ज्ञानकूं मोक्षके व्यवधानरूप अज्ञानका निवर्त्तक
होनेतैं मोक्ष जो है सो तिसकरि अक्रियमाण हुयाबी ताका
कार्य है इस व्यपदेशका भागी होवैहै ॥

३२४ ताहींकूं स्पष्ट करैहैं ॥

३२५ दार्ष्टान्तिककूं खंडन करैहैं ॥ इहां जो कर्मकरि नि-
वर्त्त होवै सो मोक्षका अन्यव्यवधान कल्पना करनेकूं तो श-
क्य नहीं है । ऐसैं संबंध है ॥

३२६ ननु व्यवधानके ध्वंस हुये कर्मके प्रवेश हुयेबी मु-

त्य होनेतैं औ साधकके स्वरूपसैं अभिन्न होने-
 तैं । जो कर्मकरि निवर्त्त करिये । सो नहीं है ॥ ॥
 नैनुं नित्यकर्म अज्ञानकूंहीं निवर्त्त करैहै ? इस
 प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं । का-
 हेतैं कर्मकूं ज्ञानतैं विलक्षण होनेतैं । अनभिव्य-
 क्तिरूप अज्ञानहै । सो अभिव्यक्तिरूप ज्ञानसैं वि-
 रुद्ध होवैहै । कर्म तो अज्ञानसैं विरुद्ध नहीं होवैहै ।
 तिस हेतुकरि ज्ञानतैं विलक्षण कर्महै ॥ जैवं ज्ञाना-
 भाव । वा जब संशयज्ञान । वा जब विपरीतज्ञान
 अज्ञानहै ऐसैं कहियेहै । तव सर्वहीं सो ज्ञानकरिहीं

क्तिविषैहीं ताका प्रवेश होवैगा ? इस प्रकार जो प्रतिवादी
 कहै । सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

३२७ नित्य कर्मकरि निवर्त्त करने योग्य अन्य व्यवधान
 मति होहू । अज्ञानहीं तिसकरि निवर्त्त करने योग्य होवैगा ।
 तिस प्रकार हुये मोक्षकूं कर्मकी कार्यता उपचार करनेकूं श-
 क्य है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३२८ कर्मकूं ज्ञानतैं विलक्षण होनेतैं अज्ञानकी निवर्त्त-
 कता नहीं है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

३२९ विलक्षणताकूंहीं प्रगट करैहैं ॥

३३० इसतैंबी ज्ञानकरि निवर्त्त होने योग्यहीं अज्ञान है ।
 ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अन्यतम कहिये नित्य आदिक व्यस्तरूप
 वा समस्तरूप श्रौत औ सार्त्तकरि यह अर्थ है औ कर्म अरु
 अज्ञानका अविरोध हेतुका अर्थ है ॥

निवर्त्त होवैहै। कर्मकरि औ अन्यतमकरिबी तो नहीं। काहेतैं विरोधके अभावतैं ॥ ॥ औ कर्मोंकूं अज्ञानकी निवर्त्तकता अदृष्टरूप कल्पना करनेकूं योग्य है ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै।
^{३३१}
 सो बनै नहीं:—काहेतैं ज्ञानकरि अज्ञानकी निवृत्तिके प्रतीयमान हुये अदृष्टरूप निवृत्तिके कल्पनाके असंभवतैं ॥ जैसें खांडनेकरि व्रीहिनकी तुषनिवृत्तिके प्रतीयमान हुये अग्नि होत्रादि नित्यकर्मका कार्य होवैहै। अदृष्टरूप तुषनिवृत्ति नहीं कल्पना करियेहै ॥ तैसें अज्ञानकी निवृत्तिबी नित्यकर्मकी कार्यरूप नहीं कल्पना करियेहै औ ज्ञानसैं कर्मोंका बहुत विरुद्धपना हम कहते हैं ॥
^{३३२}
 औ जो कर्मोंसैं अविरुद्ध ज्ञान है। सोई लोक

३३१ कर्मकूं अज्ञानकी निवर्त्तकता जो है सो अन्वय अरु व्यतिरेककरि सिद्ध नहीं। किंतु अदृष्टरूपहीं कल्पना करनेकूं योग्य है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३३२ दृष्टके होते अदृष्टकी कल्पना युक्त नहीं है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहै ॥

३३३ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि बुद्धिविषै आरोप करैहै ॥

३३४ ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होहू किंतु कर्मसमुच्चित ज्ञानतैं होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

३३५ ननु कर्मोंके साथि अविरुद्धबी हिरण्यगर्भ आदि-

प्राप्तिना निमित्त है ऐसैं कहा । “विद्याकरि देव लोक होवैहै” ॥ ॥ किंवां श्रुत नित्यकर्मोंके कल्पना करने योग्य फलविषै अन्य कारणवी है । जो कर्मोंसैं विरुद्ध होवैहै औ द्रव्य गुण अरु कर्मोंका कार्यहीं नहीं होवैहै । सो क्या कल्पना करिये । जिसविषै कर्मका सामर्थ्यहीं देख्या नहीं ॥ ॥ किंवां जिसविषै सामर्थ्य देख्या है । तिसविषै औ जो कर्मोंका अविरुद्ध फल है सो । कल्पना करने योग्य है । यातैं पुरुष प्रवृत्तिके ज-

कनका विज्ञान है । तैसैं हुये कर्मसमुच्चित ज्ञान । अज्ञानका ध्वंसी होवैगा ? तहां नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

३३६ समुच्चित औ असमुच्चित नित्यकर्मोंका । स्वरूप स्थितिरूप मोक्षविषै वा ताके प्रतिबंधक अज्ञानके नाशविषै दृष्ट सामर्थ्य । कल्पना करनेकूं योग्य नहीं है ऐसैं कहा । अब तिस कल्पनाकूं अंगीकार करिकेवी दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—कर्मकूं मोक्षका सामर्थ्य है । यह उक्त कारणतैं नहीं होवैहै किंतु अन्यवी कारण तहां है ॥

३३७ ताहीकूं दिखावनेकूं विचार करैहैं ॥

३३८ विरोधकूं दूरी करैहैं ॥

३३९ कार्यताके अभावकूं प्रतिपादन करैहैं ॥

३४० पक्षांतरकूं कहैहैं ॥

३४१ सामर्थ्यके विषयकूं स्पष्ट करैहैं ॥

३४२ इहां किस प्रकार निर्णय है ? तहां कहैहैं ॥ इहां

नन अर्थ अवश्य जब कर्मका फल कल्पना करनेकूं योग्य है । तब कर्मसें अविरुद्ध विषयविषै-हीं श्रुतार्थापत्तिकूं क्षीण होनेतैं नित्य जो मोक्ष सो फलरूप कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है वा ताके व्यवधानरूप अज्ञानकी निवृत्ति [फलरूप कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है] काहेतैं अविरुद्ध होनेतैं औ अदृष्टरूप सामर्थ्यका विषय होनेतैं ॥

३४३

परिशेष न्यायतैं मोक्षहीं कल्पना करनेकूं योग्य

कल्पना करने योग्य फल है । ऐसैं संबंध है औ उत्पत्ति आदिकनके मध्य अन्यतमहीं कर्मके साथि अविरोद्ध विषय है । तहांहीं नित्यकर्मकी चोदनाके असंभवतैं उपशांतपना है । नित्यकर्मका फल होनेकरि मोक्ष वा ताके व्यवधानरूप अज्ञानकी निवृत्ति कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है । कर्म अरु अज्ञानके विरोधके अभावतैं औ जिस उत्पत्ति आदिकविषै सामर्थ्य देख्या है कर्मकूं तिस विषयवाला होनेतैं । तिसतैं विलक्षण मोक्षविषै कर्मका व्यापार नहीं है । तिस प्रकार हुये नित्यकर्मकी विधिके वशतैं पुरुषकी प्रवृत्तिके संपादन अर्थ जब फल कल्पना करनेकूं होग्य होवै तब ताकी उत्पत्ति आदिकनके मध्य अन्यतमतैंहीं सो अविरोद्ध कल्पना करनेकूं योग्य होवै । यह अर्थ है ॥ इहां इति शब्द जो है सो श्रुतार्थापत्तिके परिहारकी समाप्ति अर्थ है ॥

३४३ ननु मोक्षहीं नित्यकर्मोंका फल होनेकरि कल्पना करनेकूं योग्य है पारिशेष्य न्यायतैं ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

है ? ऐसैं जो कहै कहिये जातैं सर्व कर्मोंका सर्व
 फल है औ इतर कर्मोंके फलतैं व्यतिरेककरि अ-
 न्य फल कल्पना योग्य नहीं है औ परिशिष्ट मो-
 क्ष है औ सो वेदवेत्तानकूं इष्ट फल है । तातैं
 सोई कल्पना करनेकूं योग्य है ? इसप्रकार जो
 प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं:—काहेतैं कर्मफ-
 लकी व्यक्तिनकूं अनंत होनेतैं पारिशेष न्यायके
 असंभवतैं । जातैं पुरुषकी इच्छाके विषयरूप

३४४ पारिशेष्य न्यायकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥ इहां
 सर्व कहिये स्वर्ग पशु पुत्रादि ॥

३४५ तथापि मोक्षतैं अन्यहीं नित्यकर्मका फल क्यूं न-
 हीं होवैगा ? तहां प्रतिवादी कहैहै ॥

३४६ मोक्षकेबी इतर कर्मके फलविषै प्रवेशकूं आशंका
 करिके प्रतिवादी कहैहै ॥

३४७ ताकी फलरूपताहीं कैसें सिद्धभयी ? तहां प्रति-
 वादी कहैहै ॥

३४८ परिशेषतैं जो कहा । ताके अर्थकूं प्रतिवादी निगमन
 करैहै ॥

३४९ अब सिद्धांती । पारिशेष्यकी असिद्धिकरि दूषण दे-
 ते हैं ॥

३५० कर्मफलकी व्यक्तिनकी अनंतता कही । ताकूं स्प-
 ष्ट करैहैं ॥

कर्मके फलोंका ^{३५१}वाँ तिनोंके साधनोंका इतने-
पना प्रसिद्ध किसीबी असर्वज्ञकरि निश्चित न-
हीं है। औ पुरुषनकी इच्छाओंकूं ^३अनियमित
देशकालरूप निमित्तवालियां होनेतैं औ पुरुष-
की इच्छाके विषयरूप साधनोंकूं ^{३५१}पुरुषके इष्टफ-
लके कियेहोनेतैं। ^{३५४}प्रतिप्राणीकी चेष्टाकी विचि-
त्रतातैं फलोंकी औ तिनके साधनोंकी अनंतता-
की सिद्धि है औ तिनेकी अनंततातैं पुरुषनक-
रि तिनका एतावान्पना जाननेकूं अशक्य है
औ साधन अरु फलोंके एतावान्पनेके अज्ञात

३५१ फलकी न्याईं फलके साधनोंकी औ फलविषयक
इच्छाओंकी अनंतताकूं कथन करैहैं ॥

३५२ तिनकी अनंतताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३५३ इच्छा आदिकनकी अनंतताविषै अन्य हेतुकूं कहै-
हैं ॥ इहां एतावान्पना प्रसिद्ध नहीं है। ऐसैं दोनूं ओर
संबंध है औ पुरुषकूं इष्ट फल। शोभनाध्यासका विषयभू-
त है। काहेतैं तहां विषयी पुरुषनकूं शोभनाध्यासकरि प्रव-
र्त्त होनेतैं। यह हेतुका अर्थ है ॥

३५४ इच्छा आदिकनकी अनंतताकूं प्राणीनके भेदनविषै
दिखायके तिनकी अनंतताकूं एक एकबी प्राणीविषै दिखावै हैं ॥

३५५ इच्छाआदिककी अनंतताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

३५६ साधन आदिकनविषै एतावान्पनेके अज्ञानके हु-

हुये मोक्षके परिशेषकी सिद्धि कैसें होवैगी इ-
ति ॥ ॥ ^{३५७}ननु कर्मफलोंकी जातिका पारिशे-
ष्य होवैगा ? ऐसें जो कहै । कहिये ईच्छाकेवि-
षय औ तिनके साधनोंकी अनंतताके हुयेबी
कर्मफलका जातिपना नाम सर्वकूं तुल्य है ।
मोक्ष^{३५८}तो अकर्मका फल होनेतें परिशिष्ट होवैगा ।
ता^{३५९}तें परिशेषतें सोई कल्पना करनेकूं युक्त है ?
इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो ^{३६०}बनै नहीं
काहेतें ता (मोक्ष)कीबी नित्यकर्मकीफलरूपताके
अंगीकार हुये कर्मफलके सजातीयताके संभ-
वतें परिशेषकी अनुपपत्ति है ॥ ता^{३६१}तें अन्यथाबी

येबी क्या होवैहै ? सो कहैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो
पारिशेष्यके असंभवकी समाप्ति अर्थ है ॥

३५७ प्रकारांतरकरि पारिशेष्यकेताई प्रतिवादी शंका
करैहै ॥

३५८ तिसीहीं शंकाकूं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥

३५९ तथापि मोक्षका परिशिष्टपना कैसें है ? सो कहैहै ॥

३६० परिशेषके फलकूं कहैहै ॥

३६१ अब सिद्धांती शंकाके विषय किये परिशेषकूं दू-
पण देते हैं ॥

३६२ अर्थापत्ति अरु परिशेषकूं खंडन करिके अब अर्था-
पत्तिके खंडनकूं प्रपंचन करनेकूं प्रसंगविषै प्राप्त कहैहैं ॥

उपपत्ति है । तातैं श्रुतार्थापत्ति क्षीणभयी औ^{३६३}
 उत्पत्ति प्राप्ति विकार अरु संस्कार । इनके मध्य
 अन्यतमबी नित्यकर्मोंका फल संभवैहै । यातैं
 श्रुतार्थापत्ति क्षीणभयी ॥ ॥ ननु^{३६४} च्यारिनके म-
 द्य अन्यतमहीं मोक्ष होवैगा ? ऐसैं जो प्रति-
 वादी कहै । सो बनै नहीं । काहेतैं मोक्ष प्रथम ।
 अनुत्पाद्य है । नित्य होनेतैं । याहीतैं अविकार्य
 है औ याहीतैं अरु असाधन^{३६५} द्रव्यरूप होनेतैं अ-
 संस्कार्य है । जातैं साधनात्मक द्रव्य संस्कार-
 युक्त करियेहै । जैसे पात्र अरु घृतादिकं । प्रो-
 क्षणादिकरि संस्कारयुक्त करियेहै औ तैसें^{३६६} मो-

३६३ अर्थापत्ति प्रमाणकूं प्रगट करैहैं ॥

३६४ नित्यकर्मोंकूं उत्पत्ति आदिक फलवान्ताके हुयेबी
 मोक्षकूं तिनकी फलरूपता सिद्ध होवैहै ? इस प्रकार प्रति-
 वादी शंका करैहै ॥

३६५ तिनविषै मोक्षकी उत्पाद्यताकूं सिद्धांती दूषण दे-
 तेहैं ॥ इहां दौनूं टिकाने अतः (यातैं) शब्द जो है । सो नि-
 त्यताका स्मारक है ॥

३६६ मोक्षकी असंस्कार्यताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

३६७ ताहीकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण करैहैं ॥

३६८ इसतैंबी मोक्षकी असंस्कार्यता है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां
 यह अर्थ है:—जैसें यूप (यज्ञका खंभ) । तक्षण (तक्षाके श-
 खकरि बारीक करना) अष्टास्त्रीकरण (अष्ट आकृतिवाला क-

क्ष संस्क्रियमाण नहीं वा यूप आदिककीन्यांई संस्कारकरि निर्वाह करने योग्य नहीं है ॥ ॥

^{३६९} परिशेषतें आप्य होवैगा ? सो आप्यबी नहीं है।

काहेतें आत्माका स्वभावरूप होनेतें औ एकरूप होनेतें ॥ ॥ ननु ^{३७०} इतर कर्मोंकरि विलक्षण

होनेतें नित्यकर्मोंकूं तिनोंके फलकरिवी विलक्षण होना योग्य है ? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै ।

^{३७१} सो बनै नहीं:—काहेतें कर्मत्वरूप समान लक्षणके होनेतें समानलक्षणवाला फल काहेतें नहीं होवैहै ॥ ॥ ननु इतर कर्मोंके फलोंसैं निमित्तकी ^{३७२} विलक्षणतातें [नित्यकर्मोंके फलकी विल-

रना) औ अभ्यंकन (रेखाओंकरि चित्रित करना) इत्यादिकरि संस्कारयुक्त करियेहै औ जैसे आहवनीय (हवनका अग्नि) । संस्कारकरि उत्पादन करियेहै । तैसैं मोक्ष नहीं है काहेतें नित्यशुद्ध होनेतें औ निर्गुणरूप होनेतें ॥

३६९ पक्षांतरकूं अनुवाद करिके दूषण देते हैं ॥ इहां एकत्व कहिये पूर्णत्व ॥

३७० ननु साधनकी विलक्षणता जो है सो फलकी विलक्षणताकूं कल्पती है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३७१ अब सिद्धांती । हेतु (साधन) की विलक्षणताकी असिद्धिके हुये कल्पकके अभावतें फलकी विलक्षणताकी असिद्धि है । इस रीतिसैं दूषण देते हैं ॥

३७२ निमित्तकरि किये हेतुकी विलक्षणताके वशतें फ-

क्षणताकी सिद्धि है] ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो ^{३७३}बनै नहीं:—काहेतैं क्षामवती आदि-
ककरि समान होनेतैं ॥ ^{३७४}जैसेँ प्रसिद्ध ग्रहदाहा-

लके विलक्षणताकी सिद्धि है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३७३ निमित्तका विलक्षणपना फलके विलक्षणपनैका अनिमित्त है । इस रीतिसैँ सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

३७४ ताहीकूं प्रपंचन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
“आहिताग्नि हुये जिस पुरुषका अग्नि गृहनकूं जलावै । क्षामवाले अग्निके अर्थ अष्टाकपाल (आठ कपालोंविषै पकाये) पुरोडाशकूं निर्वपन करै ” इस ठिकाने “जलावै ” ऐसैँ प्रसिद्धिरूप अर्थवाले यत् शब्दकरि युक्त विधिके विभागकरि गृहदाह नामक निमित्तके स्मरणकरि क्षामवाले अग्निके अर्थ पुरोडाशकूं निर्वपन करै । इत्यादिकरि क्षामवती इष्टि विधान करियेहै ॥ औ “जाका उभयहवि आर्त्तिकूं दूरी करै । सो इंद्रसंवंधी पंचशरावके मोदनकूं निर्वपन करै ” इस ठिकाने “दूरी करै” ऐसैँ विधिके विभागकरि निर्वपन करै । ऐसैँ विधीयमान निमित्तरूप हवि आर्त्तिकूं । अनुवाद करिके निर्वाप विधान करियेहै औ “भिन्नविषै होमता है स्कन्न (गलित)विषै होमता है औ जाके दो पुरोडाश क्षीण होवैहैं तिस यज्ञकूं वरुण देवता ग्रहण करैहै । जब सो हवि स्थित होवै तब तिसीहीं हविकूं निर्वपन करै । यज्ञहीं यज्ञका प्रायश्चित्त है ” इस रीतिसैँ भेदन आदिक निमित्तवाला प्रायश्चित्त कहा है औ सो मुक्तिरूप फलवाला नहीं

दिक निमित्तके हुये क्षामवती आदिक इष्टि है ॥
 जैसे “ भिन्नके हुये होमताहै स्कन्नके हुये हो-
 मताहै ” इत्यादि स्थलविषै नैमित्तिक कर्मोंके
 विषै मोक्षरूप फल कल्पना नहीं करियेहै । का-
 हेतै तिन (क्षामवतीआदिकन)सँ नैमित्तिक-
 ताकरि [नित्यकर्मोंके] अविशेषतै औ जीवना-
 दि निमित्तविषै श्रवणतै ॥ ३७७ ॥ ऐसँ नित्यकर्मोंका-
 बी मोक्ष फल नहीं है ॥ औ आलोककी सर्वकूं
 रूपदर्शनकी साधनताके हुये उलूक आदिक
 आलोककरि रूपकूं नहीं देखतेहैं । यातै उलूक
 आदिकनके दो चक्षुनकी इतर लोकके चक्षुन-
 करि विलक्षणतातै रसादि विषयता नहीं कल्प-
 है ॥ तैसँ निमित्तके भेदहुयेवी नित्यकर्म मुक्तिरूप फलवा-
 ला नहीं है ॥

३७५ नित्यकर्मनकूं क्षामवती आदिककी तुल्यता कैसेँ
 प्राप्तभयी ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां तिनोकरि कहि-
 ये क्षामवती आदिकनकरि औ अविशेषविषै हेतु नैमित्तिक-
 ताकरि । यह है ॥

३७६ सोई कैसेँ है ? इस प्रकार जो प्रतिज्ञादी कहै । तहां
 कहैहैं ॥

३७७ दार्ष्टान्तिककूं स्पष्ट करैहैं ॥

३७८ नित्यकर्म अन्यकर्मतै विलक्षण हुयावी मोक्षरूप फ-
 लवाला नहीं है । इस अर्थविषै दृष्टान्तकूं कहैहैं ॥

ना करियेहै । काहेतैं रँसादि विषयविषै सामर्थ्यकूं अदृष्ट होनेतैं । अत्यंत दूरबी जायके जिस विषयविषै सामर्थ्य देख्या है तहांहीं कोईकविशेष (दूर सूक्ष्मादि अतिशय) कल्पना करनेकूं योग्य है ॥ ॥ जो पूर्व कहाथाकिः—विद्या मंत्र अरु शर्करा आदिककरि संयुक्त विष दधिआदिककी न्यांई नित्यकर्म कार्यांतरकूं आरंभ करतेहैं ऐसैं । सो विशिष्ट कार्यकूं वे आरंभ करहु । तहां इष्ट होनेतैं अविरोध है । फँलाभिलाषारहित विद्यासंयुक्त कर्मकूं विशिष्ट कार्यांतरके आरंभविषै कोईबी विरोध नहीं है । काहेतैं देवैयाजी अरु आ-

३७९. अन्योंके चक्षुनकरि उलूक आदिकनके दो चक्षुनकी विलक्षणताके हुयेबी तिन (उलूकके चक्षुन)कूं रसआदिक विषयवान्ता नहीं है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३८०. तब विलक्षणता कहां उपयोगकूं पावती है ? तहां कहैहैं ॥ इहां मनुष्यनकूं छोडिके उलूक आदिकविषै जायकेबी यह अर्थ है औ जिसविषयविषै याका रूपादिविषै यह अर्थ है ॥ औ विशेष कहिये दूर अरु सूक्ष्मआदिक अतिशय ॥

३८१. दार्ष्टान्तिककूं पूर्ववादके अनुवादपूर्वक कहैहैं ॥

३८२. ताहींकूं विवरण करैहैं ॥

३८३. विद्यासंयुक्त जो कर्म सो श्रेष्ठ कार्यकर है इस अर्थविषै शतपथ श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
“ सो कहतेभये ” ऐसैं उपक्रम करिके “ देवयाजीतैं अति-

त्मयाजीके मध्य आत्मयाजीके “देवयाजीतें आत्मयाजी अतिशय श्रेष्ठ है” इत्यादि वाक्यविषै औ ^{३८४} “ जोई विद्याकरि करैहैं ” इत्यादि छांदोग्य श्रुतिविषै विशेषके श्रवणतें ॥ ॥ औ जो ^{३८५} परमार्थदर्शनके विषयमें मनुनें “सम देखता हुया

शय श्रेष्ठ है ” इत्यादि स्थलविषै काम्यकर्मके कर्ता देवयाजीतें आत्माकी श्रुद्धि अर्थ कर्मकूं कर्ता हुया आत्मयाजी अतिशय श्रेष्ठ है । ऐसैं आत्मयाजीके विशेषके श्रवणतें । औ “ सर्व यज्ञोंके याजीनके मध्य आत्मयाजी विशेष होवैहै ” इस स्मृतितें विशिष्ट कर्मकूं विशिष्टकार्यका आरंभकपना अविरुद्ध है ॥

३८४ छांदोग्यविषैवी विद्यासंयुक्त कर्मकूं विशिष्टकार्यकी आरंभकता देखी है । ऐसैं कहैहैं ॥

३८५ परंतु आत्मयाजी शब्द नित्यकर्मके अनुष्ठायीकूं विषय करनेवाला नहीं होवैहै ऐसैं नहीं । काहेतें “ सर्व भूतनविषै आत्माकूं औ सर्व भूतनकूं आत्माविषै सम्यक् देखताहुया आत्मयाजी निश्चयकरि स्वाराज्यकूं पावता है ” इस वाक्यविषै परमात्मदर्शनविषै ता (आत्मयाजी) शब्दकूं प्रयोग किया होनेतें ? यह शंका भयी।यातें कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जब सम देखनेवाला होवै तब परमात्माके साथि एकी भूतहुया स्वराट् होवैहै । ऐसैं आत्मज्ञानकी स्तुति इहां विवक्षित है । जातें बडी यह ब्रह्मविद्या है जो ब्रह्मवि-
त्हीं आत्मयाजी होवैहै । ताके अनुष्ठानकूं पृथक् अपेक्षा करै है औ “ ब्रह्मवित् पुण्यकारी होवैहै ” ऐसैं आगे कहियेगा ॥

आत्मयाजी ” ऐसैं आत्मयाजी शब्द कहा है । ताका इहां सम देखता हुया आत्मयाजी होवै-
है । यह अर्थ है ॥ अर्थवा भूतपूर्वगतिकरि आत्म-
याजी आत्मा (अंतःकरण)के संस्कार अर्थनि-
त्यकर्मोंकूं करैहै । “ यह मेरा अंग इसकरि सं-
स्कार युक्त करियेहै ” इस श्रुतितैं । तैसैं “ गर्भ-
संबंधी होमोंकरि ” इत्यादि प्रकरणविषै कार्य
करणके संस्काररूप अर्थवान्ता नित्यकर्मोंकूं
दिखाई है औ संस्कारयुक्त जो आत्मयाजी ।

३८६ परमात्माके दर्शनवाले पुरुषविषै आत्मयाजी श-
ब्दकी अन्य गतिकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—भूत जो पू-
र्वस्थिति । ताकूं अपेक्षा करिके आत्मयाजी शब्द । विद्वान्विषै
प्रवर्त्त होवैहै ॥

३८७ ताहींकूं प्रपंचन करैहैं ॥

३८८ तिन (नित्य कर्मन)की ता (आत्मा)के संस्कार-
रूप अर्थवान्ताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

३८९ तहांहीं स्मृतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
गर्भसंबंधी होमकरि औ मांजीबंधनादि कर्मोंकरि वैदिक
(वेदोक्त)हीं पापकूं नाश करैहैं । इस प्रकरणविषै नित्यक-
र्मोंकी संस्काररूप अर्थवान्ता निश्चित है ॥

३९० संस्कारबी किसविषै उपयोगकूं पावता है ? तहां
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जो निश्चयकरि नित्यकर्मका
अनुष्ठायी है सो सत् अनुष्ठानतैं जनित अपूर्वके वशतैं परि-

सो तिन कर्मोंकरि सम देखनेकूं समर्थ होवैहै ।
 तौं कूं इस जन्मविषै वा जन्मांतरविषै सम आ-
 त्मदर्शन उत्पन्न होवैहै । सैंमें देखता हुया स्वा-
 राज्यकूं पावताहै । ऐसैं यह अर्थ है ॥ आत्म-
 याजी शब्द तो ज्ञानयुक्त नित्यकर्मोंकी ज्ञानो-
 त्पत्तिकी साधनताके दिखावनेअर्थ भूतपूर्व ग-
 तिकरि प्रयोग करियेहै ॥ ॥ किंवा अन्यबी

शुद्ध बुद्धिवाला हुया सम्यक् बुद्धि (यथार्थ ज्ञान)के योग्य
 होवै ॥ इस अर्थविषै “ महायज्ञोंकरि औ यज्ञोंकरि यह तनु
 ब्राह्मी (ब्रह्मज्ञानयुक्त) करियेहै ” यह स्मृति है ॥

३९१ फेर यह सम्यक् ज्ञान कब उत्पन्न होवैहै ? तहां
 कहैहैं ॥

३९२ उत्पन्न भये सम्यक् ज्ञानके फलकूं कहैहैं ॥

३९३ फेर सम्यक् ज्ञानवानविषै आत्मयाजी शब्द कैसें
 प्रवर्त होवैहै ? यह आशंका करिके । पूर्वोक्त अर्थकूं स्मरण
 करावै हैं ॥

३९४ ननु इहां भूत पूर्वगति क्यूं आश्रय करी है ? तहां
 कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—ऐहिक वा आमुष्मिक कर्मों-
 करि शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषकूं श्रवणादिकके वशतैं मुक्ति फ-
 लवाला ऐक्यज्ञान उदय होवैहै । कर्म तो विद्यासंयुक्त हु-
 याबी संसाररूप फलवालाहीं है ॥

३९५ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
 विद्यासंयुक्त हुयाबी कर्म बंधके अर्थहीं होवैहै । इस अर्थ-
 विषै केवल उक्तहीं कारण नहीं । किंतु अन्यबी ताका उप-
 पादक है ॥

है:—“ ब्रह्मा विश्वसृज् (प्रजापति) धर्म महत्त-
त्व औ अव्यक्त । इस गतिकूं पंडित जन उत्त-
म सात्विकी कहतेहैं ” ऐसैं उपसंहारतैं ॥ ॥

अब देवसाष्टिं व्यतिरेककरि भूतनविषै अप्यय
(विलय)कूं दिखावैहैं:—पंचभूतनके ताईं वि-
लय होवैहै ॥ औ भूतनकूं अतिक्रमण करिके जाता

३९६ तार्हाकूं दिखावै हैं ॥ इहां सात्विकी याका सत्व
गुणकरि प्रसूत जो ज्ञान तिसकरि समुच्चित कर्मकी फल-
भूत । यह अर्थ है औ जहांहीं विद्यायुक्तबी कर्म संसाररूप
फलवालाहीं सूचना करिये है “ यह सर्व तीन प्रकारके क-
र्मका त्रिविधत्रिविध सार्वभौतिक कर्मरूप संसार सम्यक्
कीर्त्तन किया ” ऐसैं उपसंहारतैं । यह चकारका अर्थ है ॥

३९७ किंवा:—“ प्रवृत्त (सकाम) कर्मकूं सेवन करिके
देवनकी साष्टिता (समानैश्वर्यता)कूं पावता है ” ऐसैं कर्मके
फलभूत देवताओंके सदृश ऐश्वर्यकी प्राप्तिकूं कहिके । ति-
सतैं अतिरेककरि “ निवृत्त (निष्काम कर्म)कूं सेवता हुया तो
पंच भूतनकूं पावता है ” ऐसैं भूतनविषै अप्ययके वचनतैं
समुच्चयकूं मुक्ति फलवानता नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

३९८ ननु “ निवर्त्तकूं सेवता हुया तो पंचभूतनकूं पा-
वता है ” इस पाठतैं मुक्तिहीं समुच्चयके अनुष्ठानतैं विव-
क्षित है ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बने नहीं ऐसैं
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ज्ञानहीं मुक्तिका हेतु है । इस
अर्थकी प्रतिपादक उपनिषद्के विरोधतैं । यह पाठ अतिशय
श्रेष्ठ नहीं है ॥

है। ऐसैं पाठकूं जे करते हैं तिनकूं वेदके विषयवि-
षै परिच्छिन्न बुद्धिवाले होनेतैं अदोष है औ अंध्या-
यकूं अर्थवादता नहीं है। काहेतैं ब्रह्मापर्यंत कर्म-
के विपाकरूप अर्थकूं औ तिसतैं व्यतिरिक्त आ-
त्मज्ञानरूप अर्थकूं कर्मकांड अरु उपनिषदक-
रि तुल्य अर्थताके देखनेतैं औ विहितके अकर-

३९९ ननु विग्रहवाली देवताहीं नहीं है । जातैं सो दे-
वता मंत्रमयी है । शब्द अरु प्रत्यय आलंबन है । यातैं “ब्रह्मा
विश्वका स्रष्टा है ” इत्यादि वाक्यकूं अर्थवाद्रूप होनेतैं ताके
बलकरि नित्यकर्मनकूं मुक्तिकी साधनता है । सो निराक-
रण करनेकूं शक्य नहीं है ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥
इहां ज्ञानरूप अर्थवाले “ सम्यक् देखता हुआ आत्मयाजी ”
इत्यादिरूप वाक्यकी । यह शेष है ॥

४०० किंवा:—“ विहित कर्मकूं न करता हुआ औ नि-
दित कर्मकूं सम्यक् आचरता हुआ अरु इंद्रियनके विषयन-
विषै आसक्त हुआ नर पतनकूं पावता है [१] नर । शरीरतैं
जन्य कर्म दोषनकरि स्थावरभावकूं पावताहै । वाणीतैं
जन्य कर्म दोषनकरि पक्षी अरु मृग भावकूं पावता है औ
मनसैं जन्य कर्म दोषनकरि अंत्यज जातिभावकूं पावता है
[२] औ ब्रह्महा जो है सो श्वान शूकर खर उष्ट्र गौ अजा
अवि (मेष) मृग पक्षी चंडाल पुलकस इनोंकी योनिकूं पा-
वता है (३) इत्यादि वाक्योंकरि प्रतिपादित कर्म फलोंके प्र-
त्यक्षकरिवी देखनेतैं । जैसैं तहां अभूतार्थवादता नहीं है ।

ण अरु प्रतिषिद्ध कर्मोंके स्थावर श्वान शूकर आदिक फलके देखनेतैं औ वांतांशी आदिक प्रेतोंके दर्शनतैं औ श्रुति स्मृतिविहित अरु प्रतिषिद्धसैं व्यतिरेककरि विहित वा प्रतिषिद्ध कर्म । किसीकरिबी जाननेकूं शक्य नहीं है । जिनोंके अकरणतैं औ अनुष्ठानतैं प्रेत श्वान शूकर स्थावरादि कर्मफल प्रत्यक्ष अरु अनुमानकरि

तैसैं उक्त प्रकारके अध्यायकीबी अभूतार्थवादता नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

४०१ किंवा:—बंग (बंगाल) आदिक देशविषै वांतांशी (वमनभक्षक) आदिक प्रेतनकूं प्रत्यक्ष होनेतैं अध्ययन रहितबी स्त्रीशूद्रादिकनकूं वेदोच्चारणके देखनेतैं औ ब्रह्मग्रहके सद्भावके शास्त्रतैं ब्रह्मादि वाक्यकी अर्थवादता नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

४०२ ननु स्थावरादिकनकूं श्रौत स्मार्त्त कर्मकी फलरूपताके अभावतैं तिस तिसके दर्शनकरि वचनोंकी भूतार्थता कल्पना करनेकूं शक्य है ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सेवा आदिक दृष्ट कारणकी समताके हुयेबी फलकी विषमताकी प्रतीतितैं अवश्य अतीन्द्रिय कारण कहनेकूं योग्य है औ तहां श्रुति स्मृतिकूं छोडिके अन्य प्रमाण नहीं है । तैसैं हुये श्रौत स्मार्त्त कर्मके कियेहीं स्थावरादिक फल हैं ॥ औ सन्निहित अरु असन्निहित स्थावर आदिकनविषै प्रत्यक्ष अरु अनुमानकी यथायोग्य प्रवृत्ति जाननेकूं योग्य है ॥

प्रतीत होवैहै औ इनोकी अकर्मफलता किसी-
करिबी नहीं जानियेहै । ताँतैं विहितके अकर-
ण औ प्रतिषिद्धकी सेवाके जैसेँ ये कर्मविपाक-
रूप प्रेत तिर्यक् स्थावर आदिक हैं। तैसेँ उत्कृ-
ष्ट ब्रह्मापर्यतनविषैवी कर्मविपाकता जाननेकूं
योग्य है ॥ ताँतैं “ सो (ब्रह्मा) आपके वपा
(वीर्य) कूं पतन करताभया । सो रोदन करताभ-
या” । इत्यादि वाक्यकी न्यांई या अध्यायकी अभू-
तार्थवादता (अनहुये अर्थकी बोधकता) नहीं है ॥
ननु तहां (उक्त दृष्टांतविषै) वी अभूतार्थवादता

४०३ स्थावरोंकूं जीवशून्य होनेतैं कर्मकी फलरूपता
नहीं है ऐसैं केईक कहते हैं । तिनोंके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह
अर्थ है:—अस्सदादिककी न्यांईहीं वृक्षादिकनकी वृद्धि आ-
दिकनके देखनेतैं सजीवताकी प्रसिद्धितैं औ “ तातैं पादप
देखते हैं ” इत्यादि महाभारतके वचनतैं तिनोंके कर्म फ-
लताकी सिद्धि है ॥

४०४ स्थावरादिकनकी कर्मफलताके सिद्ध भये फलि-
तकूं कहैहैं ॥

४०५ ब्रह्मादिकनकी पुण्यकर्मकी फलरूपताके हुयेवी प्र-
कृतविषै क्या होवैहै ? सो कहैहैं ॥

४०६ कर्मफलके प्रकरणकी अभूतार्थवादताके अभाव
हुये दृष्टांतविषैवी सो नहीं होवैगा ? इसप्रकारसैं प्रतिवादी
शंका करैहै ॥

मति होहू ? यह जो प्रतिवादी कहै । सो ऐसैं होहूः—औ ईतनेकरि इस न्यायका बाध नहीं हो-
वैहै औ वां हमारा पक्ष दूषणकूं पावता नहीं औ
“ ब्रह्मा विश्वसृज् ” इत्यादिकनकी काम्यकर्म-
की फलरूपता कहनेकूं शक्य नहीं है । काहेतैं

४०७ सिद्धांती सो अंगीकार करैहैं ॥

४०८ तब वैधर्म्य दृष्टांतकी सिद्धि कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥
इहां यह अर्थ हैः—वैधर्म्य दृष्टांतके अभावमात्रकरि कर्म-
विपाकके अध्यायकी अभूतार्थवादता नहीं है । यातैं इस
न्यायका बाध नहीं है । काहेतैं साधर्म्य दृष्टांततैंबी ताकी
सिद्धितैं ॥

४०९ ननु “ प्रजापति । आपके वीर्यकूं पतन करताभया ”
इत्यादि वाक्यनकी अभूतार्थवादताके अभाव हुये अर्थवादका
अधिकरण कैसैं घटेगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—
ताकी अघटनाके हुयेबी हमारे पक्षकी हानि नहीं है किंतु
तेरीहीं हानि है काहेतैं तिनकी अभूतार्थवादताकूं त्यागने-
वाले तुजकूं ताके विरोधतैं ॥

४१० ननु कर्मविपाकके प्रकरणकी अर्थवादताके अभाव
हुयेबी ब्रह्मादिकनकूं काम्यकर्मके फलरूप होनेतैं ज्ञानसंयुक्त
नित्यकर्मकी फलरूपता नहीं है । तातैं मोक्षहीं ताका फल
है ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहां तिनोंका कहिये
काम्यकर्मोंका औ देवसार्ष्टितारूप । याका इंद्रादिक देवों-
करि समान ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप ॥ औ “ उत्कट कर्मकूं से-
वन करिके देवनकी सार्ष्टिता (समानैश्वर्यता)कूं पावता है” इस
ठिकाने यह शेष है ॥

तिनके देवसार्ष्टितारूप फलकूं उक्त होनेतैं ॥ ती-
तैं फलाभिलाषा सहित पुरुषनकूं नित्यकर्मोंके औ
सर्वमेध अश्वमेध आदिकनके ब्रह्मभाव आदिक
फल होवैहैं । जिनके फेर फलाभिलाषारहित आ-
त्माके संस्कार अर्थ नित्यकर्म करियेहैं । तिनो-
के वे कर्म ज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ होवैहैं । काहेतैं
“ यैहें तनु ब्राह्मी करियेहै ” इत्यादि स्मृतितैं ॥
तिनकूं (संस्कारयुक्त बुद्धिवालेकूं) समीप उ-
पकारक होनेतैं मोक्षके साधनरूपवी कर्म होवै-

४११ ननु विद्यासंयुक्त कर्मोंका फल जब ब्रह्मादिभाव
होवै । तब वे कर्म ज्ञानकी उत्पत्तिरूप अर्थवाले कैसें आस्था
करिये हैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां कर्मोंकूं मुक्तिरूप फलवान्
ताका अभाव तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है औ अभिसंधि
सहितनका कहिये देवताभावरूप फलविषै अनुराग वालोंका
औ नित्यकर्म कहिये श्रौत स्मार्त्तरूप अग्निहोत्र अरु संध्योपा-
सन आदिक औ निरभिसंधि कर्म कहिये फलाभिलाषातैं
रहित परमेश्वरार्पण बुद्धिकरि क्रियमाण औ आत्मशब्द म-
नकूं विषय करनेवाला है ॥

४१२ कर्मोंकी चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानोत्पत्तिरूप अर्थता-
विषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

४१३ तब कर्मनकूं मोक्षकी साधनता केइक कैसें कहते
हैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां तिनोंकूं कहिये संस्कारयुक्त बुद्धि-
मानोंकूं ॥

हैं । यातें विरोधकूं पावते नहीं ॥ औ जैसेँ यह अर्थ है । तैसेँ जनकराजाके आख्यायिकाकी समाप्तिविषै हम कहेंगे ॥ ॥ औ जो विष दधि आदिककीन्यांई । यह पूर्व कहाथा । तहां प्रत्यक्ष अरु अनुमानका विषय होनेतें अविरोध है औ जो अत्यंत शब्दप्रमाणकरि गम्य अर्थ है । तिसविषै वाक्यके अभाव हुये ताके अर्थके प्रतिपादकका विष दधि आदिकका साधर्म्य । कल्पना

४१४ ननु कर्मोंकूं परंपराकरि मोक्षकी साधनता अर्थतें सिद्धकी न्यांई कैसेँ कहिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां जैसेँ यह अर्थ है तैसेँ । यह शेष है ॥

४१५ निरस्तकूंवी अधिक कहनेकी इच्छाकरि फेर अनुवाद करै हैं ॥

४१६ मंत्रादिसहित विष आदिककूं जीवन आदिककी हेतुता प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण करि सिद्ध है । यातें दृष्टान्तविषै कार्यकी आरंभकतामें विरोध नहीं है । ऐसेँ कहैहैं ॥

४१७ विद्यासंयुक्त कर्मका कार्यांतरकी आरंभकरारूप अर्थ । शब्द (शब्दप्रमाण) करिहीं जानियेहै औ तिसविषै प्रमाणांतर नहीं है औ समुच्चित कर्मकी मोक्षारंभकता नहीं देखियेहै । ताके अभाव हुये विद्यायुक्त कर्मविषैवी विष अरु दधि आदिकका साधर्म्य कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है ऐसेँ कहैहैं ॥ इहां कर्म साध्यताके हुये मोक्षकी अनित्यता होवैगी । यह भाव है ॥

करनेकूं शक्य नहीं है औ प्रमाणांतरसैं विरुद्ध अर्थविषै श्रुतिका [स्वार्थविषै] प्रामाण्य नहीं कल्पना करियेहै । जैसे शीतल अग्नि क्लेदन (जलकी न्यांई कठिन पदार्थकूं कोमल) करैहै इति ॥ औ श्रुतविषै तो वाक्यकी अर्थपरताके हुये प्रमाणांतरकी आभासरूपता होवैहै । जैसे ख-

४१८ “ सोम (अमृत)कूं पान करैंगे । अमृतरूप होवैंगे ” इत्यादि श्रुतितैं कर्मसाध्य मोक्षकीवी नित्यता होवैगी ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो वनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—“ जो कृतिसाध्य है सो अनित्य है ” इस अनुमानकरि अनुगृहीत “ सो जैसे इहां कर्म रचित लोक क्षीण होवैहै ” इत्यादि वाक्य है । ताके विरोध हुये अर्थवाद श्रुतिकी स्वार्थविषै प्रमाणता नहीं है ॥

४१९ ननु प्रमाणांतरकरि विरुद्ध अर्थविषै जव श्रुतिकी प्रमाणता नहीं कहियेहै । तव अद्वैत श्रुतिकीवी प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि विरुद्ध स्वार्थविषै प्रमाणता कैसें होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तत्त्वमस्यादि वाक्यकी षड्विध तात्पर्यके लिंगोंकरि सद्वैतपरताके निर्धारित हुये असत् भेदकूं विषय करनेवाले प्रत्यक्ष आदिककी आभासरूपता होवैहै ॥

४२० ताहीकूं दृष्टांतकरि साधते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:— जो अविवेकी जनोकूं उक्त प्रकारका प्रत्यक्ष है । सो यद्यपि प्रथम भावि होनेकरि प्रबल औ निश्चितार्थ है । तथापि तिसीहीं आकाशादिकविषै प्रवृत्त आप्त वाक्यादिकप्रमाणांतरकी

द्योत अग्नि है औ नीलरंगवाला आकाश है। ऐसैं बालकनकूं जाका प्रत्यक्षबी है ताकूं विषयकर-
नेहारे प्रमाणांतरकी अतथार्थताके निश्चित हुये
निश्चित अर्थवालाबी बालकनका प्रत्यक्ष । आ-
भासरूप होवैहै ॥ तातैं वेदके प्रामाण्यके अव्य-
भिचारतैं अर्थपरताके हुये वाक्यकी यथार्थता हो-
वैहै । परंतु पुरुषकी मतिका कौशल नहीं। जैतैं
पुरुषकी मतिके कौशलतैं सूर्य रूपकूं नहीं प्रका-
शताहै । ऐसैं नहीं । ऐसैं वेदवाक्यबी अन्य अ-

यथार्थताके हुये । तातैं विरुद्ध पूर्वोक्त अविवेकी जनोंका प्र-
त्यक्षबी आभासकी न्यांई होवैहै । तैसैं यह द्वैतकूं विषय क-
रनेवाला प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण । अद्वैत शास्त्रके विरोधके होते
आभासरूप होवैहै ॥

४२१ ननु तात्पर्य नाम पुरुषके मनका धर्म है । ताके
वशतैं जब अद्वैत श्रुतिकी यथार्थता है । तब पुरुष पुरुषके
प्रति अन्यथाहीं तात्पर्यके देखनेतैं ताके वशतैं अन्यथाहीं श्रु-
तिका अर्थ होवैगा ? यह आशंका करिके । दार्ष्टान्तिककूं नि-
गमन करते हुये उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां तादर्थ्य कहिये अर्थ
परता औ तथात्व कहिये यथार्थता ॥ शब्दका धर्म तात्पर्य
है सो षड्विध लिंगकरि गम्य है । तिसप्रकार हुये शब्दकी
पुरुषके अभिप्रायके वशतैं अन्यथा अर्थवान्ता नहीं होवैहै ।
यह अर्थ है ॥

४२२ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

ध्याय । ३] तृतीय-भुज्यु-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ १२७३

र्थवाले नहीं होवैहैं । ताँतैं मोक्षरूप अर्थवाले कर्म नहीं । यह सिद्ध भया ॥ यौँतैं कर्मफलों-की संसाररूपताके दिखावने अर्थहीं ब्राह्मण आरंभ करियेहैः—जैँरँत्कारुके पुत्रके उपराम हुये अनंतर भुज्यु इस नामवाला लैह्यका पुत्र जो लाह्य । ताका पुत्र जो लाह्यायनि । सो पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहताभयाः—औँदिविषै अश्वमेधका उपासन कहा । औँ समष्टि व्यष्टिरूप फलवाला अश्वमेध यज्ञ कहा । सो

४२३ विचारके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां विद्यासंयुक्तबी कर्मकूं मोक्षकी आरंभकताका असंभव । तत् (ताँतैं) शब्दका अर्थ है ॥

४२४ ननु कर्मोंकूं मोक्षार्थता मति होहू । तितनेकरि क्या सिद्ध भया ? यह आशंका करिके । इस ब्राह्मणके आरंभकूं सूचन करैहैं ॥

४२५ ब्राह्मणके आरंभकूं ऐसैं प्रतिपादन करिके ताके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ॥

४२६ याज्ञवल्क्यकूं अभिमुख करिके भुज्यु नामक मुनि अपनी पूर्व निर्वृत्त कथाकूं कथन करैहै । ता कथाकूं अवतार देनेकूं अश्वमेधके स्वरूपकूं औँ ताके फलकूं विभाग करिके दिखावै हैं ॥ इहां क्रतु कहा । ऐसैं पूर्वले पदके साथि संबध है ॥

ज्ञानसमुच्चित वा केवलज्ञानकरि संपादित भे-
दतैं दो प्रकारका है । सो सर्व कर्मोंकी पराकाष्ठा
(परमअवधि) है । जातैं “पुण्य अरु पापके-
विषै भ्रूणहत्या (ब्रह्महत्या) औ अश्वमेधतैं पर
(उत्कृष्ट) नहीं है” ऐसैं स्मरण करैहैं ॥ तिसैं (अश्व-
मेध) करिहीं समष्टिरूप औ व्यष्टिरूप देवताओंकूं
पावताहै ॥ तिनमें ब्रह्मांडके अंतवर्ति अश्वमे-
ध यागकी फलभूत व्यष्टिरूप देवता ज्ञात (दि-
खाई) हैं ॥ “मृत्यु याका आत्मा होवैहै । इन दे-

४२७ ऋतुकी द्विविधताकूं कहैहैं ॥

४२८ दो प्रकारसैं विभाग किये अश्वमेधके सर्व कर्मोंतैं
उत्कर्षताकूं कहैहैं ॥

४२९ ताकी पुण्योंविषै श्रेष्ठतामें प्रमाणकूं कहैहैं ॥

४३० समष्टि व्यष्टिरूप फलवाला । ऐसैं उक्त अर्थकूं स्पष्ट
करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अश्वमेधसैं सहकारी कामनाके
भेदकरि समष्टि कहिये सम्यक् अनुगतरूप औ व्यष्टि कहिये
व्यावृत्तरूप देवताओंकूं पावता है ॥

४३१ कौन फेर व्यष्टिरूप देवता कहनेकूं वांछित हैं ?
तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अग्नि आदित्य वायु इत्या-
दिक व्यष्टिरूप देवता “ सो अग्नि होताभया ” इत्यादि वा-
क्यविषै ब्रह्मांडके अंतवर्ति अश्वमेधके फलभूत दिखाये हैं ॥

४३२ कौन तब समष्टि देवता है ? ऐसैं कहे हुये । तहांहीं
उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ॥

वताओंके मध्य एक होवैहै" ऐसैं । तहां कहा-
है । ध्रु^{३३}धारूप मृत्यु है सो बुद्धि^{३३}स्वरूप समष्टिरूप
प्रथमज सूत्र वायु संत्य हिरण्यगर्भ है । समष्टि
व्यष्टिरूप सर्व प्रपंच जिसका स्वरूप है । ताका
व्याकृत विषय है । जो सर्व भूतनका अंतरा-

४३३ तिसीहीं समष्टिरूप देवताकूं प्रपंचन करनेकूं यह
ब्राह्मण है । ऐसैं कहनेकूं पातनिकाकूं करैहैं ॥

४३४ प्राणात्मकबुद्धिका धर्म जो अशनाया (शुधा) सो
मृत्युका लक्षण कैसैं होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

४३५ तब बुद्धिकूं व्यष्टिरूप होनेतें मृत्युवी तैसा हो-
वैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

४३६ व्यष्टिकी उत्पत्तितैं पूर्वहीं उत्पन्न होनेकरि याके स-
मष्टिपनैकूं साधते हैं ॥

४३७ सर्वाऽऽश्रयपनैकूं दिखावै हैं ॥

४३८ तिसविषै " वायुहीं हे गौतम " इत्यादि वाक्य प्र-
माण है । ऐसैं सूचन करैहैं ॥

४३९ तथापि या हिरण्यगर्भकी प्रथमजन्यपना कैसैं होवै-
गी । भूतनकी प्रथम उत्पत्तितैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४४० हिरण्यगर्भकी उक्त लक्षणताके हुयेवी मृत्युकूं क्या
आया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

४४१ समष्टि व्यष्टिरूप जगत्हीं सूत्र सहित है ? यह
आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां द्वैत जो व्यष्टिरूप औ एकत्व
जो समष्टिरूप । सो सर्व याका स्वरूप है । ताका व्याकृत
विषय है । ऐसैं संबंध है ॥

४४२ ताकी उक्त प्रमाणताकूं प्रकट करैहैं ॥

त्मा लिंग^{४४३} अमूर्त्तरस है । जिसके आश्रित सर्व-
 भूतनके कर्म हैं^{४४६} । जो कर्मोंका औ कर्मसँ संबन्ध-
 वाले विज्ञानोंका परागति (परमफल) है ।
 तोंका कितना विषय है औ सर्वओरतँ मंडल-
 भावकू पायके स्थितहुयी किर्त्तनी व्याप्ति है सो
 कहनेकू योग्य है । तिसँ (व्याप्ति)के कहेहुये
 बंधगोचर सर्व संसार कथन किया होवैहै । औ

४४३ विज्ञानात्माकू व्यावर्त्तन करैहैं ॥

४४४ “ त्यत्काहीं यह रस है ” इस वाक्यकू अनुस-
 रीके कहैहैं ॥

४४५ ताकी साधनाऽऽश्रयताकू दिखावै हैं ॥

४४६ ताहीकी फलाऽऽश्रयताकू कहैहैं ॥ इहां परागति ।
 याहीका व्याख्यान परमफल है ॥

४४७ ऐसँ भूमिकाकू रचिके अनंतर ब्राह्मणकू अवतार
 देते हैं ॥

४४८ प्रश्नकूहीं प्रकट करैहैं ॥ इहां “सर्वतः” याका सर्व
 ओरतँ मंडल भावकू पायके स्थित है । यह अर्थ है ॥

४४९ ननु सो क्यू कहने योग्य है । ताके कहे हुयेबी
 कहने योग्य संसारके अवशेषतँ आकांक्षाकी विश्रांतिके अ-
 भावतँ ? यातँ ? कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—इतना बंध
 है अधिक वा न्यून नहीं । ऐसँ अन्यके व्यवच्छेदकरि बंधके
 परिणामके परिच्छेदअर्थ कर्मफलकी व्याप्ति इहां कहियेहै
 औ ताका परिच्छेद । वैराग्यद्वारा मुक्तिका हेतु है ॥

तिसैं^० समष्टि व्यष्टि स्वरूपके दर्शनकी अलौकिकताके दिखावनेअर्थ आपकूं व्यतीतभयी आख्यायिकाकूं भुज्यु मुनि कहैहै । औ तिसैंकरि प्रतिवादी (याज्ञवल्क्य)की बुद्धिकूं मैं व्यामोह करूंगा ऐसैं भुज्यु मुनि मानताहै ॥ ॥ मद्र-नामक देश हैं । तिनविषै अध्ययनके अर्थ व्रतके आचरणतैं चरक वा अध्वर्यु होनेतैं चरकरूप हुये हम पर्यटन करतेभये । वे हम पर्यटन करतेहुये नामकरि पतंचल ऐसे काप्य (कपिगोत्रवाले)के ग्रहोंके प्रति जातेभये । ताकी गंधर्वकरि गृहीत पुत्री होतीभयी । गंधर्व जो कोईबी अमानुपरूप जंतु । तिसकरि आविष्ट वा गंधर्व कहिये उपास्य अरु ऋत्विक्करूप

४५० ब्राह्मणकूं ऐसैं प्रवृत्त हुयेबी भुज्यु मुनि अपनी पूर्व निर्वृत्तकथाकूं क्यूं कहताभया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४५१ समष्टि व्यष्टिरूप आत्माके दर्शनकी अलौकिकताके दिखावनेकरि क्या होवैगा ? सो कहैहैं ॥ इहां ऐसैं मानता है भुज्यु मुनि । यह शेष है ॥ अर्थ यह जो:—जल्पवादके हुये परंपरासैं जयकरि अपने जयकूं इष्ट होनेतैं औ इहां धि-ण्यत्व कहिये अग्निका उपास्यपना ॥

४५२ “ अग्निहीं देवनका होता है ” इस श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

अग्नि देवता। श्रेष्ठ विज्ञानवाला होनेतैं निश्चय करिये है। ^{४५३} जैतैं जंतुमात्रकूं ऐसा विज्ञान नहीं संभवै है ॥ ताकूं वे सर्व हम इकठे हुये पूछतेभये । तूं कौन हैं । किस नामवाला हैं । किस रूपवाला हैं? सो गंधर्व कहताभयाः—नामतैं सुधन्वाहूं । गोत्रतैं आंगिरसहूं ॥ ताकूं जिस कालविषै लोकनके पर्यवसानोंकूं हम पूछतेभये । अनंतर इस गंधर्वकूं ^{४५६} भुवन कोशके परिमाणके ज्ञान अर्थ सर्वके प्रवृत्तभये आपकूं श्लाघा करते हुये हम पूछतेभयेकिः—किस प्रकारसैं कहां पारिक्षित (अश्वमेधके कर्त्ता) होतेभये । कहां पारिक्षित होतेभये ॥ औ सो

४५३ उक्तप्रकारके संक्षेपलिगवाले गंधर्वशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

४५४ ताकी अन्यथा सिद्धिकूं दूषण देते हैं ॥

४५५ “ अनंतर याकूं ” इत्यादि वाक्यके अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

४५६ ऐसैं गंधर्वके प्रति तेरा प्रश्न होहू । तथापि क्या आया ? सो कहैहैं ॥ इहां तिसकरि याका गंधर्वके वचनकरि । यह अर्थ है ॥ औ दिव्योंतैं याका गंधर्वोंतैं । यह अर्थ है ॥

ध्याय । ३] तृतीय-भुज्यु-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ १२७९

गंधर्व सर्व हमारे अर्थ कहताभया ॥ तिस (गंधर्वके वचनकरि) दिव्यों (गंधर्वों) तैं मेनें ज्ञान संपादन किया है । सो तुज (याज्ञवल्क्य) कूं नहीं है । याँतैं निगृहीत (पराजितभया) हैं । यह अभिप्राय है ॥ ॥ सो विद्यासंपन्न गंधर्वतैं प्राप्त आगमवाला में तुज याज्ञवल्क्यकूं पूछताहूं:—कहां पारिक्षित होतेभये (गमन करतेभये) । सो तूं क्या जानताहैं । हे याज्ञवल्क्य ! मैं पूछताहूं कहां पारिक्षित होतेभये ? इति ॥ १ ॥

४५७ इस ज्ञानके अभाव हुये तो अज्ञान अप्रतिम हो-
वैगा औ ब्रह्मिष्ठताके प्रतिज्ञाकी हानि होवैगी । ऐसैं कहैहैं ॥

४५८ प्रश्नकर्त्ताके अभिप्रायकूं कहिके । अथ प्रश्नके अ-
क्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां प्रथमा विभक्ति जो है सो प्र-
थम “ कहां पारिक्षित होतेभये ” इस उक्त गंधर्वके प्रतिप्रश्न
अर्थ है औ द्वितीया विभक्ति । तेरे अनुसारी उत्तरके अर्थ है ।
जोई कहां पारिक्षित होतेभये । ऐसा प्रश्न गंधर्वके प्रतिक्रिया
ताका प्रत्युत्तर सर्व सो हमारे तांई कहताभया । ऐसैं तहां
कहियेगा । तृतीया तो मुनिके प्रति प्रश्न अर्थ है । ऐसैं वि-
भाग है ॥

स होवाचोवाच वै सोऽगच्छन्वै ते
तद्यत्राश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति ॥ क
न्वश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति ॥ द्वात्रि-
ंशतं वै देवरथान्ह्यान्ययं लोकस्तं-

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहताभयाः—
सो (गंधर्व) [तिस ज्ञानकं] कहताभया ।
वे तहां जाते भये । जहां अश्वमेधके याजी
जाते हैं ऐसैं ॥ कहां अश्वमेधके याजी जा-
ते हैं ? ऐसैं ॥ बत्तीसहीं देवरथकी गतियां

टीकाः—^{४५९}सो याज्ञवल्क्य कहतेभयेः—[इहां
“वै” शब्द गंधर्वतैं प्राप्त ज्ञानके स्मरण अर्थ है]
सो गंधर्व तेरे ताई कहताभयाः—वे पारिक्षित
तहां गमन करतेभये ॥ तहां कहां किः—जि-
स देशविषै अश्वमेधके याजी गमन करैहैं
तहां । ऐसैं प्रश्नके निर्णय किये हुये कहैहैः—क-

४५९ अज्ञानादि निग्रहकूं परिहार करते हुये याज्ञवल्क्य
मुनि उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां गंधर्वतैं लब्ध ज्ञानके स्मरण अर्थ ।
यह शेष है ॥

४६० क्या कहते भये ? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

समन्तं पृथिवी द्विस्तावत्पर्येति । तां
समंतं पृथिवीं द्विस्तावत्समुद्रः पर्येति ।
तद्यावती क्षुरस्य धारा । यावद्वा मक्षि-
कायाः पत्रं । तावानन्तरेणाऽऽकाशस्ता-
यह लोक है । ताकूं च्यारी ओरतैं पृथिवी
द्विगुण परिमाणकरि वेष्टित है । ता पृथि-
वीकूं च्यारी ओरतैं द्विगुण परिमाणकरि स-
मुद्र वेष्टित है । सो जितनी क्षुरकी धारा
है । वा जितना मक्षीकाका पत्र है । ति-
तना मध्यविषै आकाश है । तिन (पारि-
हां कहिये किस देशविषै अश्वमेधके याजी ग-
मन करैहैं । यातैं तिनकी गतिके कहनेकी इच्छा-
करि भुवन कोशके परिमाणकूं कहैहैं:—^{४६१}द्वात्रिंशत्
कहिये दो अधिक तीसहीं देवरथकी गतियां हैं

४६१ अहोरात्र आदित्यके रथकी गतिकरि जितना मार्ग प-
रिमित है । तितना देश बतीस गुणित ताके किरणोंकरि व्याप्त
है औ सो चंद्रके किरणोंकरि व्याप्तदेशके सहित पृथिवी कही
है । ऐसैं कहियेहै ॥ रवि अरु चंद्रमाके किरणोंकरि जितनी
प्रकाश करिये है । तितनी समुद्र नदीयां अरु शैलकरि सहित
पृथिवी । कही है ॥ ऐसैं कहैहैं

निन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्ता-
न्वायुरात्मनि धित्वा तत्रागमयद्यत्रा-
श्वमेधयाजिनोऽभवन्नित्येवमिव वै स
क्षितन) कूं इंद्र अग्निरूप परमेश्वर सुपर्ण
होयके वायुके ताई देता भया । तिनकूं वायु
आपविषै धारणकरिके । तहां प्राप्त करता
भया जहां अश्वमेधके याजी होवैहैं इति ।

कहिये देव जो आदित्य ताका जो रथ सो देव-
रथ है । तिस रथकी गतिकरि जितना देशका
परिमाण परिच्छेदकूं पावताहै । सो देवरथान्ह्य
कहियेहै । सो बतीसकरि गुणित हुया देवरथ-
की गतियां कहियेहैं । तितने परिमाणवाला
यह लोक । लोकालोक पर्वतकरि वेष्टित है ।
जहां विराट्का शरीर है । औ जहां प्राणीनकूं
कर्मफलका उपभोग होवैहै । सो यह लोक है ॥
इतना लोक है । यातें परे अलोक है । तिस

४६२ “ यह लोक है ” इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

४६३ तिसविषै लोकभागकूं विभाग करै हैं ॥

४६४ उक्त लोककूं अनुवाद करिके अवशेष रहेकी अलो-
कताकूं कहैहैं ॥

वायुमेव प्रशशंस। तस्माद्वायुरेव व्यष्टि-
र्वायुः समष्टिरप पुनर्मृत्युं जयति । य

ऐसैहीं सो वायुकूहीं कहता भया । तातैं
वायुहीं व्यष्टि है । वायु समष्टि है । पुनर्मृ-
त्युकूं अपजय करैहै जो ऐसैं जानता है ।

४६५

लोककूं च्यारीओरतैं लोकके विस्तारतैं द्वि-
गुण परिमाणयुक्त विस्तारवाले परिमाणकरि
तिस लोककूं वेष्टित पृथिवी है । ता पृथिवी-
कूं तैसैहीं च्यारीओरतैं द्विगुण परिमाण-
करि समुद्र वेष्टित है । जाकूं पौराणिक धनो-
द कहतेहैं । तैंहां ब्रह्मांडके दो कपालोंके विव-

४६५ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अन्वयकूं
दिखावनेकूं तिस लोककूं यह पुनरुक्ति है ॥

४६६ तिसविषै पौराणिकनकी संमतिकूं कहैहैं ॥ इहां
सो शास्त्रांतरविषै कहा है “ इस अंडके च्यारी ओरतैं तो
सम्यक् स्थित अमृतोदधि है । सो च्यारी ओरतैं मेघोंके ज-
लकरि धार्यमाण हुया स्थित होवैहै ” ॥

४६७ “ सो जितनी ” इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥
इहां “तहां” इस सप्तमीका लोकादि परिमाणके उक्त रीति-
करि स्थित होते । यह अर्थ है ॥

एवं वेद । ततो ह भुज्युर्लाहायनिरुपर-
राम ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

तदनंतर लाहायनि (लाह्यका पुत्र) भु-
ज्युमुनि प्रश्नतैं उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपीकायां तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

रका परिमाण कहियेहै । जिसेँ विवररूप मा-
र्गकरि ब्रह्मांडतैं बाहिर निर्गमन करते हुये अ-
श्वमेधके याजी व्याप्त होवैहैं ॥ तहां जितने
परिमाणवाली क्षुरकी धारा (अग्र) होवैहै ।
वा जितनी सूक्ष्मताकरि युक्त मक्षिकाका प-
त्र है । तितने परिमाणवाला अंड कपालोके
मध्यविषै आकाश (छिद्र) है । तिस आकाश-

४६८ कपाल विवरकुं अनुपयोगी होनेतैं तिसके परिमा-
णकी चिंताकरि क्या है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां
व्यवहारभूमि सप्तमीका अर्थ है ॥

करि तिन पारिक्षितनकूं कहिये प्राप्तभये अश्व-
मेधके याजीनकेतांई इंद्र जो परमेश्वर । सो
[जो अश्वमेध यज्ञविषै चित अग्नि सुपर्ण (प-
क्षी) कहियेहै । जिसकूं विषय करनेहारा उ-
पासन पूर्व “ताका प्राचीदिशा शिरहै” इत्यादि
वाक्यकरि कहा है सो] सुपर्ण (पक्षी) होयके
कहिये पक्ष पुच्छादि स्वरूपवाला पक्षी होयके
वायुकेतांई देताभया । मूर्त्तरूप होनेतैं आप-

४६९ परमात्माकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

४७० सुपर्ण शब्दके श्येन सादृश्यकूं आश्रय करिके ताकी
चित्य अग्निविषै प्रवृत्तिकूं दिखावै हैं ॥

४७१ उक्त अर्थवाले पदकूं अनुवाद करैहैं ॥

४७२ “ भूत्वा (होयके) ” इस पदके अर्थकूं कहैहैं ॥

४७३ ननु चित्य अग्नि जो है सो ब्रह्मांडतैं बाहिर अश्व-
मेधके याजीकूं ग्रहण करिके आपहीं गमन करो । तिनकूं वा-
युके अर्थ क्यूं देता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां आत्माकी क-
हिये चित्य अग्निकी औ तहां ऐसैं ब्रह्मांडतैं बाहीर देशकी
उक्ति है । यह युक्त है औ वायुके अर्थ प्रदान करताभया यह
शेष है । आख्यायिकाकी समाप्ति अर्थ “इति” शब्द है ॥ च्यारी
ओरतैं दुरित क्षीण होवैहै जिसकरि ऐसा जो अश्वमेध । ताके
याजी पारिक्षित हैं । तिनकी गतिरूप वायुकूं कहताभया ।
ऐसैं संबंध है ॥

की तहां (ब्रह्मांडतैं बाहिर) गति नहीं है ॥
 तिन पारिक्षितनकूं वायु आपविषै स्थापन क-
 रिके तहां प्राप्त करताभया ॥ कहांकि ? जहां:-
 पूर्वले पारिक्षित (अश्वमेधकेयाजी) अतिक्रां-
 त हुये होतेभये [तहां] इति ॥ ऐसैंहीं सो
 गंधर्व वायुकूंहीं पारिक्षितनकी गति कहताभ-
 या ॥ आख्यायिका समाप्तभयी । तिसविषै व्य-
 तीतभये अर्थकूं आख्यायिकातैं ग्रहण करिके अ-
 पने श्रुतिरूपकरिहीं हमारे तांई कहताभया ॥
 जातैं वायु जो है सो स्थावर जंगमरूप भूतन-
 का अंतरात्मा है औ सोई बाहिर है । तातैं
 अध्यात्म अधिभूत अधिदैव भावकरि विविध-
 प्रकारकी जो अष्टि (व्याप्ति) है सो वायुहीं
 है । तैसैं सम जो अष्टि है सो केवल सूत्र

४७४ मुनिवचनके वर्त्तमान हुये कैसैं आख्यायिकाकी
 समाप्ति भयी ? तहां कहैहैं ॥

४७५ वायुकी प्रशंसाविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

ध्याय । ३] तृतीय-भुज्यु-ब्राह्मण ॥ ३ ॥ १२८७

स्वरूपकरि वायुहीं है ॥ ॥ ऐसैं^{४७६} वायुरूप आ-
त्माकूं समष्टि व्यष्टि स्वरूपताकरि पावताहै ॥
जो ऐसैं जानताहै ताकूं क्या फल होवैहै ?
तहां कहैहैं:-पुनर्मृत्युकूं अपजय करैहै कहि-
ये एकवार मरिके फेर नहीं मरताहै ॥ तदनं-
तर आपके प्रश्नके निर्णयतैं भुज्युनामक ला-
ह्यायनि (लाह्यका पुत्र) उपराम होताभ-
या ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ३ ॥

४७६ फेर उक्त प्रकारके वायुतन्वके विज्ञानविषै क्या
फल है ? सो कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-तृतीय ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अथ हैनमुषस्तश्चाक्रायणः पप्रच्छ ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र भाषादी-
पिकायास्तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं उषस्त चाक्रायण

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

टीकाः—^{४७७}अनंतर याकूं उषस्त चाक्रायण पूछ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपि-
कायास्तृतीयाध्यायगत-चतुर्थ ब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

४७७ ब्राह्मणांतरकूं अवतार देते हैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्साक्षादप-
रोक्षाद्ब्रह्म । य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे
व्याचक्ष्व इत्येष त आत्मा सर्वान्तरः
पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहता-
भयाः—जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो
आत्मा सर्वांतर है । ताकूं मेरेताई व्याख्या-
नकर ? ऐसैं ॥ ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर
ताभयाः—पुँण्य पापकरि प्रेरित ग्रह अरु अति-
ग्रहोंकरि गृहीत हुया पुरुष । फेरि फेरि ग्रह औ
अतिग्रहोंकूं त्यागताहुया अरु ग्रहण करताहुया
संसरताहै ऐसैं कहा औ पुँण्यका पर उत्कर्ष
व्याकृतकूं विषय करनेवाला व्याख्यान किया ।
जो समष्टि व्यष्टिरूप द्वैत अरु एकत्व स्वरूपकी

४७८ ताके अपुनरुक्त अर्थकूं कहनेकूं आर्त्तभागके प्रश्न-
विषै वृत्तकूं कीर्तन करैहैं ॥

४७९ भुज्युके प्रश्नके अंतविषै सिद्ध अर्थकूं अनुवाद
करैहैं ॥

४८० नामरूपकरि व्याकृत जगत् जो हिरण्यगर्भात्मक ।
तद्विषयक उत्कर्षकूं विशेषणकरि कहैहैं ॥

४८१ उक्त प्रकारके उत्कर्षकी पुण्यकर्मफलरूपता कैसें
है ? तहां कहैहैं ॥

कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो यः प्रा-
णेन प्राणिति । स त आत्मा सर्वान्त-
रो योऽपानेनापानिति । स त आत्मा
है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा सर्वांतर है?
जो प्राणकरि प्राणनक्रियाकूं करताहै ।
सो तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ जो अपान-
करि अपानन क्रियाकूं करता है । सो तेरा

प्राप्ति है ॥ औ^{४८२} जो ग्रह औ अतिग्रहोंकरि ग्रस्त
हुया संसारताहै । सो है वा नहीं है औ ताके
अस्तित्वके हुये । किस लक्षणवाला है । ऐसैं^{४८३} विचा-
र करिके आत्माके विवेककरि अवगम (ज्ञान)
अर्थ उषस्तका प्रश्न आरंभकरियेहै औ निर्रूपा-

४८२ अब संप्राप्त अनंतर ब्राह्मणके विषयकूं दिखावै हैं ॥
इहां यह अर्थ है:—माध्यमिकनका (शून्यवादिनका) औ
अन्योंका आद्यविवाद किस लक्षणवाला है ? देहादिकनके
मध्य अन्यतम है वा तिनोतैं विलक्षण है ॥

४८३ ऐसैं विचारकरिके आत्माके देहादिकतैं विवेकक-
रिके अधिगम अर्थ यह ब्राह्मण है ऐसैं कहैहैं ॥

४८४ विवेककरि अधिगमकूं भेद ज्ञानरूप होनेकरि अनर्थ
करता है ? यह आशंका करिके । कहोल प्रश्नके तात्पर्यकूं
संक्षेपकरि कहैहैं ॥

सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानिति । स
त आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदा-
निति । स त आत्मा सर्वान्तर एष त
आत्मा सर्वान्तरः ॥ १ ॥

आत्मा सर्वांतर है ॥ जो व्यानकरि व्यानन
क्रियाकूं करताहै । सो तेरा आत्मा सर्वांतर
है ॥ जो उदानकरि उदानन क्रियाकूं करता-
है । सो तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ यह तेरा
आत्मा सर्वांतर है ॥ १ ॥

धिक स्वरूपवाले अरु क्रिया कारकतैं विनिर्मुक्त
स्वभाववाले तिस (आत्मा)के अधिगमतैं स-
प्रयोजक (कारणसहित) बंधनतैं विमुक्त होवै-
है । आख्यायिकाका संबंध तो प्रसिद्ध है ॥ ॥
अनंतर इस प्रकृत याज्ञवल्क्यकूं नामतैं उष-
स्त ऐसा चक्रका अपत्य (पुत्र) चाक्रायण पू-
छताभयाः—जो ब्रह्म साक्षात् (द्रष्टाकूं किसी

४८५ ब्राह्मणके संबंधकूं कहिके आख्यायिकाके संबंधकूं
कहैहैं ॥ इहां आख्यायिका जो है । सो विद्याकी स्तुति अर्थ
है औ सुखसैं अवबोध अर्थ है । यह अर्थ है ॥ भुज्युके प्रश्नके

करिवी अव्यवहित) अपरोक्ष (अगौण) है ।

^{४८७} श्रोत्र ब्रह्म आदिककी न्यांई नहीं ॥ ॥ ^{४८८} सो क्या है? जो आत्मा । [इहां आत्मशब्दकरि प्रत्यगात्मा कहियेहै काहेतैं तिसविषै आत्मशब्दकूं प्रसिद्ध होनेतैं] ^{४८९} सर्वके अभ्यंतर सर्वांतर है । ^{४९०} जो जो इन दो शब्दनकरि प्रसिद्ध आत्मा

निरर्णयके अनंतर । यह “अथ” शब्दका अर्थ है ॥ संबोधन । अभिमुख करने अर्थ है ॥

४८६ द्रष्टातैं अव्यवहित है । ऐसैं कहे हुये घटादिककी न्यांई अव्यवधान गौण होवैगा ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥ इहां ताके निराकरण अर्थ “अपरोक्षतैं” ऐसैं मुख्यहीं द्रष्टाका अव्यवहित स्वरूप ब्रह्म कहा । तिसप्रकार हुये द्रष्टाके आधीन सिद्धताके अभावतैं स्वतः अपरोक्ष है । यह अर्थ है ॥

४८७ श्रोत्र ब्रह्म है । मन ब्रह्म है । इत्यादि जैसैं गौण है । तैसैं द्रष्टाका अव्यवहित स्वरूप ब्रह्म । गौण नहीं है । अद्वितीय होनेतैं । ऐसैं कहैहैं ॥

४८८ उक्त अव्यवधानकूं आकांक्षाद्वारा अनंतर वाक्यकरि साधते हैं ॥

४८९ ताके परिच्छिन्नभावकी शंकाकूं निवारण करैहैं ॥

४९० सर्व नामोंकरि (दो यत् शब्दोंकरि) प्रत्यग् ब्रह्मरूप विशेष्य निरूपण करियेहै । इतर शब्दोंकरि तो ताके विशेषण । इस विभागकूं अभिप्रायका विषय करिके कहैहैं ॥

ब्रह्म ऐसैं कहियेहै । तिस आत्माकूं मेरेतांई
व्याख्यानकरो इति । कहियेः—विस्र्षष्ट जैसैं
शृंगविषै ग्रहणकरिके गौकूं दिखावैहैं । तैसैं आ-
ख्यानकरो । अर्थ यह जो “सो यह है” इस प्र-
कारसैं कथनकरो ? ॥ ॥ ईसैं प्रकार उक्तिका
विषयभया याज्ञवल्क्य । प्रत्युत्तर कहैहैः—यह ते-
रा आत्मा सर्वांतर है कहिये सर्वके भीतर है ॥
इहां सर्व विशेषणोंके उपलक्षण अर्थ सर्वांतर-
का ग्रहण है ॥ जो साक्षात् (अव्यवहित) अ-
परोक्ष (अगौण) ब्रह्म (अत्यंतपूर्ण) आत्मा
सर्वके भीतर है । इन समस्त गुणोंकरि युक्त य-

इहां इति शब्द जो है । सो कहियेहै इस पदके साथि सं-
बंधकूं पावताहै औ द्वितीय इति शब्द । प्रश्नकी समाप्ति
अर्थ है ॥

४९१ तिसीहीं प्रश्नकूं विवरण करैहैं ॥

४९२ वाक्यार्थसै अन्वय योग्य तिस अर्थके पूछे हुये
ताके प्रदर्शन अर्थ प्रत्युत्तरकूं अवतार देते हैं ॥

४९३ सर्वांतर है । इसविशेष उक्तिकरि प्रश्नके अन्य वि-
शेषणोंकी अनास्थाकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

४९४ यह सर्वांतर है । इस भागके अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

ह है ॥ कौन यह तेरा आत्मा । जो यह तेरा कार्य करणका संघात है । सो जिस आत्माकरि आत्मवान् है सो यह तेरा आत्मा है । इहां “ते-^{४९५}रा”^{४९६} इस पदका कार्य करणके संघातका यह अर्थ है ॥ तैहां (सर्वांतर तेरा आत्मा है । ऐसैं कथन किये हुये) पिंड जो है । ताके भीतर लिंगात्मा करणोंका संघात है औ जो तृतीय संदेहयुक्त (प्रमाताका साक्षी) है । तिनविषै हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा मेरा आत्मा सर्वांतर तुमकरि विवक्षित है ? ऐसैं उक्तिका विषयभया इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैः—जो मुख अरु नासिका-विषै संचारी प्राणकरि प्राणकी चेष्टाकूं करै है । अर्थ यह जो जिसकरि प्राणवायु प्राणन-रूप क्रियाकरि विशिष्ट करियेहै । सो तेरा

४९५ यह इस शब्दके अर्थकूं प्रश्नपूर्वक कहैहैं ॥

४९६ आत्मशब्दके अर्थकूं विवरण करैहैं ॥ इधर । जिस-करि इहां स (सो) शब्द । देखनेकूं योग्य है ॥

४९७ षष्ठीके अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥

४९८ प्रश्नांतरकूं उदायके प्रत्युत्तर देते हैं ॥ इहां “तहां” इस शब्दका सर्वांतर तेरा आत्मा है । ऐसैं कहे हुये । यह अर्थ हैः—औ तृतीय कहिये प्रमाताका साक्षी औ प्रणीयते याका प्राणन क्रियाकरि विशिष्ट करियेहै । यह अर्थ है ॥

(कार्यकरणका) आत्मा विज्ञानमय है ॥ अन्य अर्थ समान है ॥ जो अपानकरि अपानकी चेष्टाकूं करैहै । व्यानकरि व्यानकी चेष्टाकूं करैहै । इहां दीर्घभाव छांदस है ॥ सर्व कार्यकरणके संघातगत प्राणन आदिक चेष्टा । दारुयंत्रकी न्यांई जिसकरि करियेहैं । जाँतैं चेतनावालेकरि अनधिष्ठित दारुयंत्रकीन्यांई प्राणनादि चेष्टा नहीं हैं । ताँतैं अधिष्ठिततैं विलक्षण विज्ञानमयकरि दारुयंत्रकीन्यांई प्राणादिक । प्राणनआदिक चेष्टाकूं पावताहै ॥ ताँतैं जो चेष्टा करावैहै ॥ सो कार्यकरणके संघाततैं विलक्षण है ॥ १ ॥

४०९. ननु इतनेकरि कैसेँ संदेह दूरी किया ? यह आशंका करिके । विवक्षित अनुमानके कहनेकूं व्याप्तिकूं कहैहैं ॥ इहां जो प्रसिद्ध अचेतनकी प्रवृत्ति है । सो चेतनरूप अधिष्ठानके पूर्वक होवैहै । जैसेँ रथादिककी प्रवृत्ति है । यह अर्थ है औ जिसकरि करिये है सो है ऐसेँ संबन्ध है ॥

५०० दृष्टांतकी साध्यविकलताकूं परिहार करैहैं ॥

५०१ अब अनुमानकूं अवतार देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विवादकी विषय जो चेष्टा । सो चेतनरूप अधिष्ठान पूर्वक है । अचेतनकी प्रवृत्ति होनेतैं । रथादिककी चेष्टाकी न्यांई ॥

५०२ अनुमानके फलकूं कहैहैं ॥ इहां:—चेष्टा करावै है । कार्यकरणके संघातकूं । यह शेष है ॥

स होवाचोषस्तश्चाक्रायणो यथा वि-
ब्रूयादसौ गौरसावश्व इत्येवमेवैतद्व्य-
पदिष्टं भवति । यदेव साक्षादपरोक्षा-
द्ब्रह्म । य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्या-

अर्थः—सो उषस्त चाक्रायण कहताभ-
याः—जैसें यह गौ है । यह अश्व है । ऐसें वि-
परीत कहै ॥ ऐसेंहीं यह व्यपदेशकिया हो-
वैहै ॥ जोई साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो
आत्मा सर्वान्तर है । ताकूं मेरेतांई व्याख्यान

टीकाः—सो उषस्त^{५०३} नामवाला चाक्रायण
कहताभयाः—जैसें कोईक पूर्व अन्यथा प्रति-
ज्ञाकरिके फेर विप्रतिपन्न (विवादयुक्त) हुया
अन्यथा कहैकिः—प्रत्यक्ष जैसें होवै तैसें गौकूं
वा अश्वकूं दिखावताहूं । ऐसें पूर्व प्रतिज्ञा करि-
के । पीछे जो चलताहै यँह गौ (बलीवई) है

५०३ प्रश्न उत्तरकी अननुरूपताकेतांई प्रतिवादी शंका
करैहैं ॥

५०४ दृष्टान्तकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥ इहां यह अर्थ
हैः—प्रत्यक्ष गौकूं वा अश्वकूं में दिखावताहूं । ऐसें पूर्व प्र-

चक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः ॥ कत-
 मो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः ॥ न दृष्टेर्द्र-
 ष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतरं शृणुया न म-
 कर? ऐसैं ॥ ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर है
 ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा सर्वांतर है? दृ-
 ष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख । श्रुतिके श्रोताकूं
 औ जो दौडताहै यह अश्व है । ऐसे चल-
 नादि लिंगोंकरि जैसें गौआदिक व्यपदेश क-
 रियेहैं । ऐसैंहीं यह ब्रह्म । प्राणनआदिक लिं-
 गोंसैं तेरेकरि व्यपदेश किया होवैहै । बँहुँत
 कहनेकरि क्या है ! गौवनकी तृष्णारूप निमित्त-
 वाले मिषकूं त्यागकरिके जोई साक्षात् अपरोक्ष
 तिज्ञा करिके । पीछे जो चलता है यह गौ है । वा जो दौ-
 डता है सो अश्व है । ऐसैं चलनादि लिंगोंकरि जैसें गौ
 आदिक व्यपदेश करियेहै ॥ ऐसैंहीं ब्रह्मकूं प्रत्यक्ष दिखाव-
 ताहूं । इसप्रकारसैं मेरे प्रश्नके अनुसारकरि प्रतिज्ञा करिके ।
 प्राणनादि लिंगोंकरि ताकूं व्यपदेश करनेवाले तुज याज्ञव-
 ल्क्यके प्रतिज्ञाकी हानि औ अनवधेयवचनता (प्रमादयुक्त
 भाषण) होवैहै ॥

५०५ बुद्धि पूर्वकारी पुरुषकरि प्रतिज्ञा औ प्रश्नके अनु-
 सरनेकूं योग्य है । ऐसैं फलितकूं कहैहै ॥

तेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं
विजानीयाः। एष त आत्मा सर्वान्तरो-
ऽतोऽन्यदार्त्तं ॥ ततो होषस्तश्चाक्रायण
उपरराम ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

नहीं सुन । मतिके मंताकूं नहीं मनन कर ।
विज्ञातिके विज्ञाताकूं नहीं जान ॥ यह तेरा
आत्मा सर्वांतर है । इसतैं अन्य आर्त्त (वि-
नाशि) है ॥ ॥ तदनंतर उषस्त चाक्रायण।
उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीमद्बृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र
भाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-
मुषस्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ब्रह्म है । जो आत्मा सर्वांतर है । ताकूं मे-
रेताई व्याख्यान करो ? ऐसैं ॥ ॥ तब इ-
तर (याज्ञवल्क्य) कहैहैंः—^{५०६}जैसैं मुजकरि प्रथम

तेरा आत्मा ऐसे लक्षणवाला है । ऐसैं प्रतिज्ञा-
 त है । ता प्रतिज्ञाकीन्यांई अनुसरताहींहूं ।
 सो तैसैंहीं है । जैसैं मैंने कहाथा ॥ ॥ जो फेर
 कहाथाकिः—तिस आत्माकूं घटादिककीन्यांई
 विषयकर ऐसैं ॥ सो अशक्य होनेतैं नहीं करि-
 येहै ॥ ॥ कौहेतैं फेर सो अशक्य है ? यह
 शंकाभयी । यातैं कहैहैंः—वस्तुके स्वभावतैं ॥ ॥
 कथा फेर सो वस्तुका स्वभाव है ? दृष्टिआदि-

५०७ प्रतिज्ञाके अनुवर्त्तनकूंहीं आकारकरि दिखावैहैं ॥

५०८ हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा है । इत्यादि प्रश्नके तात्पर्यकूं
 कहैहैं ॥

५०९ न दृष्टेः (दृष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख) । इत्यादि वाक्यके
 तात्पर्यकूं कहते हुये उत्तरकूं कहैहैं ॥

५१० ननु आत्माकूं वस्तुरूप होनेतैं ताका घटादिककी
 न्यांई विषयीकरण अशक्य नहीं है ? इसप्रकार प्रतिवादी
 शंका करैहै ॥

५११ वस्तुके स्वरूपकूं अनुसरिके सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

५१२ तब घटादिककावी वस्तुस्वभाव होनेतैं विषयीकरण
 मति होहू ? ऐसैं मानता हुया प्रतिवादी शंका करैहै ॥

५१३ दृष्टि आदिककी साक्षीतारूप वस्तुस्वाभाव्य है औ
 तातैं अविषयता है औ ऐसा वस्तुस्वाभाव्य घटादिकका नहीं
 है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

कका कर्त्तापना वस्तुका स्वभाव है ॥ जातें दृ-
ष्टिकीं^{५१५} द्रष्टा आत्मा^{५१५} है । दृष्टि जो है सो लौकि-
की औ पारमार्थिकी इस भेदतें द्विविध होवैहै ।
^{५१६} तिनमें लौकिकी दृष्टि। चक्षु संयुक्त अंतःकरणकी
वृत्तिरूप है । सो करियेहै । यातें उपजती है
औ विनाशकूं पावती है औ जो अग्निके उष्ण
प्रकाश आदिककी न्यांई^{५१७} आत्माकी दृष्टि है । सो
द्रष्टाका स्वरूप होनेतें उपजती नहीं औ विना-
शकूं पावती नहीं । सो क्रियमाण^{५१८} उपाधिभूत

५१४ ननु दृष्टि आदिकके साक्षीकूंबी दृष्टिकी विषयता
क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह
अर्थ है:—जैसैं प्रदीप । लौकिक ज्ञानकरि प्रकाश्य है । सो
अपने प्रकाशक ज्ञानकूं नहीं प्रकाशताहै । तैसैं दृष्टिका साक्षी ।
दृष्टिकरि नहीं प्रकाशका विषय करियेहै ॥

५१५ दृष्टिका द्रष्टाहीं नहीं है । ऐसैं सौगत (बौद्ध) मान-
ते हैं । तिनके प्रति कहैहैं ॥

५१६ लौकिकी दृष्टिकूं व्याख्यान करैहैं ॥

५१७ पारमार्थिकी दृष्टिकूं व्याख्यान करैहैं ॥

५१८ ननु आत्मा जब नित्यदृष्टि स्वभाववाला होवै । तब
द्रष्टा ऐसा व्यपदेश कैसैं सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां
यह अर्थ है:—साक्ष्य जो बुद्धि है । ताकी न्यांई तिडंत क-
र्त्तापना औ क्रियापना । आध्यात्मिक नित्यदृष्टिरूप आत्मा-
विषै व्यवहार करियेहै ॥

दृष्टिकरि मिश्रितकी न्यांई प्रतीत होवैहै । यातैं द्रष्टा ऐसैं औ द्रष्टाकी दृष्टि ऐसैं व्यपदेश करिये है ॥ जो चक्षुद्वारा रूप विषयके साथि संबद्ध हुयी जायमानकीन्यांई लौकिकी दृष्टि है । यह नित्य आत्मदृष्टिकरि मिश्रितकीन्यांई जो ताकी प्रतिच्छाया (प्रतिबिंब) है । तिसकरि व्याप्त हुईहीं उपजती है औ तैसैं विनाशकूं पावती है । तिसकरि द्रष्टा सदा देखता हुआबी देखता है औ नहीं देखता है । ऐसैं उपचार करियेहै ॥

औ फेर द्रष्टाकी दृष्टिका कदाचित्त्वी अन्यथा भाव नहीं है । तिसैंप्रकार आगे षष्ठविषै कहि-

५१९ ननु आत्माकूं नित्यदृष्टि स्वभाववान्ताके हुये देखताहै औ नहीं देखताहै । ऐसा कदाचित्त्क व्यवहार कैसैं होवैहै ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां जो बहुविशेषणवाली लौकिकी दृष्टि है । यह ताकी प्रतिच्छाया (प्रतिबिंब) है । ऐसैं संबध है । तिस ताकी प्रतिच्छायाकरि व्याप्तहीं उपजे है । यह अर्थ है ॥

५२० ननु यह औपचारिक (आरोपित) व्यपदेश क्यूं है । मुख्य व्यपदेश तो क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५२१ दृष्टिकूं वस्तुतैं विक्रियावान्पना नहीं है । इस अर्थविषै वाक्यशेषकूं अनकूल करैहैं ॥

येगा:—“ध्यान करते हुयेकी न्यांई है । लीला करते हुयेकी न्यांई है । औ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है” ऐसैं ॥ ॥ तिसैं^{५२२} इस अर्थकूं कहैहैं:—कर्मभूत लौकिकी दृष्टिके स्वकीय नित्य दृष्टिकरि व्याप्त होनेवाले द्रष्टाकूं नहीं देख । जो यैहैं^{५२३} लौकिकी कर्मभूत दृष्टि है । सो रूपसैं संबद्धहुयी रूपकी प्रकाशक है । आपके व्याप्ता आत्माकूं नहीं कहिये केवल मनोवृत्तिरूप मतिके व्याप्ता प्रत्यगात्माके तांई नहीं व्याप्त होवैहैं । तातैं^{५२४} तिस दृष्टिके द्रष्टारूप प्रत्यगात्माकूं नहीं देख (दृष्टिका विषय मतिकर) तैसैं^{५२५} श्रुतिके श्रोताकूं नहीं सुन (श्रवणका विषय मतिकर) तैसैं केवल मनोवृत्तिरूप मतिके व्याप्ताकूं नहीं मनन कर (मतिका विषय मतिकर) तैसैं केवल बुद्धिवृत्तिरूप विज्ञातिके व्याप्ताकूं नहीं जान

५२२ उक्त अर्थविषै “ न दृष्टिके ” इत्यादि श्रुतिकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

५२३ उक्त अर्थकूंहीं प्रपंचन करैहैं ॥

५२४ “ न दृष्टिके ” इत्यादि वाक्यके अर्थकूं निगमन करैहैं ॥

५२५ उक्त न्यायकूं उत्तर वाक्योंविषै अतिदेश करैहैं ॥

ध्याय । ३] चतुर्थ-उपस्त-ब्राह्मण ॥ ४ ॥ १३०३

(बुद्धिका विषय मतिकर) ॥ यँहँ वस्तुका स्व-
भाव है । यातँ गौ आदिककीन्याँई नहीं शक्य
होवँहै ॥ ॥ “ दृष्टिके द्रष्टाकूँ नहीं देख ” इस
ठिकाने केईक (भर्तृप्रपंचके अनुसारी) “ दृष्टिके
द्रष्टाकूँ नहीं देख ” कहिये दृष्टिके कर्त्ताकूँ (दृष्टि-
के भेदकूँ न करिके दृष्टिमात्रके कर्त्ताकूँ) नहीं दे-
ख । ऐसँ अक्षरोंकूँ अन्यथा व्याख्यान करैहँ ॥

इहां “ दृष्टिके ” यह कर्मविषै पष्ठी है ॥ सो दृष्टि ।
क्रियमाणहुयी घटकीन्याँई कर्म होवँहै औ “ द्र-
ष्टाकूँ ” इस “ तृच् ” प्रत्यय है अंतविषै जिसके

५२६ उक्त वस्तुके स्वाभाव्यकूँ उपसंहार करिके फलितकूँ
कहैहँ ॥

५२७ “ न दृष्टिके ” इस ठिकाने स्वपक्षकूँ कहिके । अब
भर्तृप्रपंचके पक्षकूँ कहैहँ ॥

५२८ ननु अक्षरनकी अन्यथा व्याख्या कैसेँ है ? यह आ-
शंका करिके । ताके इष्ट अक्षरार्थकूँ कहैहँ ॥ इहां “ इति ”
शब्द । व्याख्यान करैहँ । इसपदसँ संबंधकूँ पावता है ॥

५२९ ऐसँ व्याख्यान करनेवाले भर्तृप्रपंचके अनुसारीनके
अभिप्रायकूँ कहैहँ ॥

५३० कर्मविषै पष्ठीकूँहीं स्पष्ट करैहँ ॥

५३१ पष्ठीकूँ व्याख्यान करिके । तदनंतर द्वितीयाकूँ व्या-
ख्यान करैहँ ॥

ऐसें पदकरि द्रष्टाके दृष्टिकर्त्तापनैकूं मुनि कथन करैहैं । तिसैकरि यह दृष्टिका द्रष्टा । दृष्टिका कर्त्ता है । ऐसा व्याख्यानके कर्त्ताओंका अभिप्राय है ? तैहां “दृष्टिके” इस षष्ठी अंतवाले पदकरि दृष्टिका ग्रहण निरर्थक है । इस दोषकूं नहीं देखतेहैं ॥ तैव देखनेवालेकूं पुनरुक्त असार होवैगा । वा प्रमादपाठ है । ऐसा अनादर होवैगा ॥ ॥ फेर षष्ठीका आधिक्य कैसें है ? तृच् अंतवाले द्रष्टापदकरिहीं दृष्टिके कर्त्तापनैकूं सिद्ध होनेतै “दृष्टिके” यह षष्ठी निरर्थक है । [जब ऐसा अभिप्राय होवै] तैव “द्रष्टाकूं

५३२ पदार्थकूं कहिके । वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

५३३ उक्त परकीय (भर्तृप्रपंचकी) व्याख्याकूं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—दृष्टिके कर्त्तापनैकी विवक्षाके हुये । तृच् प्रत्यय है अंतविषै जिसके पेसै द्रष्टापदकरिहीं ताकी सिद्धितै । श्रुतिविषै “ दृष्टिके ” ऐसी जो षष्ठी विभक्ति है । सो व्यर्थ होवैगी ॥

५३४ ननु फेर व्याख्यानके कर्त्ता । उक्त प्रकारके दोषकूं कैसें नहीं देखते हैं ? तहां कहैहैं ॥

५३५ पूर्व उक्त षष्ठीकी व्यर्थताकूं आकांक्षाद्वारा समर्थन करैहैं ॥

५३६ तब इहां अर्थवान् क्या है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

नहीं देख” इतनाहीं कहनेकूं योग्यथा । जातैं ^{५३७} धातुतैंपर तृच् प्रत्यय सुनियेहै । तिस धातुके अर्थके कर्त्ताविषै जातैं तृच् प्रत्यय स्मरण करिये है । जातैं गंतौ (गतिके कर्त्ता)कूं वा भेत्ता (भिदिक्रियाके कर्त्ता)कूं ले जावैहै । इतनाहीं शब्द प्रयोग करियेहै ॥ परंतु गतिके गंताकूं वा भिदिके भेत्ताकूं। ऐसा शब्द । अर्थविशेषके नहीं होते प्रयोग करनेकूं योग्य नहीं है औ गतिके होते अर्थवादरूप होनेकरि त्यागकरनेकूं योग्य नहीं है औ ^{५४०} प्रमाद पाठ नहीं है काहेतैं सर्वके अवि-

५३७ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—क्रिया “ दृशिर् ” धातुका अर्थ है औ कर्त्ता “ तृच् ” प्रत्ययका अर्थ है । तिसप्रकार हुये एकहीं कर्त्तापदकरि उभय अर्थके लाभतैं पृथक् दृष्टिरूप क्रियाका ग्रहण । भर्त्तृप्रपंचके पक्षमें व्यर्थ होवैगा ॥

५३८ भर्त्तृप्रपंचके पक्षमें “ दृष्टिके ” इसपदकी व्यर्थताकूं दृष्टांतकरि साधते हैं ॥

५३९ ननु तब अर्थवादरूप होनेकरि यह प्राप्त हुआ होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विधिशेषताके अभावतैं औ अस्मदुक्तरीतिकरि अर्थवान्ताके संभवतैं ॥

५४० अथवा परपक्षविषै निरर्थकहीं यह पद प्रमादतैं पठित होवैगा ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं ।

गान (अविवाद) तैं । तातैं ^{५४१} व्याख्यानके कर्त्ता-
 ओंकीहीं बुद्धिकी दुर्बलता है अध्ययनके कर्त्ता-
 ओंका प्रमाद नहीं है ॥ ॥ जैसे ^{५४२} तो हमने व्या-
 ख्यान किया है:—लौकिक दृष्टितैं विवेचनकरिके
 नित्यदृष्टिविशिष्ट आत्मा दिखावनेकूं योग्य है ।
 तैसें कर्मकर्त्ताके विशेषणभावकरि दृष्टिशब्दका
 दो वार प्रयोग आत्मरूपके निर्धारण अर्थ घटता
 है औ “द्रेष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है”

ऐसें कहैहैं ॥ इहां सर्वके कहिये काण्व अरु मध्यंदिनोंके ।
 यह अर्थ है ॥

५४१ ननु तव यह पद व्यर्थ है ऐसी अन्योकूं प्रतीति
 कैसें भई ? तहां कहैहैं ॥

५४२ ननु फेर तुमकूंवी दृशि धातुका दोवार ग्रहण कैसें
 घटता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां दिखावनेकूं योग्य है । या प-
 दतैं ऊपर इति शब्द देखनेकूं योग्य है औ कर्त्ता कर्मका विशे-
 षण होनेकरि याका साक्षी अरु साक्ष्यका समर्पक होनेकरि ।
 यह अर्थ है ॥

५४३ सो समर्पण कहां उपयोगकूं पावता है ? तहां क-
 हैहैं ॥ इहां यह अर्थ है ? दृष्टि आदिकका साक्षी आत्मा ।
 सो ताका विषय नहीं है । ऐसें ताके स्वरूपके निश्चय अर्थ
 साक्षी आदिकका समर्पण है ॥

५४४ नित्यदृष्टि स्वभाववाला आत्मा । दृश्यरूप दृष्टिका
 विषय नहीं है । इसप्रकारका यह जब “ नदृष्टिके ” इत्यादि-

इस प्रदेशांतरके वाक्यके साथि ऐसैं एकवाक्यता घटित होवैहै । तैसैं “चक्षु देखतेहैं । श्रोत्र यह सुन्या” इस अन्य श्रुतिके साथि एकवाक्यता घटित होवैहै औ न्यायतैं जातैं विक्रियाके अभाव हुये ऐसैंहीं आत्माकी नित्यता घटित होवैहै औ विक्रियावाला वस्तु नित्य है ॥ यह कथन निषिद्ध है “ध्यान करते हुयेकी न्यांई । लीला करते हुयेकी न्यांई है ॥ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है ॥ यह नित्य महिमा ब्राह्मणका है” इन श्रुतिनके अक्षर । अन्यथा नहीं जाते हैं (विक्रियावान्ताके हुये नहीं घटते

रूप वाक्यका अर्थ होवै । तव “ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है ” इत्यादि वाक्यके साथि इसवाक्यकी एकवाक्यता सिद्ध होवैहै । तातैं “ नदृष्टिके ” इत्यादि वाक्यका उक्त प्रकारकाहीं अर्थ है । ऐसैं कहैहैं ॥

५४५ आत्मा कूटस्थदृष्टि (निर्विकार दृष्टिवाला) है । इस अर्थविषै तलवकार श्रुतिकूं कथन करैहैं ॥

५४६ ता (आत्मा) की कूटस्थदृष्टिरूपताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

५४७ तिसीहीं न्यायकूं स्पष्ट करैहैं ॥

५४८ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

५४९ यातैंबी आत्माकूं विक्रियावान्पना नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अन्यथा याका विक्रियावान्पनैके हुये यह अर्थ है ॥

हैं) ॥ ननु^{५५०} द्रष्टा । श्रोता । मंता । विज्ञाता ।
 इत्यादिक श्रुतिनके अक्षर । आत्माकी अविक्रि-
 यताके हुये नहीं घटते हैं ? यह^{५५१} शंका । बने
 नहीं:—काहेतैं तिनकूं यथाप्राप्त लौकिकवाक्यके
 अनुवादी होनेतैं । आत्मतत्वके निर्धारणअर्थ
 वे नहीं हैं । “दृष्टिके^{५५२} द्रष्टाकूं नहीं देख ” इत्या-
 दि वाक्यनकी अन्य अर्थके असंभवतैं यथोक्त
 अर्थकी परता जानीयेहै । तातैं^{५५३} अनवबोधतैंहीं
 “दृष्टिके” यह विशेषण । परित्याग किया है ॥

५५० ननु आत्माकी अविक्रियताके हुयेबी श्रुतिके अ-
 क्षर अघटित होवेंगे ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

५५१ तिनका विरोध देख्या नहीं । काहेतैं दृष्टि आदि-
 कके कर्त्तापनैकूं अनुसरीके लौकिक वाक्यके प्रवर्त्त भये ताके
 अर्थके अनुसारी होनेतैं उक्त श्रुतिके अक्षरोंकी स्वार्थविषै प्र-
 माणताके अभावतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

५५२ ननु तब “ नदृष्टिके ” इत्यादि श्रुतिके अक्षरबी
 स्वार्थविषै प्रमाण नहीं होवेंगे ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥
 इहां अन्य अर्थ कहिये दृष्टि आदिकका कर्त्ता औ यथोक्त
 (उक्त प्रकारका) अर्थ कहिये दृष्टि आदिकका साक्षी ॥

५५३ द्रष्टापदकी साक्षीरूप विषयताके सिद्ध भये दृष्टिके
 ऐसैं साक्ष्यके समर्पणतैं तिस अर्थवान्ताकी उपपत्ति होवैहै ।
 ऐसैं उपसंहार करै हैं ॥

ध्याय । ३] चतुर्थ-उषस्त-ब्राह्मण ॥ ४ ॥ १३०९

यँहँ तेरा आत्मा सर्व उक्त विशेषणोंकरि युक्त है ॥ यातँ इस आत्मातँ अन्य कार्यरूप शरीर वा करणरूप लिंग । आर्त्त (मिथ्या) है । यँहँहीं एक अनार्त्त अविनाशी कूटस्थ है ॥ तदनंतर उषस्त चाक्रायण उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य चतुर्थमुषस्त-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ४ ॥

५५४ पक्षांतरकूं निराकरण करिके औ स्वपक्षकूं उपपा-
दन करिके । अनंतर वाक्यकूं विभाग करैहैं ॥

५५५ “ अन्य आर्त्त है ” इस विशेषणके सामर्थ्यकरि
सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-चतुर्थ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य पंचमं-कहोल-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

अथ हेनं कहोलः कौषीतकेयः पप्र-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं कहोल कौषीतकेय

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

टीकाः—कारण सहित बंधनै^{५५६} पूर्व कहा औ

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषा-
दीपिकाया स्तृतीयाध्यायगत-पंचम-ब्रा-
ह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

५५६ ब्राह्मण त्रयके अर्थकूं संगति कहनेके वास्ते अनुवाद
करैहैं ॥

५५७ चतुर्थ ब्राह्मणके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

च्छ । याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यदेव सा-
क्षादपरोक्षाद्ब्रह्म । य आत्मा सर्वान्तर-
स्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्-
न्तरः ॥ कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो

पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहां-
भयाः—जोई साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो
आत्मा सर्वांतर है । ताकूं मेरेतांई व्याख्यान
कर ? ऐसैं ॥ ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर
है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा सर्वांतर है?

जो बद्ध है । तौकावी अस्तिपना औ व्यतिरि-
क्तपना अधिगत भया । ताकूं अब (पंचम ब्राह्म-
णविषै) बंधके मोक्षका साधन संन्यास सहित
आत्मज्ञान कहनेकूं योग्य है । यातैं कहोल मु-
निका प्रश्न आरंभ करियेहैः—अनंतर या (या-
ज्ञवल्क्य) कूं नामकरि कहोल ऐसा कुपीतकका
पुत्र कौपीतकेय पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य !

५५८ उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां उपस्त प्र-
श्नके अनंतर । यह अथ शब्दका अर्थ है । औ पूर्वकी न्यांई ऐसैं
अभिमुख करनेके अर्थ संबोधन देते भये । यह अर्थ है ॥

योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति । एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणा-

जो अशनाया अरु पिपासाकूं । शोककूं । मोहकूं । जराकूं । मृत्युकूं । अतिक्रमण करैहै ॥ तिस इस आत्माकूं जानिके ब्राह्मण । पुत्रैष-

ऐसैं कहताभयाः—यह पूर्वकी न्यांई है ॥ जो-ई साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो आत्मा सर्वांतर है । ताकूं मेरेतांई व्याख्यान कर ऐसैं । जाकूं जानिके बंधनतैं मुक्त होवैहै ? ॥ ॥

याज्ञवल्क्य कहैहैः—यह तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ ॥ नैनुं उषस्त अरु कहोल । इन दोनूंनैं क्या एक आत्मा पूछया है किंवा तुल्यलक्षणवाले भिन्न दो आत्मा पूछे हैं ? इति ॥ तिनमें

५५९ ननु इहां बंधध्वंसी ज्ञानका प्रश्न नहीं भासता है । किंतु अनुवाद मात्र है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां ताकूं व्याख्यानकर । ऐसैं पूर्वसैं संबंध है ॥

५६० दोनूं प्रश्नोविषै अवांतर विशेषके (बीचले भेदके) दिखावने अर्थ विचार करैहैं ॥

याश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथ भिक्षाचर्यं चरन्ति । या ह्येव पुत्रैषणा सा-
 वित्तैषणा । या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे
 णातैं औ वित्तैषणातैं औ लोकैषणातैं व्यु-
 त्थान करिके अनंतर भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं ॥
 जोईहीं पुत्रैषणा है सो वित्तैषणा है । जो वित्तै-
 षणा है सो लोकैषणा है । जातैं ये दो एषणा-
 भिन्न पूछे हैं । ऐसैं जो कहैं तो युक्त है । काहे-
 तैं दोनूं प्रश्नोंकी अपुनरुक्तताके संभवतैं ॥ जैबैं
 एकहीं आत्मा उषस्त अरु कहोलके प्रश्नोंविषे
 विवक्षित है । तहां एकहीं प्रश्नकरि अधिगत
 होनेतैं ताकूं विषय करनेवाला द्वितीय प्रश्न व्य-
 र्थ होवैगा औ वाक्यकूं अर्थवादरूपता नहीं
 है । तातैं भिन्न ये दो आत्मा क्षेत्रज्ञ अरु पर-

५६१ तहां पूर्वपक्षकूं ग्रहण करैहैं ॥

५६२ उक्त अर्थकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण करैहैं ॥

५६३ अब एक वाक्य वस्तुपर है । ताका अर्थवाद्रूप
 द्वितीय वाक्य है ? यह कहना बने नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

५६४ दोनूं वाक्यनकी तुल्य लक्षणताके हुये फलितकूं
 कहैहैं ॥

५६५ तिनमें आद्यवाक्य । क्षेत्रज्ञकूं विषय करैहै । द्वि-

ह्येते एषणे एव भवतः । तस्माद् ब्राह्मणः
पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत् ।
बाल्यञ्च पाण्डित्यञ्च निर्विद्याथ मुनिर-
मौनञ्च मौनञ्च निर्विद्याऽथ ब्राह्मणः स

हीं होवेंहैं ॥ तातैं ब्राह्मण । पांडित्यकूं निःशेष
जानिके बाल्यकरि स्थित होवै । बाल्यकूं औ
पांडित्यकूं निःशेष जानिके अनंतर मुनि
(योगी) होवैहै । अमौनकूं औ मौनकूं निः-
शेष जानिके अनंतर ब्राह्मण (कृतकृत्य) हो-

मात्मा नामवाले हैं ? इस प्रकारसैं केईक (भ-
र्तृप्रपंचके अनुसारी) व्याख्यान करैहैं ॥ सो ब-
नै नहींः—काहेतैं “तेरा” इस प्रतिज्ञातैं । जातैं
“यैहैं तेरा आत्मा है” ऐसैं प्रतिवचनविषै प्रति-

तीय वाक्य । परमात्माकूं विषय करैहै । इस अभिप्राय क-
रिके भर्तृप्रपंचके अनुसारी कहैहैं ॥

५६६ दोनूं ब्राह्मणोंकरि दो अर्थ विवक्षित हैं । ऐसैं भ-
र्तृप्रपंचके प्रस्थानके प्रति सिद्धांती कहैहैं ॥

५६७ प्रश्न उत्तरकी एकरूपता है । अर्थका भेद नहीं है ।
ऐसैं उक्त अर्थकूं उपपादन करैहैं ॥

ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश ए-
वातोऽन्यदार्त्तं । ततो ह कहोलः कौषी-
तकेय उपरराम ॥ १ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
पंचमं कहोल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

वैहै ॥ ॥ सो ब्राह्मण किसकरि होवैहै ? जि-
सकरि होवै तिसकरि ईदृश (ऐसा) हीं हो-
वैहै ॥ इसतैं अन्य आर्त्त है ॥ ॥ तदनंतर क-
होल कौषीतकेय उपराम होताभया ॥ १ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

ज्ञात है औ ऐँक कार्यकरणके संघातके दो आ-
त्मा संभवते नहीं ॥ जातैं ऐँक कार्यकरणका
संघात । एक आत्माकरि आत्मवान् होवैहै औ
उँपँस्तका अन्य । कहोलका अन्य ॥ जातितैं (स्व-

५६८ तथापि अर्थभेदविषै कौन असंभव है ? तहां कहैहैं ॥

५६९ ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥

५७० कार्य करणके संघातके भेदतैं आन्मभेदकूं आशंका

भावतै) भिन्न आत्मा नहीं है । काहेतै ^{५७१}दोनोंको अगौणता आत्मता अरु सर्वांतरताके असंभवतै ॥ जबे दोनोंके मध्य एक अगौण ब्रह्म होवै । तब इतर गौणकरि अवश्य होना योग्य है । तैसेँ आत्मता औ सर्वांतरता है । पदार्थनकूं विरुद्ध होनेतै ॥ जबे एक सर्वांतर ब्रह्मरूप आत्मा मुख्य होवै । तब इतर असर्वांतर अनात्मरूप अमुख्यकरि अवश्य होना योग्य है । ताँतै ए-

करिके कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—जातितै कहिये स्वभावतै (अहं अहं इस एक आकारतै) ॥

५७१ यातैबी तत्वका भेद नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

५७२ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—दोनोंके मध्य जब एक ब्रह्म अगौण (मुख्य) होवै । तब इतर गौणकरि अवश्य होना योग्य है । तैसेँ आत्मता आदिक जब एककूं इष्ट होवै । तब इतरकूं अनात्मता आदिक इष्ट होवैगा ॥

५७३ किस कारणतै होवैगा ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

५७४ उक्त अर्थके उपपादन पूर्वक दोवार श्रवणके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अनेककी मुख्यताके असंभवतै वस्तुतै परिच्छिन्नकूं घटकी न्याई अब्रह्मरूप होनेतै औ अनात्मरूप होनेतै एकहीं मुख्य प्रत्यकरूप ब्रह्म है ॥

५७५ ननु जव जीव ईश्वरके भेदके अभावतै दोनूं प्रश्नोके अर्थका भेद नहीं है । तब पुनरुक्ति व्यर्थ होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

कहीं आत्माका दो वार श्रवण । विशेष विवक्षा-
 के विषै है ॥ ॥ औ जो पूर्व उक्तकरि समान^{५७६}
 द्वितीय प्रश्नांतरविषै तावन्मात्र कहा । सो पूर्व-
 काहीं अनुवाद है । ताहीका अनुक्त कोईक वि-
 शेष कहनेकूं योग्य है इति ॥ ॥ कौन फेर यह^{५७७}
 अनुक्त विशेष है? यह कहियेहै:—पूर्व प्रश्नविषै^{५७८}
 व्यतिरिक्त आत्मा है । जाकूं यह सप्रयोजक बं-
 ध कहा । यह कहियेहै ॥ द्वितीय प्रश्नविषै तो
 तिसीहीं आत्माकी अशनायाआदिक संसार
 धर्मतैं अतीततारूप विशेष कहियेहै ॥ संन्या-
 ससहित जिस विशेषके परिज्ञानतैं पूर्वउक्त बं-
 धनतैं विमुक्त होवैहै । तैंतैं “यह तेरा आत्मा

५७६ तब सोई विशेष दिखावनेकूं योग्य है । जिसकरि
 पुनरुक्ति अर्थवाली होवै ? यह आशंकाकरि कहैहैं ॥

५७७ अनुक्त विशेषके कथन अर्थ उक्त परिमाणकूं निर्णय
 करनेकूं जब अनुवाद होवै । तब अनुक्त विशेष दिखावनेकूं
 योग्य है ? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

५७८ जाननेकूं इच्छित विशेषकूं सिद्धांती दिखावै हैं ॥ इहां
 इति शब्द जो है सो क्रियापदके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

५७९ ननु यह विशेष क्यूं दिखाईये है ? तहां कहैहैं ॥

५८० अर्थभेदके असंभव हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां
 “ जो अशनाया ” इत्यादि वाक्यकरि तो विवक्षित विशेषकी
 उक्ति है । यह शेष है ॥

है” ऐसे अंतवाले प्रश्न अरु प्रतिवचनकी तुल्यार्थताही है ॥ ॥ नैनुं एकहीं आत्माकूं अशनाया आदिकतैं अतीतपना औ बद्धपना ऐसैं विरुद्ध धर्मोंका समवायिपना कैसें घटै ? यह शंका ब-
 ५८२
 नै नहीं:—काहेतैं परिहार करी हुई होनेतैं ॥
 यातैं नाम रूप अरु विकार मय कार्य करणरूप संघातमय उपाधिभेदसैं संसर्गकरि जनित भ्रांतिमात्र संसारीपना है। ऐसैं हम वारंवार कहते-
 भये औ विरुद्ध श्रुतिनके व्याख्यानके प्रसंगक-

५८१ एकहीं आत्मतत्त्वकूं आश्रयकरिके । दोनूं प्रश्न हैं इस अर्थवित्तै ॥ प्रियापादी प्रश्नकूं करैहै ॥

५८२ विरुद्ध धर्मवाले होनेतैं परस्पर भिन्न दोनूं प्रश्नोंके अर्थ हैं । इस कथनकूं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥

५८३ परिहृतपनैकूंहीं प्रकट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
 तिन दोनूं (नामरूप)का विकार जो कार्यकरणरूप संघात । सोई उपाधिका भेद है । तिसके साथि जो संपर्क है । तिस-
 विषै अहं ममाध्यासकरि जनित मैं कर्ताहूं इत्यादिरूप जो भ्रां-
 ति । तावन्मात्र संसारीपना है । ऐसैं हमनैं अनेकवार प्रति-
 पादन किया है । तातैं वस्तुतैं विरुद्ध धर्मवान्पना नहीं है ॥

५८४ किंवा:—सविशेषता औ निर्विशेषताकी श्रुतिनके विषयविभागके कथनके प्रसंगकरि संसारीभावके मिथ्याप-
 नैकूं मधुब्राह्मणके अंतविषै हम पूर्व कहतेभये । ऐसैं कहैहैं ॥

रि कहतेभये ॥ जैसें ^{५८५} रज्जुशुक्तिका अरु गगन
 आदिक । परकरि अध्यारोपित धर्मकरि विशिष्ट
 हुये सर्प रजत अरु मलिन (नील) रूप होवै-
 हैं । स्वतः केवलहीं रज्जु शुक्तिका अरु गगन
 आदिक हैं ॥ ऐसें ^{५८६} विरुद्धधर्मके समवायिपनैके
 हुये पदार्थनका कोईबी विरोध नहीं है ॥ ॥
 नैनु नामरूपमय उपाधिकी अस्तिताकरि “ए-
 कहीं अद्वितीय है । इहां नाना कलुबी नहीं है”
 ऐसी श्रुतियां विरोधकूं पावतीयां हैं ? इस प्र-
 कार जो प्रतिवादी कहै । सो ^{५८८} बनै नहीं:—काहे-

५८५ ननु तब विरुद्ध धर्मवान्ताकी प्रतीति कैसें होवै-
 है ? यह आशंकाकरिके । कहैहैं ॥ इहां पर पुरुषकरि वा
 अज्ञानकरि अध्यारोपित सर्पभाव आदिक धर्मोंकरि विशिष्ट ।
 यह अर्थ है औ स्वतः याका अध्यारोपसैं विना । यह अर्थ है ॥

५८६ ननु प्रतिभासतैं विरुद्ध धर्मवान्ताके हुयेबी क्षेत्रज्ञ
 अरु ईश्वरकूं भिन्न होनेतैं भिन्न अर्थवालेहीं दोनूं प्रश्न हैं ?
 ऐसें जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसें कहैहैं ॥

५८७ निरुपाधिक रूपकरि असंसारीपना है । सोपाधिक
 रूपकरि संसारीपना है । ऐसें अविरोध कहा ॥ अब उपा-
 धिके अंगीकार हुये याहीकूं सद्रूपपना है । काहेतैं इसीहीं
 घटादिककी उपाधिताकी दृष्टितैं ? इस प्रकार प्रतिवादी
 शंका करैहै ॥

५८८ फेन आदिकविकार सलिलतैं भिन्न नहीं हैं औ मृ-

तैं सलिलफेनके दृष्टांतकरि औ मृत्तिका आदि-
क दृष्टांतोंकरि परिहृत होनेतैं ॥ ॥ औ श्रुति
अनुसारीनकरि परमार्थदृष्टिसैं निरूप्यमाण
नाम रूप । परमात्मतत्त्वतैं अन्यताकरि मृदादि
विकारकीन्यांई तत्त्वतैं वस्तु अंतरविषै सलिल-
फेन घटादि विकारकीन्यांईहीं जब नहीं हैं ।
तब ता (परमात्मतत्व)की अपेक्षाकरि “एकहीं
अद्वितीय है । इहां नाना कलुबी नहीं है” इ-
त्यादि परमार्थदर्शनकी गोचरताकूं पावताहै ॥

त्तिकाके विकार शराव आदिकबी मृत्तिकातैं भिन्न नहीं हैं ।
इस दृष्टांतनामक युक्तिके बलतैं अविद्या अरु नामरूपकरि
रचित कार्य करणके संघातकूं अविद्यामात्र होनेतैं औ तिस
अविद्याके निरासतैं ऐसैं बनै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती
परिहार करैहैं ॥

५८९ कार्यके सत्वकूं अंगीकार करिके कथनतैं निरूप्य-
माण नामरूप हैं । अब सोबी नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां “इ-
सविषै नाना कलुबी नहीं है” इत्यादि श्रुतिके अनुसारि
पुरुषनकरि वस्तुदृष्टिकरि निरूप्यमाण नामरूप परमात्म-
तत्वतैं अन्यताकरि औ अनन्यताकरि अनिरूप्यमाण हुये त-
त्वतैं वस्तु अंतररूप जब तो नहीं हैं । ऐसैं संबंध है ॥

५९० मृदादिविकारकी न्यांई ऐसैं कथन किये अर्थकूं प्र-
कट करैहैं ॥ इहां तब तिस परमात्मतत्वकूं अपेक्षाकरिके
ऐसैं योजना करनेकूं योग्य है ॥

औ 'जैव' स्वाभाविक अविद्याकरि ब्रह्मस्वरूप र-
ज्जु शुक्तिका अरु गगनके स्वरूपकीन्यांईहीं
स्वरूपकरि वर्तमान अरु किसीकरिबी अस्पृष्ट
स्वभाववालावी हुया नाम रूप कृत कार्यकरण-
रूप उपाधिनतैं विवेककरि नहीं निश्चय करिये
है औ नामरूपमय उपाधिकी दृष्टिहीं स्वाभा-
विकी होवैहै । तव सर्व यह वस्तुके भेदकी अ-
स्तित्ताका व्यवहार है औ यँहँ भेदका किया मि-
थ्या व्यवहार । जिनकूं ब्रह्मतत्त्वतैं अन्यताकरि
वस्तु है औ जिनकूं नहीं है । तिन सर्वकूं है ॥
५९३ परंतु क्या द्वितीय वस्तुतत्त्वतैं है किंवा नहीं है

५९१ तव लौकिक व्यवहार कब होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

५९२ स्वाभाविक अविद्याकरि ब्रह्म जब उपाधिनतैं विवे-
ककरि नहीं निश्चयकरियेहै । तव जो लौकिक व्यवहार होवै
तो विवेकिनका यह (व्यवहार) नहीं होवैगा ? यह आशंका
करिके कहैहैं ॥ इहां भेद प्रतीतिका किया व्यवहार । विवे-
किनका औ अविवेकिनका तुल्यहीं है । यह वस्तुअंतरके
अस्तित्वका अभिनिवेश तो विवेकिनकूं नहीं है । यह विशे-
ष है ॥

५९३ ननु यथाप्रतिभास वस्तुअंतर पारमार्थिकहीं क्यूं
नहीं होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—द्वितीय
वस्तु क्या तत्त्वतैं है किंवा नहीं है । ऐसैं वस्तुके निरूप्य-
माण हुये श्रुति अनुसारसैं तत्व दर्शिनकरि एकहीं अद्वितीय

ऐसैं वस्तुके निरूप्यमाण हुये श्रुति अनुसारसैं परमार्थदर्शिनकरि एकहीं अद्वितीय सर्व संव्यवहार शून्य ब्रह्म है ऐसैं निर्धार करियेहै । तिसकरि कोईबी विरोध नहीं है । “जाँतैं परमार्थके अवधारणरूप निष्ठाविषै अन्यवस्तुकी अस्तित्तातैं हम नहीं जानतेहैं “एकहीं अद्वितीय अनंतर अबाह्य है ” इस श्रुतितैं औ नॉमरूपके व्यवहारकालविषै तो अविवेकिनकूं क्रिया कारक अरु फल आदिकका संव्यवहार नहीं है ऐसैं प्रतिषेध नहीं करियेहै । “ताँतैं ज्ञान अरु अज्ञानकूं अपेक्षाकरिके सर्व शास्त्रीय औ लौकिक

ब्रह्म अव्यवहार्य है । ऐसैं निश्चयकरिये है । तिसकरि व्यवहार दृष्टिके आश्रय करनेसैं भेदका किया मिथ्या व्यवहार है औ तत्त्वदृष्टिके आश्रय करनेसैं ताके अभावकूं विषय करनेवाला शास्त्रीय व्यवहार होवैहै । ऐसैं उभयविध व्यवहारकी सिद्धिहै ॥

५९४ तहां शास्त्रीय व्यवहारकी उपपत्तिकूं प्रपंचन करैहैं । इहां तिसप्रकार हुये विद्याअवस्थाविषै शास्त्रीय भेद व्यवहार होवैहै । तिसतैं इतर (लौकिक) व्यवहार तो आभासमात्र है । यह शेषहै ॥

५९५ अविद्या अवस्थाविषै लौकिकव्यवहारकी उपपत्तिकूं विवरण करैहैं ॥

५९६ उभयविध व्यवहारकी उपपत्तिकूं उपसंहार करैहैं ॥

संव्यवहार हैं । ^{५९८} "योंतैं कोईवी विरोधकी शंका नहीं है ॥ औ सर्व वादिनकावी प्रत्यक्षादिकविषै अरु वेदांतोंविषै परमार्थसैं संव्यवहार (परस्पर-संबंध)का किया व्यंवहार अपरिहार्य है । तहां परमार्थ आत्मस्वरूपकूं अपेक्षाकरिके "हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा सर्वांतर है" ऐसा पुनः प्रश्न है ॥ ॥ तहां याज्ञवल्क्य प्रत्युत्तर कहैहैं:— जो अशनाया पिपासाकूं । अशन करनेकी

५९७ उक्तरीतिसैं दोनूं व्यवहारनकी उपपत्तिके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां प्रत्यक्षादिकनविषै औ वेदांतनविषै [कोईवी विरोधकी शंका नहीं है] यह शेष है ॥

५९८ ज्ञान अरु अज्ञानकूं पूर्व करिके शास्त्रीय अरु लौकिक व्यवहार होवैहै । ऐसैं हमोंकरिहीं नहीं कहिये है किंतु सर्व परीक्षकोंकूं यह संमत है । काहेतैं संसारदशाविषै औ क्रिया कारक व्यवहारके मोक्षकी अवस्थाविषै ता (व्यवहार)कूं इष्ट होनेतैं । ऐसैं कहैहैं ॥

५९९ निरुपाधिक परमात्माविषै चिद्धनादिककी अविद्याकरि कल्पित उपाधिका क्रिया अशनायादिमान्तरारूप वस्तु है । तिसतैं राहित्य है । ऐसैं उपपादन करिके अनंतरके प्रश्नकूं उठायके प्रत्युत्तर देते हैं ॥ इहां "तहां" यह सप्तमी कल्पित अरु अकल्पित आत्मरूपके निर्धारण अर्थ है औ जो अतिक्रमण करैहै सो सर्वांतरतादि विशेषणवाला तेरा आत्मा है । यह शेष है ॥

इच्छा । अशनाया कहियेहै । पान करनेकी इच्छा पिपासा कहियेहै । तिन अशनाया पिपासाकूं जो अतिक्रमण करैहै । ऐसैं वक्ष्यमाणसैं संबंधहै ॥^{६००} अविवेकीजनोंकरि तलमलवान्कीन्यांई गगन प्रतीत हुयाहीं परमार्थतैं तलमलकूं उल्लंघन करैहै । परमार्थतैं तिन दोनूके साथि संसर्गरहित स्वभाववाला होनेतैं । तैसैं मूढजनोंकरि मैं भूख्याहूं । मैं तृषितहूं । ऐसैं पिपासा आदिकवाला ब्रह्म । प्रतीयमान हुयावी परमार्थतैं तिनकूं अतिक्रमण करैहीं है ॥ परमार्थतैं तिन दोनूकरि संसर्गरहित स्वभाववाला होनेतैं ॥

६०० ननु परमात्मा अशनायादिमान् नहीं है । अप्रसिद्धितैं । जीववी नहीं है काहेतैं तैसैं ताके परमात्मातैं अव्यतिरेकतैं ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अखंड सच्चिदानंदरूप ब्रह्महीं अनादि अविद्या अरु तत्कार्य बुद्धि आदिकसैं संबंधवालाहुया आभासद्वारा स्वानुभवतैं अशनायादिमान् प्रतीत होवैहै । वस्तुतैं तत्व । अविद्या आदिकके असंबंधतैं अशनायादिकतैं अतीत नित्यमुक्त स्थित होवैहै ॥ इहां आचार्य । अशनाया अरु पिपासा आदिकवाला ब्रह्म प्रतीयमान होवैहै ऐसैं कहते हुये नानाजीववादकी अनिष्टताकूं सूचन करैहैं ॥

औ “बाह्य (असंग) हुआ लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं ” इस श्रुतितैं ॥ इहां लोक दुःखकरि । याका अविद्वान् लोकोंकरि आरोपित दुःखसैं । यह अर्थ है ॥ अशनाया अरु पिपासाकूं प्राणका मुख्य धर्म होनेतैं तिनका समासकरण (एकत्र ग्रहण) है ॥ औ शोककूं मोहकूं उलंघन करैहै ॥ इहां शोक एसैं काम कहियेहै । जातैं ईष्ट्वस्तुकूं उद्देश करिके चिंतन करनेवाले अरु ताकी तृष्णाकरि अभिभूतकूं जो अरति (शोक) होवैहै । सो कामका बीज है । तिसंकरि जातैं काम प्रदीप्त होवैहै ॥ मोह तो विप-

६०१ परमार्थतैं ब्रह्मविषै अशनायादिकके असंबंधमें प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां बाह्यपना कहिये असंगपना ॥

६०२ ननु इहां लोकके दुःखकरि यह कथन अयुक्त है काहेतैं लोक जो आत्मा । ताकूं दुःखके संबंधके अनंगीकारतैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६०३ अशनाया अरु पिपासाके साथि ग्रहणविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६०४ अरतिका वाची शोकशब्द कामकूं विषय करनेवाला नहीं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६०५ अरतिकी कामबीजताकूं अनुभवकरि प्रकट करैहैं ॥

६०६ कामका शोक बीज है । यातैं सो कामरूपताकरि

रीत भावनाकरि उत्पन्न होनेवाला अविवेकरूप भ्रम है औ सो सर्व अनर्थके प्रसवका बीजरूप अविद्या है ॥ तिन शोक मोह दोनूंकूं भिन्न कार्यवाले होनेतैं तिन दोनूंका असमासकरण (भिन्न भिन्न ग्रहण) है । वे दोनूं मनरूप आश्रयवाले हैं ॥ तैसैं शरीररूप आश्रयवाले (शरीरके धर्म) जराकूं औ मृत्युकूं उल्लंघन करैहै ॥ इहां जरा कहिये वलीपलितादि लिंगवाला कार्यकरणके संघातका विपरिणाम औ मृत्यु कहिये तिस (कार्यकरणके संघात)तैं विच्छेदरूप विपरिणामका अवसान । तिन शरीररूप अधिकर-

व्याख्यान किया । अनित्य अशुचि दुःख अरु अनात्माविषै नित्य शुचि सुख अरु आत्माकी ख्यातिरूप जो विपरीत प्रत्यय है । तिसतैं मनविषै कर्त्तव्य अरु अकर्त्तव्यका अविवेक प्रभवकूं पावता है । सो लौकिक सम्यक् ज्ञानसैं विरोधवाला भ्रम अविद्या (कार्याअविद्या) ऐसैं कहियेहै । ताका सर्व अनर्थकी उत्पत्तिविषै निमित्तपना है औ मूल अविद्याका उपादानपना है । सो यह कहैहैं ॥ इहां कामका हेतु शोक है औ दुःखका हेतु मोह है । ऐसैं दोनूंकी भिन्न कार्यता है औ ताका विच्छेद । इस ठिकाने कार्यकरणका संघात तत् शब्दका अर्थ है ॥

णवाले जरा मृत्युकुं उल्लंघन करैहै ॥ जे अश-^{६०७}
नाया आदिक प्राण मन अरु शरीरके आश्रित ।
अहोरात्र आदिककीन्यांई औ सँद्रकी उर्मि-
ओंकी न्यांई प्राणिनविषै निरंतर वर्त्तमान हैं ।
वे प्राणिनविषै संसार है । ऐसैं कहियेहै ॥ ॥

६१३

जो यह दृष्टिका द्रष्टा । इत्यादि लक्षणवाला है ।
सो साक्षात् कहिये अव्यवहित औ अपरोक्ष क-
हिये अगौण सर्वांतर ऐसा ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत
भूतनका आत्मा है । सो घनादि मलोंकरि आ-

६०७ संसारतैं विरक्तकुं पारिव्राज्य कहनेकुं उत्तर वाक्य
है । इस अभिप्राय करिके संक्षेपतैं संसारके स्वरूपकुं
कहैहैं ॥

६०८ तिनकी आत्मधर्मताकुं व्यावर्त्तन करनेकुं विशेषण
देते हैं ॥

६०९ प्रवाहरूपसैं निरंतरताविषै दृष्टांतकुं कहैहैं ॥

६१० तिनकी अतिचपलताविषै दृष्टांत ॥

६११ तिनकी सरसतैं विच्छेदकी शंकाकुं निवारण करैहैं ॥

६१२ तिनकी हेयताकुं द्योतन करैहैं ॥ इहांः—जे उक्त
प्रकारके प्राणीनविषै अशनायाऽऽदिक हैं । वे तिनोंविषै संसार
है । ऐसैं कहियेहै । इसप्रकारसैं योजना है ॥

६१३ “ इसीहीं तिस आत्माकुं ” इस ठिकाने तत् श-
ब्दके अर्थरूप उपस्तके प्रश्नविषै उक्त त्वंपदार्थकुं कथन करैहैं ॥

काशकीन्यांई अंशनाया अरु पिपासाआदिक संसार धर्मोंकरि सदा नहीं स्पर्श करियेहै ॥ तिसैं इस आत्मा (स्वतत्व)कूं सदा सर्व संसारतैं विनिर्मुक्त नित्यतृप्त परब्रह्मरूप यँह (आत्मा) में हूं ऐसैं जानिके ब्राह्मण व्युत्थान करिके भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं ॥ ब्राह्मणनकूंहीं व्युत्थान (संन्यास) विषै अधिकार है। यातैं इहां ब्राह्मणका ग्रहण है ॥ व्युत्थानकरि कहिये विपरीत भावकरि उत्थान करिके ॥ ॥ किसतैं उत्थानकरिके ? यह शंका भयी। यातैं कहैहैं:— पुत्रैषणातैं। पुत्रके अर्थ जो एषणा सो पुत्रैषणा कहियेहै। पुत्रकरि इस लोककूं में जय करूंगा। ऐसैं लोक जयके साधन पुत्रके प्रति

६१४ ऐतत् शब्दके अर्थरूप कहोलके प्रश्नविषै उक्त तत् पदार्थकूं दिखावै हैं ॥

६१५ तिन दोनूँका एकत्व सामानाधिकरण्यकरि सूचन किया। ऐसैं कहैहैं ॥

६१६ ज्ञानकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां:—जानिके ब्राह्मण व्युत्थानकूं करिके भिक्षाचर्यकूं चरते हैं। ऐसैं संबंध है ॥

६१७ ननु संन्यासके विधायक वाक्यविषै अधिकारीमें ब्राह्मण पद क्यूँ है ? तहां कहैहैं ॥

६१८ पुत्रके अर्थ एषणाकूंहीं विवरण करैहैं ॥

जो इच्छा सो एषणा है कहिये दारसंग्रह है। तिसतैं व्युत्थानकरिके। अर्थ यह जो दारसंग्रहकूं न करिके औ वित्तैषणातैं । इहां वित्तशब्दकरि कर्मके साधन गौआदिकका ग्रहण है ॥ इस वित्तकरि कर्मकरिके मैं पितृलोककूं जय करूंगा वा विद्यासंयुक्त कर्मकरि देवलोककूं जय करूंगा वा केवल हिरण्यगर्भकी विद्यारूप दैव वित्तकरि देवलोककूं जय करूंगा ऐसी जो इच्छा सो वित्तैषणा है । तिसतैं व्युत्थानकरिके ॥ ॥ ननु दैव वित्ततैं व्युत्थानहीं नहीं है । जातैं ताके बलतैंहीं प्रसिद्ध व्युत्थान होवैहै ? ऐसैं केईकक-

६१९ तिसतैं व्युत्थानकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

६२० वित्तैषणातैंवी व्युत्थान कर्त्तव्य है ऐसैं कहैहैं ॥

६२१ मानुष औ दैव भेदतैं वित्त द्विविध है । मानुषवित्त गवादिरूप है । तिस कर्म साधनका उपादान कहिये उपा-
र्जन । तिसकरि कर्मकूं करिके । केवल कर्मसैं मैं पितृलोककूं जय करूंगा ॥ दैववित्त विद्या है । तिसकरि संयुक्तकर्मसैं देवलोककूं औ केवल विद्याकरि तिसीहीं लोककूं जय करूंगा । ऐसी जो इच्छा सो वित्तैषणा है । तिसतैंवी व्युत्थान कर्त्तव्य है । ऐसैं व्याख्यान करैहैं ॥ इसकरि लोकैषणातैंवी व्युत्थान कहा । तैसैं जाननेकूं योग्य है ॥

६२२ दैव वित्ततैं व्युत्थानके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करैहै ॥

हतेहैं ॥ सो असत् है—काहेतैं “ इतनाहीं काम है” इस श्रुतिविषै दैव वित्तकूं एषणाके मध्य पठन किया होनेतैं ॥ हिरण्यगर्भआदिक देवताकूं विषय करनेवालीहीं विद्या अविद्या ऐसैं कहियेहै । देवलोककी हेतु होनेतैं ॥ जातैं निरुपाधिक प्रज्ञानघनकूं विषय करनेवाली ब्रह्मविद्या देवलोककी प्राप्तिकी हेतु नहीं है । “ तातैं सो सर्व होताभया । जातैं इनका सो आत्मा होवैहै” इस श्रुतितैं । ताँके बलतैंहीं व्युत्थान होवैहै “तिस इस आत्माकूं जानिके” इस विशेष वचनतैं ॥ तातैं इन तीनबी अनात्मलोक-

६२३ ताकूंबी कामरूप होनेतैं तिसतैं व्युत्थान करनेकूं योग्य है । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

६२४ तब ब्रह्मविद्यातैंबी व्युत्थानतैं ताके मूलके ध्वंस हुये ताका व्याघात होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६२५ देवताकी उपासनाके वित्तशब्दकरि उक्त विद्यापनैविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६२६ तिसकी प्राप्तिकी हेतुता ब्रह्मविद्याविषैबी तुल्य है ? ऐसैं जो कहे । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

६२७ तहां फलांतरके श्रवणकूं हेतु करैहैं ॥

६२८ यातैंबी ब्रह्मविद्या दैववित्ततैं बाहीरहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

६२९ पूर्वहीं जब वेदन सिद्ध होवै । तब फेर व्युत्था-

की प्राप्तिके साधनरूप एषणाके विषयनतैं व्यु-
त्थानकरिके । एषणा काम है “इतनाहीं काम
है” इस श्रुतितैं । ईस^{६३०} त्रिविध अनात्मलोककी
प्राप्तिके साधनविषै तृष्णाकूं न करिके । यह अर्थ
है ॥ जातैं सर्व साधनेच्छा फलेच्छाहीं है । या-
तैं श्रुति व्याख्यान करैहै? एकहीं एषणा है ऐ-
सैं ॥ ॥ कैसैं^{६३३} कि:-जोई पुत्रैषणा है । सो-
वित्तैषणा है । अदृष्टरूप फलकी साधनताके
तुल्य होनेतैं ॥ जो कर्मभूत वित्तैषणा है । सो

नसैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंका करिके । प्रयोजक ज्ञान
ताका प्रयोजक है । उद्देश्य तो तत्व साक्षात्कार है । ऐसी
विवक्षा करिके कहैहैं ॥ इहां प्रयोजक ज्ञान पंचमीका अर्थ
है औ व्युत्थान करिके भिक्षाचर्यकूं चरते हैं ऐसैं संबंध है ॥

६३० व्युत्थानके स्वरूपकूं दिखावने अर्थ एषणाके स्व-
रूपकूं कहैहैं ॥

६३१ ननु इतनेकरि क्या भया ? यह आशंका करिके ।
व्युत्थानके स्वरूपकूं कहैहैं ॥ इहां संबंध तो पूर्वकी न्याई है ॥

६३२ “ जोईहीं ” इत्यादि श्रुतिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां
यह अर्थ है:-फलकूं नहीं इच्छता है औ साधनकूं करनेकूं
इच्छता है । इस व्याघाततैं फलेच्छाके अंतर्भूतहीं साधनेच्छा
है । तातैं दोनूं एषणाकी एकता युक्त है ॥

६३३ श्रुतिकूं तिन दोनूंकी एकताकी प्रतिपादकता है ।
ताकूं प्रश्नपूर्वक व्युत्पादन करैहैं ॥

लोकैषणा है । सो (साधनैषणा) फलके अर्थ-
 हीं है । जाँतैं सर्व पुरुष फलके अर्थ प्रयुक्त हु-
 याहीं सर्व साधनकूं ग्रहण करैहै । यातैं एकहीं
 एषणा है ॥ जो लोकैषणा है सो साधनविना
 संपादनकरनेकूं शक्य नहीं होवैहै । यातैं साधन
 साध्यके भेदकरि दोनूं जातैं ये दो एषणाहीं
 होवैहैं । तातैं ब्रह्मवेत्ताकूं कर्म वा कर्मका सा-
 धन नहीं है ॥ यातैं जे सर्व कर्मकूं औ सर्व देव
 पितृ मानुष निमित्त कर्मके साधनकूं अतिक्रांत
 ब्राह्मण हैं [तिनकूं कर्म औ कर्मका साधन य-
 ज्ञोपवीतादि नहीं है] जाँतैं तिस (यज्ञोपवीता-

६३४ साधनैषणाके फलैषणाविषै अंतर्भावकूं समर्थन
 करैहैं ॥

६३५ “ दोनूंहीं ” इत्यादि श्रुतिकूं अवतार देके व्या-
 ख्यान करैहैं ॥

६३६ प्रयोजक (प्रेरक)के ज्ञानवाले औ साध्य अरु सा-
 धनरूप संसारतैं विरक्तकूं कर्म अरु तत् साधनके असंभव
 हुये साक्षात्कारकूं उद्देश करिके फलित संन्यासकूं दिखावै
 हैं ॥ इहां अतिक्रांत ब्राह्मण- प्रजाकरि हम क्या करैगे । इ-
 त्यादि श्रुतिकरि प्रकाशित है । तिनकूं कर्म औ कर्मका सा-
 धन यज्ञोपवीतादि नहीं है । ऐसैं संबंध है ॥

६३७ देव पितृ अरु मानुष कर्मका निमित्त । इस विशे-

दि) करि दैव पित्र्य औ मानुष कर्म करियेहै ।
 “निवीत (कंठविषै वेष्टनकिया यज्ञोपवीत) म-
 नुष्यनका है” इत्यादि श्रुतितैं ॥ तैंतैं पूर्वले
 ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) कर्म औ यज्ञोपवीतादिरूप
 कर्मके साधनोतैं व्युत्थानकरिके कहिये परमहं-
 स पारिव्राज्यकूं प्राप्त होयके भिक्षाचर्यकूं चरते
 हैं । भिक्षाके अर्थ जो चरण सो भिक्षाचर्य है
 ताकूं आचरतेहैं । केवल आश्रममात्र शरणवा-
 ले पुरुषनकूं जीवनके साधन पारिव्राज्यके प्र-
 काशक स्मार्त्त लिंगकूं त्यागकरिके। “विद्वान् लिं-

पणकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां प्राचीनावीत पितरनका है । उप-
 वीत देवनका है । यह आदिशब्दका अर्थ है ॥

६३८ जातैं पूर्वले विचारके प्रयोजकके ज्ञानवाले ब्राह्मण
 विरक्त हुये संन्यासकूं करिके । तत् प्रयुक्त धर्मकूं अनुष्ठान
 करते भये । तातैं आधुनिकबी प्रयोजकके ज्ञानवाला विरक्त
 ब्राह्मण तैसैं करै । ऐसैं कहैहैं ॥

६३९ तिस (त्रिदंड संन्यास) कूं इष्ट फलवाला होनेतैं
 मुमुक्षुनकरि ताकी त्याज्यताकूं सूचन करैहैं ॥

६४० अमुख्य होनेतैंबी ताकी त्याज्यता है । ऐसैं कहैहैं ॥

६४१ “त्रिदंडकरि यतिहीं” इत्यादि स्मृतितैं इहां प-
 रमहंस संन्यास विवक्षित नहीं है ? यह आशंका करिके ।
 कहैहैं ॥

६४२ तथापि तुज (सिद्धांती) कूं इष्ट जो संन्यास है सो

गवर्जित होवैहै । तातैं अलिंग धर्मज्ञ अव्यक्त-
लिंग अव्यक्ताचार है” इन स्मृतिनतैं औ “काँषा-
य वस्त्रवाला मुंड अपरिग्रहहीं परिव्राद् होवै-
है” इत्यादि श्रुतिनैं शिखासहित केशनकूं नि-
काशिके औ यज्ञोपवीतकूं विरुद्धकरिके इति ॥
ननु “व्युत्थानकरिके भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं” ऐ-
सैं वर्त्तमानके अपदेश (निमित्त)तैं यह अर्थ-
वाद है । लिङ् । लोट् । तव्य प्रत्ययनके मध्य
अन्यतम (एक)बी विधायक (विधिवाचक) प्र-
त्यय कोईक नहीं सुनियेहै । तातैं अर्थवाद-
मात्रकरि श्रुतिस्मृति विहित यज्ञोपवीतादि सा-
धनोंका परित्याग करावनेकूं शक्य नहीं होवै-
है । यज्ञोपवीतीहीं हुया अध्ययन करै यजन क-

स्मृतिकारोंकरि निबद्ध (नियम किया) नहीं है? ऐसैं
जो कहै । सो बने नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

६४३ प्रत्यक्ष श्रुतिके विरोधतैंबी स्मार्त्त संन्यास मुख्य
नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

६४४ “इसीहीं तिस आत्माकूं” इत्यादि वाक्यकी वि-
धायकता (विधिबोधकता)कूं अंगीकार करिके सर्व कर्म अरु
तत् साधनके परित्यागकी परता कही । ताके तांई प्रतिवादी
आक्षेप करैहै ॥

६४५ इस कहनेके हेतुतैंबी यज्ञोपवीत अपरित्याज्य है ।
ऐसैं प्रतिवादी कहैहै ॥

रावै वा यजन करै । पारिव्र^{६४६}ज्यविषै प्रथम अ-
ध्ययन विहित है । वेदके संन्यासतैं शूद्र होवैहै ।
तातैं वेदकूं नहीं त्यागकरै । ऐसैं औ स्वाध्याय-
विषैहीं वाचाकूं त्यागता हुया । ऐसैं आपस्तंब
कहैहै औ “ब्रह्म (वेद)का त्याग अरु वेदनिंदा
कूटसाक्षीपना सुहृद्का वध निंदितअन्न अरु
अभक्ष्यका भक्षणये षट् सुरापानके सम हैं” ऐ-
सैं वेदके परित्यागविषै दोषके श्रवणतैं औ गु-
रुनकी वृद्धोंकी अतिथिनकी उपासनाविषै । हो-
मविषै । जप्यकर्मविषै । भोजनविषै । आच-
मनविषै । औ स्वाध्यायविषै यज्ञोपवीतवाला
होवै । ऐसैं गुरुउपासन आदिकनका अंग होने-

६४६ ननु याजन (होमादि कर्म) आदिकके सम्यक् अ-
भिव्यवहारतैं संन्यासीकूं अविषय करनेवाला यह वाक्य है ?
यह आशंका करिके प्रतिवादी कहैहै ॥

६४७ ननु वेदके त्यागविषै दोषकी श्रुतितैं ताके अत्या-
गके हुयेवी संन्यासविषै यज्ञोपवीतीपना कैसें होवैगा ? यह
आशंका करिके । प्रतिवादी कहैहै ॥ इहां ऐसैं अन्वय है:—
इस वाक्यकरि गुरु आदिकनकी उपासनाका अंग होनेकरि
यज्ञोपवीतकूं विहित होनेतैं । पारिव्राजक धर्मोंविषै गुरु उ-
पासना आदिककूं कर्त्तव्यताकरि श्रुति स्मृतिविषै चोदित हो-
नेतैं । यज्ञोपवीतका परित्याग जाननेकूं शक्य नहीं होवैहै ॥

करि यज्ञोपवीतकूं विहित होनेतैं पारिव्राजक धर्मोंविषै गुरुउपासन स्वाध्याय भोजन आचमन आदिक कर्मोंकूं श्रुति स्मृतिविषै कर्त्तव्यतापरि चोदित होनेतैं ता (यज्ञोपवीत)का परित्याग ॥ जाननेकूं शक्य नहीं है ॥ यद्यपि तीन एषणातैं व्युत्थान विधान करियेहीं है । तथापि पुत्रादिककी जे एषणा । तिनतैंहीं व्युत्थान सुनियेहै । परंतु सर्व कर्मतैं औ कर्मके साधनतैं व्युत्थान नहीं सुनियेहै । औ सर्वके परित्याग हुये अश्रुत- किया होवैगा औ श्रुत जो यज्ञोपवीतादि सो त्यक्त होवैगा । तैसैं हुये विहितका अकरण अ- रु प्रतिषिद्धका आचरणरूप निमित्तका किया

६४८ अब प्रतिवादी । प्रौढि (अपनी उत्कर्षता)के प्रति आरूढ हुया व्युत्थानविषै विधिकूं अंगीकार करिके । दूषण देता है ॥

६४९ ननु तीन एषणातैं व्युत्थानके हुये एषणापनैके अ- विशेषतैं कर्मतैं औ ताके साधनतैं व्युत्थान होवैगा ? यह आशंका करिके । यज्ञोपवीतादिकका एषणापना असिद्ध है । इस आशयकरि प्रतिवादी कहैहै ॥

६५० अश्रुतके करनेविषै औ श्रुतके त्यागविषै “ विहित कर्मकूं न करता हुया ” इत्यादि स्मृतिकूं आश्रय करिके प्र- तिवादी दूषणकूं कहैहै ॥

महान् अपराध होवैगा । तौतैं यज्ञोपवीत आ-
दिक लिंगका परित्याग अंधपरंपराहीं है ? यहै
शंका बनै नहीं:—काहेतैं “यज्ञोपवीतकूं औ वेद-
नकूं तिस सर्वकूं यति वर्जना करै” इस श्रुतितैं ॥
किंवा सर्वै उपनिषद्कूं आत्मज्ञानपर होनेतैं “ऑ-
त्मा द्रष्टव्य है श्रोतव्य है मंतव्य है” ऐसैं जातैं
प्रस्तुत है औ सो आत्माहीं साक्षात् अपरोक्षतैं
सर्वांतर अशनायादि संसारधर्मतैं वर्जित है ।
ऐसैं जाननेकूं योग्य है । यह प्रथम प्रसिद्ध है ॥
जातैं सर्व यह उपनिषद् ऐसे अर्थकेपर है । या-

६५१ ननु यज्ञोपवीतादि लिंगका त्याग देखीये है । सो
तुजकरि काहेतैं निराकरण करिये है ? तहां प्रतिवादी कहैहै ॥

६५२ यह अंधपरंपरा नहीं है । इसरीतिसं सिद्धांती
परिहार करैहैं ॥

६५३ “ ब्रह्मचर्यतैंहीं गमन करै ” इत्यादि विधिके उप-
लंभ हुयेबी प्रौढिवादकरि आत्मज्ञानके विधिके बलतैंहीं सं-
न्यासकूं साधनेवास्ते प्रथम उपनिषदनकी आत्मज्ञानपरताकूं
उपन्यास करैहैं ॥ इहां यातैंबी संन्यासविषै विधि है यह अर्थ
है । ता विधिके बलतैंहीं संन्यासकी सिद्धि होवैहै यह शेष है ॥

६५४ ननु सर्व उपनिषद् आत्मज्ञानपर कैसें अंगीकार
करियेहै । ताकूं कर्त्ताकी स्तुतिद्वारा कर्मविधिकी शेष हो-
नेकरि अर्थवाद्रूप होनेतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

६५५ यथोक्त वस्तु जाननेकूं योग्य होइ । तथापि प्रस्तु-
तविषै क्या भया ? तहां कहैहैं ॥

तैं प्रथम अन्य विधिकी शेषता नहीं है । यातैं यह अर्थवाद नहीं है औ आत्मज्ञानकूं कर्त्तव्य होनेतैं आत्मा अशनायादि धर्मवाला नहीं हो-
 वैहै । ऐसैं साधन अरु फलतैं विलक्षण जानने-
 कूं योग्य है ॥ यातैं आत्मातैं व्यतिरेककरि जो
 ज्ञान सो अविद्या है । काहेतैं “यैहै अन्य है मैं
 अन्यहूं” ऐसैं सो नहीं जानताहै । सो मृत्युतैं
 मृत्युकूं पावताहै जो इहां नानाकीन्यांई देखता
 है । एकप्रकारकाहीं देखनेकूं योग्य है । एकहीं
 अद्वितीय है । “सो तूं है” इत्यादि श्रुतिनतैं क्रि-
 यैके फल औ साधन अशनायादि संसारधर्म-
 तैं अतीत आत्मातैं अन्य अविद्याका विषय है ।

६५६ ननु ता (आत्मज्ञान)की कर्त्तव्यताके हुयेबी कर्म
 अरु ताके साधनके त्यागकी सिद्धि कैसें होवैगी ? यातैं कहैहैं ॥

६५७ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

६५८ साधन अरु फलके अंतर्भूत होनेकरि जो आत्माका
 ज्ञान सो अविद्या है । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

६५९ क्रिया कारक अरु फलतैं विलक्षण आत्माका ज्ञान
 कर्त्तव्य है । ताके सामर्थ्यतैं साध्य अरु साधनका त्याग सिद्ध
 होवैहै । ऐसैं कहा ॥ अब अविद्याका विषय होनेतैंबी साध्य
 अरु साधनकी विद्यावान्करि त्याज्यता है ऐसैं कहैहैं ॥

“जहाँहीं द्वैतकीन्यांई होवैहै । यह अन्य है मैं अन्यहूं सो नहीं जानताहै । औ जे यातैं अन्यथा जानतेहै” इत्यादि सैंकडो वाक्यनतैं औ विद्या अरु अविद्या एक पुरुषकूं तमःप्रकाशकी न्यांई साथि नहीं होवैहैं विरोधतैं । तातैं आत्मवेत्ताकूं अविद्याकाविषय क्रिया कारक अरु फलका भेदरूप अधिकार देखनेकूं योग्य नहीं है” “सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावताहै” इत्यादि वाक्यनकरि निंदित होनेतैं औ अविद्याके विषय सर्व क्रिया साधन अरु फलकूं तिसतैं विपरीत आत्मविद्यासैं परित्याज्य होनेकरि इष्ट होनेतैं औ यज्ञोपवीतादि साधनोंकूं ताका विषय होनेतैं ।

६६० ताकी अविद्याविषयताविषै श्रुतिनकूं उदाहरण करैहैं ॥

६६१ ननु अविद्याविषयताके हुयेवी साधनादिकका व्याघातहीं होवैगा । काहेतैं अस्मदादिकनविषै विद्या अरु अविद्याके साहित्यकरि उपलंभतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

६६२ विद्या अविद्याके साहित्य (सहकारिता)के असंभवविषै फलितकूं कहैहैं ॥

६६३ यातैंवी प्रयोजकके ज्ञानवाले पुरुषकरि साध्यसाधनका भेद नहीं देखनेकूं योग्य है । काहेतैं विवक्षित साक्षात्कारका विरोधि होनेतैं ऐसैं कहैहैं ॥

६६४ ननु विद्यावानोंकूं अविद्याकेविषयनका त्याग होहु ।

ताँ साधन फल स्वभावतँ रहित आत्मातँ अन्यकूँ विषय करनेवाली विलक्षण एषणा है ॥ जाँतँ ये दोनूँ साधन अरु फल एषणाहीं होवैहँ । काहेतँ यज्ञोपवीत आदिककूँ औ तिसकरि साध्यकर्मोंकूँ साधनरूप होनेतँ ॥ जाँतँ ये दोनूँ एषणाहीं हैं । ऐसँ हेतुवचनकरि यज्ञोपवीत आदिक साधनतँ औ तिसकरि साध्यकर्मोंतँ अविद्याके विषय होनेतँ औ एषणारूप होनेतँ औ

तथापि यज्ञोपवीतादिकनका त्याग कहाँतँ होवैगा ? तहां कहैहँ ॥ इहां ताका विषय होनेतँ । यह तत् शब्द । अविद्याकूँ विषय करनेवाला है ॥

६६५ एषणारूप होनेतँबी यज्ञोपवीतादिकनकी त्याज्यता है । ऐसँ कहैहँ ॥ इहां तातँ याका ज्ञेय होनेकरि प्रस्तुततँ यह अर्थ है ॥

६६६ साध्यसाधनकूँ विषय करनेवाली तदात्मिक एषणा त्याज्य है । ऐसँ तहां हेतुकूँ कहैहँ ॥ इहां:—पुरुषार्थरूपतँ विपरीत सो हेय है । यह अर्थ है ॥

६६७ साध्य साधनके एषणापनैकूँ साधते हैं ॥

६६८ तथापि यज्ञोपवीतादिकनका औ कर्मोंका एषणापना कैसँ है ? यह आशंका करिके । साधनोंविषे अंतर्भावतँ है । ऐसँ कहैहँ ॥

६६९ ननु तिन दोनूँका एषणापना प्रतिज्ञामात्रकरि कैसँ होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहँ ॥

६७० तिन दोनूँके एषणापनैके सिद्ध भये फलितकूँ कहैहँ ॥

त्यागने योग्य रूपवाले होनेतैं व्युत्थान विधान कियाहीं है ॥ ॥ नैनु उपनिषद्कूं आत्मज्ञान पर होनेतैं व्युत्थानकी श्रुतितो स्तुतिके अर्थ है । विधि नहीं ? सो शंका बनैनहींः—काहेतैं विधान-किये वस्तुके ज्ञानकरि समान कर्त्तव्यताके श्रवणतैं । जाँतैं अकर्त्तव्यके साथि कर्त्तव्यका समान कर्त्तव्यताकरि वेदविषै कदाचित्बी श्रवण नहीं संभवै है ॥ जाँतैं अभिषव (कंडन) होम अरु भक्षरूप कर्त्तव्योंकाहीं जैसेँ “ अभिषवकरिके, (सोमवल्लीका खंडनकरिके) हवनकरिके । भक्षण करैहैं ” इस प्रकार श्रवण है ॥ तैसेँ आत्मज्ञान । एषणातैं व्युत्थान अरु भिक्षाचर्यरूप कर्त्त-

६७१ आत्मज्ञानका विधिहीं संन्यासका विधि है । ऐसेँ कथन किया होनेतैं “ व्युत्थान करिके ” याका विधिपना नहीं है ? इसप्रकारसेँ प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६७२ “ व्युत्थान करिके जानिके ” ऐसेँ पाठके क्रमकूं अतिक्रमण करिके । व्याख्यानके हुये यह विविदिषुका विधि होवैहीं है । इसरीतिसैँ सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

६७३ पाठ क्रमके हुयेबी प्रयोजकके ज्ञानवाले विरक्तकूं यह विधि होवैहीं है इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

६७४ उक्त अर्थकूंहीं अन्वयमुखसैँ उदाहरणद्वारा विवरण करैहैं ॥ इहां अभिषुत्य कहिये सोमका कंडन करिके । अर्थ यह जो रसकूं लेके ॥

व्योंकाहीं समान कर्त्तव्यताकरि श्रवण होवैहै ॥ ॥
 नैनुँ अविद्याके विषयतैं जन्य औ एषणारूप होनेतैं
 आत्मज्ञानके विधितैंहीं अर्थतैं प्राप्तहीं यज्ञोपवीत
 आदिकनका परित्याग है । परंतु विधान करनेकूं
 योग्य नहीं है ? ईस प्रकार जो प्रतिवादी कहै ।
 सो बने नहीं:-काहेतैं । जातैं निरंतर आत्मज्ञान-
 नके विधिकरिहीं विहितके समान कर्त्तव्यताके
 श्रवणकरि दृढताकी उत्पत्ति होवैहै । औ आत्म-
 ज्ञानके विधिकरि एक वाक्यरूप भिक्षा^{६७७}चर्यकी
 तैसैंहीं दृढताकी उत्पत्ति होवैहै ॥ ॥ जो फेर

६७५ पाठके क्रमकूंहीं आश्रय करिके । प्रतिवादी शंका
 करैहै ॥

६७६ प्रयोजकके ज्ञानवाले विरक्तकूं आत्मज्ञानके विधिके
 सामर्थ्यतैं प्राप्त यज्ञोपवीतादिकके त्यागके कर्त्तव्य आत्मज्ञान-
 करि समान कर्त्तव्यताके श्रवणतैं अतिशयकरि आवश्यकताकी
 सिद्धि है । इसरीतिसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

६७७ व्युत्थानविषै दिखाये न्यायकूं भिक्षाचर्यविषैवी अ-
 तिदेश करैहैं ॥ इहां भिक्षाचर्यके आत्मज्ञानके विधिके साथि
 एकवाक्यकी तैसैंहीं दृढताकी उपपत्ति है । ऐसैं संबंध है ॥

६७८ व्युत्थानादि वाक्यकी पूर्व उक्त अर्थवादताकूं अनु-
 वाद करिके । सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:-
 “ औदुंबर (उदंबरका) यूप होवैहै ” इत्यादि वाक्य-
 विषै लेट परिग्रहणकरि विधिके च्वीकारकीन्यांई । इहांबी

कहाथाकिः—वर्त्तमानके अपदेशतैं अर्थवाद मात्र है ? ऐसैं । सो उदंबरके यूप आदिकके समान होनेतैं अदोष है ॥ ॥ नैनुँ “व्युत्थानकरिके भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं” इस वाक्यकरि पारिव्राज्य (संन्यास) विधानकरियेहै औ पारिव्राज्य आश्रमविषै यज्ञोपवीतआदिक साधन औ लिंग (त्रिदंडताआदिक) श्रुति अरु स्मृतिकरि विहित हैं । यैतैं तिनके एषणापनैके हुयेबी तिसकूं वर्जनाकरिके अन्यतैं व्युत्थान होवैहै ? ईसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनैनहींः—काहेतैं विज्ञानके

पंचमलकारकरि विधिकी सिद्धितैं अर्थवादताकी शंका नहीं है ॥

६७९ अब प्रकृत वाक्यविषै पारिव्राज्यके विधिकूं अंगीकार करिके प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६८० तब कौन विप्रतिपत्ति है ? तहां कहैहैं ॥ इहां लिंग कहिये त्रिदंडता आदिक “पुराने यज्ञोपवीतकूं हुये छोडिके नवीनकूं लेके कमंडलुमान् त्रिदंडी आश्रमके प्रति प्रवेश करै ” इत्यादिक श्रुतियां औ स्मृतियां हैं ॥

६८१ एषणारूप होनेतैं यज्ञोपवीतादिकनकीबी त्याज्यता कही है ? यह आशंका करिके श्रुति स्मृतिके वशतैं व्युत्थानविषै संकोचकूं अभिप्रायका विषय करिके प्रतिवादी कहैहै ॥

६८२ उदाहृत श्रुति स्मृतिनके अन्य विषयकूं दिखावते हुये सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

समान किये पारिव्राज्यतैं एषणातैं व्युत्थानरूप
 प अन्य पारिव्राज्यके संभवतैं ॥ जोई सो एष-
 णाओंतैं व्युत्थानरूप पारिव्राज्य है सो आत्म-
 ज्ञानका अंग है । काहेतैं आत्मज्ञानकी विरोधि
 एषणाओंके परित्यागरूप होनेतैं औ एषणाकूं
 अविद्याकीविषय होनेतैं औ तिसतैं व्यतिरेक-
 करि जो आश्रमरूप पारिव्राज्य है सो ब्रह्मलो-
 कादि फल प्राप्तिका साधन है । जाकूं विषयक-
 रनेवाला यज्ञोपवीतादि साधनका विधान औ
 लिंगका विधान है औ एषणारूप साधनोंके उ-

६८३ ताहीकूं विवरण करैहैं ॥

६८४ ताकी आत्मज्ञानकी अंगताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६८५ एषणाकूं ताका विरोधिपनाहीं किसतैं सिद्ध भया ?
 तहां कहैहैं ॥

६८६ तब यथोक्त श्रुति स्मृतिनका क्या विषय है ? सो
 कहैहैं ॥ इहां:—आश्रमपनैकरि निरूपण करियेहै । वस्तुतैं
 तो आश्रम नहीं है । ताका आभास है । यह अर्थ है ॥

६८७ ताकी आत्मज्ञानकी अंगताकूं निवारण करैहैं ॥

६८८ अब लिंगादिविधानकूं व्युत्थान वाक्यकरि उक्त
 मुख्य पारिव्राज्यकी विषयताहीं क्यूं नहीं होवैगी ? तहां क-
 हैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—एषणारूप साधन यज्ञोपवीतादिक
 हैं । तिनका उपादान कहिये अनुष्ठान । तिस आश्रमधर्म

पादान (अनुष्ठान)कूं आश्रमधर्ममात्र अन्य पारिव्राज्यवि^१ संभवते हुये सर्व उपनिषदनद्वि^२ विहित आत्मज्ञानका बाध युक्त नहीं है ॥ औ यज्ञोपवीतादि अविद्याके विषय एषणारूप साधनोंके ग्रहण हुये अवश्य असाधनफलरूप अशनायादि संसारधर्मतैं वर्जित आत्माका “मैं ब्रह्महूं” ऐसा विज्ञान बाधकूं पावताहै औ तौंका बाध युक्त नहीं है सर्व उपनिषदनकूं तिस अर्थके परायण होनेतैं ॥ ॥ नैनु “भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं” यह श्रुति एषणाकूं ग्रहण करावती हुयी आपहीं बाधकूं पावतीहै? ऐसैं जो कहै । क-

मात्रकरि उक्तका यथोक्त संन्यासाभासरूप विषयके होते प्रधानके बाधकरि मुख्य पारिव्राज्यकी विषयता अयुक्त है ॥

६८९ फेर यज्ञोपवीतादिककी मुख्य पारिव्राज्यकी विषयताके (माने) दृष्ट हुये प्रधानका बाध कैसैं है? सो कहैहैं ॥

६९० साध्य अरु साधनके आसंगके हुये तिसैतैं विलक्षण आत्माका ज्ञान जब बाधकूं पावता है । तब कौन हानि है? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६९१ भिक्षाचर्य प्रथम विहित है औ विहितका अनुष्ठान यज्ञोपवीतादि विना नहीं संभवै है । यातैं इस श्रुतिकरिहीं आत्मज्ञान यज्ञोपवीतादिकसैं विरोधयुक्त किया? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

हिये तौबी ^{६९२} [यज्ञोपवीतादिकका ग्रहण] होवैगा काहेतैं किः—तीन एषणातैं व्युत्थानकूं विधानकरिके फेर एषणाके एकदेशरूप भिक्षाचर्यकूं ग्रहण करावती हुयी श्रुति ताके संबंधी अन्य (यज्ञोपवीतादिक)कूं बी ग्रहण ~~न्याई~~ है? ईसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहींः—काहेतैं भिक्षाचर्यकूं अप्रयोजक (द्रव्यविशेषकी अपेक्षारहित) होनेतैं होम करिके उत्तर कालविषे भक्षणकी न्याई ॥ जातैं शेषकी प्रतिपत्ति (संपादन) अर्थ कर्मरूप होनेतैं औ असंस्कारक होनेतैं सो भक्षण

६९२ शंकाकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥

६९३ जैसे हुतशेषका भक्षण विहित हुयाबी द्रव्यकी अपेक्षावाला नहीं है । परिशिष्ट द्रव्यके ग्रहणकरि प्रवृत्तितैं । तैसें सर्वस्वत्यागके विहित हुये परिशिष्ट भिक्षाके ग्रहणकरि विहित हुयाबी भिक्षाचरण उपवीतादिककी अपेक्षासैं रहित है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

६९४ दृष्टांतकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां सो भक्षण ऐसैं संबंध है औ अप्रयोजक है कहिये द्रव्यविशेषकी अपेक्षासैं रहित है । यह अर्थ है ॥

६९५ यद्वा दार्ष्टान्तिककूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—सर्वस्व त्यागके विहित हुये शेष जो शरीरपात पर्यंत काल । ताकी प्रतिपत्तिरूप कर्ममात्र भिक्षाचर्य है । यातैं सो (भिक्षाचर्य) उपवीतादिकका प्रापक नहीं है ॥

अप्रयोजक (द्रव्यविशेषकी अपेक्षारहित) है। यद्वा शेष (शरीरपातपर्यंतके काल)की प्रतिपत्ति (संपादन)रूप कर्ममात्र होनेतैं सो (भिक्षाचर्य) अप्रयोजक है (उपवीतादिकका प्रापक नहीं है) औ अंसंस्कारक (संस्कारका अकर्त्ता) होनेतैं [वी अप्रयोजक है] ॥ भक्षण जो है सो । पुरुषके संस्कार (अदृष्ट)का कर्त्तावी होवैहै । परंतु भिक्षाचर्य नहीं। काहेतैं निर्यमते अदृष्टकूं ब्रह्मवेत्ताके ताई अनिष्ट होनेतैं ॥ ॥ निर्यमते अदृ-

६९६ किंवा भिक्षाचर्यकूं शरीरकी स्थितिकरिहीं तुल्य होनेतैं तहांवी विधि दूरीविषै है। ताके वशतैं उपवीतादिककी सिद्धि नहीं होवैगी। ऐसैं कहैहैं ॥

६९७ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

६९८ “ एककाल भिक्षाकूं चरै ” इत्यादि नियमके वशतैं अदृष्ट रूप सिद्ध हुया भिक्षाचर्य उपवीतादिककूंवी आक्षेप करैहै ॥ ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—विविदिषुकूं सो (भिक्षाचर्य) इष्ट है। तौवी उपवीत आदिकका आक्षेपक नहीं है। किंतु ज्ञानके उत्पादक श्रवणादिकविषै उपयोगी है। काहेतैं ता(भिक्षाचर्य)कूं देहकी स्थितिरूप अर्थवाला होवे। चरितार्थ होनेतैं ॥

६९९ ननु तब जिस किसप्रकारकरि प्राप्त अन्नसैं शरीरकी स्थितिके संभवतैं “ भिक्षाचर्यकूं चरते हैं ” यह वाक्य व्यर्थ होवैगा ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

ष्टकी अनिष्टतादे, हुये भिक्षाचर्यसैं क्या प्रयोजन है ? ईसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं:—काहेतैं अन्य साधनतैं उत्थानकूं विहित होनेतैं ॥ ॥ तँथापि तिसकरि क्या है (निर्विकार आत्माके ज्ञानकरिहीं सर्व निवृत्तिकी सिद्धितैं]? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । तो सो (उक्त आत्मज्ञानतैं सर्वकी निवृत्ति) जब होवै तब सत्य है । सो हमोंकरिबी अंगीकार करिये है ॥ जे पारिव्राज्यविषै अभिहित “यज्ञोपवीती

७०० भिक्षाचर्यके अनुवादकरि प्रतिग्रह आदिककी निवृत्तिरूप अर्थवाला होनेतैं वाक्यकी व्यर्थता नहीं है । ऐसैं सिद्धांती उत्तर देते हैं ॥

७०१ निवृत्तिके उपदेशकरि वाक्यकी अर्थवान्ताके हुयेबी ताके उपदेशकी अर्थवान्ता नहीं है काहेतैं कूटस्वरूप आत्माके ज्ञानसैंहीं सर्वकी निवृत्तिकी सिद्धितैं ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

७०२ जब निष्क्रियरूप आत्माके ज्ञानतैं अशेषकी निवृत्ति होवैहै । तब सो हमोंकरिबी स्वीकार करियेहै । यातैं सो सत्य है । ऐसैं सिद्धांती अंगीकार करैहैं ॥ इहां यह भाव है:—जब तो क्षुधाआदिक दोषकी प्रबलतातैं निष्क्रियरूप आत्माकूंबी विस्मरण करिके प्रार्थना आदिकके परायण होवैहै । तब निवृत्तिका उपदेशबी अर्थवान् होवैहै ॥

७०३ पूर्व उक्त वाक्यके विरोधतैं निवृत्तिका उपदेश अशक्य है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

हुयाहीं अध्ययनकूं करै” इत्यादिक वचन हैं । वे अविद्वान्के पारिव्राज्यमात्रकूं विषय करने-हारे हैं । यातैं परिहार किये हैं । अँन्यथा आ-त्मज्ञानका बाध होवैगा । ऐसैं जातैं कहाहैः—
 “निराँशा अनारंभ निर्नमस्कार अस्तुति अक्षी-
 ण अरु क्षीणकर्मवाले तिस पुरुषकूं देव । ब्राह्म-
 ण जानतेहैं” ऐसैं औ “विद्वान् लिंगतैं वर्जित
 है । तातैं अलिंग धर्मज्ञ होवै” ऐसैं स्मृति वि-
 द्वान्कूं सर्व कर्मका अभाव दिखावैहै ॥ तातैं
 आत्मवेत्ता सर्व कर्म औ तत्साधनके परित्यागरू-
 प व्युत्थानलक्षण परमहंस पारिव्राज्यकूंहीं प्राप्त
 होवै ॥ ॥ जातैं पूर्वले ब्राह्मण इस फलसाध-
 नरूप स्वभावसैं रहित आत्माकूं जानिके साध-

७०४ इनवाक्यनकी मुख्य संन्यासकी विषयताविषै दोषकूं
 स्मरण करावै हैं ॥

७०५ निवृत्तिके उपदेशकी अनुग्राहकताकरि स्मृतिनकूं
 उदाहरण करैहैं ॥

७०६ अमुख्य संन्यासकी विषयताके असंभवतैं मुख्य
 संन्यासकूं विषय करनेवाला व्युत्थान वाक्य है । ऐसैं उपसं-
 हार करैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो व्युत्थान वाक्यके
 व्याख्यानकी समाप्ति अर्थ है ॥

७०७ “ तातैं ” इत्यादि वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान
 करैहैं ॥

नस्वरूप एषणालक्षण सर्वतै व्युत्थानकरिके क-
हिये दृष्टं अदृष्टरूप अर्थवाले कर्मकूं औ ताके
साधनकूं त्याग करिके भिक्षार्थं चरतेभये ॥
तातै अद्यताके हुयेबी ब्राह्मण कहिये ब्रह्मवित्
पांडित्यकूं कहिये पंडितभावरूप इस आत्म-
विज्ञानकूं निःशेष जानिके । अर्थ यह जो आ-
त्मविज्ञानकूं आचार्यतै औ आगमतै निरवशेष-
करिके । तीन एषणातै व्युत्थानकरिके ॥ जातै
एषणातै व्युत्थानरूप अज्ञानवालाहीं सो पां-
डित्य है । काहेतै एषणाके तिरस्कारतै उद्भव-

७०८ उक्त व्युत्थानकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां:—विवेक
वैराग्यकरि तीन एषणातै व्युत्थान करिके श्रुति अरु आचा-
र्यकरि कर्तव्य ज्ञानकूं निःशेष करिके बाल्यकरि स्थित होवै ।
ऐसैं व्यवहितपदके साथि संबंध है ॥

७०९ पांडित्यकूं निःशेष जानिके । इस वाक्यकरिहीं व्यु-
त्थान विहित है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातै
सो पांडित्य तीन एषणातै व्युत्थानके हुये संभवै है । तातै
इहां व्युत्थानका विधि है ॥

७१० ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिन
तीन एषणाओंके तिरस्कारकरि पांडित्य उद्भव होवैहै । का-
हेतै ता (पांडित्य) कूं एषणातै विरुद्ध होनेतै । तिसप्रकार
हुये पांडित्यकूं निःशेष जानिके । इस वाक्यविषै तिन तीन
एषणातै व्युत्थानका विधान उचित है ॥

ध्याय । ३] पंचम-कहोल-ब्राह्मण ॥ ५ ॥ १३५१

वाला होनेतैं । एषणातैं विरुद्ध होनेतैं ॥ जीतैं
एषणाकूं अतिरस्कार करिके आत्मविषय, पां-
डित्यका उद्भव नहीं होवैहै । यीतैं आत्मज्ञा-
नकरिहीं विहित एषणातैं व्युत्थान आत्मज्ञानके
समान कर्तृक “क्त्वा” प्रत्ययके उपादानरूपहीं
लिंगभूत श्रुतिकरि दृढकीया है (नियमकरि प्रा-
पित व्युत्थान है) । तीतैं (पांडित्यतैं) तीन
एषणातैं व्युत्थानकरिके ज्ञानके बल भावरूप बा-
ल्यकरि स्थित होनेकूं इच्छे ॥ इतर अना-

७११ ननु व्युत्थानविनाबी पांडित्य उद्भवकूं पावैगा ?
ऐसैं जो कहै । सो बने नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

७१२ पांडित्यकूं निःशेष जानिके । इस ठिकाने उक्त
व्युत्थानके विधिकूं उपसंहार करैहैं ॥

७१३ ननु तब जानिके व्युत्थान करिके । इस ठिकाने
व्युत्थानविषै विधि कैसें अंगीकार करिये है ? तहां कहैहैं ॥
इहां यह अर्थ हैः—तिसकरि व्युत्थानकी समान कर्त्तव्यताके
दुये “क्त्वा” प्रत्ययकी उपादानरूपहीं लिंग भूत श्रुति है ।
तिसनैं व्युत्थान दृढ किया कहिये नियमसैं प्राप्त किया है ॥

७१४ बाल्यकरि । इत्यादि वाक्यकूं उठायके व्याख्यान
करैहैं ॥ इहां ऐसैं योजना हैः—विवेकादिकके वशतैं तीन
एषणातैं व्युत्थान करिके । पांडित्य संपादन करिके । तिस
पांडित्यतैं ज्ञान बलके भावकरि स्थित होनेकूं इच्छे ॥

त्मवेत्ताओंका साँधन फलका आश्रय करनाहीं बल है । तिस बलकूं छोडिके विद्वान् (विवेकी) असाधन फलस्वरूप आत्माका विज्ञानरूपहीं बल है । ताके भावकूंहीं केवल आश्रय करै ॥ जाँतैं ताके आश्रय करनेके हुये करण जे हैं । वे एषणाविषै प्राप्त यापुच्छं हरणकरिके स्थापन करनेकूं उत्साह करैहैं । जातैं ज्ञानके बलकरि हीन मूढ यापुरुषकूं करण दृष्ट अदृष्टकूं विषय करनेवाली एषणाविषैहीं योजना करैहैं ॥ बल नाम आत्मविद्याकरि अशेष विषयदृष्टिका तिरस्कार है ॥ याँतैं तिस (ज्ञानबल)के भावरूप

७१५ ननु कौन यह ज्ञान बलके भावकरि स्थिति है ? यह आशंका करिके ताकूं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां विद्वान् ऐसैं विवेकी भावका कथन है ॥

७१६ यथोक्त बलभावके आश्रयके हुये करणोंके विषय पारवश्यताकी निवृत्तिकरि पुरुषकूंबी विषयके पारवश्यताकी निवृत्ति फलती है । ऐसैं कहैहैं ॥

७१७ उक्त अर्थकूंहीं व्यतिरेक मुखकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७१८ ननु अद्यापि (अबीबी) ज्ञानका बल कैसा है । यह नहीं जानिये है ? तहां कहैहैं ॥

७१९ बाल्य वाक्यके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां:— जैसैं ज्ञानबलकरि विषयके अभिमुखहुयी दृष्टि तिरस्कार करिये है । तैसैं यह अर्थ है औ आत्माकरि याका तिस विज्ञान-

बाल्यकरि स्थित होनेकूं इच्छे ॥ तैसें “आत्मा-
करि वीर्यकूं पावताहै” इस अन्यश्रुतितैं औ
“यह आत्मा बलहीनकरि लभ्य नहीं है” इस
अन्यवाक्यतैं ॥ ॥ औ बाल्यकूं अरु पांडि-
त्यकूं निःशेष जैसें होवै तैसें करिके अनंतर
ऋषि मुनि (योगी) होवैहै । ईतनाहीं ब्राह्मण-
करि कर्तव्य है । जोबी सर्व अनात्मप्रत्ययोंका
तिरस्कार है । याकूं करिके कृतकृत्य योगी हो-
वैहै ॥ औ अमौनरूप आत्मज्ञान अरु अनात्म-
प्रत्ययोंका तिरस्कार पांडित्य अरु बाल्य संज्ञक

नके अतिशयकरि । यह अर्थ है औ वीर्यकूं । याका विषय
दृष्टिके तिरस्कार करनेके सामर्थ्यकूं । यह अर्थ है औ बल-
हीनकरि कहिये विषय दृष्टिके तिरस्कार करनेके सामर्थ्यतैं
रहित पुरुषकरि । यह आत्मा लभ्य नहीं है । अर्थ यह जो
साक्षात्करनेकूं शक्य नहीं है ॥

७२० औ बाल्यकूं । इत्यादि वाक्यकूं लेके व्याख्यान
करैहैं ॥ इहां पूर्व उक्त दोनूके मध्य पीछलेविषै हेतुके द्यो-
तन अर्थ “अथ” शब्द है ॥

७२१ ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥

७२२ वाक्यांतरकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां मौन
अरु अमौनके ब्राह्मणभावके प्रति सामग्रीपनैका द्योतक “अथ”
शब्द है ॥

हैं । तिन दोनूंकुं निःशेष (संपूर्ण) करिके । औ मौन नाम अनात्मप्रत्ययोंके तिरस्करणका पर्यवसानरूप फल है । ताकूँ निःशेषकरिके अनंतर ब्राह्मण (कृतकृत्य) होवैहै ॥ कहिये ब्रह्म-हीं सर्व है ऐसा प्रत्यय उपजताहै ॥ सो ब्राह्मण (कृतकृत्य) होवैहै । यातें ब्राह्मण है ॥ जातें तब ताका ब्राह्मणपना उपचाररहित प्राप्त है । यातें कहैहैः—सो ब्राह्मण किसकरि होवै क-हिये किस चरणकरि होवै ? जिसँकरि होवै क-हिये जिस चरणकरि होवै तिसकरि ऐसाहीं यह

७२३ ब्राह्मणभावकूँ उपपादन करै हैं ॥ इहां यह वि-भाग हैः—आचार्यकी सेवापूर्वक उपनिषदनके तात्पर्यका निश्चय पांडित्य है । युक्तितें अनात्मदृष्टिका तिरस्कार बाल्य है । मैं आत्मा परब्रह्महूँ मुजतें अन्य कलुबी नहीं है ऐसा मनकरिहीं अनुसंधान मौन है । औ महावाक्यके अर्थका निश्चय ब्राह्मण्य (ब्राह्मणपना) है ॥

७२४ ननु पूर्वबी ब्राह्मणपना प्रसिद्ध है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

७२५ ब्रह्मवेत्ताके सम्यक् आचारकूँ पूछता है ॥

७२६ अनियमितताका चरण (आचार) है । ऐसैं उक्त-रकूँ कहैहैं ॥ इहां उक्तलक्षणवान्पना कहिये कृतकृत्यपना ॥

है ॥ कहिये जिस किसीबी चरणकरि होवै तिस-
करि ऐसाहीं (उक्तलक्षणवालाहीं) ब्राह्मण हो-
वैहै ॥ इहाँ जिस किसीबी चरणकरि । यह क-
थन स्तुति अर्थ है । जो यह ब्राह्मण्य अवस्था
है सो यह स्तुतिकी विषय करियेहै परंतु चर-
णविषै अनादर नहीं है ॥ ॥ ईस अशनाया
आदिकतैं अतीत आत्मस्वरूपभूत नित्यतृप्त ब्र-
ह्मभावकरि अवस्थानतैं अन्य कहिये अविद्याका
विषय एषणारूप वस्तु अंतर है सो आर्त्त क-
हिये विनाशी (आर्त्तिपरिगृहीत) स्वप्न माया

७२७ ननु अव्यवस्थित आचरणकूं इच्छनेवाले ब्रह्मवे-
नाकूं यथेष्ट चेष्टा अभीष्ट होवैगी । तिसप्रकार हुये “ जो जो
श्रेष्ठ आचरता है । सो सो इतर जन आचरताहै ” इस
गीता स्मृतितैं इतर पुरुषनकूंबी आचारविषै अनादर हो-
वैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
विहित कर्मकूं आचरनेवाले औ निषिद्धकूं त्यागनेवाले शुद्ध
बुद्धिमान् पुरुषकूं श्रवण किये महावाक्यतैं सम्यक् बुद्धि उ-
त्पन्न होवैहै औ ताकी बुद्धि । शुभ वासनाके वशतैं व्यव-
स्थितहीं होवैहै । अव्यवस्थित नहीं ॥ यातैं ब्रह्मवेत्ताकूं य-
थेष्ट चेष्टाके आचरणका किया दोष [तद भावतैं] नहीं होवैहै ॥

७२८ यातैं अन्य । इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥
इहां स्वप्न इत्यादि बहु दृष्टान्तनका ग्रहण । दार्ष्टान्तिककी व-
ह्ररूपताके द्योतन अर्थ है ॥

मरीचिजलके सम असार है । आत्माहीं एक
केवल नित्यमुक्त है इति ॥ ॥ तदनंतर क-
होल कौषीतकेय उपराम होताभया ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ५ ॥

७२९ यातें अन्य । यह विशेषण किस कारणतें है ? यह
आशंका करिके कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-पंचम ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ५ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य षष्ठं गार्गी-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अथ हैनं गार्गी वाचक्रवी पप्रच्छ ।
याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यदिदं सर्व-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी-
पिकायास्तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गी-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं गार्गी वाचक्रवी पू-
छतीभई । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहतीभ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गी-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

टीकाः—^{७३०}जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म सर्वांतर

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपि-
कायास्तृतीयाध्यायगत-षष्ठ-ब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

७३० पूर्वले दो ब्राह्मणोंविषै आत्माकी सर्वांतरता कही ।
ताके निर्णय अर्थ पीछले तीन ब्राह्मण हैं । ऐसैं संगतिकूं कहैहैं ॥

मप्स्वोतञ्च प्रोतञ्च । कस्मिन्नु खल्वाप
ओताश्च प्रोताश्चेति । वायौ गार्गीति ।
कस्मिन्नु खलु वायुरोतश्च प्रोतश्चेत्यन्त-

ईः—जो यह सर्व (पार्थिव धातुनका समू-
ह) जलविषै ओत है अरु प्रोत है । किसविषै
निश्चयकरि जल ओत हैं औ प्रोत हैं ? ऐसैं
[पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि ? वायुविषै ।
ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किसविषै निश्चय-
करि वायु ओत है अरु प्रोत है ? ऐसैं [पू-

आत्मा है ऐसैं कहा । तिस सर्वांतरके स्वरूपके
अधिगम अर्थ शाकल्य ब्राह्मणपर्यंत ग्रंथ आरंभ
करियेहै । जातैं ^{७३१} पृथिवी आदिक आकाशपर्यंत

७३१ उक्त संबंधकूंहीं विवरण करैहैं ॥ इहां अंतर्वहिरू-
भावकरि । याका सूक्ष्म स्थूलके तारतम्यके क्रमकरि । यह
अर्थ है औ बाह्य बाह्यकूं । ऐसैं वीप्सा है । औ ऊपरतैं तत्
शब्द देखनेकूं योग्य है । काहेतैं यत् औ तत् शब्दके नित्य
संबंधतैं ॥ निराकरण करता हुया जैसें मुमुक्षु सर्वांतर आ-
त्माकूं पावता है । तैसें सो उक्तप्रकारके विशेषणवाला दे-
खनेकूं योग्य है । यातैं उत्तर ग्रंथका आरंभ है । ऐसैं योजना
है औ कहोल प्रश्नके निर्णयके अनंतर । अथ शब्दका अर्थ

रिक्षलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खल्व-
 न्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्चेति । ग-
 न्धर्वलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खलु ग-
 छतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि ! अंतरिक्ष लो-
 कनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किस-
 विषै निश्चयकरि अंतरिक्ष लोक ओत हैं
 औ प्रोत हैं ? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे
 गार्गि ! गंधर्व लोकनविषै । ऐसैं [कहते-

भूत अंतर्बहिर् भावकरि व्यवस्थित हैं । तिनके
 मध्य जो बाह्य बाह्यकूं जानिके निराकरण क-
 रताहुया द्रष्टाका साक्षात् सर्वांतर अगौण सर्व
 संसारधर्मतैं निर्मुक्त आत्मा है सो दिखावनेकूं
 योग्य है । यातैं यह आरंभ है ॥ ॥ अनंतर
 या (याज्ञवल्क्य) कूं नामतैं गार्गी ऐसी वाच-
 क्रवी (वचक्रुकी पुत्री) पूछतीभयी ! हे या-
 ज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहतीभयी:—जो यह सर्व
 पार्थिव (पृथिवीका कार्य) धातुजात (धातुनका-
 है ॥ जो पार्थिव धातुनका समूह है । सो यह सर्व जलविषै
 ओत प्रोत है । इत्यादि योजना करनेकूं योग्य है ॥

न्धर्वलोका ओताश्च प्रोताश्चेत्यादित्य-
 लोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खल्वादित्य-
 लोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु
 भये] ॥ ॥ किसविषे निश्चयकरि गंधर्व
 लोक ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसैं [पूछ-
 तीभई] ॥ हे गार्गि! आदित्य लोकन-
 विषे । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किसविषे
 निश्चयकरि आदित्य लोक ओत हैं औ प्रो-
 समूह) है सो उदकविषे दीर्घपटतंतुकीन्यांई
 ओत है औ तेढेतंतुकीन्यांई प्रोत है वा वि-
 परीत है । सर्व ओरतैं अंतर्वहिर्भूत जलकरि
 व्याप्त है यह अर्थ है । अन्यथा शक्तु (भुंजेधा-
 न्यके चूर्ण विशेषरूपसत्तु)की मुष्टिकी न्यांई वि-
 शीर्ण होवै (विखर जावै) ॥ यँहँ प्रथम अनुमान
 उपन्यास किया है ॥ जो कार्य परिच्छिन्न अरु

७३२ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

७३३ पार्थिव धातु समूहकी जलकरि व्याप्तिके अभाव-
 विषे दोषकूं कहैहैं ॥

७३४ इहां गार्गीकूं विवक्षित क्या है? यातैं सो कहैहैं ॥

७३५ ताहीकूं दिखावनेकूं व्याप्तिकूं कहैहैं ॥ इहां कारण-

गार्गीति । कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका
 ओताश्च प्रोताश्चेति । नक्षत्रलोकेषु गा-
 त हैं ? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि !
 चंद्रलोकनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥
 किसविषै चंद्रलोक ओत हैं औ प्रोत हैं ?
 ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि नक्ष-
 त्र लोकनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥
 स्थूल है । सो कारण अपरिच्छिन्न अरु सूक्ष्मकरि
 व्याप्त है । ऐसैं देख्या है ॥ ^{७३६}जैसैं पृथिवी जल-
 करि व्याप्त है । तैसैं ^{७३७}पूर्व पूर्व उत्तर उत्तर व्या-

रूप व्यापककरि । यह शेष है ॥ जो कार्य है । सो कारण-
 करि व्याप्त है । जो परिच्छिन्न है । सो व्यापकरि व्याप्त है औ
 जो स्थूल है सो सूक्ष्मकरि व्याप्त है । ऐसैं तीन प्रकारकी व्याप्ति
 होवैहै ॥ इहां इति शब्द जो है । सो ताकी समाप्ति अर्थ है ॥

७३६ भूमिकी व्याप्तिकूं कहैहैं ॥

७३७ अब अनुमानकूं कहैहैं ॥ इहां पूर्व पूर्व ऐसैं जल
 आदिक धर्मीका निर्देश है औ उत्तर उत्तर वायु आदिकारण
 अपरिच्छिन्न सूक्ष्मकरि व्याप्त है । यह शेष है ॥ इहां यह अ-
 नुमान है:—विमत जल आदिक । कारणकरि व्यापककरि सू-
 क्ष्मकरि व्याप्त है । कार्य होनेतैं । परिच्छिन्न होनेतैं औ स्थूल
 होनेतैं । पृथिवीकी न्याई । यह अर्थ है ॥

गीति । कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका ओ-
ताश्च प्रोताश्चेति । देवलोकेषु गार्गीति । क-

किसविषे निश्चयकरि नक्षत्र लोक ओत हैं
औ प्रोत हैं ? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे
गार्गी ! देव लोकनविषे । ऐसैं [कहतेभ-

पककरि होनेकूं योग्य है । ऐसैं यँह सर्वांतर आ-
त्मापर्यंत प्रश्नका अर्थ है ॥ तँहां पंचभूत संहत
(मिलित) हुयेहीं उत्तर उत्तर सूक्ष्मभाव व्या-
पक अरु कारणरूपकरि व्यवस्थित होवैहैं औ
परमात्मातैं अर्वाक् (अर्वाचीन) तिसतैं व्यति-

७३८ सर्वांतर आत्मातैं नीचे उक्त न्याय सर्वत्र संच-
रता है ॥

७३९ ननु तथापि भूत पंचकतैं व्यतिरिक्त गंधर्व लोका-
दिकनकेबी आंतरताकरि उपदेशतैं भूतपंचकके व्युदास (उडा-
वने) करि सर्वांतरकी प्रतिपत्ति कैसेँ विवक्षित है ? ऐसी
शंका भयी । तहां कहैहैं ॥ इहां “तहां” याका उक्त नीतिकरि
प्रश्नार्थके स्थित हुये । यह अर्थ है ॥ वा यह सप्तमी । भूता-
त्माओंविषे । ऐसैं निर्धारणविषे है ॥

७४० अब परमात्माकूं औ भूतनकूं छोडीके गंधर्वलोका-
दिरूप वस्तु अंतर होवैगे ? सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥
इहां:—गंधर्व लोकादिकबी भूतनकीहीं अवस्थाविशेष हैं ।
तिनतैं सत्य भूतपंचक है । ताका सत्य परब्रह्म है । तिन दो-

स्मिन्नु खलु देवलोक ओताश्च प्रोताश्चे-
तीन्द्रलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खल्वि-

ये] ॥ ॥ किसविषै निश्चयकरि देवलोक
ओत हैं औ प्रोत हैं ? ऐसैं [पूछतीभई]
॥ ॥ हे गार्गी ! इंद्र लोकनविषै । ऐसैं

रेककरि अन्यवस्तु नहीं है “ सत्यका सत्य है ”
इस श्रुतितैं । सत्य भूतपंचक है औ रत्नका
सत्य परमात्मा है ॥ किंसविषै निश्चयकरि
जल ओत प्रोत हैं ऐसैं । तिनकूंबी कार्य हो-
नेतैं स्थूल होनेतैं औ परिच्छिन्न होनेतैं कहींबी
ओत प्रोत भावकरि होना योग्य है । कहां ति-
नका ओत प्रोत भाव है ऐसैं^{७४२} उत्तर उत्तर प्रश्न-
का प्रसंग योजना करनेकूं योग्य है ॥ हे गार्गी !

नूतैं अन्य सो जाननेकूं योग्य नहीं है । ऐसैं अन्यके प्रतिषेध
अर्थ दोनूं “च” शब्द हैं ॥

७४१ तात्पर्यकूं कहिके । प्रश्नकूं उठायके ताके अक्षरनकूं
व्याख्यान करैहैं ॥

७४२ तिसविषै निश्चयकरि वायु ओत प्रोत है । इत्यादि-
विषै उक्त न्यायकूं अतिदेश करैहैं ॥

न्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति । प्रजाप-
तिलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खलु प्र-
[कहतेभये] ॥ ॥ किसविषै इंद्रलोक ओ-
त हैं औ प्रोत हैं ? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥
हे गार्गि ! प्रजापति लोकनविषै । ऐसैं [क-
हतेभये] ॥ ॥ किसविषै निश्चयकरि प्र-
वायुविषै ऐसैं ॥ ॥ नँनु अग्निविषै ऐसैं कहनेकूं
योग्यथा ? यँहँ दोष नहीं है :—काहेतैं अग्निका
पृथिवीके वा जलके धातुकूं अनाश्रयकरिके इतर
भूतकीन्यांई स्वतंत्रताकरि स्वरूपका लाभ नहीं
है । यातैं तिस (अग्नि)विषै ओत प्रोत भाव नहीं
उपदेश करियेहै ॥ ॥ किसविषै निश्चयक-

७४३ वायुविषै ऐसा जो प्रयोग सो अयुक्त है । काहेतैं
जलकूं अग्निका कार्य होनेतैं अग्निविषै ऐसैं कहनेकूं योग्य
होनेतैं ? इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै ॥

७४४ अग्निकी उदकविषै व्यापकताके हुयेबी काष्ठ अरु
विद्युत् आदिककी परतंत्रतातैं । किसीबी स्वतंत्रकरि जलकी
व्याप्ति कहनेकूं योग्य है । यातैं अग्निकूं छोडिके तिसके का-
रण वायुविषै ऐसैं कहा औ वायुकूं स्वकारणकी आधीनताके
हुयेबी उदककी आधीनता नहीं है । यातैं ताके व्यापकताकी
सिद्धि है । इसरीतिसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

जापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्म-
लोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खलु ब्रह्म-

जापति लोक ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसैं
[पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गी ? ब्रह्म लो-
कनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किसवि-

रि वायु ओत प्रोत है? ऐसैं । हे गार्गी !
अंतरिक्ष लोकनविषै ऐसैं ॥ ^०वही भूत सं-
हत हुये अंतरिक्ष लोक हैं ॥ वेवी गंधर्व लो-
कनविषै । गंधर्वलोक आदित्य लोकनविषै ।
आदित्यलोक चंद्रलोकनविषै । चंद्रलोक न-
क्षत्रलोकनविषै । नक्षत्रलोक देवलोकनवि-
षै । देवलोक इंद्रलोकनविषै । इंद्रलोक वि-
रूँद शरीरके आरंभक भूतरूप प्रजापति लो-
कनविषै । प्रजापति लोक ब्रह्मलोकनविषै ।
ब्रह्मलोक नाम अंडके आरंभक भूत हैं ॥ जा-

७४५ अंतरिक्ष लोक शब्दके अर्थकू कहैहैं ॥

७४६ प्रजापति लोक शब्दके अर्थकू कथन करैहैं ॥

लोका ओताश्च प्रोताश्चेति । स होवाच
गार्गी ! मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्द्धा व्यपप्तद-
नतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गी !

षै ब्रह्मलोक ओत हैं औ प्रोत हैं ? ऐसैं
[पूछतीभई] ॥ ॥ सो (याज्ञवल्क्य) क-
हतेभयेः—हे गार्गी ! अतिप्रश्नकूं मतिकर ।
तेरा मूर्द्धा विरूपष्टमति पतन होवै । अति-
शयकरि नहीं पूछने योग्य देवता (सूत्रा-

तैं सर्व ठिकानैं सूक्ष्मके तारतम्यके क्रमकरि
प्राणिनके उपभोगके आश्रयके आकारकरि प-
रिणामकूं प्रातभये भूत संहत हैं । वे ऐसैं पंच
हैं । यातैं बहुवचनके भागी हैं ॥ किसविषै नि-
श्रयकरि ब्रह्मलोक ओत प्रोत हैं ? ऐसैं
पूछतीभयी ॥ सो याज्ञवल्क्य कहतेभयेः—हे गा-

७४७ अंतरिक्ष लोक आदिकनकूं एक एकरूप होनेतैं ब-
हुवचन किस कारणतैं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

७४८ पूर्वकी न्यांई अनुमानकरि सूत्रकूं पूछनेवाली गा-
र्गीकूं याज्ञवल्क्य निषेध करैहैं ॥

माति प्राक्षीरिति ॥ ततो ह गार्गी वा-
चक्रव्युपरराम ॥ १ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
षष्ठं गार्गी-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

त्मा)कूं तूं अतिशयकरि पूछती हैं । हे गा-
र्गी ! अतिप्रश्नकूं मतिकर । ऐसैं [कहते-
भये] ॥ ॥ तदनंतर गार्गी वाचक्रवी [प्र-
श्नतै] उपराम होतीभयी ॥ १ ॥

इति श्रीवृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गी-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

र्गी ? अतिप्रश्नकूं मतिकर । अपने न्याय प्र-
कारवाले प्रश्नकूं अतिक्रमण करिके अँगमकरि
पूछने योग्य देवताकूं अनुमानकरि मतिपूछ यह
अर्थ है ॥ औ पूँछनेवाली जो तूं । तिस तेरा
मूर्धा (शिर) विस्पष्टमतिपडे (मतिगिरे) ॥

७४९ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करते हुये वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

७५० प्रतिपेथके अतिक्रमविषै दोषकूं कहैहैं ॥

देवताका स्वप्रश्न आगम विषयक है । ता प्रश्न-
के विषयक अतिक्रान्त हुया गार्गीका प्रश्न आ-
नुमानिक होनेतैं सो जिस देवताका प्रश्न है सो
देवता अतिप्रश्न्या कहियेहै । नहीं जो अतिप्र-
श्न्या सो अनतिप्रश्न्या (स्वप्रश्नकी अविषयहीं)
है । केवल आगमगम्य है यह अर्थ है । तिस
अनतिप्रश्न्या देवताकूं तूं अतिशयकरि पू-
छती हैं । यातैं हे गार्गी ! जो तूं मरनेकूं न-
हीं इच्छती हैं तो अतिप्रश्नकूं मतिकर ॥ त-
दनंतर गार्गी वाचक्रवी प्रश्नतैं उपराम हो-
तीभयी ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गी-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ६ ॥

७५१ मूर्द्धापातके प्रसंगकूं प्रकट करते हुये प्रतिषेधकूं
उपसंहार करैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-षष्ठ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य सप्तम-मंत्यामि-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भूलमात्रभाषा-
दीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य सप्तम-
मंत्यामि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं उद्दालक आरुणि

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयाध्यायस्य सप्तममंत्यामि-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

टीकाः—अत्रै ब्रह्म लोकनके अत्यंत अंतर (अं-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाषादीपिकाया
स्तृतीयाध्याय गत-सप्तम-ब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

७५२ पूर्व ब्राह्मणविषे सूत्रतै अर्वाक्तन व्यापक कहा । अब
सूत्रकूं औ ताके अंतर्गत अंत्यामीकूं स्पष्ट करनेकूं उत्तर ब्रा-
ह्मण है । ऐसैं संगतिकूं कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ मद्रेष्ववसाम ।
पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु । यज्ञमधी-
यानास्तस्यासीद्भार्या गन्धर्वगृहीता ।

पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं [संबो-
धनकरिके] कहताभयाः—हम मद्रदेशन-
विषै पतंचल काप्यके ग्रहनविषै यज्ञकूं अ-
ध्ययनकरते हुये वासकरतेभये ॥ ताकी
भार्या गंधर्वकरि गृहीत होतीभयी ॥ ता

तर्यामी) औ ^{७५३}ब्राह्मणात्मा वक्तव्य हैं। यातैं तिस अर्थ
आरंभ है। औ सो आगम (आचार्योपदेश) करिहीं
पूछनेकूं योग्य है । यातैं इतिहासकरि आगमका
उपन्यास करियेहैः—अनंतर याकूं नामतैं उद्वा-
लक ऐसा अरुणका अपत्य आरुणि पूछता
भया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहताभयाः—
हम मद्र नामक देशनविषै पतंचल नामक

७५३ ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहिके । आख्यायिकाके तात्प-
र्यकूं कहैहैं ॥ इहां आचार्यका उपदेश आगम शब्दका अर्थ
है औ गार्गीकी मूर्द्धपातके भयतैं उपरतितैं अनंतर । अथ
शब्दका अर्थ है ॥ सो कहताभया । ऐसैं प्रतीकका ग्रहण है ॥

तमपृच्छाम कोऽसीति । सोऽब्रवीत् क-
 बन्ध आथर्वण इति । सोऽब्रवीत् पतञ्च-
 लं काप्यं याज्ञिकांश्च । वेत्थ नु त्वं का-
 प्य तत्सूत्रं येनायञ्च लोकः परश्च लोकः
 (गंधर्व) कूं हम पूछतेभयेः—तूं कौंन हैं ?
 ऐसैं ॥ ॥ सो कहताभयाः—मैं कबंध नाम-
 वाला अथर्वणका पुत्र हूं । ऐसैं ॥ फेर सो
 (गंधर्व) पतंचल काप्यकूं औ याज्ञिकन
 (ताके शिष्यन) कूं कहताभयाः—हे काप्य !
 तूं तिस सूत्रकूं जानताहै । जिसकरि यह
 कपिगोत्रवाले काप्यके ग्रहोंविषै यज्ञशास्त्रके
 अध्ययनकूं करतेहुये वास । पनेभये ॥ ता
 की गंधर्वकरी गृहीत भार्या हातीगयी ।
 ता (गंधर्व) कूं हम पूछतेभये “तूं कौंन हैं
 ऐसैं” । सो कहताभयाः—नामतैं कबंध ऐसा
 अथर्वणका अपत्य आथर्वण में हूं ऐसैं । सो
 गंधर्व पतंचल काप्यकूं औ यज्ञशास्त्रके पढ-
 नेवाले ताके शिष्यनकूं कहताभयाः—हे का-

सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्तीति ॥ सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं तद्भगवन्वेदेति ॥ सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकांश्च । वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्त-
लोक औ परलोक औ सर्वभूत सम्यक् ग्रथित होवैहैं ? ऐसैं ॥ ॥ सो पतञ्चल काप्य कहताभयाः—हे भगवन् ! मैं ताकूं नहीं जानताहूं । ऐसैं ॥ ॥ फेर सो (गंधर्व) पतञ्चल काप्यकूं औ याज्ञिकनकूं कहताभयाः—हे प्य ! तूं तिस सूत्रकूं जानताहैं ॥ सो कौनकिः—जिस सूत्रकरि यह लोक (यह जन्म) औ परलोक (परप्राप्त होने योग्य जन्म) औ ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत सर्वभूत सूत्रकरि मालाकी न्यांई जिसकरि सम्यक् ग्रथित होवैहैं । तिस सूत्रकूं तूं क्या जानताहै ? ऐसैं पूंछयाहु-या सो काप्य कहताभयाः—हे भगवन् ! मैं ताकूं नहीं जानताहूं कहिये हे भगवन् ! तिसैं

र्यामिणं य इमञ्च लोकं परञ्च लोकं सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयतीति ॥
 सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं तं भगवन्वेदेति ॥ सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं या-
 काप्य ! तूं तिस अंतर्यामीकूं जानताहैं ।
 जो इस लोककूं औ परलोककूं औ सर्व भूत-
 नकूं जो अंतर हुया नियम करैहै? ऐसैं ॥ ॥
 सो पतंचल काप्य कहताभयाः—हे भगवन्!
 मैं तिसकूं नहीं जानताहूं । ऐसैं ॥ ॥
 सो (गंधर्व) पतंचल काप्यकूं औ याज्ञिक-

सूत्रकूं मैं नहीं जानताहूं । ऐसैं सम्यक् पूछता
 हुया कहताभया ॥ ॥ सो गंधर्व फेर उपा-
 ध्यायकूं औ हमकूं कहताभयाः—हे काप्य !
 तूं तिस अंतर्यामीकूं जानताहैं । इहां अंत-
 र्यामी ऐसैं विशेषणयुक्त करियेहै । जो इस
 लोककूं औ परलोककूं औ सर्व भूतनकूं जो
 भीतर हुया नियमन करैहै कहिये दारुयंत्र-
 कीन्यांई भ्रमण करावैहै (अपने अपने उचि-

ज्ञिकांश्च । यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्त-
 च्चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्स लोक-
 वित्स देववित्स वेदवित्स भूतवित्स आ-

नकूं कहताभयाः—हे काप्य 'गे तिस सूत्रकूं
 औ तिस अंतर्यामीकूं ऐ ताहै । सो
 ब्रह्मवित् है । सो लोक' सो देववित्
 है । सो वेदवित् है । से है । सो आ-

त व्यापारकूं करावैहै) ; ऐसैं ॥ ॥ जो इस प्र-
 कार उक्तभया । सो पतंचल काप्य कहता-
 भयाः—हे भगवन् ! मैं तिसकूं नहीं जान-
 ताहूं । ऐसैं सम्यक् पूजताहुया कहताभया ॥ ॥
 सो गंधर्व फेर कहताभयाः—[इहां सूत्र औ
 तदंतर्गत अंतर्यामीके विज्ञानकी स्तुति करिये
 हैः—] हे काप्य ! जो कोईबी पुरुष तिस सू-
 त्रकूं जानै औ सूत्रके अंतर्गत तिसीहीं सूत्रके
 नियंता तिस अंतर्यामीकूं जो इस उक्त प्रका-

७५५ इति शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां “ औ जिसकरि
 यह ” इत्यादिरूप उक्त प्रकार है । औ सो सर्व लोकनकूं
 जानता है ऐसैं संबंध है ॥

त्मवित्स सर्वविदिति ॥ तेभ्योऽब्रवीत्त-
दहं वेद । तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमवि-
द्वां स्तञ्चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे

त्मवित् है । सो सर्ववित् है । ऐसैं हुये तिन
(हमारे) अर्थ कहताभया ॥ ता (सूत्र अरु-
अंतर्यामीके विज्ञान)कूं मैं (उद्दालक)
जानताहूं ॥ हे याज्ञवल्क्य ! तूं तिस सूत्रकूं
औ ता अंतर्यामीकूं जब अविद्वान् हुया
ब्राह्मणनकी गौवनकूं लेजाताहै तब तेरा

रकरि जानै । सोई ब्रह्मवित् (परमात्मवित्)
है । सो अंतर्यामीकरि नियमनकिये भूँरादिक
लोकनकूं जानताहै । औ सो अग्निआदिक
लोकपति देवनकूं जानताहै औ सो सर्व प्र-
माणभूत वेदनकूं जानताहै औ सो सूत्रकरि
धारणकिये अरु तदंतर्गत अंतर्यामीकरि नियम-
नकिये ब्रह्मादिक भूतनकूं जानताहै औ सो

७५६ विशेषकरि उक्ति पूर्वक तिन लोकनकूंहीं अनुवाद
करैहैं ॥

मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति॥ वेद वा अहं गौ-
तम तत्सूत्रं तच्चान्तर्यामिणमिति ॥ यो
वा इदं कश्चिद्ब्रूयाद्देव वेदेति । यथा वेत्थ
तथा ब्रूहीति ॥ १ ॥

मूर्द्धा (शिर) विस्पष्ट पतन होवैगा । ऐसैं
[उद्दालकनैं कहा ॥ तब याज्ञवल्क्य कहैहैं :-]
हे गौतम (उद्दालक) ! मैं तिस सूत्रकूं औ
ता अंतर्यामीकूं जानताहूं । ऐसैं [कहतेभये ।
तब उद्दालक कहैहैं :-] जो कोईक (प्राकृ-
तपुरुष) यह कहै जानताहूं जानताहूं ऐसैं ।
तूं जैसें जानताहैं तैसें कहिदे । ऐसैं [उद्दा-
लक कहताभया] ॥ १ ॥

कर्तृत्व भोक्तृत्वकरि विशिष्ट तिसीहीं अंतर्यामी-
करि नियमनकिये आत्माकूं जानता है औ तिस^{७५७}
प्रकारके सर्व जगत्कूं जानता है ॥ ऐसैं^{७५८} स्तुत

७५७ “ सो ब्रह्मवित् ” इत्यादि वाक्यकरि उक्त अर्थकूं
संक्षेपसैं कहैहैं ॥ इहां तथाभूत । याका सूत्रकरि विधृत औ
अंतर्यामीकरि नियम्यमान । यह अर्थ है ॥

७५८ प्रस्तुत स्तुतिके प्रयोजनकूं कहैहैं ॥

हुये सूत्र अरु अंतर्यामीके विज्ञानविषै प्रलुब्ध
 हुया काप्य अभिमुखीभूत होताभया औ हम
 [अभिमुखीभूत होतेभये] ॥ तिन अभिमुखी-
 भूतभये हमारेताई गंधर्व सूत्रकूं औ अंतर्यामी-
 कूं कहताभया ॥ मैं (उद्दालक) गंधर्वतैं लब्ध
 आगम (प्राप्तउपदेश) वाला हुया तिस सूत्र
 अरु अंतर्यामीके विज्ञानकूं जानताहूं ॥ हे या-
 ज्ञवल्क्य ! तूं तिस सूत्रकूं औ तिस अंतर्या-
 मीकूं नहीं जानताहैं । ऐसैं अब्रह्मवित् हुया
 जब ब्रह्मवेत्ताओंकी स्वभूत गौवनकूं तूं अ-
 न्यायकरि लेजाताहैं । तातैं मेरे शापकरि द-
 ग्धभये तुज याज्ञवल्क्यका मूर्धा (शिर) विस्पष्ट
 पतन होवैगा ? ऐसैं उक्त याज्ञवल्क्य कहता-
 भया:-हे गौतम ! [ऐसैं गोत्रतैं कहा है] मैं
 तिस सूत्रकूं जानताहूं जाकूं गंधर्व तेरेताई
 कहताभया । औ जिस अंतर्यामीकूं तुम गंधर्व-

७५९ ऐसैं तुजकूं सूत्रका अज्ञान होइ । तिसकरि मुज
 (याज्ञवल्क्य) कूं क्या आया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥
 इहां तिसकरि क्या है । इस ठिकाने ताका ऐसैं अध्याहार है ॥

स होवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वा-
युना वै गौतम सूत्रेणायञ्च लोकः परश्च-

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः—
हे गौतम ! वायुहीं सो सूत्र है । हे गौतम !
वायुरूप सूत्रकरि यहलोक औ परलोक औ
तैं जानतेभये तिस अंतर्यामीकूं में जानताहूं ॥
इस प्रकारसैं कहेहुये । गौतम (उद्दालक)
कहताभयाः—जो कोईबी प्राकृत पुरुष जो तु-
जकरि कहा याकूं कहै ॥ कैसें किः—मैं जान-
ताहूं जानताहूं। ऐसैं आपकूं श्लाघा करताहुया ।
ताके तिस गर्जितकरि क्याभया । कार्यकरि दि-
खायदे ^{७६०} । जैसें जानताहैं तैसें कहिदे । ऐसैं
[कहताभया] ॥ १ ॥

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहते भयेः—^{७६१}ब्रह्म-
लोक जिसविषै ओत औ प्रोत हैं । वर्त्तमान

७६० कार्यकरि दिखायदे। ऐसैं उक्त अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

७६१ याज्ञवल्क्यकी उक्तिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह
अभीष्ट आगमवेद्य है । ऐसैं अध्याहार करिके आद्य इति श-
ब्दकी योजना है ॥ प्रश्नांतर कहिये सूत्रविषयक गौतमवाक्य ॥

लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि
भवन्ति । तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहु-
र्व्यस्रसिपतास्याज्ञानीति वायुना हि
सर्वभूत सम्यक् (ग्रथित) होवैहैं । तातैं
हे गौतम ! मृत पुरुषकूं कहतेहैंः—याके अंग
विस्त्रस्त हैं । यातैं हे गौतम ! वायुरूपहीं
कालविषै जैसें पृथिवी जलविषै है । सो सूत्र
आगमगम्य कहनेकूं योग्य है । यातैं तिस अर्थ
प्रश्न उत्तर उठाया है ॥ यातैं ताके निर्णय अर्थ
कहैहैंः—हे गौतम (उद्दालक) । वायु सो सूत्र
है अँन्य नहीं । वायु यह सूक्ष्म आँकाशवत् ।
पृथिवी आदिकनका आश्रय है । जिसँका स्व-
रूप सप्तदशविध लिंग प्राणीनके कर्म अरु वा-

७६२ वैशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

७६३ सूक्ष्मताविषै दृष्टान्तकूं कहैहैं ॥

७६४ वायुकृहीं विशेषण देते हैं ॥ इहा पंच भूत । दश
बाह्यइंद्रियां । पंच वृत्तिवाला प्राण । चतुर्विध अंतःकरण ।
ऐसैं सप्तदशविधपना है ॥

७६५ उत्तर सृष्टिके हेतु । प्राणीनकरि संपादित कर्मनका
औ वासनाओंका आश्रय होनेतैं अपेक्षितहीं लिंग है । ऐसैं
कहैहैं ॥

गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्ती-
त्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूही-
ति ॥ २ ॥

सूत्रकरि सम्यक् ग्रथित होवेंहैं । ऐसैं [नि-
श्चय करै हैं] ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य । यह
ऐसैंहीं है ॥ [अब] अंतर्यामीकूं कथन कर ?
ऐसैं [उद्दालक कहताभया] ॥ २ ॥

सनाका ^{७६६}समवायी है ॥ जो तिसकी समष्टि व्य-
ष्टि स्वरूप है । समुद्रकी लहरीनकीन्यांई जिंसैं-
के बाह्यभेद सप्त सप्त (एकोनपंचाशत्) मरु-
द्गण हैं । सो यह वायव्यतत्व सूत्र ऐसैं कहिये
है ॥ हे गौतम ! वाँयुरूप सूत्रकरि यह लो-
क औ परलोक औ सर्वभूत । सम्यक् ग्रथि-
त होवेंहैं यह प्रसिद्ध है औ लोकविषै प्रसिद्धि

७६६ तिसीहीं सामान्य विशेष स्वरूपकी बहुरूपताकूं
कहैहैं ॥

७६७ तिसीहींकी लोकपरिक्षित प्रसिद्धिकूं कहैहैं ॥

७६८ ता (वायु)की सूत्रताकूं साधते हैं ॥ इहां प्रसिद्ध
यह सूत्रके वेत्ताओंकूं है । यह शेष है ॥

है ॥ कैसेँ किः—जातैं वायु सूत्र है वायुकरि धारणच्छिा सर्व है । तातैं हे गौतम ! पुरुषकूं प्रेत कहतेहैं शिथिलभये इस पुरुषके अंग [वे वायुरूप सूत्रकरि ग्रथित हैं] । सूँत्र (तंतु) के अपगम हुये तिसविषै प्रोत मणिआदिकनका पतन देख्या है । ऐसेँ वायु सूत्र है तिसविषै मणिनकीन्यांई प्रोत जब याके अंग होवैहैं । तातैं यह युक्त है वायुके अपगम हुये अंगनका शिथिलपना होवैहै । याँतैं हे गौतम ! वायुरूप सूत्रकरिहीं ग्रथित होवैहैं ऐसेँ सूचन करैहैं ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! ऐसेँहीं यह सूत्र सम्यक् कहा । अबतो ताके अंतर्गत तिसीहीं सूत्रके नियंता अंतर्त्यामीकूं कहो ? ऐसेँ उक्त हुये याज्ञवल्क्य । कहैहैं ॥ २ ॥

७६९ लौकिकी प्रसिद्धिकूंहीं प्रश्नपूर्वक अनंतर श्रुतिके आश्रयकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७७० उक्त दृष्टांतकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

७७१ वायुकी सूत्ररूपताके सिद्ध भये फलितकूं कहैहैं ॥

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अ-
न्तरो यं पृथिवी न वेद । यस्य पृथिवी-

अर्थः—[अवयाज्ञवल्क्यकहैहैंः—]जो पृ-
थिवीविषै स्थित हुया पृथिवीतैं अंतर है ।
जाकूं पृथिवी नहीं जानती है । जाका पृ-

टीकाः—जो पृथिवीविषै स्थित हुया होवैहै
सो अंतर्यामी है ॥ ॥ सर्व पृथिवीविषै स्थित हो-
वैहै । यातैं सर्वत्र प्रसंग मति होहू । यातैं वि-
शेषण देतेहैं पृथिवीके अंतर (भीतर) है ॥ ॥
तहां यह पृथिवी देवताहीं अंतर्यामी होवैहै ?
यातैं कहैहैंः—जिस अंतर्यामीकूं पृथिवी देवता-
बी मेरेविषै अन्य कोईबी वर्त्तताहै ऐसैं नहीं
जानतीहै ॥ औ जाँका पृथिवीहीं शरीर है
अन्य नहीं । कहिये पृथिवी देवताका जो शरीर
है सोई जाका शरीर है ॥ इहां शरीरका ग्रहण

७७२ नियंता ईश्वरके लौकिक नियंताकी न्याई कार्य
करणवान्पनैकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

७७३ ननु पृथिवीकूं शरीरपनाहीं है । शरीरपना तो
नहीं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां वा पृथिवीका जो
करण है । सोई ताका करण है ऐसैं योजना है ॥

शरीरं । यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त
आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ३ ॥

थिवी शरीर है । जो पृथिवीकूं अंतर हुआ
नियमन करै है । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ ३ ॥

उपलक्षण अर्थ है ॥ औ पृथिवीका जो करण है
सोई ताका करण है ॥ जातैं स्वकर्मका किया
कार्य अरु करण पृथिवीदेवताकावी है । सो
याका है । अंतर्यामीकूं स्वकर्मके अभावतैं नित्य-
मुक्त होनेतैं परं अर्थ कर्तव्यताके स्वभावतैं प-
रका जो कार्य औ करण है । सोई याका है ।
स्वतः नहीं । सो कहैहैं:-जाका पृथिवी शरीर
है ऐसैं । देवताके वात्सल्यकी ईश्वरसाक्षी
मात्रके सान्निध्यकरि जातैं नियमकरि प्रवृत्ति

७७४ पृथिवीकूं शरीर अरु इंद्रियवान्पना कैसें है ? सो
कहैहैं ॥

७७५ अंतर्यामीकूंवी तैसें क्यूं नहीं होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

७७६ अंतर्यामीका सोई कार्य औ करण है अन्य नहीं ।
इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

७७७ ताहीकूं अन्य हेतुकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७७८ “जो पृथिवीकूं” इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भयोऽन्तरो यमापो न
विदुर्यस्याऽऽपः शरीरं । योऽपोऽन्तरो य-
मयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥४॥

अर्थः—जो जलविषै स्थित हुआ जलतैं
अंतर है ॥ जाकूं जल नहीं जानतेहैं । जा-
का जल शरीरहै । जो जलकूं अंतर हुआ
नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ ४ ॥

निवृत्ति होवैहैं । जो ^{७७९}ऐसा नारायण नामवाला
ईश्वर पृथिवी देवताकूं भीतर स्थितहुग्न स्वव्या-
पारविषै नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा है
[इहां तेरा शब्द मेरा औ सर्व भूतनका इसउ-
पलक्षण अर्थ है] अंतर्यामी है । जो तैनें पूछया-
था अमृत (सर्व संसार धर्मतैं वर्जित । सो) है ।
अन्य अर्थ समान है ॥ ३ ॥

टीकाः—जो जलविषै स्थितहुया । अग्नि-

७७९ तहां वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥
इहांः—जाका पृथिवी देवताके कार्य अरु करणकरिहीं कार्य-
करणवान्पना ईदृशपना है ॥

७८० पृथिवी पर्यायविषै दिखाये न्यायकूं अन्य पर्यायविषै

योऽग्नौ तिष्ठन्नग्रेरन्तरो यमग्निर्न वे-
द । यस्याग्निः शरीरं । योऽग्निमन्तरो य-
मयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥५॥

योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरो
यमन्तरिक्षं न वेद । यस्यान्तरिक्षं श-

अर्थः—जो अग्निविषै स्थित हुआ अग्नि-
तैं अंतर है । जाकूं अग्नि नहीं जानताहै ।
जाका अग्नि शरीर है । जो अग्निकूं अंतर
हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अं-
तर्यामी अमृतरूप है ॥ ५ ॥

अर्थः—जो अंतरिक्षविषै स्थित हुआ अं-
तरिक्षतैं अंतर है । जाकूं अंतरिक्ष नहीं जा-
नताहै । जाका अंतरिक्ष शरीर है । जो

विषै । अंतरिक्षविषै । वायुविषै । स्वर्गविषै ।
आदित्यविषै । दिशाओंविषै । चंद्रतारकवि-
षै । आकाशविषै औ आवरण स्वरूप बाह्य त-

अतिदेश करैहैं ॥ इहां सर्वत्र प्राणादिकविषै स्थितहुया अं-
तर्यामी तेरा आत्मा है । ऐसैं संबंध है ॥

रीरं । योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयत्येष त
आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ६ ॥

यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायु-
र्न वेद । यस्य वायुः शरीरं । यो वायुम-
न्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्य-
मृतः ॥ ७ ॥

यो दिवि तिष्ठन्दिवोऽन्तरो यं द्यौ-
अंतरिक्षकं अंतर हुया नियमन करैहै । यह
तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ६ ॥

अर्थः—जो वायुविषै स्थित हुया वायुतैं
अंतर है । जाकूं वायु नहीं जानताहै । जा-
का वायु शरीर है । जो वायुकूं अंतर हुया
नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ ७ ॥

अर्थः—जो स्वर्गविषै स्थित हुया स्व-
र्गतैं अंतर है । जाकूं स्वर्ग नहीं जानता
म (अंधकार)विषै तिसतैं विपरीत प्रकाशके
सामान्यरूप तेजविषै ॥ इस प्रकारसैं अधि-

न वेद । यस्य द्यौः शरीरं । यो दिवम-
न्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्य-
मृतः ॥ ८ ॥

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो
यमादित्यो न वेद । यस्याऽऽदित्यः श-
रीरं । य आदित्यमन्तरो यमयत्येष
त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ९ ॥

है । जाका स्वर्ग शरीर है । जो स्वर्गकूँ अं-
तर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा
अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ८ ॥

अर्थः—जो आदित्यविषै स्थित हुया आ-
दित्यतैं अंतर है । जाकूँ आदित्य नहीं जा-
नताहै । जाका आदित्य शरीर है । जो
आदित्यकूँ अंतर हुया नियमन करैहै । यह
तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ९ ॥

दैवतरूप अंतर्यामी विषयक दर्शन देवताओं-
विषै कहा है ॥ अनंतर अधिभूत हैः—ब्रह्मादि
स्तंबपर्यंत भूतनविषै अंतर्यामीका दर्शन अ-

यो दिक्षु तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यं दि-
शो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं । यो दि-
शोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्या-
म्यमृतः ॥ १० ॥

यश्चन्द्रतारके तिष्ठश्चन्द्रतारकाद-
न्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद । यस्य च-
न्द्रतारकं शरीरं । यश्चन्द्रतारकमन्तरो

अर्थः—जो दिशाओंविषे स्थित हुआ
दिशाओंतैं अंतर है । जाकूं दिशा नहीं जा-
नतीयां हैं । जाका दिशा शरीर है । जो दि-
शाओंकूं अंतर हुआ नियमन करै है । यह
तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥१०॥

अर्थः—जो चंद्रतारकविषे स्थित हुआ
चंद्रतारकतैं अंतर है । जाकूं चंद्रतारक
नहीं जानता है । जाका चंद्रतारक शरीर
धिभूत है ॥ अनंतर अध्यात्म है ॥ जो प्राण
(प्राणवायुसहित घ्राण)विषे । जो वाक्विषे ।
चक्षुविषे । श्रोत्रविषे । मनविषे । त्वचाविषे ।

यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः
॥ ११ ॥

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो
यमाकाशो न वेद । यस्याऽऽकाशः श-
रीरं । य आकाशमन्तरो यमयत्येष त
आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १२ ॥

है । जो चंद्रतारककूं अंतर हुया नियमन
करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृ-
तरूप है ॥ ११ ॥

अर्थ:—जो आकाशविषै स्थित हुया आ-
काशतैं अंतर है । जाकूं आकाश नहीं जा-
नता है । जाका आकाश शरीर है । जो
आकाशकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह
तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १२ ॥

विज्ञाति (बुद्धि) विषै रेत (प्रजा उत्पत्तिके
साधन) विषै ॥ ॥ नँनु फेर किस कारणतैं पृ-

७८१ वाक्यांतरकूं प्रश्नपूर्वक व्याख्यान करैहैं ॥ इहां:—
जैसैं मनविषै है । तैसैं बुद्धिविषैबी सन्निधानतैं ज्ञातृता है ।
यह अर्थ है औ “तहां” ऐसैं पूर्व ग्रंथरचनाकी उक्ति है ॥

यस्तमसि तिष्ठःस्तमसोऽन्तरो यं
तमो न वेद । यस्य तमः शरीरं । यस्त-
मोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्या-
म्यमृतः ॥ १३ ॥

यस्तेजसि तिष्ठःस्तेजसोऽन्तरो यं
तेजो न वेद । यस्य तेजः शरीरं यस्ते-
जोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्या-
म्यमृत इत्यधिदेवतमथाधिभूतम् ॥१४॥

अर्थः—जो तमविषै स्थित हुआ तमतेँ अं-
तर है । जाकूँ तम नहीं जानता है ॥ जाका
तम शरीर है । जो तमकूँ अंतर हुआ नि-
यमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ १३ ॥

अर्थः—जो तेजविषै स्थित हुआ तेजतेँ
अंतर है । जाकूँ तेज नहीं जानता है । जा-
का तेज शरीर है । जो तेजकूँ अंतर हुआ
नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी

थिवीआदिक देवता महाभागवाली हुयी म-

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो
भूतेभ्योऽन्तरो यः सर्वाणि भूतानि न
विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं । यः
सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आ-
त्माऽन्तर्याम्यमृत इत्यधिभूतमथाध्या-
त्मम् ॥ १५ ॥

अमृतरूप है ॥ ॥ यह अधिदैवत है । अ-
नंतर अधिभूत [कहिये] है ॥ १४ ॥

अर्थः—जो सर्व भूतनविषै स्थित हुआ
सर्व भूतनतैं अंतर है । जाकूं सर्वभूत नहीं
जानते हैं । जाका सर्वभूत शरीर है । जो
सर्वभूतनकूं अंतर हुआ नियमन करैहै । यह
तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ॥
यह अधिभूत है । अनंतर अध्यात्म [कहि-
ये] है ॥ १५ ॥

नुष्यआदिककीन्यांई आपविषै स्थित आपके
नियंता अंतर्यामीकूं नहीं जानैहैं ? यह शंका
भयी । यातैं कहैहैंः—अदृष्ट (नदृष्ट) है कहिये

यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद । यस्य प्राणः शरीरं । यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १६ ॥

यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं वाङ्मन वेद । यस्य वाक् शरीरं । यो वाचमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १७ ॥

अर्थः—जो प्राणविषै स्थित हुआ प्राणतैं अंतर है । जाकूं प्राण नहीं जानतेहैं । जाका प्राण शरीर है ; जो प्राणकूं अंतर हुआ नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृतरूप है ॥ १६ ॥

अर्थः—जो वाक्विषै स्थित हुआ वाक्तैं अंतर है । जाकूं वाक् नहीं जानतीहै । जाका वाक् शरीर है । जो वाक्कूं अंतर हुआ नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृतरूप है ॥ १७ ॥

किसीवेछी चक्षुके दर्शनका विषयीभूत नहीं है ।

यश्चक्षुषि तिष्ठञ्चक्षुषोऽन्तरो यं
चक्षुर्न वेद । यस्य चक्षुः शरीरं । यश्च-
क्षुरन्तरो यमग्न्येष त आत्माऽन्तर्या-
म्यमृतः ॥ १८ ॥

यः श्रोत्रे तिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो यञ्
श्रोत्रं न वेद । यस्य श्रोत्रञ् शरीरं । यः

अर्थः—जो चक्षुविषै स्थित हुआ चक्षुतै
अंतर है । जाकूं चक्षु नहीं जानता है ।
जाका चक्षु शरीर है । जो चक्षुकूं अंतर हुआ
नियमन करै है । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ १८ ॥

अर्थः—जो श्रोत्रविषै स्थित हुआ श्रो-
त्रतै अंतर है । जाकूं श्रोत्र नहीं जानता
है । जाका श्रोत्र शरीर है । जो श्रोत्रकूं

आपतो चक्षुविषै सन्निहित होनेतै दृशिस्वरूप
है । यातै द्रष्टा है । तैसै अश्रुत है कहिये कि-
सीकेबी श्रोत्रकी गोचरताकूं अप्राप्त है । आपतो
अलुप्त श्रवणशक्तिवाला हुआ सर्व श्रोत्रनविषै

श्रोत्रमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्त-
र्याम्यमृतः ॥ १९ ॥

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं
मनो न वेद । यस्य मनः शरीरं । यो
मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्त-
र्याम्यमृतः ॥ २० ॥

अंतर हुआ नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा
अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १९ ॥

अर्थ:—जो मनविषै स्थित हुआ मनतैं
अंतर है । जाकूं मन नहीं जानताहै ।
जाका मन शरीर है । जो मनकूं अंतर हुआ
नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ २० ॥

सन्निहित होनेतैं श्रोता है । तैसैं अमत है क-
हिये मनके संकल्पके विषयकूं अप्राप्त है । जातैं
दृष्टश्रुतविषैहीं सर्वजन संकल्पकूं करैहैं । अदृष्ट
होनेतैं अरु अश्रुत होनेतैंहीं अमत है । औ अ-
लुप्त मननशक्तिवाला होनेतैं अरु सर्व मनोवि-

यस्त्वचि तिष्ठस्त्वचोऽन्तरो यं त्व-
इन वेद । यस्य त्वक् शरीरं । यस्त्वचम-
न्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्य-
मृतः ॥ २१ ॥

अर्थः—जो त्वचाविषै स्थित हुआ त्व-
चातें अंतर है । जाकूं त्वचा नहीं जानती
है । जाका त्वचा शरीर है । जो त्वचाकूं
अंतर हुआ नियमन करेहै । यह तेरा आ-
त्मा अंतर्त्यामी अमृतरूप है ॥ २१ ॥

बै संनिहित होनेतें मंता है । तैसें अविज्ञातहै
कहिये रूपादिककीन्यांई वा सुखादिककीन्यां-
ई निश्चयके गोचरकूं अप्राप्त है । आपतो अलुप्त
विज्ञानशक्तिवाला होनेतें अरु संनिहित होनेतें
विज्ञाता है ॥ ॥ तहां (पूर्वग्रंथकी रचनाविषै)
जाकूं पृथिवी नहीं जानतीहै औ जाकूं सर्वभूत
नहीं जानतेहैं । यातें (इसकारणतें) अन्य नि-
यमन करने योग्य दिखावा होवेंगे । अन्य नि-

यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं
विज्ञानं न वेद । यस्य विज्ञानं शरीरं ।
यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आ-
त्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ २२ ॥

अर्थः—जो विज्ञान (बुद्धि)विषे स्थित
हुया विज्ञानतैं अंतर है । जाकूं विज्ञान
नहीं जानताहै । जाका विज्ञान शरीर है ।
जो विज्ञानकूं अंतर हुया नियमन करैहै ।
यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप
है ॥ २२ ॥

यंता अंतर्यामी है । ऐसैं प्राप्तभया । तिसतैं अ-
न्यभावकी आशंकाकी निवृत्ति अर्थ कहियेहैः—
इसैं अंतर्यामीतैं अन्य द्रष्टा नहीं है । तैसैं
इसतैं अन्य श्रोता नहीं है । इसतैं अन्य
मंता नहीं है । इसतैं अन्य विज्ञाता नहीं है ॥

७८२ अन्वयकूं लखावनेकूं । यातैं अन्य । ऐसैं उक्त पदा-
र्थनकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अन्य द्रष्टा नहीं है । ऐसैं सं-
बंध है ॥

यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यश्चेतो
न वेद । यस्य रेतः शरीरं । यो रेतोऽन्त-
रो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतो-
ऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ता-

अर्थः—जो रेतविषै स्थितहुया रेततैं अं-
तर है । जाकूं रेत नहीं जानता है । जाका
रेत शरीर है । जो रेतकूं अंतर हुया नियम-
न करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृ-
तरूप है ॥ अदृष्ट हुया द्रष्टा है । अश्रुत हुया
श्रोता है । अमत हुया मंता है । अविज्ञात
जातैं पर (अन्य) द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता न-
हीं है । जो अदृष्ट हुया द्रष्टा है । अश्रुत हुया
श्रोता है । अमत हुया मंता है । अविज्ञात हुया
विज्ञाता है । औ अमृत कहिये सर्व संसारधर्म-
तैं वर्जित सर्व संसारीनके कर्मफलके विभागका

७८३ यह तेरा आत्मा है । इत्यादि वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां

तृतीयाध्यायगत-सप्तम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं

समाप्तम् ॥ ७ ॥

ऽविज्ञातो विज्ञाता । नान्योऽतोऽस्ति द्र-
 ष्टा । नान्योऽतोऽस्ति श्रोता । नान्योऽतो-
 ऽस्ति मंता । नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त
 आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तं । त-
 तो होद्दालक आरुणिरुपरराम ॥ २३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
 सप्तममंतर्यामि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

हुया विज्ञाता है ॥ इसतैं अन्य द्रष्टा नहीं
 है । इसतैं अन्य श्रोता नहीं है । इसतैं अ-
 न्य मंता नहीं है । इसतैं अन्य विज्ञाता
 नहीं है ॥ यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अ-
 मृतरूप है ॥ इसतैं अन्य आर्त्त है ॥ ॥
 तदनंतर उद्दालक आरुणि उपराम होता-
 भया ॥ २३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभा-
 षादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य सप्तम-
 मंतर्यामि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

कर्त्ता है । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृत

ध्याय । ३] सप्तम-अंतर्यामी-ब्राह्मण ॥ ७ ॥ १३९९

है । इस ईश्वररूप आत्मातें अन्य वस्तु आर्त्त
(विनाशी) है ॥ तदनंतर उद्दालक आरुणि
उपराम होताभया ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥
८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥
१५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥
२२ ॥ २३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य सप्तममंतर्यामि-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृ-
तीयाध्यायस्याष्टममक्षर-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

अथ ह वाचक्रव्युवाच ॥ ब्राह्मणा भ-
अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी-
पिकायास्तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षर-
ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—अनंतर वाचक्रवी (गार्गी) क-
हतीभयीः—हे भगवाले ब्राह्मणो ! अब मैं

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षर-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

टीकाः—यातैपरे अशनाया आदिकतै विनि-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषा-
दीपिकायास्तृतीयाध्यायगत-अष्टम-ब्रा-
ह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

७८४ पूर्व ब्राह्मणविषै सूत्र औ अंतर्यामी प्रश्न उत्तरकरि
निर्धार किये । अब उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां
सोपाधिक वस्तुके निर्धारणके अनंतर अथ शब्दका अर्थ है ॥

गवन्ते हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि ।
तौ चेन्मे वक्ष्यति । न वै जातु युष्म-
कमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति ॥ पृच्छ गा-
र्गीति ॥ १ ॥

याकूं दो प्रश्न पूछती हूं । तिनकूं जो मेरे-
ताई कहैगा तो कदाचित् तुझारे मध्य को-
ईबी याकूं ब्रह्मवादके प्रति जीतनेवाला न-
हींहै । ऐसैं [उक्तब्राह्मण आज्ञा देतेभये:-]
हे गार्गी ! पूछ । ऐसैं ॥ १ ॥

मुक्त निरुपाधिक साक्षात् अपरोक्ष सर्वांतर ब्र-
ह्म कहनेकूं योग्य है । यातैं आरंभ है:-अनंतर
गार्गी कहतेभयी ॥ ^{७८५} पूर्व याज्ञवल्क्यकरि नि-
षिद्ध अरु मस्तक पतनके भयकरि उपरत हुयी
फेर पूछनेवास्ते ब्राह्मणनकी आज्ञाकूं प्रार्थना क-
रैहै:-हे ब्राह्मणो ! भगवन् (पूजावाले) मेरे
वचनकूं सुनो । अब मैं इस याज्ञवल्क्यके प्रति

७८५ ननु जातैं भयतैं गार्गी पूर्व उपरत भयी । ताकूं
तिस अवस्थावाली होनेतैं फेर सो पूछनेकूं कैसैं प्रवर्त्त हो-
वैहै ? तहां कहैहैं ॥

सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य ।
यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्वं

अर्थः—सो निश्चयकरि कहतीभयीः—हे याज्ञवल्क्य ! मैं तुजकूं [दो प्रश्न पूछती हूं] जैसें काश्य वा वैदेह उग्रपुत्र (शूरवी-फेर दो प्रश्न पूछंगी । जब तुझारी अनुमति है ॥ तिन दो प्रश्नोंकूं जब मेरेताईं किसीप्रकारसैबी कथन करैगा । तब निश्चयकरि कँदा-चित्बी तुझारेमध्य कोईबी इस याज्ञवल्क्य-कूं ब्रह्मकथन (ब्रह्मवाद)केप्रति जीतनेवाला नहीं होवैगा ॥ ऐसैं उक्त ब्राह्मण । अनुज्ञाकूं देतेभयेः—हे गार्गी ! पूछ ॥ ऐसैं प्राप्त अनुज्ञा-वाली हुयी याज्ञवल्क्यके प्रति ॥ १ ॥

टीकाः—सो कहतीभयीः—मैं तेरे प्रति दो प्रश्नोंकूं कहूंगी । ऐसैं अनुषंग करियेहै ॥ ॥

७८६ हंत । याके अर्थकूं कहैहैं ॥

७८७ नहीं कदाचित् । इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां आश्चर्य दिखावनेकूं कोईबी ऐसैं पुनरुक्ति संधान करियेहै । सो कहियेहै ऐसैं ॥

धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सप-
त्नतिव्याधिनाौ हस्ते कृत्वोपतिष्ठेदेवमे-
वाहं त्वां द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोदस्थां
तौ मे ब्रूहीति ॥ पृच्छ गार्गीति ॥ २ ॥

रका वंशरूप राजा) । उज्य धनुषकूं अधि-
ज्यकरिके । शत्रुनकूं अतिव्याधिकर बाण-
वाले दो शरोकूं हस्तविषै करिके समीप स्थि-
त होवै ॥ ऐसैं ही मैं तेरेताई दो प्रश्नोंकरि
समीप स्थितभई हूं । तिन दोनूं (प्रश्नों)कूं
मेरेताई कथन कर । ऐसैं [कहतीभई । तब
याज्ञवल्क्य कहैहैं:—] हे गार्गि ! पूछ ।
ऐसै ॥ २ ॥

कौनसे वे दो प्रश्न हैं ? इस जिज्ञासाके हुये ति-
न दोनूं प्रश्नोंकी दुरुत्तरता (दुःखसैं उत्तर देना)
जनावनेकूं प्रथम दृष्टांतपूर्वक कहैहैं:—हे याज्ञ-
वल्क्य ! जैसे लोकविषै काशीमें होनेवाला
काश्य [प्रसिद्ध शौर्य काश्यविषै होवैहै] वा
वैदेह (विदेहोंका राजा) उग्रपुत्र । अर्थ यह

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य ! दि-

अर्थः—सो कहतीभईः—हे याज्ञवल्क्य !

जो शूर वंशाला । अवतारित दोरवाले ध-
नुषकूं फेर अधिज्य (आरोपित दोरवाला)
करिके । दो बाणवाले [बाण शब्दकरि शरके
अग्रविषै जो वंशका टुकडा संधान करिये है ।
तिसविनाबी शर होवैहै । यातें बाणवाके यह
विशेषण देती है ॥ तिन दो बाणवाले] शरोंकूं
[तिनहींका विशेषण शत्रुकूं अतिशयकरि पी-
डाकर] हस्तविषै करिके जो समीपतें स्थि-
त होवै अरु आपकूं दिखावै ॥ ऐसैंहीं में तेरे-
तांई शर स्थानीय दो प्रश्नोंकरि तेरे समीप
स्थितभयीहूं । तूं जो ब्रह्मवेत्ता होवै तो तिन
दो प्रश्नोंकूं मेरेतांई कथनकर ? इतर (याज्ञ-
वल्क्य) कहैहैंः—हे गार्गि ? पूंछ ऐसैं ॥ २ ॥

टीकाः—सो कहतीभयीः—हे याज्ञवल्क्य !

७८८ शेष दो प्रश्नोंकी अवश्य प्रत्युत्तर देनेकी योग्यता-
विषै ब्रह्मनिष्ठताका अंगीकार हेतु है । ऐसैं कहैहैं ॥

वो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावा-
पृथिवी इमे यद्भूतञ्च भवच्च भविष्यच्चे-
त्याचक्षते । कस्मिंस्तदोतं च प्रोतं
चेति ॥ ३ ॥

जो स्वर्ग^{तैं} ऊपर है । जो पृथिवी^{तैं} नीचे है ।
जो [ब्रह्मांडके] मध्य ये स्वर्ग अरु पृथिवी
हैं औ जो भूत है औ वर्तमान है औ भवि-
ष्यत् है । ऐसैं [आगम^{तैं}] कहते हैं ॥ सो
(सूत्र) किसविषै ओत है औ प्रोत है ?
ऐसैं ॥ ३ ॥

जो स्वर्ग (अंडकपाल)^{तैं} ऊपर औ जो पृ-
थिवी (अधः अंडकपाल)के नीचे औ जो म-
ध्य स्वर्ग अरु पृथिवी है कहिये दोनूं अंडकपा-
लनके मध्य है औ ये दो स्वर्ग अरु पृथिवी
हैं । औ जो भूत (अतीत) है औ भवत्
(स्वव्यापारविषै स्थित वर्तमान) है औ भवि-
ष्यत् (वर्तमानकाल^{तैं} उर्द्धकालभाविर्लिंगग-

स होवाच ॥ यदूर्ध्वं गार्गि ! दिवो य-
दवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः—हे गार्गि ! जो स्वर्गतेँ ऊपर है । जो पृथिवीतेँ नीचे है । जो मध्यमें ये स्वर्ग अरु पृथिवी हैं म्य) है । जो सर्व यह है ऐसैं शास्त्रतेँ कथन करैहैं । सोँ सर्व द्वैतजात जिसविषै एकरूप हो-वैहै यह अर्थ है । सो पूर्व उक्त सूत्रसंज्ञक । जलविषै पृथिवी धातुकीन्यांई किसविषै ओत है औ प्रात है ॥ ३ ॥

टीकाः—सोँ इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैंः—हे गार्गि ! जो तेनेँ कहा “अंडकपालतेँ ऊपर” इत्यादि । सो सर्व । जाकूं सूत्र कहतेहैं । सो सूत्र आकाशविषै ओत है औ प्रोत है ॥ क-

७८९ सूत्रके आधारके पूछनेकूं योग्य हुये । सर्व जगत् क्युं अनुवाद करीये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां पूर्वोक्त सर्व ज-गदात्मक है ॥ यह अर्थ है ॥

७९० जैसेँ प्रश्न है । तैसेँ ताकूं अनुवाद करिके प्रत्युत्तरकूं ग्रहण करैहैं ॥

इमे यद्भूतञ्च भवञ्च भविष्यञ्चेत्याचक्ष-
त आकाशे तदोतञ्च प्रोतञ्चेति ॥ ४ ॥

सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य !

औ जो भूत है औ वर्त्तमान है औ भवि-
ष्यत् है । ऐसैं कहते हैं ॥ [ऐसा जो सूत्र] सो
आकाशविषै (अव्याकृताकाशविषै) ओत है
औ प्रोत है । ऐसैं ॥ ४ ॥

अर्थ:—सो (गार्गी) कहतीभई:—हे या-

हिये जो यँहँ व्याकृतरूप सूत्रात्मक जगत् है ।
सो जलविषै पृथिवी धातुकीन्याँई अव्याकृताका-
शविषै तीन कालविषैबी वर्त्तता है । उँत्पत्तिविषै
स्थितिविषै औ लयविषै ॥ ४ ॥

टीका:—फेर सो कहती भयी:—तेरेअर्थ
नमस्कार होहू । इत्यादि प्रश्नकी दुर्वचनताने

७९१ ताकूँ व्याख्यान करैहैं ॥ इहां जो जगत् व्याकृत
सूत्रात्मक है । यह अव्याकृत आकाशविषै वर्त्तता है । ऐसैं
संबंध है ॥

७९२ तीनबी कालविषै ऐसैं जो कहा । ताकूँ स्पष्ट करैहैं ॥
इहां वक्ष्यमाण वाक्य अन्य ऐसैं कहैहैं ॥

यो म एतं व्यवोचोऽपरस्मै धारयस्वे-
ति ॥ पृच्छ गार्गीति ॥ ५ ॥

ज्ञवल्क्य ! तेरे अर्थ नमस्कार होहू । जो मेरे
इस [प्रश्न]कूं विशेषकरि कहताभया है ॥
[अव] अपर (द्वितीय प्रश्न)के अर्थ धार-
णकर (आपकूं दृढकर) ॥ ॥ हे गार्गि ! पूंछ ।
ऐसैं [याज्ञवल्क्य कहतेभये] ॥ ५ ॥

प्रदर्शन अर्थ है । जो तूं मेरे इस प्रश्नकूं वि-
शेषकरि कहताभया है ॥ इसकी दुर्वचनता
(दुःखसैं कहनेकी योग्यता)विषै कारणः—सूत्र-
हीं प्रथम अगम्य (इतरोंकरि दुर्वाच्य) है । तब
सो जिसविषै ओत है औ प्रोत है । सोदुर्वाच्य
होवै यामैं क्या कहना ! यातैं तेरे अर्थ नमस्का-
र होहू । अपर (द्वितीय प्रश्न)के अर्थ धार-
णकर । अर्थ यह जो आपकूं दृढकर ॥ ॥ हे
गार्गि ! पूंछ । ऐसैं इतर (याज्ञवल्क्य) कहते
भये । अन्य (वक्ष्यमाणवाक्य) व्याख्यान कि-
या है ॥ ५ ॥

सा होवाच यदूर्द्धं याज्ञवल्क्य ! दि-
वो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावा
पृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्य-
च्चेत्याचक्षते । कस्मिंस्तदोतञ्च प्रोतञ्चे-
ति ॥ ६ ॥

अर्थः—सो (गार्गी) कहतीभईः—हे या-
ज्ञवल्क्य ! जो स्वर्गतेँ ऊपर है । जो पृथि-
वीतेँ नीचे है । जो मध्यमें ये स्वर्ग अरु पृ-
थिवी है औ जो भूत है औ वर्त्तमान है औ
भविष्यत् है । ऐसैं कहते हैं ॥ सो किसविषे
ओत है औ प्रोत है । ऐसैं ॥ ६ ॥

टीकाः—^{७९३}सो कहती भयीः—हे याज्ञवल्क्य !
जो ऊपर है । इत्यादि प्रश्न है ॥ औ प्रतिवच-
न उँकेहीं अर्थके अवधारण अर्थ फेर कहियेहै ।
कोईबी अपूर्व अर्थात्तर नहीं कहियेहै ॥ गार्गी-
नेँ जैसेँ कहा । सो सर्व प्रतिउच्चार करिके । ति-

७९३ तिसीहीं प्रतिवचनके रूपकूं अनुवाद करैहैं ॥

७९४ पुनरुक्तिकी अकिंचित्करताकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

७९५ प्रतिवचनके अनुवादके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गी ! दिवो यद-
वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावा पृथिवी
इमे यद्भूतञ्च भवञ्च भविष्यच्चेत्याचक्षत
आकाश एव तदोतं च प्रोतं चेति ॥ क-
स्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ७ ॥

अर्थः—सो कहताभयाः—हे गार्गी ! जो
स्वर्गतेँ ऊपर है जो पृथिवीतेँ नीचे है । जो
मध्यमें ये स्वर्ग अरु पृथिवी हैं औ जो भूत
है औ वर्त्तमान है औ भविष्यत् है । ऐसैं
कहते हैं ॥ सो (सूत्र) आकाशविषैहीं ओत
है औ प्रोत है । ऐसैं ॥ ॥ [गार्गी कहैहैः—]
किसविषै निश्चयकरि आकाश (अव्याकृ-
ताकाश) ओत है औ प्रोत है ? ऐसैं ॥ ७ ॥

सीहीं पूर्वोक्तअर्थकूं “^{७९}आकाशविषैहीं है” ऐसैं
याज्ञवल्क्य अवधारण करतेभये ॥ ॥ गार्गी
कहैहैः—किसविषै निश्चयकरि आकाश ओत
है औ प्रोत है ऐसैं ॥ आकाशहीं प्रथम तीन

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गी ! ब्राह्मणा

अर्थ:—सो (याज्ञवल्क्य) कहते भये:—हे गार्गी ! तिस इसकूं ब्राह्मण अक्षर कहते हैं ॥

कालतैं अतीत होनेतैं दुर्वाच्य है । तिसतैंबी क-
ष्टतर अक्षर है । जिसविषै आकाश ओत है औ
प्रोत है । यातैं अवाच्य है ऐसैं करिके जो प्र-
त्तिपत्तिका विषय नहीं करियेहै सो अप्रतिपत्ति
नाम निग्रहस्थान है । तार्किकमतविषै । औ अ-
वाच्यकूंबी कहताहै । तथापि विप्रतिपत्ति नाम
निग्रहस्थान है । जातैं सो विरुद्ध प्रतिपत्ति है ।
जो अवाच्यका वदन है । यातैं दुर्वचन प्रश्नकूं
गार्गी मानती है । तिन दो दोषनकूंबी परिहार
करते हुये याज्ञवल्क्य कहैहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

टीका:—सो याज्ञवल्क्य कहते भये:—इसी-
हीं तिस (अक्षर) कूं [ब्राह्मण अभिवदन क-
रैहैं] जाकूं तूं पूछती हैं । किसविषै निश्चयकरि
आकाश ओत है औ प्रोत है ऐसैं ॥ ॥ सो

७९७ अप्रतिपत्ति औ विप्रतिपत्ति । ये दोनूं दोष सामा-
न्यकरि कहे । ताकूं विशेषकरि जाननेकूं गार्गी पूछती है ॥

अभिवदन्त्यस्थूल मनण्वह्रस्वमदी-
र्घमलोहितमस्त्रेहमच्छायमतमोऽवाय्व-

[जो] अस्थूल है । अनणु है । अह्रस्व
है । अदीर्घ है । अलोहित है । अस्त्रेह है ।
अच्छाय है । अतम है । अवायु है । अ-

क्या है कि:-अक्षर है ! जो क्षयकूं पावता नहीं
औ क्षरता नहीं । यातैं अक्षर है ॥ हे गार्गी!
तिस अक्षरकूं ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) अभिवदन
करैहैं ॥ ब्राह्मणोंके अभिवदनके कथनकरि मैं
अवाच्यं नहीं कहताहूं औ नहीं जानताहूं ऐसैं
नहीं ॥ इसप्रकार दोषद्वयकूं परिहार करैहैं ॥ ऐसैं
प्रश्नके निराकरण किये हुये फेर गार्गीका प्रति-
वचन देखनेकूं योग्य है ॥ जाकूं ब्राह्मण अभि-
वदन करैहैं सो अक्षर क्या हैकहहू ? ऐसैं उक्त
हुये याज्ञवल्क्य कहैहैं:-सो अस्थूल (स्थूलतैं
अन्य) है ॥ जब ऐसैं है तब अणु होवैगा ?
अनणु है ॥ तब ह्रस्व होहू ? अह्रस्वहीं है ॥ तब

नाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कम-
श्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणमः ख-

नाकाश है । असंग है । अरस है । अगंध
है । अचक्षुष्क है । अश्रोत्र है । अवाक् है ।
अमन है । अतेजस्क है । अप्राण है । अ-

दीर्घ होहू ? दीर्घवी नहीं । किंतु अदीर्घही है ॥
ऐसैं इन च्यारी परिमाणोंके निषेधोंकरि द्रव्यके
धर्मका प्रतिषेध किया । यातैं जो द्रव्य नहीं सो
अक्षर है । यह अर्थ सिद्ध भया ॥ तब लोहित
गुण होहू ? तिसतैंबी अन्य अलोहित है । जो
लोहित गुण है सो अग्निका है ॥ तब जलका
स्नेह गुण होहू ? सो नहीं किंतु अस्नेह है ॥ तब
छाया होहू ? सर्वथाबी अनिर्देश्य होनेतैं छाया-
तैंबी अन्य अच्छाय है ॥ तब तम होहू ? अ-
तम है ॥ तब वायु होहू ? अवायु है ॥ तब आ-
काश होहू ? अनाकाश है ॥ तब जतु. (लाख)

७९९ जो अग्निका लोहितरूप है । इत्यादि श्रुतिकूं आ-
श्रय करिके । कहैहैं ॥

ममात्र मनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति कि-
ञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥ ८ ॥

मुख है । अमात्र है । अनंतर है । अबाह्य
है । सो किसीकूंबी नहीं भक्षण करैहै । ताकूं
कोईबी नहीं भक्षण करैहै ॥ ८ ॥

की न्यांई संग्तात्मक होहू ? असंग है ॥ तब रस
होहू ? अरस है । तैसें अगंध है ॥ तब चक्षुवाला
होहू ! अचक्षु है । जातैं चक्षु याका करण नहीं
है । यातैं अचक्षु है । “ चक्षुरहित हुया देखता
है ” इस मंत्रवर्णतैं ॥ तैसें अश्रोत्र है । “ सो
कर्ण रहित हुया सुनताहै ” इस मंत्रवर्णतैं ॥
तब वाक् होहू ? अवाक् है । तैसें अमन है ।
तैसें अतेजस्क है । अविद्यमान है तेज याकूं सो
अतेजस्क कहियेहै । जातैं अग्निआदिकके प्र-
काशकीन्यांई याका तेज नहीं है ॥ अप्राण है ॥
इहां अप्राण ऐसें आर्ध्यात्मिक वायु प्रतिषेध क-

८०० अवायुविशेषणकरि अप्राणविशेषणकी पुनरुक्तिकूं
आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां अमात्र । ऐसें प्रमाण प्रमेयका

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गा-
अर्थः—हे गार्गी ! इस अक्षरके प्रशा-

रियेहै ॥ तब मुखरूप द्वार होहू ? सो अमुख
है ॥ औ अमात्र है । जिसकरि प्रमाज्ञानका वि-
षय करियेहै सो मात्र है । जो मात्ररूप नहीं
होवै । सो अमात्र है । तिसकरि कलुबी प्रमाका
विषय नहीं करियेहै ॥ तब छिद्रवाला (अंतर-
वाला) होहू ? अनंतर है । याका अंतर नहीं
है ॥ तब बहि (बाहिर) संभवैगा ? ता (आ-
त्मा)का अवाह्य है ॥ तब सो भक्षक होहू ?
सो किसकूंबी भक्षण नहीं करैहै ॥ तब भक्ष्य
(किसीकाबी भक्ष्य) होवैगा ? ताकूं कोईबी
भक्षण नहीं करैहै ॥ सर्व विशेषणोंतैं रहित
है । यह अर्थ है ॥ जातैं एकेहीं अद्वितीय है । तातैं
सो किसकरि क्यूं विशेषण युक्त करिये ॥ ८ ॥

टीकाः—अनेक विशेषणोंके प्रतिषेधके प्रया-

संबंध निराकरण करियेहै औ ताका । ऐसैं आत्माका कथन है ॥

८०१ संपिडित (मिलित) अर्थकूं कहैहैं ॥

८०२ ताकूं उपपादन करैहैं ॥

८०३ अब यथोक्तनीतिसैं श्रुतिकरिहीं अक्षरकी अस्तित्ताके

र्गि ! सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि !

सनविषै सूर्य औ चंद्रमा विधृतहुये स्थित
होवैहैं ॥ हे गार्गि ! इस अक्षरके प्रशासन-
विषै स्वर्ग अरु पृथिवी विधृतहुये स्थित

सतैं प्रथम अक्षरका अस्तिपना श्रुतिकरि जना-
या । तथापि लोक बुद्धिकूं अपेक्षा करिके जातैं
आशंका करियेहै । यातैं अस्तित्वके अर्थ अनु-
मान प्रमाणकूं उपन्यास करैहैं:—औ इसीहीं अ-
क्षरके कहिये जो यह अधिगत अक्षर सर्वांतर

ज्ञापित हुये वक्तव्यके अभावतैं उत्तर ग्रंथकरि क्या है ? यह
शंका भयी । तहां कहैहैं ॥ इहां जो है सो विशेषण सहितहीं
है । ऐसैं लौकिकी बुद्धि है । “ यातैं अक्षर निर्विशेषण नहीं
है ” ऐसैं आशंका करियेहै यह शेष है ॥ औ यह भाव है:—
अंतर्यामी जगत्के कारण अनुमानकरि सिद्ध परमात्माविषै
विवक्षित निरुपाधि अक्षर होवैगा काहेतैं जगत्की कारण-
ताकूं उपलक्षण होनेकरि जन्मादि सूत्रविषै स्थित होनेतैं ।
उपलक्षणद्वारा ब्रह्मविषै स्वरूपलक्षणकी प्रवृत्तितैं अंतर्यामी-
विषै अनुमानकरि प्रकृत श्रुति उपयुक्त (उपयोगी) है ॥

८०४ अनुमान श्रुतिके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां
अक्षरके प्रशासनविषै सूर्य अरु चंद्रमा विधृत होवैहैं । ऐसैं
संबंध है ॥

द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य
 वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! निमेषा
 मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा ऋतवः सं-
 वत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा
 होवैहें ॥ हे गार्गि! इस अक्षरके प्रशासन-
 विषै । निमेष । मूहूर्त्त । अहोरात्र । अर्द्ध-
 मास । मास । ऋतुआं । औ संवत्सर ।
 ऐसैं विधृतहुये स्थित होवैहें ॥ हे गार्गि !

साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो अशनायादि ध-
 र्मतैं अतीत आत्मा है । इसीहीं अक्षरके प्र-
 शासनविषै [सूर्य अरु चंद्रमा विधृत हो-
 वैहें]^{८०५} जैसे राजाके प्रशासनविषै राज्य अस्फुटि-
 त नियत वर्त्तता है । ऐसैं इस अक्षरके प्रशा-
 सनविषै हे गार्गि ! दिन रात्रविषै लोकनके प्र-

८०५ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहें ॥ इहांबी पूर्वकी
 न्याई अन्वय है औ यह अनुमान है:—जगत्की व्यवस्था ।
 प्रशासिताके पूर्वक होवैहै । व्यवस्था होनेतैं । राज्यव्यवस्थाकी
 न्याई । यह अर्थ है ॥

८०६ सूर्य अरु चंद्रमा । इत्यादि वाक्यविषै विवक्षित अ-

अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ! प्राच्यो-
ऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेस्यः पर्वते-
भ्यः प्रतीच्योऽन्या यां याञ्च दिशम-

इस अक्षरके प्रशासनविषै पूर्व दिशाके त-
रफ गमन करनेवालीयां । अन्य नदीयां
श्वेत पर्वतोंतैं श्रवतीयां हैं ॥ पश्चिम दि-
शाके तरफ गमन करनेवालीयां अन्य औ
जिस जिस दिशाके प्रति अनुगमन करै-

दीप अरु तादर्थ्य (लोकप्रकाशार्थता) करि ति-
न दोनूसैं वृत्तनेवाले लोकके प्रयोजनके विज्ञान-
वाले प्रशासिताकरि निर्मित ऐसैं सूर्य औ चं-
द्रमा विधृत होवैहैं । साधारण सर्व प्राणिनके

नुमानकूं कहैहैं ॥ इहां तादर्थ्यकरि कहिये लोकके प्रकाशरूप
अर्थवान्ताकरि प्रशासिताकरि निर्मित हैं । ऐसैं संबंध है ॥

८०७ निर्माताके विशिष्ट विज्ञानवान्पनैकूं कहैहैं ॥ इहां
सूर्य अरु चंद्रमा । तत् शब्दके वाच्य हैं ॥ इहां यह अनुमा-
नरूप अर्थ है:—विवादके विषय सूर्य औ चंद्र । विशिष्ट वि-
ज्ञानवालेकरि निर्मित हैं । प्रकाशरूप होनेतैं । प्रदीपकी न्याई ॥

८०८ विवादके विषय सूर्य औ चंद्र । नियंतापूर्वक हैं ।
विशिष्ट चेष्टावाले होनेतैं । भृत्य आदिककीन्याई । इस अ-
भिप्राय करिके । कहैहैं ॥ इहां प्रकाशकरि उपकारकता अरु

न्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि !
ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं
देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः ॥ ९ ॥

हैं ॥ हे गार्गि ! इस अक्षरके प्रशासनविषै
दाता पुरुषनकूं मनुष्य प्रशंसा करैहैं ॥
यजमानके प्रति देव औ दर्वीके प्रति पि-
तर अनुगत होवैहैं ॥ ९ ॥

प्रकाशविषै उपकारक होनेतैं । लौकिक प्रदीप-
की न्यांई ॥ तांतैं सो है । जिसकरि विधृत ई-
श्वर स्वतंत्र हुये निर्मित होयके स्थित होवैहैं ।
औ निर्यंत देश काल अरु निमित्तवाले उदय अ-

ताकी जनकतारूप विशेषण । निर्माताके विशिष्ट विज्ञानविषै
संभावना अर्थ है औ साधारण सर्व प्राणिनका जो प्रकाश
है ताका जनक होनेतैं । यह अर्थ है औ दृष्टांतविषै लौकिक
विशेषण जो है । सो प्रासाद आदिक विशिष्ट देशविषै स्थित-
ताकी सिद्धि अर्थ है ॥

८०९ अनुमानके फलकूं उपसंहार करैहैं ॥

८१० विशिष्ट चेष्टावाले होनेतैं । ऐसैं उपदेशकिये हेतुकूं
स्पष्ट करैहैं ॥ नियत देशकाल औ नियत निमित्त जो प्राणी-
नका अदृष्ट । तिसवाले सूर्य अरु चंद्रमा । उदय अरु अस्तकूं
पावते हैं औ वे दोनुं जिसकरि विधृत हुये उदय अरु अस्त-

स्त अरु वृद्धि क्षयकरि वर्त्ततेहैं ऐसैं (कर्त्ताप-
नैकरि औ विधारयितापनैकरि) प्रदीपके कर्त्ता
अरु विधारयिताकीन्यांई इन दोनूका प्रशासि-
ता सो अक्षर है ॥ वा इसीहीं अक्षरके प्रशा-
सनविषै हे गार्गि ! स्वर्ग अरु पृथिवी ।
सीवयव होनेतैं फूटनेके स्वभाववालेबी हुये । गुरु
(भारी) होनेतैं पतन स्वभाववाले । संयुक्त हो-
नेतैं वियोग स्वभाववाले । चेतनावाले अभिमा-
नी देवताकरि अधिष्ठित होनेतैं स्वतंत्रबी हुये
इस अक्षरके प्रशासनविषै विधृत हुये स्थित
होवैहैं कहिये वर्त्ततेहैं ॥ जातैं र्हैं अक्षर सर्व व्य-

करि अरु वृद्धि क्षयकरि वर्त्तते हैं ॥ इहां उदय औ अस्तमय
सो कहिये उदयास्तमय औ वृद्धि अरु क्षय सो कहिये वृद्धि-
क्षय । ऐसैं द्वंद्वसमासकूं ग्रहण करिके द्विवचन है ॥ ऐसैं क-
र्त्तापनैकरि औ विधारयितापनैकरि । यह अर्थ है ॥ इहां यह
साधारण अनुमान है । विवादके विषय स्वर्ग अरु पृथिवी ।
प्रयत्नवान्करि विधृत हैं । काहेतैं सावयवताके हुयेबी अस्फु-
टित होनेतैं । गुरुताके हुयेबी अपतित होनेतैं । संयुक्त हु-
येबी अवियुक्त होनेतैं । औ चेतनावान्ताके हुयेबी अस्वतंत्र
होनेतैं ॥ हस्तविषै धारण किये पाषाण आदिककी न्यांई ॥

८११ द्वितीय पर्यायके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

८१२ इस अक्षरके प्रशासनविषै स्वर्ग अरु पृथिवी क्यूं

वस्थाका सेतु अरु सर्व मर्यादाका विधरण है। योंतैं इस अक्षरके प्रशासनकूं स्वर्ग अरु पृथिवी नहीं अतिक्रमण करैहैं। तातैं इस अक्षरका अस्तिपना सिद्धभया ॥ जातैं सो लिंग अव्यभिचारी है जो स्वर्ग अरु पृथिवी नियत वर्तते हैं। चेतनावाले असंसारी प्रशासिता विना यह युक्त नहीं है “जिसकरि स्वर्ग उग्र है औ पृथिवी दृढ है” इस मं-

वर्तते हैं ? तहां कहैहैं ॥ पृथिवी आदिककी व्यवस्था नियंता-विना अघटित हुयी ताकी कल्पक है ॥

८१३ ऐसैं इस अक्षरकरि स्वर्ग अरु पृथिवी क्यूं विधृत हैं ? तहां कहैहैं ॥

८१४ “ यह (परमात्मा) सेतु विधरण है ” इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके फलितकूं कहैहैं ॥

८१५ द्वितीय पर्यायके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

८१६ तत्शब्दकरि ग्रहण किये अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥

८१७ अव्यभिचारीपनैकूं प्रगट करैहैं ॥ इहां पृथिवी आदिकका नियंतापना एतत् शब्दका अर्थ है ॥

८१८ नियंतापनैके सिद्ध हुयेवी ईश्वरकी सिद्धि कैसें है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां पृथिवी आदिकका उग्रपना कहिये चेतनावाले अभिमानी देवतावाला होनेकरि स्वतंत्रपना ॥ “ जिसकरि स्वर्गस्तंभित है । जिसकरि नाक है । जो अंतरिक्षविषै रजका विमान है । किस देवके अर्थ हवि-करि करें ” इस ठिकाने हिरण्यगर्भका अधिष्ठाता ईश्वर पृथिवी आदिकका नियंता कहिये है । जातैं हिरण्यगर्भमात्रका

त्ररूप वाक्यतै ॥ ॥ इसीहीं अक्षरके प्रशा-
सनविषै हे गार्गि! निमेष । मुहूर्त्त ऐसे ये का-
लके अवयव ^{८१९} सर्व अतीत अनागत वर्त्तमान ज-
न्मवाले वस्तुके कलयिता (गणनाके कर्त्ता) वि-
धृत हुये स्थित होवै हैं ॥ जैसेँ लोकविषै प्र-
भुकरि नियतहुया गणक सर्व आयकूं औ व्ययकूं
अप्रमत्त हुया गणना ^{८२१} करै है । तैसेँ प्रभुस्थानीय
इनकालके अवयवोंका नियंता है ॥ ॥ तैसेँ पूव
दिशाविषै गमन करनेवालियां गंगो^३आदिक

इस प्रकरणविषै पूर्वापर ग्रंथमें कथन किया निरंकुश सर्वका
नियंतापना नहीं संभवै है । यह भाव है ॥ ये कालके अवयव
विधृत हुये स्थित होवै हैं । ऐसेँ संबंध है ॥

८१९ तहां अनुमानकूं कहनेकूं हेतुकूं कहै हैं ॥

८२० जो कलयिता है सो नियंता पूर्वक है । तिस व्या-
प्तिकी भूमिकूं कहै हैं ॥

८२१ दार्ष्टीतिककूं दिखावते हुये अनुमानकूं कहै हैं ॥ इहां
यह अर्थ है:—निमेष आदिक नियंता पूर्वक हैं गणनाके कर्त्ता
होनेतै । लोक प्रसिद्ध गणककी न्यांई ॥

८२२ कौनसी वे नदीयां है ? इस अपेक्षाके हुये कहै हैं ॥
इहां अन्यथा प्रवर्त्त होनेकूं उत्सहमान्पना कहिये तिस तिस
देवताओंका चेतनताकरि स्वतंत्रपना ॥ इहां यह अनुमान
है:—विवादकी विषय जे नदीयां । वे नियंताके पूर्वक हैं

नदीयां श्वेत (हिमवान् आदिक) पर्वतन (गिरिन) तै श्रवतीयां हैं । वे जैसें प्रवर्तित हीं हैं तैसें नियत हुईयां प्रवर्त होवैहैं । अन्यथाबी प्रवर्तनेकूं उत्साहकूं पावतीयां नहीं । यातै सो यह प्रशास्ताका लिंग है ॥ अन्य सिंधुआदिक नदीयां प्रतीची (पश्चिम) दिशाके प्रति गमन करैहैं औ अन्य जिस जिस दिशाके प्रति अनुप्रवृत्त होवैहैं । तिस तिस दिशाकेताई व्यभिचारकूं पावतीयां नहीं । सो बी लिंग है ॥ ॥
 किंवाः—हिरण्य आदिकनकूं देनेवाले ऐसे आपकूं पीडाकरनेवाले पुरुषनकूंबी प्रमाणके जाननेवालेबी मनुष्य प्रशंसा करैहैं । तैहीं जो व-

नियंताकरि प्रवृत्तिवालीयां होनेतैं । भृत्यआदिकनकी प्रवृत्तिकी न्याई । यह चतुर्थ पर्यायका अर्थ है ॥ इहां नियत प्रवृत्तिमानपना । सो यह ऐसैं कहिये है औ सो लिंग है । ऐसैं तत् शब्दकरि अव्यभिचारीपनैका कथन है ॥

८२३ विवादका विषय जो दानका फल । सो विशिष्ट ज्ञानवालेका दिया होवैहै । कर्मका फल होनेतैं । सेवाके फलकीन्याई । इस अभिप्राय करिके । पंचमपर्यायकूं उठावते हैं ॥

८२४ दाता । देने योग्य दानकूं देता है । प्रतिग्रहीता देने योग्य फलकूं देवैगा । ईश्वरकरि क्या है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—दाताआदिकनका इ-

स्तु दिया जावैहै औ जो देतेहैं औ जे प्रतिग्रहण करैहैं । तिनका इहांहीं समागम औ विलय अन्वक्ष (प्रत्यक्ष) देखियेहै । परें समागम तौ अदृष्टहै । तैथापि मनुष्य देनेवाले एरुषनके दानके फलके साथि संयोगकूं देखते हुये प्रमाँणज्ञता करि प्रशंसा करैहैं ॥ औ सो कर्मफलके साथि सम्यक् योजना करनेहारे अरु कर्त्ताके कर्मफलके विभागके जाननेहारे प्रशास्ताके न होते नहीं होवैगा । दानक्रियाकूं प्रत्यक्ष विनाशी होनेतैं

इहांहीं प्रत्यक्ष नाश देखीयेहै । तिसकरि ताका किया अदृष्टरूप पुरुषार्थ कोईबी नहीं है ॥

८२५ अदृष्टरूप पुरुषार्थके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—समागम कहिये फलका प्रतिलाभ । सो निश्चयकरि ऐहिक नहीं होवैहै किंतु पारलौकिक होवैहै । तिसप्रकार हुये यह इहांहीं नष्ट दाता आदिकका किया नहीं संभवैहै ॥

८२६ तब फलदाताके अभावतैं स्वार्थका भ्रंशहीं मूर्खता है । इस न्यायतैं दाताकी प्रशंसाहीं मति होइ ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

८२७ फलसंयोगकी दृष्टिविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

८२८ “ हिरण्यके दाते अमृतभावकूं भजते हैं ” इत्यादि प्रमाण है । तथापि ईश्वरकी सिद्धि कैसे है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सोई दाताका प्रशंसन । विशिष्ट नियंताके न होते अघटित हुया ता (नियंता)का कल्पक है ॥

८२९ ननु दानक्रियाके वशतैंहीं ताके फलकी सिद्धिके

तौतौ दानके कर्त्ताओंकूं फलके साथि संयोज-
यिता (योजक) है॥ ॥ननु ^{८३१}अपूर्व [फलदाता]
होवैगा ? ऐसैं जो कहै । सो ^{८३२}बनै नहीं:—काहेतैं
ताके सद्भावविषै प्रमाणके असंभवतैं ॥ ॥^{८३३}ननु
प्रशास्ताकेवी [सद्भावविषै प्रमाणका असंभव
होवैगा] ? ऐसैं जो कहै । सो ^{८३४}बनै नहीं:—काहे-
तैं आगमके तात्पर्यकूं सिद्ध होनेतैं । जातैं आ-

हुये नियंतानैं क्या किया ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं ऐसैं
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—कर्मकूं क्षणिक होनेतैं । औ फ-
लकूं कालांतरविषै भावी होनेतैं [केवल दानक्रियाकूं फ-
लकी] साधनताका संभव नहीं है ॥

८३० अनुमान अरु अर्थापत्ति प्रमाणकरि सिद्ध अर्थकूं
उपसंहार करैहैं ॥

८३१ ननु अपूर्वकूंहीं फलदाता होनेतैं ईश्वरनैं क्या
किया ? इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै ॥

८३२ आप अचेतन वा चेतनकरि अनधिष्ठित अपूर्व ।
फलका दाता कल्पनेकूं योग्य नहीं है । अप्रामाणिक होनेतैं ।
इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

८३३ ईश्वरका द्वेषी शंका करैहै ॥

८३४ [प्रशास्ताकेवी] सद्भावविषै प्रमाणका असंभव है ।
इस शेषकूं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

८३५ ननु कार्यके पर आगमकी वस्तुपरता कैसें है ? यह
आशंका करिके । कहैहैं ॥

गमकी वस्तुपरताकूं हम कहतेहैं ॥ औ अन्य क्या है किः—अपूर्वकी कल्पनाविषैबी अर्थापत्तिका अन्यथाहीं उपपत्तितैं क्षय होवैहै । काहेतैं इस सेवाफलकी सेव्यतैं प्राप्तिके दर्शनतैं औ सेवाकूं क्रियारूप होनेतैं औ ताके सामान्यतैं याग दान अरु होम आदिकनकी सेव्य ईश्वरादिकतैं फ-

८३६ जातैं कर्मविधि फलदातासैं विना बनै नहीं औ आशुतर विनाशी कर्मबी बनै नहीं । यातैं कालांतरभावी फलके अनुकूलताकी अर्थापत्तिकरि सिद्ध अपूर्वविषै प्रमाणकी अस्ति-द्धि कैसें है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—केवल सद्भावविषै प्रमाणका असद्भावहीं अपूर्वका दूषण नहीं किंतु अन्य किंचित् (कल्लुक दूषण) है ॥

८३७ सो ताहीकूं प्रगट करैहैं ॥ इहांः—अपूर्वकी कल्पनाविषै जो अर्थापत्ति शंका करियेहै । ताका कल्पित अपूर्व विनाबी उपपत्तितैं क्षय होवैहै । ऐसैं योजना है ॥

८३८ अन्यथावी उपपत्तिकूं (अपूर्वकी कल्पनाविनाबी फलके संभवकूं) विवरण करैहैं ॥ इहांः—यागादिकका फलबी ईश्वरतैं संभवै है । यह शेष है ॥

८३९ यागादिकके फलकी प्राप्ति ईश्वरके आधीन कैसें है ? तहां कहैहैं ॥ इहां आदिपदकरि इंद्रादिक देवता ग्रहण करियेहैं ॥ विवादकी विषय जो यागादि क्रिया । सो विशिष्ट ज्ञानवालेकरि दीयमान फलवाली है । विशिष्ट क्रियारूप होनेतैं । प्रसिद्ध क्रियाकी न्यांई । यह भाव है ॥

लकी प्राप्ति संभव है । दृष्ट जो क्रियाका धर्म-
ताकरि सामर्थ्य (सेव्यतै फलप्रापकता) । ताकूं
अपरित्यागकरिकेहीं (अनुसरीके) फलप्राप्तिकी
कल्पनाके संभव हुये दृष्ट जो क्रियाका धर्म-
ताकरि सामर्थ्य । ताका परित्याग । न्याय्य (श्रेष्ठ)
नहीं है औ कल्पनाकी अधिकतातै ईश्वर कल्पना
करनेकूं योग्य है वा अपूर्व ॥ तहां क्रियाका स्व-
भाव । सेव्यतै फलकी प्राप्ति देखी है । अपूर्वतै
तो नहीं ॥ औ अपूर्व देख्या नहीं । तहां अपूर्व

८४० यातैबी अपूर्वकी कल्पना युक्त नहीं है । ऐसैं क-
हैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—इष्ट जो सेवाका धर्मरूप होनेकरि
सेव्यतै फलकी प्रापकतारूप सामर्थ्य । ताकूं अनुसरीके दान-
आदिकविषै फलकी प्राप्तिके संभव हुये । ताके निरासकरि
अपूर्वतै ताकी कल्पना न्याय्य (युक्त) नहीं है । काहेतै दृ-
ष्टके अनुसारी कल्पनाके हुये तिसतै विरोधी कल्पनाके अ-
योगतै ॥

८४१ अपूर्वकी फलहेतुताविषै अन्य दोषकूं कहैहैं ॥

८४२ कल्पनाकी अधिकताके कहनेकूं विचार करैहैं ॥

८४३ ननु अपूर्वकल्पना करनेकूं योग्य है । निश्चित हो-
नेतै । तहां कल्पनाकी अधिकता नहीं है ? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥ इहां व्यवहारभूमि । सतमीका अर्थ है ॥

८४४ भूमिकाकूं करिके । कल्पनाकी अधिकताकूं स्पष्ट
करैहैं ॥ इहां अपूर्वकी अदृष्टरूपताके हुये । यह “तहां” इस

अदृष्टरूप कल्पना करनेकूं योग्य है औ ताका फलदातापनैविषै सामर्थ्य है औ सामर्थ्यके (अपूर्वकी अदृष्टताके) हुये दानबी अधिक होवैगा [यातैं कल्पनाकी अधिकता होवैगी] ॥ ईहां (हमारे पक्षविषै) तो सेव्य ईश्वरका सद्भवमात्र कल्पना करनेकूं योग्य है । परंतु फलदानका सामर्थ्य औ दातापना [कल्पना करनेकूं योग्य नहीं] काहेतैं सेव्यतैं फलप्राप्तिके दर्शनतैं (प्रत्यक्षसिद्धितैं) औ अनुमान दिखाया है “स्वर्ग अरु पृथिवी विधृतहुये स्थित होवैहैं” इत्यादि ॥ तिसैं प्रका-

सप्तमीका अर्थ है औ ऐसैं कल्पनाकी अधिकता है । यह शेष है ॥

८४५ ननु अन्य ठिकाने (ईश्वरपक्षविषै) बी तुल्य कल्पना है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—स्वपक्षविषै धर्मीमात्र कल्पना करनेकूं योग्य है औ परपक्षविषै धर्मी औ धर्म दोनूं कल्पना करनेकूं योग्य होवैगे । ऐसैं कल्पनाकी अधिकता है । तातैं “फलवालेकी उपपत्तितैं ” इस न्यायकरि परमात्माकूंहीं फलकी दातृता है ॥

८४६ धर्मीकीबी प्रामाण्यता कल्पना करनेकूं योग्य है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

८४७ ईश्वरकी अस्तित्वाविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां देव यजमानके ताई अनुगत होवैहैं । ऐसैं संबंध है औ जीवनके अर्थ । याका जीवनकूं निमित्तकरि यह अर्थ है ॥ ईश्वर (समर्थ) देवनकाबी हव्यकी अर्थिताकरि मनुष्यनके

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा
 ऽःःःके जुहोति यजते तपस्तप्यते ब-

अर्थः—हे गार्गि ! जो इस अक्षरकूं न जानिके इस लोकविषै होमकूं करैहै । य-

र हुये यजमानकूं देव । ईश्वर हुये जीवनअर्थ (जोवनकूं निमित्त करिके) अनुगत होयके चरु पुरोडाशआदिक उपजीवनरूप प्रयोजनकरि औरप्रकारसैं बी जीवनेकूं उत्साह करते हुये रूपण दीन वृत्तिकूं आश्रयकरिके स्थित होवैहैं । सोबी प्रशास्ताके प्रशासनतैं होवैगा ॥ तैसैं पितरबी तिस (जीवन)के अर्थ दूर्वी (दूर्वीहोम) केतांई अनुगत होवैहैं । यह अर्थ है ॥ अन्य सर्व समान है ॥ ९ ॥

टीकाः—यातैंबी सो अक्षर है । जातैं तिसके अज्ञानके हुये संसारकी उपपत्ति नियमित है ।

आधीन हीन वृत्तिका भागीपना नियंतानैं कल्प्या है । यह अर्थ है ॥ जो किसीकाबी प्रकृति होनेकरि वा विकृति होनेकरि नहीं वर्त्तता है । सो दूर्वी होम है ॥

८४८ ईश्वरकी अस्तित्ताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

हूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भव-
ति । यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा

जनकं करैहै । बहुत वर्षनके सहस्र तपकूं
तपता है । याका सो (फल) अंतवालाहीं
होवैहै ॥ हे गार्गि ! जो इस अक्षरकूं न जा-

जिसके ^{८४९} विज्ञानतैं ताका विच्छेद होवैहै । न्याय-
की उपपत्तितैं । तिसकरि तो सो होनेकूं योग्य
है ॥ ननु क्रियातैंहीं ता (संसार) की विच्छत्ति
होवैगी ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहींः—ऐसैं
कहैहैंः—“ हे गार्गि ! जोई इस अक्षरकूं न-

८४९ मोक्षके हेतु ज्ञानका विषय होनेकरिबी सो (अ-
क्षर) है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां “ जाके अज्ञानतैं जो प्रवृत्ति हो-
वैहै । सो ताके ज्ञानतैं निवर्त्त होवैहै ॥ यह न्याय है ॥

८५० ननु कर्मके वशतैंहीं मोक्षकी सिद्धितैं ताके हेतु
ज्ञानकी विषयताकरि अक्षर अंगीकार करनेकूं योग्य नहीं है ?
इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै ॥

८५१ उत्तर वाक्यकरि सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां
यह भाव हैः—जाके अज्ञानतैं वारंवार अनुष्ठित विशिष्ट फ-
लवालेबी सर्वकर्म । संसाररूप फलकूंहीं देते हैं । सो अज्ञात
अक्षर नहीं है । यह कहना अयुक्त है । काहेतैं ऐसैं हुये सं-
सारके अभावके प्रसंगतैं ॥

ऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतद-
क्षरं गार्गि! विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स
ब्राह्मणः ॥ १० ॥

निके इस लोकतैं मरताहै ॥ सो कृपण
है ॥ औ हे गार्गि! जो अक्षरकूं जानिके
इस लोकतैं मरताहै सो ब्राह्मण (ब्रह्म-
वेत्ता) है ॥ १० ॥

जानिके इस लोकविषै होमकूं करैहै । यज-
न करैहै । तपकूं तपता है । यद्यपि वर्षोंके स-
स्त्रपर्यंत [तथापि] अंतवालाहीं याका सो
फल होवैहै । तिस फलके भोगके अंतविषै या-
के कर्म क्षीण होवैहीं हैं ॥ ॥ किंवाँ जि-
सके विज्ञानतैं कृपणताका नाशरूप संसारका
विच्छेद होवैहै औ जिसके विज्ञानके अभावतैं
कर्मका कर्ता कृपण कृतके फलकाहीं उपभो-
क्तुं जननमरणरूप प्रबंधविषै आरूढहुया
संसरताहै । सो प्रशासिता अक्षर है । सो

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतं
श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ । अन्य-

अर्थः—हे गार्गि ! सो यह अक्षर अदृष्ट-
हुया द्रष्टा है । अश्रुतहुया श्रोता है । अम-
तहुया मन्त्रा है । अविज्ञातहुया विज्ञाता

यह कहिये हैः—हे गार्गि ! जोई इस अक्षरकूं
न जानिके इस लोकतैं मरता है सो मोलसैं
लिये दास आदिककी न्यांई कृपण है ॥ ओं
हे गार्गि ! जो इस अक्षरकूं जानिके इस
लोकतैं मरता है । सो ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता)
है ॥ १० ॥

टीकाः—अंगिके दाहकता अरु प्रकाशकता-
की न्यांई स्वाभाविक याका प्रशास्तापना अचे-
तनकी न्यांईहीं है ? यह शंकाभयी । यातैं कहै-

८५३ पूर्व वाक्य जीवत अवस्थावाले पुरुषकूं विषय क-
रनेवाला है । यह तो परलोककूं विषय करनेवाला है । ऐसैं
विशेष (विलक्षणता) कूं मानिके । उत्तर वाक्यकूं अवतार
देके व्याख्यान करैहैं ॥

८५४ प्रधानवादी (सांख्य) की शंकाकूं अनुवाद करिके ।
उत्तर वाक्यकरि निराकरण करैहैं ॥

दतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ
 नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति
 विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश
 ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ ११ ॥

है ॥ इसतैं अन्य द्रष्टा नहीं है । इसतैं अ-
 न्य श्रोता नहीं है । इसतैं अन्य मंता नहीं
 हैं । इसतैं अन्य विज्ञाता नहीं है ॥ हे गार्गि !
 इस अक्षरविषै निश्चयकरि आकाश ओत
 है औ प्रोत है । ऐसैं (याज्ञवल्क्य कहते भ-
 ये) ॥ ११ ॥

हैं:—हे गार्गि ! सोई यह अक्षर अदृष्ट है
 कहिये किसीनैबी नहीं देख्या है । अविषय हो-
 नेतैं । आप तो द्रष्टा है दृशिस्वरूप होनेतैं ॥
 तैसैं अश्रुत है श्रोत्र आदिकका अविषय होने-
 तैं । आप श्रोता है श्रुतिस्वरूप होनेतैं ॥ तैसैं
 अमत है । मनका अविषय होनेतैं ॥ आप मं-
 ता है । मतिस्वरूप होनेतैं ॥ तैसैं अविज्ञात
 है । बुद्धिका अविषय होनेतैं ॥ आप विज्ञाता

है । विज्ञान स्वरूप होनेतैं ॥ ॥ किंवाँ:-इस अक्षरतैं अन्य कलुबी द्रष्टा (दर्शन क्रियाकाकर्त्ता) नहीं है । यैहैहीं अक्षर सर्वत्र दर्शनक्रियाका कर्त्ता है ॥ तैसैं इसतैं अन्य श्रोता नहीं है । सोई अक्षर सर्वत्र श्रोता है ॥ इसतैं अन्य मंता नहीं है । सोई अक्षर सर्वत्र सर्वजनरूप द्वारकरि मंता है ॥ इसतैं अन्य विज्ञाता (विज्ञान क्रियाका कर्त्ता) नहीं है । सोई अक्षर सर्व बुद्धिरूप द्वारकरि विज्ञानक्रियाका कर्त्ता है ॥ अचेतन प्रधान वाँ अन्य नहीं है ॥ ॥ हे गौँर्गि ! इस प्रसिद्ध अक्षरविषै आकाश ओत है औ प्रोत है ऐसैं ॥ जोई साक्षात् अपरोक्षतैं ब्रह्म है । जो आत्मा सर्वांतर अश-

८५५ यातैंबी अक्षरका अचेतनपना नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां नहीं है । ऐसैं अन्वयका प्रदर्शन है ॥

८५६ इसतैं अन्य । इस विशेषणकरि सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां अन्य वा कहिये पूर्व उक्त अव्याकृतादि पृथिवी पर्यंत ॥

८५७ निगमन वाक्यकूं उदाहरण करिके । ताके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां:-परा काष्ठा कहिये पर्यवसान । अर्थ यह जो इसतैं ऊपर अधिष्ठान किंचित् नहीं है ॥

सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव
बहु मन्येध्वं । यदस्मान्नमस्कारेण मु-

अर्थः—सो (गार्गी) कहतीभईः—हे भ-
गवाले ब्राह्मणो ! सोई बहु मानो । जो इ-
सतैं नमस्कारकरि छूटो । निश्चयकरि क-

नायादि (क्षुधादि) संसार धर्मतैं अतीत है ।
जिसविषै आकाश ओत है औ प्रोत है । यह
परा (उत्कृष्ट) काष्ठा (पर्यवसान) है यैह परा-
गति है । यैह परं ब्रह्म ईसं पृथिवी आदिक आ-
काशपर्यंत जो सत्य है ताका सत्य है ॥ ११ ॥

टीकाः—सो गार्गी कहतीभयीः हे ब्राह्मणो

८५८ तिसीहींके परम पुरुषार्थपनैकूं कहैहैं ॥ इहां “पुरुषतैं
पर किंचित् नहीं है । सो काष्ठा है । सो परागति है ” पे-
सीहीं अन्य श्रुति है ॥

८५९ ननु ब्रह्म । इस अक्षरतैं अन्य है ? ऐसैं जो कहै । सो
बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

८६० ननु चतुर्थ (द्वितीय अध्याय)विषै सत्यका सत्य
ब्रह्म व्याख्यान किया । अक्षर तो ऐसा नहीं ? ऐसैं जो कहै ।
तहां कहैहैं ॥

च्येध्वं । न वै जातु युस्माकमिमं कश्चि-
द्ब्रह्मोद्यं जेतेति । ततो ह वाचक्रव्युत्प-
राम ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्या-
ष्टममक्षर-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

दाचित्त्वी तुह्यारे मध्य कोईवी याकूं ब्रह्म-
वादके प्रति जीतनेवाला नहीं है । ऐसैं ॥
तदनंतर वाचक्रवी (गार्गी) उपराम हो-
तीभई ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां तृतीयाध्यायस्याष्टम-
मक्षर-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

भगवाले ! मेरा वचन सुनो । सोई बहु मानो ॥
सो क्याकिः—जो इस याज्ञवल्क्यतैं नमस्कार

८६१ सो वचन क्या है ? सो कहैहैं ॥

८६२ बहुमानके विषयभूत वस्तुकूं गार्गी पूछती है ॥

८६३ जो आदिविषै मेरा वचन है । सोई बहुमानके
योग्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

८६४ ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—नमस्कारकूं क-

करि (इसके ताई नमस्कारकूं करिके अरु हमारी आज्ञाकूं पायके) मुक्त होहू (छूटो) सोई बहु मानो । यह अर्थ है । याँका जय तो गद्गमैंबां इच्छाकरनेकूं योग्य नहीं है । तब कार्यतैं कहातैं होवैगा ॥ काँहेतैं किः—तुह्यारेमध्य कदाचित्-बी उस याज्ञवल्क्यकूं ब्रह्मवादके प्रति जेता (जीतनेवाला) नहीं है ॥ जब मेरेताई दो प्रश्नोंकूं कहैगा तब याका जेता नहीं होवैगा । ऐसैं पूर्वहीं मेरेकरि प्रतिज्ञात है । अबबी मेरा यहहीं निश्चय हैः—ब्रह्मवादके प्रति याके तुल्य कोईबी नहीं है इति ॥ ॥ तदनंतर वाचक्रवी (गार्गी) । प्रश्नतैं उपराम होतीभयी [॥ १२ ॥]

रिके । हमारी आज्ञाकूं पायके यह शेष है ॥ ताहीकूं । ऐसैं प्रथमके वचनका कथन है ॥

८६५ तेरे पूर्वले वचनकूं कयूं बहु मानें । फेर हम इस याज्ञवाल्क्यकूं जीतनेकूं आशा करैहैं ? तहां गार्गी । बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

८६६ तहां प्रश्नपूर्वक पूर्वोक्तहीं बहुमानके विषयभूत वाक्यकूं अवतार देके गार्गी व्याख्यान करैहै ॥

८६७ ननु पराजित तुज गार्गीका वचन ग्रहण करनेकूं योग्य नहीं है ? यह आशंका करिके गार्गी कहैहै ॥ इहांः— तातैं कहिये प्रश्नके निर्णयतैं । याज्ञवल्क्यके अजेयपनैकूं प्र-

इस अंतर्यामी ब्राह्मणविषै यह कहाः—
 जाँकूँ पृथिवी नहीं जानती है औ जिसकूँ
 सर्वभूत नहीं जानते हैं ऐसैं ॥ जिस अंतर्या-
 मीकूँ नहीं जानते हैं औ जे नहीं जानते हैं औ
 सर्व विषयनका दर्शनादि क्रियाका कर्त्ता होने-
 करि चेतना धातु है । ऐसैं जो सो अक्षर कहा ॥
 तिनमें कौन विशेष है किंवा सामान्य है ऐसैं ॥
 तैहां केईक कहते हैंः—महासमुद्र स्थानीय अ-
 प्रचलित स्वरूप परब्रह्मरूप अक्षरकी किंचित्
 प्रचलित अवस्था अंतर्यामी है । अत्यंत प्रचलि-
 त अवस्था क्षेत्रज्ञ है । जो तिसँ अंतर्यामीकूँ

तिपादन करिके । औ ब्राह्मणोंके प्रति हितकूँ कहिके । यह
 अर्थ है ॥

८६८ अंतर्यामी । क्षेत्रज्ञ औ अक्षर । इनके अवांतर विशेष-
 षके दिखावने अर्थ प्रकृतपनैकूँ दिखावैहैं ॥

८६९ तहां अंतर्यामीके प्रकृतपनैकूँ प्रकट करैहैं ॥

८७० क्षेत्रज्ञके प्रकृतपनैकूँ स्पष्ट करैहैं ॥

८७१ अक्षरके प्रस्तुतपनैकूँ प्रतीति करावै हैं ॥ इहांः—
 सर्व विषयनकी दर्शन श्रवणादि क्रियाका कर्त्ता होनेकरि चे-
 तनाधातु । ऐसा जो है । सो अक्षर कहा है । ऐसैं अन्वय है ॥

८७२ तिनविषै विचारकूँ अवतार देते हैं ॥

८७३ तिसविचारविषै स्वयूध्यके मतकूँ उठावते हैं ॥

८७४ क्षेत्रज्ञके अप्रस्तुतपनैकी शंकाकूँ निवारण करैहैं ॥

नहीं जानता है ॥ तैसैं ^{८७५} अन्य पंच अवस्था । तथा अष्ट अवस्था । ब्रह्मकी होवैहैं । ऐसैं कहतेहुये कल्पना करैहैं ॥ ॥ औ ^{८७६} अन्य अक्षरकी ये शक्तियां हैं । ऐसैं ^{८७७} अक्षरकूं कहतेहैं औ अन्य अक्षरके विकार हैं ऐसैं कहते हैं? तिनमें ^{८७८} अवस्था अरु शक्ति प्रथम बनते नहीं:—काहेतैं अक्षरकी अशनायादि संसारधर्मतैं अतीतताकी श्रुतितैं ॥ जाँतैं अशनायादि धर्म-

८७५ जैसैं परमात्माकी अंतर्यामी औ जीव । ये दो अवस्था कल्पियेहैं । तैसैं तिसीहींकी अन्य पंच अवस्था । पिंड । जाति । विराट् । सूत्र । दैव । इस लक्षणवाले महाभूत संस्थानके भेदकरि कल्पते हैं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां:—उक्तरीतिकरि कल्पनाविषै पिंड । जाति । विराट् । सूत्र । दैव । अव्याकृत । साक्षी औ क्षेत्रज्ञ । ऐसी अष्ट अवस्था ब्रह्मकी होवैहैं । ऐसैं कहते हुये कल्पते हैं । ऐसैं संबन्ध है ॥

८७६ अवस्थाकूं कहिके शक्तिपक्षकूं कहैहैं ॥

८७७ “तु” शब्दकरि अवयवपक्षकूं दिखावते हुये विकार पक्षकूं दालते हैं ॥

८७८ तहां दो पक्षके तांई सिद्धांती प्रत्युत्तर देते हैं ॥ इहां:—अंतर्यामी आदिकनकी यह शेष है ॥

८७९ ताकी संसारसंबंधी धर्मकी अतीतताकी श्रुतिविषैबी अवस्थावान्पना वा शक्तिमान्पना कैसैं नहीं सिद्ध होवैहै? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

कीन्यांई एककूं एक कालविषै अवस्थावान्पना नहीं संभवै है औ तैसैं शक्तिमान्पना नहीं संभवै है औ विर्कां वान्ता अरु अवयववान्ता-विषै दोष पूर्व चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायविषै दिखाये । तैतैं ये सर्व कल्पना असत्य हैं ॥ ॥ तैबे इनका कौन भेद है ? उँपैाधिकृत भेद है । ऐसैं हम कहतेहैं । स्वतः इनका भेद वा अभेद नहीं है । काहेतैं सैधर्वेघनकी न्यांई प्रज्ञान-घन एकरस स्वभाववाला होनेतैं औ “अँपूर्व अनपर अनंतर (अकारण) अबाह्य (अकार्य) यह आत्मा ब्रह्म है” इस श्रुतितैं औ “बाह्य अभ्यं-तर सहित अज है” ऐसैं अथर्वण वेदविषै कहा

८८० अवशिष्ट दो पक्षका निराकरण पूर्वहीं प्रवर्त्त भया है । ताकूं स्मरण करावै हैं ॥

८८१ परपक्षके निराकरणकूं उपसंहार करैहैं ॥

८८२ परकीय कल्पनाके असंभव हुये प्रतिवादी पूँछताहै ॥

८८३ सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

८८४ आत्माविषै स्वतः विशेषके अभावमैं हेतुकूं कहैहैं ॥

८८५ तद्हांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहांः—बाह्य कहिये कार्य । आभ्यंतर कहिये कारण । तिन दोनूं कल्पितोंकरि सहित अधिष्ठान होनेकरि (सत्तास्फूर्तिके प्रदानताकरि) ब्रह्म वर्त्तता है । स्वभावतैं तो जन्मादि सर्व विक्रियाकरि शून्य कूटस्थरूप है । ताकी न्यांई । यह अथर्वण श्रुतिका अर्थ है ॥

है । तौतैं निरुपाधिक आत्माकूं निरुपाख्य (मनवाणीका अगोचर) होनेतैं निर्विशेष होनेतैं औ एक होनेतैं “नेति नेति” ऐसा व्यपदेश होवैहै ॥ अविद्याँ काम अरु कर्मकरि विशिष्ट कार्यकरणरूप उपाधिवाला आत्मा संसारी जीव कहियेहै ॥ नित्य निरतिशय ज्ञानशक्तिरूप उपाधिवाला आत्मा अंतर्यामी ईश्वर कहियेहै ॥ सोई^{८८९} निरुपाधिक केवल शुद्ध हुआ अ-

८८६ आत्माके स्वतः विशेषके अनिश्चयके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां निरुपाख्यपना कहिये वाणीनका औ मनका अगोचरपना । तहां निर्विशेषपना औ एकपना हेतु है । निरुपाधिककूं । ऐसैं निर्विशेषपनैकूं साधनेकूं कहा औ तहां वीप्सरूप वाक्य प्रमाण किया ॥

८८७ फेरहीं इस वस्तुका संसारीपना कैसें है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिनकरि विशिष्ट जो कार्य करण । तिस उपाधिकरि उपहित परमात्मा जीव औ संसारी इस व्यपदेशका भागी होवैहै ॥

८८८ तथापि ताका अंतर्यामीपना कैसें है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—नित्य निरतिशय सर्वत्र अप्रतिबद्धज्ञान है । तिस सत्वगुणके परिणामके हुये सत्वप्रधान माया शक्तिरूप उपाधि होवैहै । तिसकरि विशिष्ट हुआ आत्मा ईश्वर अरु अंतर्यामी कहिये है ॥

८८९ तब तिसविषै अक्षर शब्दकी प्रवृत्ति कैसें है ? तहां

पने स्वभावकरि अक्षर परमात्मा कहियेहै ॥

^{८९०}तैसेँ हिरण्यगर्भ अव्याकृत देवता जाति पिंड म-
नुष्य तिर्यक् प्रेत आदिक कार्यकरणरूप उ-
पाधिनकरि विशिष्ट हुया तिस नामवाला तिस
रूपवाला होवैहै ॥ तैसेँ ^{८९१}“सो चलता है । सो
न चलता है” ऐसेँ पूर्वहीं व्याख्यान किया है ।

^{८९२}तैसेँ “यह तेरा आत्मा है । यह सर्व भूतनका
अंतरात्मा है । यह सर्व भूतनविषै गूढ है । सो
तूं हैं । मैंहीं यह सर्वहूं । आत्माहीं यह सर्व है ।
इसतैँ अन्य द्रष्टा नहीं है” इत्यादि श्रुतियां वि-
रोधकूं पावतीयां नहीं । ^{८९३}अन्य कल्पनाओंविषै

कहैहैं ॥ इहां निरुपाधिपना शुद्धताविषै हेतु है । केवलपना
अद्वयताविषै हेतु है ॥

८९० तथापि तिसविषै हिरण्यगर्भ आदिक शब्दनकी प्र-
वृत्ति कैसेँ है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

८९१ जैसेँ एकहीं परमात्माविषै कल्पित उपाधिकाकिया
नानात्व है । तैसेँ “सो चलता है । सो नहीं चलता है ”
इत्यादि वाक्यकूं आश्रय करिके पूर्वहीं कहा है । पेसेँ कहैहैं ॥

८९२ कल्पनाकरि परमात्माका नानात्व है । वस्तुतैँ तो
एकरसता है । इस अर्थविषै श्रुतिनकूं उदाहरण करैहैं ॥

८९३ अवस्था । शक्ति । विकार । अवयव । पक्षविषैबी
उक्त श्रुतिनके संभवकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

ध्याय । ३] अष्टम-अक्षर-ब्राह्मण ॥ ८ ॥ १४४३

ये श्रुतियां नहीं गमन करैहैं ॥ तैतै उपाधिके
भेदकरिहीं इनका भेद है अन्यथा नहीं । काहे-
तै “एकैहीं अद्वितीय है” ऐसैं सर्व उपनिषदन-
विषै अवधारण (निश्चय)तै ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षर-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ८ ॥

८९४ औपाधिक अंतर्यामी आदिकनका भेद है । स्वा-
भाविक नहीं ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

८९५ स्वतः वस्तुविषै भेद नहीं है किंतु एकरसहीं है
इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-अष्टम ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ८ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृती-
याध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्रा-
ह्मणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्र-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषा-
दीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य नवमं
शाकल्य-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं विदग्ध शाकल्य

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयाध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं
प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

टीकाः—अनंतर याकूं विदग्ध शाकल्य पूछ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपि-
कायास्तृतीयाध्यायगत-नवम-ब्राह्मणस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

८९६ अन्य ब्राह्मणकूं उत्थापन करैहैं ॥ इहांः—गार्गीके
प्रश्नके निर्णीत हुये तिसकरि ब्रह्मकथनके प्रति याके तुल्य
नहीं है । ऐसैं सर्व ब्रह्मणोंके प्रति कथनके अनंतर अथश-
ब्दका अर्थ है ॥

च्छ । कति देवा याज्ञवल्क्येति । स है-
तयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदे-
वस्य निविद्युच्यन्ते ॥ त्रयश्च त्री च श-
ता । त्रयश्च त्री च सहस्रेत्योमिति हो-
पुंछताभयाः—हे याज्ञवल्क्य ! कितने देव
हैं ? ऐसैं ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य इसीहीं
निवित्करि प्राप्त होताभया । जितने वै-
श्वदेवकी निवित्विषै कहियेहैं [तितने दे-
व हैं] ॥ तीन औ तीन शत । तीन औ तीन
सहस्र [देव] हैं ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ

ताभयाः—^{८९७}पृथिवी आदिकनकी सूक्ष्मताके तार-
तम्यके क्रमकरि पूर्व पूर्वके उत्तरविषै ओत प्रो-
तभावकूं कथन करेहुये । सर्वांतरब्रह्मकूं प्रका-
शित करतेभये औ तिसैं ब्रह्मका व्याकृतविषय-

८९७ संगतिकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्तन करैहैं ॥ इहां यह
अर्थ हैः—जो साक्षात् । इत्यादि प्रस्तुत करिके सर्वांतरताके
निरूपणद्वारा साक्षीभाव आदिक आर्थिक अर्थ तीन ब्राह्मणविषै
निरूपण किया ॥

८९८ अंतर्यामी ब्राह्मणविषै आगेतैं निर्देशकीये अर्थकूं अ-
नुवाद करैहैं ॥ इहांः—नामरूपकरि व्याकृत विषय जो द्वैत

वाच ॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति । त्र-
यस्त्रिंशदित्योमिति होवाच ॥ कत्येव
देवा याज्ञवल्क्येति । षडित्योमिति हो-
ऐसैं कहता भया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितने-
हीं देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य क-
हैहैंः-] तैंतीस हैं । ऐसैं ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ
ऐसैं कहता भया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं
देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य कहैहैंः-]
षट् हैं । ऐसैं ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ ऐसैं कह-

विषै सूत्रके भेदनमें नियंतापना कहा । व्यं-
कृतविषयविषै । अतिशय स्पष्ट लिंग है [यातैं
तहांहीं नियंतापना कहा] ॥ तिसीहीं ब्रह्मका
प्रपंच । तिसविषै सूत्रके भेद जे पृथिवी आदिक । तिन निय-
म्योविषै ताका नियंतापना कहा । ऐसैं योजना है ॥

८९९ व्याकृतविषयविषै नियंतापना क्युं कहा ? यह शं-
का भई । तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तहां जातैं पर-
तंत्र पृथिवी आदिकका ग्रहण नियम्यताविषै अत्यंत स्पष्ट
लिंग है । यातैं तहांहीं नियंतापना कहा ॥

९०० वृत्तकूं अनुवाद करिके । उत्तरब्राह्मणके तात्पर्यकूं
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—नियमन करने योग्य देवताओंके
भेदनका प्राणपर्यंत संकोच है औ अनंततापर्यंत विकास

वाच ॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति ।
त्रय इत्योमिति होवाच ॥ कत्येव देवा
याज्ञवल्क्येति । द्वावित्योमिति होवाच ॥

ताभया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ?

ऐसैं ॥ ॥ तीन हैं ऐसैं । [याज्ञवल्क्य कहते भये] ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ ऐसैं कहताभया ॥

हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ?

ऐसैं ॥ ॥ दो हैं । ऐसैं [कहते भये] ॥ ॥

[शाकल्य] ॐ ऐसैं कहताभया ॥ हे याज्ञ-

नियंतव्य देवताभेदनके संकोचरूप द्वारकरि

सक्षात्पना अरु अपरोक्षपना जाननेकूं योग्य है ।

ऐसैं करिके तिस अर्थ शाकल्य ब्राह्मण आरंभ

करिये है ॥ ॥ अंनंतर याकूं नामकरि वि-

है । तिसद्वारा प्रकृतहीं ब्रह्मका साक्षात्पना औ अपरोक्षपना

“ सो यह नेति नेति आत्मा है ” इत्यादि वाक्यकरि जान-

नेकूं योग्य है । इस अभिप्राय करिके । प्रथम देवताओंके सं-

कोच अरु विकासकी उक्ति है । अनंतर वस्तुका निर्देश है ।
ऐसैं इस अर्थवाला यह ब्राह्मण है ॥

९०१ ब्राह्मणके आरंभकूंहीं कहिके । ताके अक्षरनकूं व्या-

ख्यान करैहैं ॥ इहां:—निचित्विषै सुनिये हैं । तितने देव ।
ऐसैं उत्तरविषै संबन्ध है ॥

कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्यध्यर्द्ध इत्यो-
मिति होवाच ॥ कत्येव देवा याज्ञव-
ल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच ॥ कतमे

वल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ अ-
ध्यर्ध (दीड) है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥

[शाकल्य] ॐ ऐसैं कहताभया ॥ हे याज्ञ-
वल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥

एक है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ [शाक-

दग्ध ऐसा शकलका अपत्य शाकल्य पूंछता-
भयाः—हे याज्ञवल्क्य ! कितनी संख्यावा-
ले देव हैं ! ऐसैं ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य नि-
श्चयकरि इसीहीं वक्ष्यमाण निवित्करि प्राप्त
होताभया ॥ ॥ शाकल्यमुनि । संख्याविषै सं-
ख्याकूं पूंछताभयाः—जितने (जितनी संख्या-
वाले) देव वैश्वदेव नामक शस्त्रकी निवित्-
विषै [निवित्नाम ? देवताकी संख्याके वाचक

९०२ कौन यह निवित् है ? ऐसैं प्रतिवादी पूंछताहै ॥

९०३ सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

ते । त्रयश्च त्री च शता । त्रयश्च त्री च
सहस्रेति ॥ १ ॥

ल्य] ॐ ऐसैं कहताभया ॥ कौनसे वे तीन
औ तीनशत । तीन औ तीन सहस्र [दे-
व] हैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ १ ॥

मंत्रनके पद । कितनेक वैश्वदेव नामक शस्त्रविषै
कथन करिये हैं । वे निवित् संज्ञक हैं ॥ तिसैं
निवित्विषै जितने देव] सुनियेहैं तितने देव
कहिये हैं ऐसैं ॥ ॥ कौन फेर सो निवित् है ?
यातैं वे निवित् रूप पद दिखाईये हैं :-तीनसैं
अरु तीन औ फेरबी ऐसैं तीन सहस्र अरु
तीन । इतने देव हैं ऐसैं ॥ ॥ शाकल्यबी ॐ
(सत्य) ऐसैं कहताभया ॥ ऐसैं इनकी म-

१०४ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कथन करैहैं ॥

१०५ यद्यपि भाष्यविषै “ निवित् ” व्याख्यान करी । त-
थापि प्रश्नद्वारा श्रुतिकरि ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥

१०६ अनुज्ञा वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां मध्यमसंख्या
तीन हजार तीनसैं औ छ (३३०६) ॥

स होवाच गृह्णान एवैषामेते त्रय-
 अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः—
 इनके महिमा (विभूतियां)हीं हैं । ये तैंती-
 ध्यम संख्या सम्प्रकृताकरि जानी ॥ फेर^{९०७} तिन
 देवनकीहीं संकोचरूप विषयवाली संख्याकूं शा-
 कल्य पूंछता हैः—हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं
 देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ त्रयस्त्रिंशत् । षट् ।
 तीन । दो । अध्यर्ध (दीड) । एक ॥ ऐसैं दे-
 वर्ताके संकोच अरु विकासकूं विषय करनेवाली
 संख्याकूं पूंछिके । फेर संख्येयके स्वरूपकूं शाक-
 ल्य पूंछता हैः—कौनसे वे तीनसैं औ तीन
 अरु तीन सहस्र औ तीन देव हैं ? ॥ १ ॥

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहतेभयेः—इनतैं-
 तीस देवनके ये तीनसैं तीन । इत्यादिक बडी
 विभूतियां हैं । परंमार्थतैं तो तैंतीसहीं देव

९०७ कितनेहीं । इत्यादि प्रश्नोंकी पूर्व प्रश्नकरि पुनरु-
 क्तिकूं आशंका करिके परिहार करैहैं ॥

९०८ कौनसैं वे तीन । इत्यादि प्रश्नके विषयके भेदकूं
 दिखावै हैं ॥

९०९ तब कितने देव होवैहैं ? तहां कहैहैं ॥

स्त्रिंशत्त्वेव देवा इति । कतमे ते त्रय-
स्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वा-
दशाऽऽदित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्र-
जापतिश्च त्रयस्त्रिंशा इति ॥ २ ॥

सहीं देव हैं । ऐसैं ॥ ॥ कौनसे वे तैंती-
स हैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ [याज्ञ-
वल्क्य कहैहैं:-] अष्ट वसु । एकादश रुद्र ।
द्वादश आदित्य । वे एकतीस हैं । औ इंद्र
अरु प्रजापति [मिलिके] तैंतीस हैं । ऐसैं
[कहते भये] ॥ २ ॥

हैं ऐसैं ॥ ॥ ^{९१०}कौनसे वे तैंतीस देव हैं ?
यह शंकाभयी । यातैं कहियेहैं:-अष्ट वसु ।
एकादश रुद्र । द्वादश आदित्य । वे एक
त्रिंशत् औ इंद्र औ प्रजापति ॥ ॥ तीन
औ तीश । ये दो शब्द तैंतीसके पूरण हैं ॥२॥

९१० तैंतीस (३३) देवनके स्वरूपकूं प्रश्नद्वारा निर्धार
करैहैं ॥

कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षञ्चादित्यश्च द्यौश्च चंद्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्व्वं हितमिति तस्माद्वसव इति ॥ ३ ॥

अर्थः—कौनसे वसु हैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ अग्नि औ पृथिवी औ वायु औ अंतरिक्ष औ आदित्य औ स्वर्ग औ चंद्रमा औ नक्षत्र । ये वसु हैं ॥ इनविषै जातैं यह सर्व वसु स्थित है ऐसैं है । तातैं वसु हैं । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ३ ॥

टीकाः—^{९११}कौनसैं वसु हैं ? ऐसैं तिनका स्वरूप प्रत्येक पूँछीये है ॥ ॥ अग्नि औ पृथिवी । ऐसैं अग्निसैं आदिलेके नक्षत्रपर्यंत ये वसु । प्राणिनैंके कर्मफलके आश्रय होनेकरि कार्यक-

९११ उत्तर प्रश्नके प्रपंचके प्रतीककूं ग्रहण करिके ताके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिन वसुआदिकनके मध्य प्रत्येक वस्तु आदिकके त्रयविषै प्रतिगण हैं । इंद्रविषै औ प्रजापतिविषै एक एकका है ॥

९१२ तिनके वसुपनैकूं “ इनविषै जातैं ” इत्यादि वाक्यके आश्रयकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिनके

कत्मे रुद्रा इति । दशमे पुरुषे प्राणा
आत्मैकादशस्ते यदाऽस्माच्छरीरान्म-

अर्थ-कौनसे रुद्र हैं ? ऐसैं [पूँछताभ-
या] ॥ ॥ दश ये पुरुषविषै प्राण (इंद्रि-
य) हैं एकादश (ग्यारवां) आत्मा है ॥ वे
जब मर्त्यरूप इस शरीरतैं उत्क्रमण करैहैं

रण संघातरूपसैं तिनके निवासरूप होनेकरि
परिणामकूं पावतेहुये इस सर्व जगत्कूं वास
करावते हैं औ आप वसते हैं ॥ वे जीतैं वास
करावते हैं । तातैं वसु हैं इति ॥ ३ ॥

टीका:-कौनसे रुद्र हैं ? ऐसैं [पूँछताभ-
या] ॥ ॥ दश ये पुरुषविषै कर्मेंद्रिय अरु ज्ञा-
नेंद्रियरूप प्राण हैं औ आत्मा (मन) एकाद-

कर्मके औ ताके फलके आश्रय होनेकरि औ तिनहींका नि-
वास होनेकरि शरीर इंद्रियके समुदायके आकारसैं विपरि-
णामवाले हुये अग्नि आदिक इस जगत्कूं आश्रय करैहैं औ
आप तहां वसते हैं । तातैं तिनका वसुपना युक्त है ॥

९१३ वसुपनैकूं निगमन करैहैं ॥

९१४ प्राणशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

त्याद्भुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति । तद्भ्रूद-
यन्ति तस्माद्भुद्रा इति ॥ ४ ॥

कतम आदित्या इति । द्वादश वै मा-
साः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदं
तव रुदन करावै हैं ॥ तहां जातैं रोदन क-
रावै हैं । तातैं रुद्र हैं ऐसैं [कहतेभये] ॥४॥

अर्थः—कौनसे आदित्य हैं ? ऐसैं [पूँछ-
ताभया] ॥ ॥ संवत्सरके द्वादश मास
प्रसिद्ध हैं । ये आदित्य हैं ॥ ये जातैं इस
श (एकादशनका पूरण) हैं ॥ वे^{९१५} ये प्राण जब
प्राणीनके कर्मफलके उपभोगके क्षयभये इस
मरने योग्य शरीरतैं उत्क्रमण करैहैं (निक-
सते हैं) तब रोदन करावते हैं ॥ तहां (म-
रणकालविषै) जातैं वे संबन्धिनकूं रोदन करा-
वते हैं । तातैं रुद्र हैं इति ॥ ४ ॥

टीकाः—कौनसे आदित्य हैं ? ऐसैं [पूँछ-

९१५ “ ये जब इसतैं ” इत्यादि वाक्यकूं अनुसरीके ति-
नके रुद्रपनैकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां मरण काल “ तहां ”
इस सप्तमीका अर्थ है ॥

सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदं सर्व-
माददाना यन्ति । तस्मादादित्या इति
॥ ५ ॥

सर्वकूं आदान करते हुये गमन करैहैं । जातैं
आदान करते हुये जाते हैं तातैं आदित्य
हैं । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ५ ॥

ताभया] ॥ ॥ द्वादशहीं मास संवत्सररू-
प कालके अवयव प्रसिद्ध हैं । ये आदित्य
हैं ॥ ॥ कैसैं किः—वे जातैं पुनः पुनः परिव-
र्त्तमानहुये प्राणिनके आयुषनकूं औ कर्मफलकूं
ग्रहण करतेहुये गमन करैहैं । जातैं ऐसैं इस
सर्वकूं ग्रहण करतेहुये जाते हैं । तातैं आ-
दित्य हैं इति ॥ ५ ॥

९१६ ननु तिनका आदित्यपना अप्रसिद्ध है ? इसप्रकार
प्रतिवादी शंका करैहै ॥

९१७ “ ये जातैं ” इत्यादि वाक्यकरि सिद्धांती उत्तरकूं
कहैहैं ॥

कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति ।
 स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति ॥
 कतमस्तनयित्पुरित्यशनिरिति । कतमो
 यज्ञ इति, पशव इति ॥ ६ ॥

अर्थः—कौनसा इंद्र है ? कौनसा प्रजा-
 पति है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ स्तन-
 यित्नुहीं इंद्र है । यज्ञ प्रजापति है । ऐसैं
 [कहतेभये] ॥ ॥ कौनसा स्तनयित्नु है ?
 ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ अशनि (बलरू-
 प वज्र) है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ कौं-
 नसा यज्ञ है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥
 पशु हैं । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ६ ॥

टीकाः—कौनसा इंद्र है । कौनसा प्रजापति
 है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ स्तनयित्नुहीं इं-
 द्र है । यज्ञ प्रजापति है इति ॥ ॥ कौनसा
 स्तनयित्नु है ? ऐसैं [पूँछताभया] अशनि ।
 ऐसैं [कहतेभये] । अशनि कहिये वज्र । याकूं

कतमे षडित्यग्निश्च पृथिवी च वायु-

अर्थः—कौनसे षट् [देव] हैं ? ऐसैं [पूँ-
छताभया] ॥ ॥ अग्नि औ पृथिवी औ

वीर्य अरु बँलबी कहते हैं । जो (जिसतैं) प्रा-
णीनकूं प्रमापण (हिंसन) करैहैं । सो इंद्र है ।
जौतैं इंद्रका सो कर्म है ॥ ॥ कौनसा यज्ञ
है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ पशु हैं । ऐसैं
[कहतेभये] ॥ जौतैं यज्ञके साधन पशु हैं ।
यज्ञकूं अरूप होनेतैं औ पशु साधनरूप आश्र-
यवाला होनेतैं पशु यज्ञ ऐसैं कहियेहैं ॥ ६ ॥

टीकाः—कौनसे षट् देव हैं ? ऐसैं [पूँछ-

९१९ ताहीकूं संघातविषै स्थितहोनेकरि स्पष्ट करैहैं ॥

९२० सो क्या है ? याके उत्तरकूं कहैहैं ॥

९२१ ता (बल)का इंद्रपना कैसें है ? उपचारतैं है ।
ऐसैं कहैहैं ॥

९२२ पशुनका यज्ञपना अप्रसिद्ध है ? यह आशंका क-
रिके कहैहैं ॥

९२३ कारणविषै कार्यके उपचारकूं साधते हैं ॥ इहां
यह अर्थ हैः—अमूर्त्तरूप होनेतैं साधनव्यतिरिक्त रूपके अ-
भावतैं औ यज्ञकूं पशुरूप आश्रयवाला होनेतैं पशु “ यज्ञ ”
ऐसैं कहिये है ॥

श्चान्तरिक्षञ्चादित्यश्च द्यौश्चैते षडेते ही-
दः सर्वः षडिति ॥ ७ ॥

कतमे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो
वायु औ अंतरिक्ष औ आदित्य औ स्वर्ग ।
ये षट् हैं ॥ जातैं यह सर्व ये षट् होवैहैं ।
ऐसैं [कहतेभये] ॥ ७ ॥

अर्थः—कौनसे वे तीन देव हैं ? ऐसैं
ताभया] ॥ ॥ वेहीं अग्नि आदिक वसुरूपता-
करि पठनकिये ॥ तिनमें चंद्रमा अरु नक्षत्रनकूं
वर्जनाकरिके षट् (षट् संख्याविशिष्ट) होवैहैं
ये जातैं तैंतीस आदिक जो कहा । यह सर्व
येहीं षट् होवैहैं । सर्वहीं वसुआदिकका वि-
स्तर इन षट्विषैहीं अंतर्भावकूं पावताहै । यह
अर्थ है ॥ ७ ॥

टीकाः—कौनसैं वे तीन देव हैं ? ऐसैं [पूं-

९२४ “ ये जातैं ” इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥
इहां—जो तैंतीस आदिक कहा । सो सर्व येहीं हैं । जातैं ये
षट् होवैहैं । ऐसैं योजना है ॥

९२५ अक्षरार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति ॥ कतमौ
तौ द्वौ देवावित्यन्नञ्चैव प्राणश्चेति ॥ क-
तमोऽध्यर्द्ध इति योऽयं पवत इति ॥ ८ ॥

[पूछताभया] ॥ ॥ येही तीन लोक हैं ।
जातें इनहुंविषै ये सर्व देव हैं ऐसैं [कह-
तेभये] ॥ ॥ कौनसे वे दो देव हैं? ऐ-
सैं [पूछताभया] ॥ ॥ अन्न औ प्राण ऐसैं
[कहतेभये] ॥ ॥ कौनसा अध्यर्द्ध (सा-
र्द्धक) [देव] है? ऐसैं [पूछताभया] ॥ ॥
जो यह (वायु) पवता है । ऐसैं [कहतेभ-
ये] ॥ ८ ॥

छताभया] ॥ ॥ येहीं तीन लोक हैं । ऐसैं
[कहतेभये] । पृथिवीकूं अरु अग्निं एक क-
रिके एक देव है । अंतरिक्षकूं औ वायुकूं एक-
करिके द्वितीय देव है । स्वर्गकूं औ आदित्यकूं
एककरिके तृतीय है । वेई तीन देव हैं इति ॥
औ जातें इन तीन देवनविषै सर्व देव अंत-

९२६ प्रतिज्ञाकी समाप्तिविषै इति शब्द है । तिसविषै
हेतुकूं कहैहैं ॥

तदाहुर्यदयमेक इवैव पवतेऽथ कथ-

अर्थः—तहां प्रश्न करैहैंः—जो यह (वायु) एकहीं पवताहै औ अध्यर्द्ध किसकीन्यांई भावकूं पावते हैं । तिसकरि येही तीन देव हैं । यह कितनेक नैरुक्तनका पक्ष है ॥ ॥ कौनसे-वे दो देव हैं ? ऐसैं [पूछताभया] ॥ अन्न औ प्राण।ये दो देव हैं । इन दोनूंविषै सर्व उक्त देवनका अंतर्भाव है ॥ ॥ कौनसा अध्यर्ध (दीड देव) है ? ऐसैं [पूछताभया] ॥ जो यह वायु पवताहै ॥ ८ ॥

टीकाः—तहां आशंका करैहैंः—जो यह वायु एकहीं पवताहै औ अध्यर्ध किसकी न्यांई है ? ऐसैं [पूछताभया] ॥ ॥ जो ईसैं-

९२७ देवलक्षणके करनेवाले किनहुका यह पक्ष दिखाया । अन्योका तो तीन लोक हैं । याका यथाश्रुत अर्थ है । ऐसैं कहैहैं ॥

९२८ एकके अध्यर्द्ध (सार्धैक) पनैके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करैहै ॥ इहां इव शब्द तो कैसैं है । इसठिकाने संबंधकूं पावता है ॥

९२९ सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

मध्यर्द्ध इति । यदस्मिन्निदं सर्वम-
 ध्याध्नोत्तेनाध्यर्द्ध इति ॥ कतम एको देव
 है? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ जातैं इस
 (वायु)के होते यह सर्व ऋधि (वृद्धि)कूं पा-
 वताहै । तिसकरि अध्यर्द्ध है ऐसैं [कहते-
 भये] ॥ ॥ कौनसा एक देव है? ऐसैं [पूँछता-
 विषै यह सर्व इस वायुके होते ऋधिकूं पाव-
 ताहै । तिसकरि वायु अध्यर्द्ध है इति ॥ ॥
 कौनसा एक देव है? ऐसैं [पूँछताभया] ॥
 प्राण है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ सो प्राण ब्र-
 ह्म है । काहेतैं सर्व देवस्वरूप होनेतैं महद्ब्र-
 ह्मरूप है । तिस ब्रह्मकूं “त्यैत्” ऐसैं परोक्षके
 वाचक शब्दकरि कहतेहैं ॥ ॥ देवैकेका यह

९३० प्राणके ब्रह्मभावकूं साधते हैं ॥

९३१ ताकी परोक्षताकी प्रतिपत्तिविषै प्रयत्नके गौरवरूप
 अर्थकूं कथन करैहैं ॥

९३२ उक्त अर्थकूं प्रतिपत्तिकी सुकरता अर्थ संग्रह करै-
 हैं ॥ इहां एकत्व कहिये प्राणविषै पर्यवसान औ नानात्व क-
 हिये अनंतता ॥

इति प्राण इति । स ब्रह्म त्यदित्याचक्ष-
ते ॥ ९ ॥

भया] ॥ ॥ प्राण है । ऐसैं ॥ सो (प्राण)
ब्रह्म त्यत् (परोक्ष) है । ऐसैं कहतेहैं ॥ ९ ॥

एकत्व औ नानात्व है । अ^{३३}नंत देवनका निवित्
संख्याविशिष्ट देवनविषै अंतर्भाव है । ए^{३४}क प्रा-
णविषै पर्यवसान यावत् होवै तावत् पर्यंत उत्त-
रोत्तर तैंतीस आदिक देवनविषै तिनकाबी अं-
तर्भाव है । औ ए^{३५}क प्राणकाहीं सर्व अनंत सं-
ख्याकरि विस्तर है । ऐसैं एक औ अनंत औ
अवांतर संख्याविशिष्ट प्राणहीं है ॥ औ तहां

९३३ ननु तीन हजार तीनसैं औ छ संख्यावाले देवनकूं
इहां उक्त होनेतैं तिनकी अनंतता कैसें होवैहै ? यह आशंका
करिके । शत औ सहस्र शब्दकरि अनंततावी कहीहीं है । इस
आशयकरि कहैहैं ॥

९३४ एक प्राणविषै पर्यवसान यावत् होवैहै तावत् पर्यंत
उत्तर तैंतीस आदिकनविषै तिनकाबी अंतर्भाव है । ऐसैं
कहैहैं ॥

९३५ प्राणका किसविषै अंतर्भाव है ? तहां कहैहैं ॥

९३६ संगृहीत अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

९३७ एकके अनेक प्रकारसैं होनेविषै क्या निमित्त है ?

पृथिव्येव यस्याऽऽयतनमग्निर्लोको
मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व-

अर्थः—पृथिवीहीं जाका आयतन है ।
अग्नि लोक है । मनो ज्योति है ॥ जो तिस

(उक्तरीतिकरि प्राणस्वरूपके स्थितहुये) प्रकृत
प्राणरूपहीं एक देवका अधिकारके भेदतैं नाम-
रूप कर्म गुण अरु शक्तिका भेद है ॥ ९ ॥

टीकाः—अब तिसीहीं प्राणरूप ब्रह्मका फेर
अष्टप्रकारका भेद । ध्यान अर्थ उपदेश करिये

यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहांः—उक्तरीतिकरि प्राण-
स्वरूपके स्थित हुये । यह “तहां” इस सप्तमीका अर्थ है औ
एक देवका । याका प्रकृत प्राणकाहीं अह अर्थ है औ प्राणि-
नके ज्ञानविषै औ कर्मविषै अधिकार जो स्वामीपना । ताका
भेद अधिकारभेद है । तिस निमित्तवाला होनेकरि देवके
अनेक संस्थानोंके परिणामकी सिद्धि है । जातैं प्राणी जे हूं
वे ज्ञानकूं औ कर्मकूं अनुष्ठान करिके अग्नि आदिरूप सूत्रां-
शाकूं पावते हैं । तिसकरि युक्त उक्तप्रकारका भेद है । यह
अर्थ है ॥

९३८ संकोच अरु विकासकरि प्राणस्वरूपकी उक्तिके
अनंतर अवसरकी प्राप्ति अब कहियेहै ॥ इहां उपदेश क-
रियेहै । ध्यान अर्थ । यह शेष है ॥

स्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता स्या-
द्याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहंतं पुरुषं सर्व-
रूपकं सर्व आत्माका परायण जानताहै ।
सो वेदिता (पंडित) होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य !

है:- पृथिवीहीं जिस देवका आयतन (आ-
श्रय) है । अग्नि जाका लोक है । जल है (देखताहै) इसकरि सो लोक है । अमिक-
रि देवता है यह अर्थ है ॥ मनोज्योति है ।
मनरूप ज्योतिषा संकल्प विकल्पादि कार्यक
जो करताहै । सो यह मनोज्योति है ॥ पृथि-
वीरूप शरीरवाला । अग्निरूप दर्शनवाला । म-
नकरि संकल्प कर्ता । पृथिवीका आभंगी ।
कार्यकरणके संघातवाला । देव है । यह अर्थ
है ॥ ॥ जो इस प्रकारके विशेषणवाले इस
सर्व आध्यात्मिक कार्यकणके संघातरूप आ-

९३९ भिन्न भिन्न अवयवकरि वाक्यकूं जोडते हैं ॥

९४० मिलित तीन वाक्यके अर्थकूं कथन करैहैं ॥ इहां
“वै” शब्द अवधारणके अर्थ है औ तिस परायण ; जोई जानै
सोई वेदिता होवै । ऐसै संबंध है ॥

स्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य ए-
वायं शरीरः पुरुषः स एष वदेव शाक-
में तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जा-
नताहूं । जिसकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥ [याज्ञव-
ल्क्य कहैहैं:-] । जोइ यह शरीर पुरुष है सो
त्माके परायण (उत्कृष्ट आश्रय) रूप कहियै
मातातैं जन्य त्वचा मांस अरु रुधिररूप क्षेत्र-
स्थानीयकरि बीजस्थानीय पितातैं जन्य अस्थि-
मज्जा अरु शुक्ररूप कारणात्माके पर अयनके
रूप पुरुषकूं जानै । सोई वेदिता होवै । जो
याकूं ऐसैं जानता है । सोई वेदिता (पंडित)

९४१ अब तिसरूपकरि पृथिवी देवकी कार्यकरणके सं-
घातके प्रति आश्रयता है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
पृथिवीकूं मातृ शब्दकी वाच्य होनेतैं जोई देव में पृथिवीहूं
ऐसैं मानता है । सोई शरीरके आरंभक मातृजन्य तीन को-
शका अभिमानी होनेकरि वर्त्तता है । तिसप्रकार हुये ताका
तिसरूपकरि पितृजन्य तीन कोशरूप कार्यके प्रति औ लिंग-
रूप करणके प्रति आश्रयता संभवै है ॥

९४२ पृथिवी देवके परायणपनैकूं उपपादन करिके ।
अनंतर वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥

ल्य! तस्या का देवतेत्यमृतमिति हो-
वाच ॥ १० ॥

यह है ॥ हे शाकल्य! कथनकर (पूँछ) ॥ ॥
ता (शारीर देव)की कौन देवता है? ऐसैं
[पूँछताभया] ॥ ॥ अमृत (भुक्तान्नरस)
है। ऐसैं कहतेभये ॥ १० ॥

होवै यह अभिप्राय है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य!
तू ता (पुरुष)कूँ नहीं जानताहुयाहीं पांडिताभि-
मानी हैं। यह अभिप्राय है ॥ जब तिसके वि-
ज्ञानविषै पांडित्य प्राप्त होवैहै। तो मैं तिस पु-
रुषकूँ जानताहूँ। जाकूँ तूँ सर्व आत्माका
परायण कहताहैं। ताकूँ मैं जानताहूँ ॥ तहां
शाकल्यका वचन देखनेकूँ योग्य है:—हे याज्ञव-
ल्क्य! जैवै तूँ जानताहैं। तब तिस पुरुषकूँ क-

१४३ तब मुजकूँ क्या आया? यह आशंका करिके।
कहैहैं ॥

१४४ सो पुरुष जिस विशेषणकरि विशिष्ट है उच्यमान
तिस विशेषणकूँ सुन। ऐसैं कहिके सोई कहैहैं ॥ इहां:—
शारीरहीं पंचभूतात्मक है। तहां पार्थिव अंशसैं जनकता-
करि जो स्थित होवै सो शारीर है। यह अर्थ है ॥

हिदे किस विशेषणवाला यह है? तहां कहैहैं:—
 श्रवणकर । जोई (जिस विशेषणवाला) है ।
 सोई यह शारीर पार्थिव अंश है । शरीरविषै
 होनेवाला शारीर कहियेहै । माँतातैं जन्य तीन
 कोशरूप है । यह अर्थ है । सो यह देव है ।
 जो तुज (शाकल्य) नैं पूँछ्या है ॥ ॥ हे शा-
 कल्य ! तहां वक्तव्य विशेषणांतर क्या है । सो
 कथनकर । अर्थ यह जो पूँछ्य ॥ ॥ सोई (शा-
 कल्य) प्रक्षोभित होयके तोत्र (चाबुक) करि
 पीडित गजकी न्यांई क्रोधके वशकूं प्राप्तहुया क-
 हैहै:—तिस शारीर देवकी कौन देवता है ?
 [जो जिसतैं निष्पन्न होवैहै । सो ताकी देवता
 इस प्रकरणविषै विवक्षित है] अमृत है । ऐ-

९४५ ताके जीवपनैकूं निवारते हैं ॥

९४६ पृथिवी देवके निर्णातपनैकी शंकाकूं निवारते हैं ॥

९४७ याज्ञवल्क्य वक्ताहुया पूँछनेवाले शाकल्यके प्रति
 कहिदे इसप्रकार कैसें कथन करैहैं ? तहां कहैहैं ॥

९४८ क्षोभितके अमर्ष (क्रोध)की वशगता (वशकूं प्राप्त
 होने)विषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

९४९ प्रकरणगत देवता शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां नि-
 ष्पत्तिका कर्त्ता पुरुष पृष्ठीकरि कहिये है ॥

काम एव यस्याऽऽयतनं हृदयं लो-
को मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्या-

अर्थः—कामहीं जाका आयतन है । ह-
दय लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिस
सैं याज्ञवल्क्य कहतेभये ॥ इहां “अमृत” ऐ-
सैं भुक्त अन्नका रस कहियेहै । जो भुक्त अन्नका
रस मातृजन्य लोहितकी निष्पत्तिका हेतु है ।
जातैं तिस^{१५०} अन्नरसतैं स्त्रीकरि आश्रित लोहित
(रक्त) निष्पन्न होवैहै औ तिसतैं लोहितमय^{१५१}
शरीर बीजका आश्रय निष्पन्न होवैहै ॥ अर्न्य
अर्थ समान है ॥ १० ॥

टीकाः—कामहीं जिस देवका आयतन है ।

१५० लोहितके निष्पत्तिकी हेतुताकूं इहां रसके अनुभ-
वकरि साधते हैं ॥

१५१ ताके कार्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अद्वितीय
पदार्थविषै स्थित लोहिततैं ताका कार्य त्वचा मांस अरु रुधि-
ररूप बीज (अस्थि मज्जा अरु शुक्ररूप)का आश्रयभूत होवैहै ॥

१५२ पर्यायोंका सप्तक आद्यपर्यायकरि तुल्य अर्थवाला
होनेतैं पृथक् व्याख्यानकी अपेक्षावाला नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

१५३ उत्तर पर्यायोंविषै जिन पदनके अर्थका भेद है ति-
नके तिस पालन अर्थ प्रतीककूं ग्रहण करैहैं ॥

त्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता
 स्यात् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं
 पुरुषं सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमा-
 त्थ ? य एवायं काममयः पुरुषः स एष
 वदेव शाकल्य ! तस्य का देवतेति ?
 स्त्रिय इति होवाच ॥ ११ ॥

पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता है ।
 सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं ति-
 स पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता-
 हूं । जाकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥ [याज्ञव-
 ल्क्य कहैहैं:-] जोई यह काममय पुरुष
 है । सो यह है ॥ हे शाकल्य ! कथनकर
 (पूछ) ॥ ॥ ताकी कौन देवता है ? ऐसैं
 [पूछताभया] ॥ ॥ स्त्रियां हैं । ऐसैं कह-
 तेभये ॥ ११ ॥

स्त्रीके संगका अभिलाष काम है । अर्थ यह जो
 कामरूप शरीरवाला है ॥ हृदय जाका लोक

९५४ वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहां सो हृदयरूप दर्शनवाला
 मनकरि संकल्पका कर्ता । यह पूर्वकी न्याई है ॥

रूपाण्येव यस्याऽऽयतनं चक्षुर्लोको
मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व-
स्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता स्या-

अर्थः—अनेक रूपहीं जाका आयतन है।
चक्षु लोक है। मनोज्योति है ॥ जो तिस
पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै।
है। हृदय जो बुद्धि तिसकरि देखता है। जोई
यहें काममय पुरुष है। अध्यात्मबी कामम-
य है ॥ तांकी कौन देवता है? ऐसैं [पूंछ-
ताभया] ॥ स्त्रीयां हैं ऐसैं कहताभया ॥
जातैं स्त्रीतैं कामकी दीप्ति उपजेहै ॥ ११ ॥

टीकाः—अनेक रूपहीं जाका आयतन है।
रूप शुक्लकृष्णादिक हैं ॥ जोई यह आदित्य-
विषै पुरुष है ॥ जातैं सर्व रूपनका विशिष्ट

९५५ ताके विशेषणकूं दिखावै हैं ॥

९५६ आध्यात्मिक काममय पुरुषके कारणकूं पूंछताहै ॥

९५७ ता (स्त्री)कूं ता (काम)की कारणताहै ताकूं
अनुभवकरि स्पष्ट करते हैं ॥

९५८ रूपमय शरीरवाले चक्षुरूप दर्शनवाले मनकरि
संकल्पके कर्ता देवका। आदित्यविषै पुरुष है यह विशेषण

त् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषं
सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य
एवासावादित्ये पुरुषः स एष वदेव शा-
कल्य ! तस्य का देवतेति ? सत्यमिति
होवाच ॥ १२ ॥

सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं ति-
स पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता-
हूं । जाकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥ [याज्ञव-
ल्क्य कहैहैं] जोई यह आदित्यविषै पुरुष
है सो यह है ॥ हे शाकल्य ! कथन कर
(पूछ) ॥ ॥ ताकी कौन देवता है ? ऐसैं
[पूछताभया] ॥ ॥ सत्य (चक्षु) है । ऐ-
सैं कहतेभये ॥ १२ ॥

कार्य आदित्यविषै पुरुष है ॥ ताकी कौन दे-
वता है ? ऐसैं [पूछताभया] ॥ सत्य है । ऐ-
कैसैं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां:—रूपमात्रके
अभिमानि देवका आदित्यविषै पुरुष विशेषका अवच्छेद है
औ सो सर्व रूपनका प्रकाशक होनेतें सर्व रूपोंनैं अपने प्र-
काश करने अर्थ आरंभ किया है । तातें उक्त प्रकारका वि-
शेषणयुक्त है । यह अर्थ है ॥

आकाश एव यस्याऽऽयतनं श्रोत्रं
लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं वि-
द्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं स वै
वेदिता स्यात् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं
तं पुरुषं सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं य-

अर्थः—आकाशहीं जाका आयतन है ।
चक्षु लोक है । मनोज्योति है ॥ जो ति-
स पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता
है । सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य !
मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण
सैं कहतेभये ॥ “सत्य” ऐसैं चक्षु कहियेहै । च-
क्षुंरूप अध्यात्मतैं आदित्यरूप अधिदैवतकी उ-
त्पत्ति होवैहै ॥ १२ ॥

टीकाः—आकाशहीं जाका आयतन है ।

१५९ चक्षुतैं आदित्यकी उत्पत्ति कैसें है ? यह आशंका
करिके । “चक्षुतैं सूर्य उपजताभया” इस श्रुतिकूं आश्रय
करिके । कहैहैं ॥ इहांः—तहांबी ऐसैं श्रौत्रका कथन है ॥
प्रतिश्रवण कहिये संवाद वा प्रतिविषय श्रवण वा सर्व श्र-
वण । तिस दशाविषै । यह अर्थ है ॥

मात्थ ? य एवायं श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कः
पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का
देवतेति ? दिश इति होवाच ॥ १३ ॥

जानताहूँ । जाकूँ तूँ कहता हूँ ? ॥ ॥
[याज्ञवल्क्य कहैहै] जोई यह श्रौत्ररूप
प्रातिश्रुत्क पुरुष है । सो यह है ॥ हे शा-
कल्य ! कथनकर (पूँछ) ॥ ॥ ताकी कौन
देवता है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ दिशा
हैं । ऐसैं कहतेभये ॥ १३ ॥

जोई यह श्रौत्रविषै होनेवाला श्रौत्र है । त-
हांबी प्रतिश्रवण वेलाविषै विशेषकरि होवैहै
यातैं प्रातिश्रुत्क है ॥ ताकी कौन देवता
है ! ऐसैं [पूँछताभया] ॥ दिशा हैं । ऐसैं क-
हतेभये ॥ जातैं दिशाँओतैं यह आध्यात्मिक
निष्पन्न होवैहै ॥ १३ ॥

१६० “ दिशा तहां अधिदैवत हैं ” इस श्रुतिकूं आ-
श्रय करिके कहैहै ॥

तम एव यस्याऽऽयतनं हृदयं लो-
को मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्स-
र्वस्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता
स्यात् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरु-
षं सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ?
य एवायं छायामयः पुरुषः स एष वदैव

अर्थः—तम (अंधकार) हीं जाका आ-
यतन है । हृदय लोक है । मनोज्योति है ॥
जो तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण
जानताहै । सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञ-
वल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परा-
यण जानताहूं । जाकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥
[याज्ञवल्क्य०] जोई यह छायामय (अ-
ज्ञानमय) पुरुष है । सो यह है ॥ हे शा-

टीकाः—तमहीं जाका आयतन है । इहां
तम ऐसैं रात्रि आदिकका अंधकार ग्रहण करि-
येहै । अध्यात्मरूप छायामय अज्ञानमय पु-
रुष है ॥ ताकी कौन देवताहै ? ऐसैं [पूंछ-

शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? मृत्यु-
रिति होवाच ॥ १४ ॥

रूपाण्येव यस्याऽऽयतनं चक्षुर्लोको
मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व-
स्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता स्या-
कल्य ! कथनकर ॥ ॥ ताकी कौन देव-
ता है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ मृत्यु
(ईश्वर) है । ऐसैं कहतेभये ॥ १४ ॥

अर्थः—रूपहीं जाका आयतन है । चक्षु
लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरु-
षकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै । सो
ताभया] ॥ मृत्यु है । ऐसैं कहतेभये ॥ मृत्यु
अधिदैवत । ताकी निष्पत्तिका कारण है ॥ १४ ॥

टीकाः—अनेक रूपहीं जाका आयतन है ॥

१६१ अधिदैवत मृत्यु ईश्वर है । “ मृत्युकरिहीं यह
आवृत होताभया ” इस श्रुतितें । ओ सो तिस अज्ञानमय
आध्यात्मिक पुरुषकी उत्पत्तिका कारण है । अविवेकी जनोंकी
प्रवृत्तितें ईश्वरकरि प्रेरित हुया स्वर्गकूं वा अंतरिक्षकूंहीं जावे
ऐसैंहीं पठन करैहैं । सो कहैहैं ॥

त् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषं
सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य
एवायमादर्शं पुरुषः स एष वदैव शाक-
ल्य ! तस्य का देवतेत्यसुरिति होवाच
॥ १५ ॥

वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस
पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं ।
जाकूं तूं कहता हें ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०]
जोई यह आदर्शविषै पुरुष है । सो यह
है ॥ हे शाकल्य ! कथनकर (पूछ) ॥ ॥
ताकी कौन देवता है ? ऐसैं [पूछताभया] ॥
॥ असु (प्राण) है । ऐसैं कहतेभये ॥ १५ ॥

९६२

पूर्व साधारणरूप कहे । इहांतो प्रकाशक श्रेष्ठ-
रूप ग्रहण करियेहैं । रूपमय आयतनवाले दे-
वका विशेष आयतन प्रतिबिंबका आधार आ-

९६२ पुनरुक्तिके प्रति कहैहैं ॥ इहां आधार शब्द भाव-
प्रधान है । तिस प्रकार हुये प्रतिबिंबकी आधारता जहां है
सो ऐसैं कथन किया होवैहै । आदिशब्दकरि स्वच्छ स्वभा-
ववाले खड्ग आदिक ग्रहण करियेहैं ॥

आप एव यस्याऽऽयतनं हृदयं लो-
को मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्स-
र्वस्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता
स्यात् । याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरु-
षं सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ?

अर्थः—आप (जल)हीं जाका आयतन है ।
हृदय लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरु-
षकूं सर्व आत्माका परायण जानता है । सो
वेदिता होवै है ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस
पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता हूं ।
जाकूं तूं कहता हैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०]

दर्श आदिक है ॥ ताकी देवता असु (प्राण)
है ऐसैं कहते भये ॥ तिसैं प्रतिबिंब नामक
रूपकी निष्पत्ति असु (प्राण)तैं । होवै है ॥ १५ ॥

टीकाः—आपहीं जाका आयतन है । सा-

९६३ जातैं प्राणकरि घसे हुये प्रतिबिंबकी अभिव्यक्तिके
योग्य दर्पण आदिकविषै रूपविशेष निष्पन्न होवै है । तातैं
प्राणकूं प्रतिबिंबकी कारणता युक्त है । इस अभिप्राय क-
रिके कहै हैं ॥

य एवायमप्सु पुरुषः स एष वदैव शा-
कल्य ! तस्य का देवतेति ? वरुण इति
होवाच ॥ १६ ॥

जोई यह जलविषै पुरुष है । सोई यह है ॥
हे शाकल्य ! कथनकर (पूंछ) ॥ ॥ ता-
की कौन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥
वरुण है । ऐसैं कहतेभये ॥ १६ ॥

धौरण सर्व आप आयतन है । वापी तडाग आ-
दिक आश्रयवाले जलविषै विशेष अवस्थान है ॥
ताकी कौन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥
वरुण है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ वरुणतैं संघात-

९६४ जलहीं याका आयतन है । जोई यह जलविषै पु-
रुष है । इहां दोनूं ठिकाने सामान्य विशेष भाव नहीं भा-
सता है । ऐसैं शंका करनेवालेके प्रति कहैहैं ॥

९६५ ननु फेर वापी कूप विशेषरूप आयतनवालेका वरुण
देवता कैसैं है । जातैं ताके अधिष्ठाता देवतारूप वरुणकूं
ताकी कारणता नहीं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—
वापीकूपादिरूप जल । पान कियेहुये अध्यात्म शरीरविषै मू-
त्रादि संघातकूं करते हैं औ वे आप वरुणतैं होवैहैं । वरुण
शब्दकरि रश्मिद्वारा भूमिके प्रति पतन हुये जलहीं कहिये
हैं । तिस प्रकार हुये वे जलहीं वरुणात्मकहुये पीयमान

रेत एव यस्याऽऽयतनं हृदयं लोको
मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व-
स्याऽऽत्मनः परायणं स वै वेदिता
स्यात् । याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पु-
रुषं सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ?

अर्थः—रेतहीं जाका आयतन है । हृदय
लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरुषकूं
सर्वआत्माका परायण जानताहै । सो वेदिता
होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं
सर्व आत्माका परायण जानताहूं । जाकूं तूं
कहता है ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०] जोई

की कर्त्ता अध्यात्मरूप आपहीं वापी आदिकन-
के जलनकी निष्पत्तिका कारण है ॥ १६ ॥

टीकाः—रेतहीं जाका आयतन है । जोई
यह पुत्रमय विशेष आयतन है औ रेत^{९६६}रूप आ-
वापी आदिकनके जलोंकी उत्पत्तिका कारण है । यातैं वरु-
णकूं वापी तडाग आदिक आयतनवाले पुरुषके प्रति कारण-
पना युक्त है ॥

९६६ दोनूं वाक्यनकूं ग्रहण करिके । तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

य एवायं पुत्रमयः पुरुषः स एष वदैव
शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? प्रजाप-
तिरिति होवाच ॥ १७ ॥

शाकल्येति होवाच याज्ञवल्क्य-
यह पुत्रमय पुरुष है । सो यह है ॥ हे शा-
कल्य ! कथनकर (पूँछ) ॥ ॥ ताकी कौन
देवता है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ प्रजा-
पति (पिता) है । ऐसैं कहतेभये ॥ १७ ॥

अर्थः—हे शाकल्य ! तेरे ताँई निश्चयक-
यतनवाले देवका पुँत्रमय ऐसैं कहनेकरि पिता-
तैं उत्पन्नभये अस्थि मज्जा अरु शुक्र ग्रहण क-
रियेहैं ॥ ताकी कौन देवता है ? ऐसैं [पूँछ-
ताभया] ॥ प्रजापति है । ऐसैं कहतेभये ॥
प्रजापति पिता कहियेहै । जातैं पितातैं पुत्रकी
उत्पत्ति होवैहै ॥ १७ ॥

टीकाः—^{१६८}देव । लोक अरु पुरुष भेदकरि ती-

१६७ पुत्रमय शब्दके अर्थकू व्याख्यान करैहैं ॥

१६८ हे शाकल्य ! ऐसैं कहैहैं । इत्यादि ग्रंथके तात्पर्यकू
कहनेकू वृत्तकू कीर्त्तन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—लोक

स्त्वांस्विदिमे ब्राह्मणा अङ्गारावक्षय-
णमक्रता ३ इति ॥ १८ ॥

रि ये ब्राह्मण अंगारावक्षयण करतेभये ।
ऐसैं याज्ञवल्क्य कहतेभये ॥ १८ ॥

न तीन प्रकारसैं आत्माकूं विभागकरिके अव-
स्थितभया एक एक देव प्राणहीं है । औ सो
उपासनाके अर्थ नीचे अष्टप्रकारसैं उपदेश कि-
या ॥ अँब आगे दिशाओंके विभागकरि पांच
प्रकारसैं विभागकिये सर्व जगत्के आत्मा (हृ-
दय) विषै उपसंहार अर्थ कहैहैं ॥ तूष्णीभूत शा-
कल्यकेताँई याज्ञवल्क्य अँहकरि आवेश करते

सामान्याकार । पुरुषविशेषावच्छेद । देवताका कारण इस
प्रकारकरि तीन तीन प्रकारसैं आत्माकूं पायके स्थितहुया
जो एक एक देव है सो कहा । सो प्राणहीं सूत्रात्मा है ।
पूर्व उक्त सर्वकूं ताका भेद होनेतैं औ सो उपासनाके अर्थ
नीचे अष्ट प्रकारका उपदेश किया ॥

९६९ उत्तरके तात्पर्यकूं दिखावै हैं ॥ इहां प्रविभक्त सर्व
जगत्का । यह शेष है ॥ औ आत्मशब्द हृदय विशेष है ॥

९७० याज्ञवल्क्यकी शाकल्यविषै पूँछने योग्य बुद्धि पू-
र्वकारिताकी आपादकताकूं दिखावै हैं ॥ इहांः—सर्वहीं
ब्राह्मणनकूं बहुतकरि हंतव्य होनेकरि तूं संमत हैं । यह मु-
निका अभिप्राय है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच शाकल्यो य-
दिदं कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणानत्यवादीः

अर्थः—[तब] शाकल्य ! हे याज्ञवल्क्य !
ऐसैं कहताभयाः—जो यह कुरु अरु पंचा-
ल देशनके ब्राह्मणनके प्रति तूं अति उक्ति
हुयेकी न्यांई कहैहैंः—याज्ञवल्क्य कहतेभये
किः—हे शाकल्य ! तेरे प्रति ये ब्राह्मण अं-
गारावक्षयण करते हैं ॥ अंगार नाश करतेहैं
जिस संदेश आदिकविषै सो अंगारावक्षयण है ।
ताकूं निश्चयकरि तेरे प्रति ब्राह्मण करते हैं ।
तूं तो ताकूं नहीं जानताहैं ॥ मुजकरि दह्य-
मान आत्माकूं नहीं जानताहैं । यह अभिप्रा-
य है ॥ १८ ॥

टीकाः—शाकल्य कहताभयाः—हे याज्ञव-
ल्क्य ! जो यह तूं कुरु पांचाल दशनके, ब्रा-

९७१ शाकल्य तो कालकरि प्रेरित होनेतैं अनुसारिणी
अन्यथा प्रतिपत्तिकूंहीं लेके प्रश्नकूं करैहै । ऐसैं कहैहैं ॥ इ-
हांः—दिशाओंकूं विषय करनेवाले विज्ञानकूं मैं जानताहूं ।
अर्थ यह जो सो मुजकूं है ॥

किं ब्रह्म विद्वानिति ॥ दिशो वेद स देवाः
सप्रतिष्ठा इति ॥ यद्विशो वेत्थ सदेवाः
सप्रतिष्ठाः ॥ १९ ॥

करताभया । क्या ब्रह्मकूं विद्वान् हुया
[ऐसैं कहताभया] ? ऐसैं ॥ ॥ [तब या-
ज्ञवल्क्य कहतेभयेः—] मैं देव सहित प्र-
तिष्ठा सहित दिशाओंकूं जानताहूं ऐसैं
॥ ॥ [तब शाकल्य कहैहैः—] जब तूं दे-
व सहित प्रतिष्ठा सहित दिशाओंकूं जा-
नता हैं ॥ १९ ॥

हृणनके प्रति अतिवाद करताभयाहैं [यातैं]
आप भयकूं प्राप्तहुये तेरेप्रति अंगारावक्षयण कर-
ते हैं ऐसैं क्या ब्रह्मकूं विद्वान् हुया ब्राह्मणनकूं
अधिक्षेप करताैं ॥ ॥ याज्ञवल्क्य कहैहैः—
प्रथम यह ब्रह्मका विज्ञान मुजकूं है ॥ सो क्या
किः—दिशाओंकूं जानताहूं कहिये दिशाविष-
यक विज्ञान^{१७२} जानताहूं । औ सो केवल दिशा-

किंदेवतोऽस्यां प्राच्यां दिश्यसीत्या-
दित्यदेवत इति ॥ स आदित्यः कस्मिन्-

अर्थः—[तब] किस देवतावाला हुआ
तू इस प्राची दिशाविषै हैं ? [ऐसैं पूंछता-
भया] ॥ ॥ आदित्य देवतावालाहूं ऐसैं
[उत्तर देते भये] ॥ ॥ सो आदित्य कि-
ओंकूंहीं नहीं किंतु दिशाओंके अधिष्ठाता देव-
नकरि सहित । किंवाः—प्रतिष्ठाओंकरि सहि-
त तिनकूं जानताहूं ॥ ॥ इतर (शाकल्य) क-
हैहैः—जब तू देवसहित अरु प्रतिष्ठासहित
दिशाओंकूं जानता हैं । ऐसैं जब सँफैल वि-
ज्ञान तैनें प्रतिज्ञा किया (तब) ॥ १९ ॥

टीकाः—कौन है देवता इस तुज दिग्भूत-
की सो कहिये किंदेवत ॥ जातैं यँहँ याज्ञव-
किंतु देवनकरि सहित औ प्रतिष्ठाओंकरि सहित दिशाओंकूं
में जानताहूं । ऐसैं कहैहैं ॥

१७३ अवतारित वाक्यके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

१७४ प्राची (पूर्व) दिशाविषै कौनसी देवता है । ऐसैं
कहनेकी योग्यताकेदुये अन्यथा कैसें पूंछीये है ? तहां क-
हैहैं ॥ इहां आत्माकूं । याका आत्माके संबंधीकूं । यह अर्थ

न् प्रतिष्ठित इति ? चक्षुषीति ॥ क-
स्मिन्नु चक्षुः प्रतिष्ठितमिति ? रूपेष्वि-

सविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया]
॥ ॥ चक्षुविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥
चक्षु किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछ-
ताभया] ॥ ॥ रूपनविषै ऐसैं [कहते-

ल्य हृदयरूप आत्माकूं दिशाओंविषै पांच प्र-
कारसैं विभक्त दिशाओंका आत्मभूत [जानिके]
औ तिसद्वारा सर्व जगत्कूं आत्मभावकरि जा-
निके । मैं दिगात्माहूं । ऐसैं व्यवस्थितहुया
पूर्वाभिमुख होवैहै । मैं दिशाओंकूं प्रतिष्ठांसहित

है औ उक्त प्रकारके हृदयकूं आत्मभावकरि पायके (जा-
निके) । ऐसैं संबन्ध है ॥

९७५ तथाऽपि प्रथम प्राची दिशाकूं विषय करिके प्रश्न-
विषै कौन हेतु है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

९७६ यद्यपि दिशारूप मैं हूं ऐसैं स्थित है । तथापि सर्व
जगत्कूं आत्मभावकरि पायके स्थित होवैहै । यह कैसें जानिये
है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्रतिष्ठा सहित दि-
शाओंकूं मैं जानताहूं । इस वचनतैं सर्व जगत्कूंबी हृदयद्वारा
आत्मभावकरि पायके स्थित मुनि है । ऐसैं भासता है ॥

ति । चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति ॥ क-
स्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति? हृदय
भये] जातैं चक्षुकरि रूपनकूं देखताहै ॥
रूप किसविषै प्रतिष्ठित हैं ? ऐसैं [पूछता-

जानताहूं । इस वचनतैं जैसैं ^{९७७} याज्ञवल्क्यकी प्र-
तिज्ञा है । तैसैंहीं शाकल्य पूछता है:-किं देवत
(किस देवतावाला) हुया तूं इस दिशाविषै
हैं ? ऐसैं ॥ ॥ जातैं वेदविषै सर्वत्र जिस जि-
स देवताकूं उपासताहै । इहांहीं तिसरूपहु-
या तिस तिस देवताकूं पावताहै ॥ तिसंप्रकार
यह उपनिषत् आगे कहैगी:-“देवरूप होयके
देवनकूं पावताहै” यातैं ईसं प्राचीदिशाविषै

९७७ प्रतिज्ञाके अनुसारि होनेतैं यह प्रश्न युक्तिवाला
है । ऐसैं कहैहैं ॥

९७८ दिशारूप मैहूं इस प्रतिज्ञाके अनुसारि प्रश्नविषैबी
देहपातके उत्तरभावी देवताभाव पूछीये है । देहके होते
ध्याताकूं तिस भावके योगतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥
इहां:-ऐसैं भाविदेवताभाव प्रश्न गोचर नहीं है । यह
शेष है ॥

९७९ उक्त अर्थविषै वाक्यशेषकूं अनकूल करैहैं ॥

९८० प्रश्नके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

इति होवाच । हृदयेन हि रूपाणि जानाति । हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ! ॥ २० ॥

भया] ॥ ॥ हृदयविषै रूप प्रतिष्ठित हो-
वैहैं ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ हे याज्ञव-
ल्क्य ! यह ऐसैंहीं है ॥ २० ॥

दिशारूप भये तुज याज्ञवल्क्यकी अधिष्ठात्री कौन देवता है ? किस देवताकी तूं गच्छीदि-
शारूपकरि संपन्न भया । यह अर्थ (प्रश्नका अभिप्राय) है ॥ ॥ इतर (याज्ञवल्क्य) कहै-
हैं:-आदित्यदेवत (आदित्यरूप देवतावाला)हूं
ऐसैं । प्राचीदिशाविषै मेरी आदित्य देवता है ।
सो मैं आदित्य देवतहूं । “देवसहित” यह क-
हा ॥ ॥ “प्रतिष्ठासहित” यह तो कहनेकूं यो-
ग्य है ऐसैं शाकल्य कहैहैं:-सो आदित्य कि-
सविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं ॥ ॥ चक्षुविषै ।
ऐसैं [कहतेभये] ॥ जातैं अर्ध्यात्मरूप, चक्षुतैं

१८१ आदित्यके चक्षुविषै प्रतिष्ठितपनैकूं प्रकट करनेकूं
तिन दोनूके कार्यकारणभावकूं दिखावै हैं ॥ इहां:-“ च-

३।।द्वि॒त्य निष्पन्न भया । ऐसैं “ चंद्रमा मनतैं
भया चक्षुतैं सूर्यभया ” इत्यादिक मंत्रनके औ
तदनुसारी ब्राह्मणोंके वाद हैं । जातैं कैंर्य जो
है सो कारणविषै प्रतिष्ठित होवैहै ॥ ॥ चक्षु
किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछता भया]॥
रूपनविषै । ऐसैं [कहतेभये] । जातैं रूपैके
ग्रहण अर्थ रूपात्मक चक्षु । रूपकरि प्रयुक्त
(प्रेरित) होवैहै ॥ जातैं जिन्हें रूपोंकरि प्रयुक्त
भया है । तिन रूपोंनैं आपके ग्रहण अर्थ चक्षु
आरंभ किया है । तैंतैं आदित्य सहित चक्षु
प्राचीदिशासहित अरु तिसविषै सर्व वस्तुनक-
रि सहित रूपनविषै प्रतिष्ठित है । चक्षुकरि स-
हित प्राचीदिशा औ सर्व रूपभूत वस्तु प्रति-

क्षुतैं सूर्य उपजताभया ” इत्यादिक मंत्रनके वाद हैं । औ
तिनके अनुसारी ब्राह्मणोंके वाद हैं ॥

९८२ ननु सूर्य अरु चक्षुका कार्यकारणभाव होहू ।
तथापि चक्षुविषै सूर्यका प्रतिष्ठितपना कैसें है ? तहां कहैहैं ॥

९८३ ननु चक्षुका रूपनविषै प्रतिष्ठितपना कैसें है-
तहां कहैहैं ॥

९८४ तथापि उक्त प्रकारका आधार आधेयभाव कैसें
है ? यातैं कहैहैं ॥

९८५ चक्षुके रूप आधारताकेहुये फलितकूं कहैहैं ॥

ष्ठित है [वा चक्षुकरि सहित प्राचीदिशा सर्व (सारी) रूप भूत है ऐसा पाठ है] ॥ ॥ औ वे रूप किसविषे प्रतिष्ठित होवैहैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ हृदयविषे । ऐसैं कहतेभये ॥ जातैं हृदयकरि आरब्ध रूप हैं । रूपां हृदयकरि हृदय परिणामकूं पायां है । जातैं हृदयकरि हीं रूपनकूं सर्व लोक जानताहै ॥ इहां हृदय ऐसैं बुद्धि अरु मनकूं एकरूपकरिके निर्देश है । तातैं हृदयविषेहीं रूप प्रतिष्ठित हैं । जातैं हृदयकरि वांसनात्मक रूपनका स्मरण होवैहै । हृदयविषे रूप प्रतिष्ठित हैं । यह अर्थ है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसैंहीं है ॥ २० ॥

९८६ उपसंहार किये अर्थकूं संग्रह करैहैं ॥

९८७ रूपनकी हृदयकरि आरब्धताकूं स्पष्ट करैहैं ॥

९८८ हृदयविषे रूपनकी प्रतिष्ठितताविषे अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

९८९ हृदय शब्दकी मांस खंडकी विषयताकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

९९० फेर बहिर्मुखरूप अंतर्हृदयविषे कैसें स्थित होनेकूं शक्य हैं ? तहां कहैहैं ॥

९९१ तथापि तिनका हृदयविषे प्रतिष्ठितपना कैसें है ? तहां कहैहैं ॥

किंदेवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्य-
सीति ? यमदेवत इति ॥ स यमः क-
स्मिन् प्रतिष्ठित इति ? यज्ञ इति ॥ क-

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस
दक्षिण दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूँछताभया]
॥ ॥ यमदेवतावाला ऐसैं [कहतेभये]
॥ ॥ सो यम किसविषै प्रतिष्ठित है ?
ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ यज्ञविषै ऐसैं

टीकाः—किंदेवत हुया तूं इस दक्षिण^२
दिशाविषै हैं । यह पूर्ववत् है ॥ दक्षिणदिशा-
विषै तेरी कौन देवता है ? यमदेवत हूं । ऐसैं ।
दक्षिणादिग्भूत मेरी यमदेवता है ॥ ॥ सो यम
द्वि^३विषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥
यज्ञविषै । ऐसैं [कहतेभये] । कहिये सो यम
दिशाकरि सहित यज्ञरूप कारणविषै प्रतिष्ठित
है ॥ ॥ कैसैं फेर यज्ञका कार्य यम है ? यह

१९२ पूर्वकी न्याई । ऐसैं उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

१९३ यमकूं यज्ञकी कार्यता अप्रसिद्ध है ? ऐसैं शंका
करिके । व्युत्थापन (निवारण) करैहैं ॥

स्मिन्नु यज्ञः प्रतिष्ठित इति ? दक्षिणा-
यामिति ॥ कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठिते-
ति ? श्रद्धायामिति । यदा ह्येव श्रद्धत्तेऽथ

[कहतेभये] ॥ ॥ यज्ञ किसविषे प्रति-
ष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ दक्षि-
णाविषे ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ दक्षिणा
किसविषे प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया]
॥ ॥ श्रद्धाविषे ऐसैं [कहतेभये] जातैं

कहियेहैः—ऋत्विजोंकरि निष्पादित यज्ञ है ।
दक्षिणाकरि यजमान तिनतैं यज्ञकूं मोल लेके
तिस यज्ञकरि यम सहित दक्षिणादिशाकूं अभि-
जय करैहै । तिसैंकरि यज्ञविषे यम कार्य होने-
तैं दक्षिण दिशासहित प्रतिष्ठित है ॥ ॥ यज्ञ
किसविषे प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया]
दक्षिणाविषे । [ऐसैं कहतेभये] । दक्षिणाकरि
सो (यज्ञ) मोललेईता है । दक्षिणाकरि

९९४ ता (यम)कूं यज्ञकी कार्यताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

९९५ यज्ञके दक्षिणाविषे प्रतिष्ठितपनैकूं साधतेहैं ॥ इहां
कार्य । कारणविषे प्रतिष्ठित होवैहै । यह शेष है ॥

दक्षिणा ददाति । श्रद्धायां ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठितेति ॥ कस्मिन्नु श्रद्धा प्रतिष्ठितेति ? हृदय इति होवाच । हृदयेन हि

जबहीं श्रद्धा करताहै तब दक्षिणाकूं देता है । तातें श्रद्धाविषैहीं दक्षिणा प्रतिष्ठित है इति ॥ ॥ श्रद्धा किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ हृदयविषै ऐसैं

कार्य यज्ञ है ॥ ॥ दक्षिणा किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ श्रद्धाविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ श्रद्धा नाम भक्तिसहित आस्तिक्य बुद्धिरूप दित्सुपना (दानकरनेकी इच्छावा-वानपना) ॥ तिसविषै दक्षिणा कैसैं प्रतिष्ठित है ? जातें जबहीं श्रद्धा करता है । तब दक्षिणाकूं देता है । अश्रद्धा करताहुग्य दक्षिणाकूं देता नहीं । तातें श्रद्धाविषैहीं दक्षिणा प्रतिष्ठित है ॥ ॥ श्रद्धा किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ हृदयविषै ।

श्रद्धां जानाति । हृदये ह्येव श्रद्धा प्रति-
ष्ठिता भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य !
॥ २१ ॥

कहतेभये । जातैं हृदयकरि श्रद्धाकूं जानता
है । तातैं हृदयविषैहीं श्रद्धा प्रतिष्ठित हो-
वैहै इति ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसैहीं
है ॥ २१ ॥

ऐसैं कहतेभये ॥ जातैं हृदयकी वृत्ति श्रद्धा
है । जातैं हृदयकरिहीं श्रद्धाकूं जानता है ।
औ वृत्ति जो है सो वृत्तिमान्विषै प्रतिष्ठित हो-
वैहै । तातैं हृदयविषैहीं श्रद्धा प्रतिष्ठित हो-
वैहै ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसैहीं
है ॥ २१ ॥

९९७ सो (श्रद्धा) हृदयविषै प्रतिष्ठित है । इस अर्थ-
विषै हेतुकूं कहैहैं ॥

९९८ श्रद्धाकूं हृदयकी व्याप्य होनेतैं ताका तिसविषै
प्रतिष्ठितपना है । ऐसैं कहैहैं ॥

९९९ ननु हृदयकी श्रद्धा वृत्ति होइ । तथापि प्रकृतविषै
क्या आया ? सो कहैहैं ॥

किंदेवतोऽस्यां प्रतीच्या दिश्यसी-
ति ? वरुणदेवत इति । स वरुणः क-
स्मिन् प्रतिष्ठित इत्यप्स्विति ॥ का प्स्व-

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस
प्रतीची दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूंछताभया]
॥ ॥ वरुण देवतावालाहूं ऐसैं [कहतेभ-
ये] ॥ ॥ सो वरुण किसविषै प्रतिष्ठित है ?
ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ आपविषै ऐसैं
[कहतेभये] ॥ ॥ आप (जल) किसविषै

टीकाः—किंदेवत हुया तूं इस प्रतीची
(पश्चिम) दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूंछताभ-
या] ॥ ॥ तिसविषै मेरा वरुण अधिदेवता
है ॥ ॥ सो वरुण किसविषै प्रतिष्ठित है ?
ऐसैं [पूंछताभया] ॥ आप (जल)विषै । ऐसैं
[कहतेभये] ॥ जातैं जलोंका वरुण कार्य है ।
“श्रद्धारूपहीं आप हैं । श्रद्धातैं वरुणकूं जता-
भया” इस श्रुतितैं ॥ ॥ आप किसविषै प्र-

न्वापः प्रतिष्ठिता इति ? रेतसीति ॥ क-
 ण्निन्नु रेतः प्रतिष्ठितमिति ? हृदय इति ।
 तस्मादापि प्रतिरूपं जातमाहृदयादि-
 प्रतिष्ठित हैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥
 रेतविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ रेत किस-
 विषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥
 हृदयविषै ऐसैं ॥ तातैंबी प्रतिरूप (अनु-
 रूप पुत्र)कूं हृदयतैं निकसेहुयेकी न्यांई ।

तिष्ठित हैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ रेत (वीर्य)
 विषै । ऐसैं [कहतेभये] “रेतकरि जातैं आप
 रचे हैं” इस श्रुतितैं ॥ ॥ रेत किसविषै प्र-
 तिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ हृदयविषै ।
 ऐसैं [कहतेभये] ॥ जातैं हृदयका कार्य रेत है ।
 कांसं हृदयकी वृत्ति है । जातैं कांसं^{१००१} पुरुषके
 हृदयतैं रेत रचलित होता है । तातैंबी प्रति-

१००० रेतकी हृदयकार्यताकूं साधते हैं ॥

१००१ तथापि रेत हृदयका कार्य कैसे है ? सो कहैहैं ॥

१००२ तहांहीं लोकप्रसिद्धिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां

अपि शब्द संभाषनाके अर्थ है वा अवधारणके अर्थ है ॥

व सप्तो हृदयादिव निर्मित इति । हृद-
ये ह्येव रेतः प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैत-
द्याज्ञवल्क्य ! ॥ २२ ॥

किं देवतो ऽस्यामुदीच्यां दिश्यसी-
हृदयतैं निर्मितहुयेकी न्यांई जन्म्या कह-
तेहैं । यातैं हृदयविषैहीं रेत प्रतिष्ठित हो-
वैहै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य !
यह ऐसैंहीं है ॥ २२ ॥

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस
उदीची दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूँछताभ-
रूप (अनुरूप) पुत्रकूं लौकिक जन जन्म्या क-
हते हैं । इस पिताके हृदयतैं निकसेहुयेकी
न्यांई पुत्र निर्मित होवैहै । जैसें सुवर्णकरि नि-
र्मित कुंडल है । तातैं हृदयविषैहीं रेत प्रति-
ष्ठित होवैहै ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐ-
सैंहीं है ॥ २२ ॥

टीकाः—किं देवत हुया तूं इस उदीची
(उत्तर) दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥

ति ? सोमदेवत इति ॥ स सोमः कस्मि-
प्रतिष्ठित इति ? दीक्षायामिति ॥ कस्मि-
न्नु दीक्षा प्रतिष्ठितेति ? सत्य इति । त-

या] ॥ ॥ सोम देवतावालाहूं ऐसैं [कहते-
भये] ॥ ॥ सो सोम किसविषे प्रतिष्ठित है ?
ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ दीक्षाविषे ऐसैं
[कहतेभये] ॥ ॥ दीक्षा किसविषे प्रतिष्ठि-
त है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ सत्यविषे

सोमदेवत हूं । ऐसैं [कहतेभये] इहां सोमल-
ताकूं औ सोमदेवतार्कू एकरूपकरिके निर्देश
है ॥ ॥ सो सोम किसविषे प्रतिष्ठित है ?
ऐसैं [पूँछताभया] ॥ दीक्षाविषे । ऐसैं [कह-
तेभये] ॥ जातैं दीक्षितंहुया यजमान सोमकूं
मोल लेता है । मोललये सोमकरि यजनकरिके
ज्ञानवान् उत्तर दिशाकूं पावताहै ॥ सोमदेव-
ताकरि अधिष्ठित दिशाकूं सौम्या कहैहैं ॥ ॥
दीक्षा किसविषे प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछ-

स्मादपि दीक्षितमाहुः सत्यं वदेति । स-
त्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति ॥ कस्मिन्नु
सत्यं प्रतिष्ठितमिति ? हृदय इति हो-

ऐसैं [कहतेभये] जातैं सत्यविषैहीं दीक्षा
प्रतिष्ठित है तातैंबी दीक्षितकूं कहते हैं “स-
त्यकूं कथनकर” ऐसैं ॥ ॥ सत्य किसविषै
प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ ह-

ताभया] ॥ सत्यविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥

^{१००४}
कैसैं किः—जातैं सत्यविषै दीक्षा प्रतिष्ठित है । ता-
तैंबी दीक्षित पुरुषकूं कहतेहैंः—सत्यकूं क-
थनकर ऐसैं । कौरणके भ्रंशहुये कार्यका भ्रंश
(नाश) मति होहू । [यह तिनका अभिप्राय
है] यातैं सत्यविषैहीं दीक्षा प्रतिष्ठित है ॥ ॥

१००४ ननु दीक्षाका सत्यविषै प्रतिष्ठितपना अप्रसिद्ध
है ? ऐसैं शंका करिके । समाधान करैहैं ॥ इहां “ अपि ”
शब्द अवधारण (निश्चय)के अर्थ है ॥

१००५ सत्यकूं कथनकर । ऐसैं कहनेवालेके अभिप्रायकूं
कहैहैं ॥ इहां यह तिनका अभिप्राय है । यह शेष है ॥

१००६ प्रकृतका उपसंहार करैहैं ॥

वाच । हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये
ह्येव सत्यं प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैत-
द्याज्ञवल्क्य ! ॥ २३ ॥

किं देवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीत्य-
दयविषै ऐसैं कहतेभये ॥ जातैं हृदयकरि
सत्यकूं जानताहै तातैं हृदयविषैहीं सत्य
प्रतिष्ठित होवैहै ऐसैं ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य !
यह ऐसैंहीं है ॥ २३ ॥

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस ध्रुव
(उर्ध्व) दिशाविषैहैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥
सत्य किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछता-
भया] ॥ हृदयविषै । ऐसैं कहतेभये । जातैं
हृदयकरि सत्यकूं जानताहै । तातैं हृदय-
विषैहीं सत्य प्रतिष्ठित होवैहै ॥ ॥ हे या-
ज्ञवल्क्य ! यह ऐसैंहीं है ॥ २३ ॥

टीकाः—किं देवत हुया तूं इस ध्रुव (ऊर्ध्व)
दिशाविषैहैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ मेरुके

१००७ फेर ऊर्ध्वदिशा कैसैं अवस्थित हुयी “ ध्रुवा ”
येसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

ग्निदेवत इति ॥ सोऽग्निः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति ? वाचीति ॥ कस्मिन्नु वाक् प्रतिष्ठितेति ? हृदय इति ॥ कस्मिन्नु हृदयं प्रतिष्ठितमिति ? ॥ २४ ॥

अग्नि देवतावालाहूं ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ सो अग्नि किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ वाक्विषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ वाक् किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ हृदयविषै ऐसैं [कहतेभये] हृदय किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ २४ ॥

च्यारी ओरतैं वसनेवाले प्राणिनकूं अव्यभिचारतैं ऊर्ध्वदिशा “ध्रुवा” ऐसैं कहियेहै ॥ ॥ अग्निदेवतहूं । ऐसैं [कहतेभये] ॥ जातैं ऊर्ध्व दिशाविषै प्रकाशकी बहुलता है औ प्रकाशरूप अग्नि है ॥ ॥ सो अग्नि किसविषै प्रतिष्ठित है । ऐसैं [पूँछताभया] ॥ वाक्विषै । ऐसैं

[कहतेभये] ॥ ॥ वाक् किसविषे प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ हृदयविषे । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ तहां ^{१००९} (उक्त प्रकारके विभाग-हुये) याज्ञवल्क्य । सर्व दिशाओंविषे प्रसृत हृदयकरि सर्व दिशाओंकूं आत्मभावकरि अभिसंपन्न है । देवसंहित प्रतिष्ठासहित दिशा नाम-रूप अरु कर्मके आत्मभूत तिस ^{१०११} आत्मभूत हैं ॥ जो रूप है । सो प्राचीदिशासहित याज्ञवल्क्यका हृदयभूत है ॥ औ जो ज्ञान-

१००९ दिशाकूं जानताहूं । इत्यादि श्रुतिकरि जगत्का विभागसैं पंचविधपना ध्यान अर्थ कहा । अब विभाग वादिनी श्रुतिके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥ इहां:—“ तहां ” याका उक्त प्रकारके विभागके होते । यह अर्थ है ॥

१०१० उक्त अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

१०११ तहां अवांतर विभागकूं कहैहैं ॥ इहां:—आद्यपर्यायविषे हृदयमें रूप प्रपंचका उपसंहार दिखाया । “ हृदयविषेहीं रूप प्रतिष्ठित हैं ” इस श्रुतितैं । यह अर्थ है ॥

१०१२ दक्षिणाविषे । इत्यादि तीन पर्यायोंकरि तहांहीं कर्मका उपसंहार कहा । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— जोई केवल कर्म है सो फल आदिककरि सहित दक्षिणदिशारूप हुया हृदयविषे उपसंहार करियेहै । दक्षिण दिशाके यज्ञ दक्षिणादेकरि हृदयविषे प्रतिष्ठितपनैकी उक्तितैं औ

सहित पुत्रोत्पादनरूप केवल कर्म है । सो फल-
सहित औ अधिष्ठात्री देवताक सहित कर्म
अरु फल स्वरूप दक्षिणा प्रतीची अरु उदीची
दिशा । ताके हृदयकूँहीं प्राप्त भई हैं ॥ ध्रुव दि-
शासहित सर्व नाम वाक् रूप द्वारकरि ताके हृद-
यकूँहीं प्राप्त भया है ॥ ईतनाहीं यह सर्व है ।
जो रूप है वा कर्म है वा नाम है । यह सर्व
हृदय है ॥ यह सर्वात्मिक हृदय उच्छियेहः-
हृदय किसविषे प्रतिष्ठित है ? ऐसैं ॥ २४ ॥

ताका फलरूप होनेतैं पुत्रजन्म इस नामवाला कर्म प्रतिची-
रूपहुया तहांहीं उपसंहार किया “ हृदयकूँहीं रेत प्रति-
ष्ठित है ” इस श्रुतितैं । औ पुत्रजन्मकूँ ताका कार्य होनेतैं ।
ज्ञानसहितबी कर्म फल प्रतिष्ठा अरु देवताकरि सहित
उदीची स्वरूप हुया तहांहीं उपसंहार किया । सोमदेवताके
दीक्षादिद्वारा तिसविषे प्रतिष्ठितपनैकी श्रुतितैं ॥ ऐसैं तीन
दिशाओंविषे सर्व कर्म हृदयविषे संहार किया ॥

१०१३ पंचमपर्यायके तात्पर्यकूँ कहैहैं ॥

१०१४ नाम रूप अरु कर्मके उपसंहार कियेहुयेबी किं-
चित् उपसंहार करने योग्य अन्य अवशिष्ट है ? यह आशंका
करिके । निराकरण करैहैं ॥

१०१५ अन्य प्रश्नकूँ उठावते हैं ॥

अहल्लिकेति होवाच याज्ञवल्क्यो य-
 दैतद्व्यघ्नारमन्मन्यासै यद्धयेतदन्य-
 त्वास्मत्स्याच्छ्वानो वैनदद्युर्वयांसि वै-
 नद्विमशान्निति ॥ २५ ॥

अर्थः—[तब] याज्ञवल्क्य हे अहल्लिका !
 ऐसैं कहतेभयेः—जहां (जिस कालमें) यह
 (हृदय) शरीरतैं अन्य ठिकाने [वर्तता है
 ऐसैं] जानता हैं । जब यह (हृदय) इसतैं
 अन्य ठिकाने होवै [तब] इस (शरीर)कूं
 श्वान भक्षण करैहैं वा पक्षी इसकूं विखेरते
 हैं [यातैं मुज शरीरविषै हृदय प्रतिष्ठित
 है] ॥ २५ ॥

टीकाः—हे अल्लिका ! ऐसैं कहतेभये ॥
 इहां याज्ञवल्क्य ! “अहनि लीयते (दिवाह्नि-
 वै लीन होवैहै)” ऐसैं विग्रह करिके । प्रेत (मृ-
 तक)के वाची नामांतरंकरि संबोधनकूं करतेभ-

१०१६ हृदयपदकरि नाम आदिकके आधारकी ज्याई
 “अहल्लिका” शब्द करिबी हृदयाधिकरण विवक्षित होवैहै ।
 वाक्यछायाकी समतातैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

ये ॥ ॥ जिस^{१०१७} कालविषै यह हृदयरूप आत्मा इस शरीरके अन्य ठिकाने किसीबी देशांतरविषै हमारेतैं वर्तताहै । ऐसैं मानताहैं [तिसकालविषै शरीर मृत होवैहै]^{१०१८} ॥ जातैं जब यह हृदय हमारेतैं (देहतैं) अन्य ठिकाने होवै तब श्वान इस शरीरकूं भक्षण करैहैं वा पक्षी इसकूं मथन (विलोडन) करैहैं कहिये बिखेरते हैं^{१०१९} ऐसैं होवैहै । तातैं मुज शरीरविषै हृदय प्रतिष्ठित है । यह अर्थ है^{१०२०} ॥ शरीरकूंबी नामरूप अरु कर्मात्मक होनेतैं हृदयविषै प्रतिष्ठितपना है ॥ २५ ॥

इहां:—अह जो दिवस तिसविषै लीन होवैहै । ऐसैं विग्रह करिके । प्रेतवाची [नामांतरकरि] यह शेष है ॥

१०१७ देहविषै हृदय प्रतिष्ठित है । ऐसैं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां तिस कालविषै शरीर मृत होवैहै । यह शेष है ॥

१०१८ शरीरकूं हृदयकी आश्रयता स्पष्ट करैहैं ॥

१०१९ देहतैं अन्य ठिकाने हृदयके अवस्थानविषै उक्त प्रकारके दोषकूं इति शब्दसैं स्मरण करिके । फलितकूं कहैहैं ॥

१०२० तब देह किसविषै प्रतिष्ठित है ? यह आशंका भयी । यातैं कहैहैं ॥

कस्मिन्नु त्वञ्चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ
इति ? प्राण इति ॥ कस्मिन्नु प्राणः प्र-
तिष्ठित इत्यपान इति ॥ कस्मिन्वपानः

अर्थः—तूं (शरीर) आत्मा (तेरा ह-
दय) किसविषे प्रतिष्ठित हैं ? ऐसैं [पूँछ-
ताभया] ॥ ॥ प्राणविषे ऐसैं [कहतेभ-
ये] ॥ ॥ प्राण किसविषे प्रतिष्ठित है ? ऐसैं
[पूँछताभया] ॥ ॥ अपानविषे ऐसैं [कह-

टीकाः—कार्य अरु करणरूप हृदय अरु श-
रीरकी ऐसैं परस्परविषे प्रतिष्ठा कही । यातैं तु-
जकूं पूँछताहूं किः—तूं (शरीर) औ आत्मा (ते-
रा हृदय) किसविषे प्रतिष्ठित हैं ? ऐसैं ॥ ॥
प्राणविषे । ऐसैं [कहतेभये] ॥ देह अरु आ-
त्मा (हृदय) । प्राण (प्राणवृत्ति)विषे प्रति-
ष्ठित होवैहैं ॥ ॥ प्राण किसविषे प्रतिष्ठित

१०२१ वृत्तकूं अनुवाद करिके । अन्य प्रश्नकूं ग्रहण करै-
हैं ॥ इहां प्राण शब्दकी सूत्रविषयताकूं दूरी करनेकूं “वृत्ति”
ऐसा विशेषण है ॥

प्रतिष्ठित इति ? व्यान इति ॥ कस्मिन्नु
व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति ॥ कस्मि-
न्नुदानः प्रतिष्ठित इति ? समान इति ॥

तेभ्ये] ॥ ॥ अपान किसविषै प्रतिष्ठित
है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ व्यानविषै
ऐसैं [कहतेभ्ये] ॥ ॥ व्यान किसविषै प्र-
तिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥ उदा-
नविषै ऐसैं [कहतेभ्ये] ॥ ॥ उदान कि-
सविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ ॥
है ? ऐसैं [पूँछताभया] ॥ अपानविषै । ऐसैं
[कहतेभ्ये] ॥ सो प्राणवृत्तिबी जो अपानवृ-
त्तिकरि निग्रहकूं नहीं प्राप्त होवै तो पूर्वहीं जा-
वै ॥ ॥ अपान किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं
पूँछताभया ॥ व्यानविषै । ऐसैं [कहतेभ्ये] ॥
मध्यविषै स्थित व्यानवृत्तिकरि जो निग्रहकूं
नहीं प्राप्त होवै तो सो अपानवृत्तिबी नीचेहीं

१०२२ प्राणके अपानविषै प्रतिष्ठितपनैः व्यतिरेकद्वारा
स्पष्ट करैहैं ॥

१०२३ प्राण अरु अपान दोनूकीबी व्यानाधीनताकूं
साधते हैं ॥

स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्य-
तेऽशीर्यो नहि शीर्यतेऽसङ्गो नहि स-
ज्ज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्येता-
न्यष्टावायतन न्यष्टौ लोका अष्टौ देवा

समानविषै ऐसैं ॥ सो यह नेति नेति ऐसैं
[निर्देश किया] आत्मा जातैं नहीं ग्रहण
करियेहै यातैं अग्रह्य है । जातैं नहीं शीर्ण
होवैहै यातैं अशीर्य है । जातैं असंग है
यातैं सज्जमान होता नहीं । असित (अ-
बद्ध) है [यातैं] व्यथाकूं पावता नहीं [या-
हीतैं] विनाशकूं पावता नहीं ॥ ये (पृथ्वी)
आदिक अष्ट आयतन हैं । अष्ट लोक हैं ।

जावै औ प्राणवृत्ति पूर्वकूंहीं (ऊपरहीं) जावै ॥
व्यान किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछता-
भया] ॥ उदानविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥
१०२४
सर्व तीनबी वृत्तियां कीलस्थानीय उदानविषै

१०२४ उक्त तीन वृत्तिनकी उदानविषै निबद्धताकूं दि-
खावैहैं । इहां विष्वक् । ऐसैं नाना गतिभावकी उक्ति है ॥

अष्टौ पुरुषाः स यस्तान् पुर्याद्विस्तृ
 प्रत्युह्यात्यक्रामत्तं लौपानेषदं पुरुषं पृ-
 च्छामि तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धा ते
 विपतिष्यतीति ? तं ह न मेने शाक-
 अष्ट देव हैं । अष्ट पुरुष हैं ॥ सो जो (को-
 ईकबी) तिन पुरुषनकूं निश्चयकरि जानि-
 के उपसंहार करिके अतिक्रमण करताभया
 तिस औपनिषद् (उपनिषदनविषैहीं जा-
 नने योग्य) पुरुषकूं तेरेप्रति पूंछताहूं । ता-
 कूं जो मेरेतांई विस्पष्ट नहीं कहैगा तो तेरा
 मूर्धा (मस्तक) पतन होवैगा । ऐसैं [क-
 हतेभये] ॥ ॥ ता (उक्तपुरुष) कूं शाकल्य
 जो निबद्ध नहीं होवैं तो नाना गतिभावकूं प्राप्त
 होवैं ॥ ॥ उदान किसविषे प्रतिष्ठित है ?
 ऐसैं [पूंछताभया] ॥ समानविषे । ऐसैं [क-
 हतेभये] ॥ जातैं समानविषे प्रतिष्ठित ये सर्व
 त्तियां हैं ॥ ॥ इहां यंह कश् नकिया होवैहैः-

१०२५ “किसविषे हृदय” इसतैं आदि लेके समान पर्य-
 तके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

ल्यस्तस्य ह मूर्द्धा विपपातापि हास्य
परिमोषिणोऽस्थीन्यपजन्तुरन्यन्मन्य-
मानाः ॥ २६ ॥

नहीं जानताभया । ताका मूर्द्धा पतन हो-
ताभया ॥ औ याके अस्थिनकूंबी तस्कर
अन्य (धन) मानतेहुये हरण करतेभये
॥ २६ ॥

शरीर हृदय अरु वायु । अन्योन्य (परस्पर) विषै
प्रतिष्ठित अरु विज्ञानमय (जीव) के अर्थ प्रयु-
क्त हुये संघातसैं नियत होयके वर्ततेहैं ॥ सर्व
यह आकाशपर्यंत जिसकरि नियतहुया जिस-
विषै प्रांतदृष्टि है कहिये ओत है औ प्रोत है ।
तिस निरुपाधिक साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्मका नि-
र्देश (कथन) कर्तव्य है । यातैं यह आरंभ
है:—सो यह है । कहिये सो जो “नेति नेति”

१०२६ तिनकी प्रवर्तकताकूं दिखावै हैं ॥

१०२७ “ सो यह ” इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

१०२८ जिस कूटस्थ दृष्टिमात्र अंतर्धामी भावकी कल्प-
नाके अधिष्ठानके अज्ञानके वशतैं प्रशासनविषै स्वर्ग अरु पृ-
थिवी आदिक स्थित है । सो परमात्मा यह प्रत्यगात्माही
है । ऐसैं इन दो पदनके अर्थकूं विवक्षा करिके कहैहैं ॥

१०२९ दो निषेध मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणविषै व्याख्यान किया

ऐसैं मधुकांडविषै निर्देश किया है । यह सो है ॥
 सो यँह आत्मा अग्रह्य (ग्रहण करनेकूं यो-
 ग्य नहीं) है ॥ कैसेँ किः—जातैं सर्व कार्यके
 धर्मोंतैं अतीत है । तातैं अग्रह्य है ॥ किंसँका-
 रणतैं [अग्रह्य] है? जातैं नहीं ग्रहण करि-
 येहै ॥ जोई कणगाचर व्याकृत वस्तु है ।
 सो ग्रहणगोचर होवैहै । यह तो तिसतैं विप-
 रीत आत्मतत्व है ॥ ॥ तैसेँ अशीर्य है । जोई
 मूर्त्त अरु संहत (मिलित) शरीरादिक है । सो
 विशीर्ण होवैहै । यह तो तिसतैं विपरीत है ।
 यातैं नहीं विशीर्ण होवैहै ॥ ॥ अरु असंग
 है । जो मूर्त्तरूप है । सो मूर्त्तांतरकरिसंबन्ध्यमा-
 न हुया सज्जताहै औ यह तिसतैं विपरीत (अ-

है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहांः—जो मधुकांडविषै चतुर्थमें नेति
 नेति ऐसैं निषेधमुखकरि निर्देश किया । सो यह कूर्च ब्रा-
 ह्मणविषै तिस मुखकरिहीं आगे कहियेगा । ऐसैं योजना है ॥

१०३० निषेधद्वारा निर्देश किये अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥
 इहां कार्यधर्म । शब्दादिक औ अशनादिक हैं ॥

१०३१ श्रुति उक्त हेतुकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥
 इहांः—तिसतैं विपरीतपना कहिये अकरणगोचरपना ।
 “ चक्षुकरि नहीं ” इत्यादि श्रुतितैं औ तिसतैं विपरीत हो-
 नेतैं याका अमूर्त्त होनेतैं । यह अर्थ है ॥

मूर्त्त) है । यातें सज्जमान नहीं होवैहै ॥ ॥
 तैसैं असित (अबद्ध) है । जोई मूर्त्त है सो
 बद्ध होवैहै । यह तो तिसतैं विपरीत (अमूर्त्त)
 होनेतैं अबद्ध है औ व्यथाकूं पावता नहीं ।
 यातैं रिष्ट नहीं होवैहै । ग्रहण शरण संग बंध-
 रूप कार्यके धर्मोतैं रहित होनेतैं रिष्ट नहीं हो-
 वैहै कहिये हिंसाकूं पावता नहीं । अर्थ यह जो
 विनाशकूं पावता नहीं ॥ क्रमकूं अतिक्रमण क-
 रिके औपनिषद पुरुषका आख्यायिकातैं अपस-
 रण करिके श्रुतिनैं स्वरूपकरि त्वरिसैं निर्देश
 किया ॥ तातैं फेर आख्यायिकाकूंहीं आश्रयक-

१०३२ पूर्वविषैबी दोनु ठिकाने तिसतैं विपरीतपना
 यहहीं अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है । ताकूं स्पष्ट करतेहुये
 उक्त अर्थकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां कार्यके धर्म शब्दादिक
 औ अशनादिक पूर्व कहे ॥

१०३३ ननु शाकल्य औ याज्ञवल्क्यके संवादरूप यह
 आख्यायिका है । तहां शाकल्यकरि नहीं पूछे आत्माकूं
 याज्ञवल्क्य कैसैं व्याख्यान करते भये ? तहां कहैहैं ॥

१०३४ विज्ञानादि वाक्यविषै वक्ष्यमाण होनेतैं इहां नि-
 र्देश क्यूं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१०३५ ये अष्ट । इत्यादि वाक्यकी पूर्वके साथि असं-
 गतिकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

रिके कहैहैं:—ये जे उक्त “पृथिवीहीं जाका आयतन है” इत्यादिक अष्ट आयतन हैं । अग्नि-लोक आदिक अष्ट लोक हैं । “अमृत है । ऐसैं कहतेभये” इत्यादिक अष्ट देव हैं । “शारीर पुरुष है” इत्यादिक अष्ट पुरुष हैं । सो जो कोईक तिन शारीर आदिक पुरुषनकूं निश्चय-करि जानिके कहिये अष्ट चतुष्क भेदकरि लोकनकी स्थितिकूं उपपादनकरिके । फेर प्राची-दिशारूप द्वारकरि हृदयरूप स्वात्माविषै उप-संहारकरिके हृदयादिककी आत्मतारूप उपाधिके धर्मकूं अतिक्रमण करताभया कहिये स्वस्वरूपकरि व्यवस्थितभया ॥ जो औपनिषद अशनायादि धर्मतैं वर्जित उपनिषदविषैहीं जानने योग्य अन्य प्रमाणकरि अगम्य पुरुष है । तिस औपनिषद पुरुषकूं तुज विद्याभि-मानीके प्रति में (याज्ञवल्क्य) पूंछतां । ता-कूं जब मेरेतांई विस्पष्ट नहीं कथन करैगा

१०३६ निश्चयकरि जनायके याहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१०३७ पुरुषके औपनिषदपनैकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

तब तेरा मूर्धा (मस्तक) पतन होवैगा । ऐसैं
 [कहतेभये] ॥ तिस औपनिषद पुरुषकूं शा-
 कल्य नहीं जानताभया । ताका मूर्धा पत-
 नभया ॥ ^{१०३९} आख्यायिका समाप्तभयी ॥ इहां
 “ताकूं न जानताभया” इत्यादि श्रुतिका वचन
 है ॥ ॥ किंवाः—संस्कार अर्थ शिष्योंकरि गृहों-
 केप्रति नीयमान याके अस्थिनकूंबी तस्कर
 (चोर) हरण करतेभये ॥ किस निमित्तकिः—
^{१०४०}
 अन्यत् (धन) कूं नीयमान मानतेहुये ॥ पूर्व
 व्यतीतभयीहीं आख्यायिका इहां सूचन करी ॥
^{१०४१} अष्टाध्यायीविषै प्रसिद्ध । शाकल्यके साथि या-

१०३८ ताकूं । इत्यादिकरि याज्ञवल्क्यका वा मध्यमका
 वाक्य है । या शंकाकूं निवारण करैहैं ॥

१०३९ ब्रह्मवेत्तासैं विद्वेषके हुये परलोकका विरोधभी
 होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

१०४० मूर्धा तेरा पडेगा । इस शापकरि मस्तकके पतन
 हुये शाकल्य । अग्नि होत्रादि संस्कारकूंबी क्यूं न प्राप्त होता-
 भया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०४१ तिसीहीं आख्यायिकाकूं अनुक्रमसैं कहैहैं ॥ इहांः—
 अष्टाध्यायी कहिये बृहदारण्यकतैं प्राचीन (पूर्वगत) कर्मकूं वि-

ज्ञवल्क्यका समानपर्यंतहीं संवाद निर्वृत्तभया ।
 तहां याज्ञवल्क्यनैँ शाप दीया किः—पुरविषै (पु-
 ण्यक्षेत्रतैँ अतिरिक्त देशविषै) औ अतिथ्यविषै
 (पुण्यतिथितैँ शून्य कालविषै) तूं मरैगा । औ
 तेरे अस्थिबी ग्रहोंकूं नहीं प्राप्त होवैँगे ऐसा ॥
 सो तैसेंहीं मरताभया ॥ ताके अस्थिनकूंबी अ-
 न्य (धन) मानते हुये परिमोषी (चोर) हरण
 करतेभये । तातैँ उपवादी (परिभवका कर्त्ता)
 नहीं होवै । ^{१०४२}जातैँ ऐसैँ जाननेवाला (विद्वान्)
 पर (परब्रह्म) होवैँहै ऐसैँ ॥ सो ^{१०४३}यह आख्या-
 यिका आचारके अर्थ सूचन करी । विद्या स्तु-
 तभयी ॥ २६ ॥

षय करनेवाली है । पुरविषै कहिये पुण्यक्षेत्रतैँ अतिरिक्त
 देशविषै । अतिथ्यविषै कहिये पुण्यतिथिशून्यकालविषै । उ-
 पवादी कहिये परिभवका कर्त्ता ॥

१०४२ तत् शब्दके अर्थकूं कहैँहैं ॥

१०४३ ननु यह आख्यायिका इहां विद्याके प्रकरणविषै
 क्यूँ सूचन करी है ? यह आशंका करिके कहैँहैं ॥ इहां ब्रह्म-
 वेत्ताविषै विनययुक्तकरि होना योग्य है । यह आचार है ।
 जातैँ बडी यह ब्रह्मविद्या है । यातैँ तिसविषै निष्ठावाले पुरु-
 षकी अवज्ञाके हुये इस लोक औ परलोकका विरोध होवैँहै ।
 यह विद्याकी स्तुति है ॥

अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो! यो
वः कामयते स मा पृच्छतु । सर्वे वा मा

अर्थः—अनंतर [याज्ञवल्क्य] कहतेभ-
येः—हे भगवन् ब्राह्मणो ! जो तुम्हारे मध्य
इच्छता है सो मुजकूं पूछहू । वा सर्व मु-

टीकाः—^{१०४४}जो इहां “नेति नेति” ऐसैं अन्यके
प्रतिषेधरूप द्वारकरि जिस ब्रह्मका निर्देश कि-
या । ताका विधिमुखकरि कैसैं निर्देश करनेकूं
योग्य है । यातैं फेर आख्यायिकाकूंहीं आश्रय-
करिके कहैहैं ॥ औ जगत्का मूल कहनेकूं यो-
ग्य है ऐसैं आख्यायिकाका संबंध तो अब्रह्मवेत्ता
ब्राह्मणनकूं जीतिके गोधन हरण करनेकूं योग्य
है । ऐसैं न्यायिकूं मानिके याज्ञवल्क्य कहैहैंः—

१०४४ “अनंतरहीं कहतेभये ” इत्यादि उत्तर ग्रंथकूं
अवतार देते हैं ॥ इहां जगत्का मूल कहनेकूं योग्य है ।
यातैं आख्यायिकाकूंहीं आश्रय करिके कहैहैं । ऐसैं संबंध है ॥

१०४५ आख्यायिका किस अर्थ है ? यह शंका भयी ।
यातैं कहैहैं ॥ इहां इति शब्द संबंधकी समाप्ति अर्थ है ॥

१०४६ ननु ब्राह्मणोंके तूष्णींभूत हुये निषेध कर्त्ताके
अभावतैं गोधन हरण करनेकूं योग्य था । तिन ब्राह्मणके प्रति

पृच्छत । यो वः कामयते तं वः पृच्छामि । सर्वान्वा वः पृच्छामीति ? ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः ॥ २७ ॥

जकूँ पूँछहूँ ॥ जो तुह्मारे मध्य इच्छता है ताकूँ तुह्मारे मध्य में पूँछूँ वा तुम सर्वकूँ में पूँछूँ । ऐसैं ॥ ॥ वे ब्राह्मण प्रगल्भ नहीं होतेभये ॥ २७ ॥

अनंतर ब्राह्मणोंके तूष्णींभूत हुये याज्ञवल्क्य कहतेभये । हे भगवन् ब्राह्मणो ! [ऐसैं संबोधन देके] जो तुँह्मारे मध्य में याज्ञवल्क्यकूँ पूँछूँ ऐसैं इच्छताहै । सो मेरे प्रति आयके पूँछे । वा तुम सर्व मेरेप्रति पूँछो ॥ जो तुँह्मारे

याज्ञवल्क्य क्यूँ कहतेभये ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहां:—ब्रह्मस्व (ब्राह्मणोंका धन) ब्राह्मणोंकी अनुमतिकूँ न पायके लीयाहुया अनर्थके अर्थ होवैगा । यह अभिप्राय है औ संबोधन करिके कहतेभये । ऐसैं संबंध है ॥

१०४७ “ जो तुह्मारे मध्य ” इस प्रतीककूँ लेके व्याख्यान करैहैं ॥

१०४८ व्याख्यान किये भागकूँ अनुवाद करिके व्याख्यान करनेयोग्य भागकूँ लेके व्याख्यान करैहैं ॥

तान् हैतैः श्लोकैः पप्रच्छ ॥ यथा
वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ॥ त-
स्य लोमानि पर्णानि । त्वगस्योत्पा-

अर्थः—तिन (ब्राह्मणन)कूं इन श्लोकों-
करि [याज्ञवल्क्य] पूंछताभयाः—जैसे वृक्ष
वनस्पति है । तैसे ही पुरुष है अमृषा (यह
सत्य) है ॥ ताके लोम पर्ण हैं। याकी बाहिर-

मध्य याज्ञवल्क्य मेरे प्रति पूंछे ऐसे इच्छता
है । ताकूं तुम्हारे मध्य में पूंछताहूं । वा तु-
म सर्वकूं में पूंछताहूं ॥ ॥ वे ब्राह्मण ऐसे
उक्तहुयेबी किंचित्बी प्रत्युत्तर कहनेकूं प्रगल्भ
नहीं भये ॥ २७ ॥

टीकाः—तिन ब्राह्मणोंके अप्रगल्भभूतहुये
तिनके प्रति इन वक्ष्यमाण श्लोकनकरि या-
ज्ञवल्क्य पूंछतेभयेः—जैसे लोकविषै वृक्ष व-

१०४९ उक्तप्रकारके प्रश्नके अनंतर ब्राह्मणोंकी अप्रति-
भा (निस्तेजता)कूं दिखावै हैं ॥

१०५० अपने ज्ञानके प्रकर्षके प्रकट करने अर्थही प्रभां-
तरकूं अवतार देते हैं ॥

टिका बहिः ॥ १ ॥ त्वच ग्वास्य रुधिरं
प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः ॥ तस्मात्तदा-
तृणात्प्रैति रसो वृक्षादिवाऽऽहतात् ॥२॥

की त्वक् उत्पाटिका (नीरस) है ॥ १ ॥
याकी त्वचातैंहीं रुधिर स्रवताहै [वनस्प-
तिकी] त्वचातैं उत्पट (निर्यास) स्रवता है ॥
तातैं आहत वृक्षतैं रसकी न्यांई त्रणपर्यंत
[हिंसित किये] तैं सो (रुधिर) निकसता-
नस्पति है ॥ इहां वृक्षका वनस्पति यह विशे-
षण है ॥ तैसैंहीं पुरुष है । यह सत्य है ॥
तिस पुरुषके लोम हैं । इतर (वनस्पति)के प-
र्ण हैं ॥ इस पुरुषकी औ इतर (वनस्पति)की

१०५१ वृक्ष कहिये वनस्पति । ऐसैं दोनूं शब्दनकूं प-
र्यायरूप होनेतैं इहां पुनरुक्ति होवैहै ? यह आशंका करिके ।
कहैहैं ॥ इहां सो (विशेषण)ता (वृक्ष)की महत्ताकूं कहैहै ।
यातैं अपुनरुक्ति है । पुरुषकूं वृक्षका साधर्म्य यह ऐसैं क-
हिये है ॥

१०५२ साधर्म्य (समान धर्मवानता)कूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥
इहां नीरस (रसरहित) जो त्वचा सो उत्पाटिका ऐसैं क-
हिये है ॥ औ उत्पट कहिये वृक्षका निर्यास (गुंद) ॥

मांसान्यस्य शकराणि किनाटं
 स्राव तत्स्थिरं ॥ अस्थीन्यंतरतो दा-
 रूणि मज्जा मज्जोपमा कृता ॥ ३ ॥ य-
 दृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः ॥

है ॥ २ ॥ मांस याके शकर (काष्ठके तुक-
 डे) हैं ॥ स्थिर किनाट स्रावता है ॥ भीत-
 रतैं अस्थि दारु (काष्ठ) हैं ॥ मज्जा मज्जा-
 की उपमा करी है ॥ ३ ॥ जब वृक्ष छिन्न हुआ
 प्ररोहकूं पावता है । मूलतैं फेर नवतर होवै-

बाहिरकी त्वचा उत्पाटिका (नीरस) है ॥ १ ॥
 इस पुरुषकी त्वचातैंहीं रुधिर स्रावता है ।
 वनस्पतिकी त्वचातैंहीं उत्पट (वृक्षका निर्यास)
 ऊपरतैं फूटताहै ॥ जातैं ऐसैं वनस्पतिका औ
 पुरुषका सर्व समानहीं है । तातैं त्रणपर्यंत हिं-
 सित कियेतैं सो (रुधिर) । छिन्न वृक्षतैं रस-
 कीन्यांई निर्गमन करैहै ॥ २ ॥ ऐसैं इस ~~रुधिर~~
 मांस हैं । वनस्पतिके वे शकर (टुकडे) हैं ।
 यह अर्थ है ॥ वृक्षका किनाट नाम टुकडोंतैं भीतर

मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कन्मान्मू-
लात्प्ररोहति ? ॥ ४ ॥ रेतस इति ॥ मा-
वोचत । जीवतस्तत्प्रजायते ॥ धानारुह
इव वै वृक्षोऽञ्जसा प्रेत्य सम्भवः ॥ ५ ॥

हे ॥ मर्त्यबी मृत्युकरि छिन्न हुआ किस मूल-
तैं प्ररोहकूं पावताहै ? ॥ ४ ॥ ॥ रेततैं ॥ ऐसैं
मति कहो । सो (रेत) जीवत [पुरुष]तैं
उपजता है ॥ धाना (बीज)तैं उजनेवाला
वृक्ष साक्षात् मृत होयके संभव होवै है ॥५॥

वल्कलरूप काष्ठविषै संलग्न पदार्थ है । सो स्रव
ताहै पुरुषका सो स्थिर है कहिये सो (वृक्षका)
किनाट स्राववाला है औ सो (पुरुषका) दृढ
है ॥ पुरुषके उक्तस्रावके भीतरतैं अस्थि (ह-
ड्डियां) होवैहैं । तैसैं वनस्पतिके किनाटके भीतरतैं
दारु (काष्ठ) होवैहैं ॥ वनस्पतिकी औ पुरुषकी
मज्जाहीं मज्जाकी उपमा करी है । मज्जाका
जो उपमा सो मज्जोपमा है । अन्यविशेष नहीं
है । यह अर्थ है ॥३॥ जैसैं वनस्पतिकी मज्जा है ।

१०५३ विलक्षणताके अभावकूंहीं आकारकरि दिखावै हैं ॥

यत्समूलमावृहेयुर्वृक्षं न पुनराभवेत् ॥
मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मू-
लात्प्ररोहति ॥ ६ जात एव न जायते

जब मूलकरि सहित वृक्षकं उखाडडारें । फेर
होवै नहीं ॥ मर्त्यवी मृत्युकरि छिन्न हुआ
किस मूलतैं प्ररोहकं पावता है ॥ ६ ॥ जात
(जन्म्या)हीं नहीं जन्मता है । कौन फेर इस

तैसैं पुरुषकी है । जैसैं पुरुषकी है । तैसैं वनस्प-
तिकी है ॥ जैवें वृक्ष वृक्ण (छिन्न) होवैहै ।
तब प्ररोहकं पावताहै कहिये मूलतैं फेर नवतर
(पूर्वतैं अभिनवतर) हुआ पुनः प्ररोह (प्रादु-
र्भाव)कं पावताहै ॥ ईसैं विशेषणतैं पूर्व वन-
स्पतिका औ पुरुषका सर्व सामान्य जान्या है । यह

१०५४ साधर्म्यके होते वैधर्म्य कहनेकूं अशक्य है । इस
आशयकरि कहैहैं ॥

१०५५ ननु यहबी साधर्म्यहीं क्यूं नहीं होवैगा ? यह
आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां:—तातैं इस विशेषणतैं पूर्व
जो विशेषण कहा । सो सर्व वृक्ष अरु पुरुष दोनूंका सामा-
न्य जान्या है । ऐसैं संबध है औ वृक्ण (छिन्न) अंगका यह
शेष है ॥

कोऽन्वेनं जनयेत्पुनः ॥ विज्ञानमानन्दं
ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य
तद्विद् इति ॥ ७ ॥ २८ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

(मृत) कूं जन्म देताहै? ॥ ॥ विज्ञान आ-
नन्द ब्रह्म है । राति (धन) के दाताका
पारायण है औ तिष्ठमान (स्वरूपमें स्थित)
ब्रह्मवेत्ताका परायण है । इति ॥ ७ ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्बृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र-
भाषादीर्घित्त्यां तृतीयाध्यायस्य नवमं
शाकल्य-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

तो वनस्पतिविषै विशेष देखियेहै जो छिन्नका प्र-
रोहण होवैहै । परंतु पुरुषके मृत्युकरि वृकूण हुये
फेर प्ररोहण नहीं देखीयेहै औ किसीतैंबी प्र-
रोहणकरि होना योग्य है ॥ तातैं तुमकूं मैं पूं-

१०५६ ननु ताका प्ररोहण मति होइ ? ऐसैं जो कहै ।
सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मृतका जन्म
निश्चित होवैहै ॥

छताहूं कि:-मर्त्य (मनुष्य) जब मृत्युकरि वृक्ष होवैहै । तब किस मूलतैं प्ररोहकूं पावता है । मृत पुरुषका किसतैं प्ररोहण होवैहै । यह अर्थ है? ॥ ४ ॥ ॥ जब तुम ऐसैं कहते होकि:-रेततैं प्ररोहकूं पावता है ॥ ऐसैं तुम क-

हनेकूं योग्य नहीं हो । काहेतैं कि:-जातैं जी-^{१०५७}वते पुरुषतैं सो रेत उपजता है । मृततैं नहीं

किंवा:-^{१०५८}धाना जो बीज तिसतैं उपजनेवाला-
बी वृक्ष होवैहै । केवल कांड (शाखा)तैं उप-
जनेवालाहीं नहीं ॥ इहां इव शब्द अनर्थक है ॥

^{१०५९}प्रसिद्ध वृक्ष साक्षात् मरिके संभव है कहि-

१०५७ जीवत् पुरुषतैं रेत होवैहै । सोई काहेतैं होवैहै । यह विचार करिये है । औ असिद्धकरि सिद्धका साधन नहीं होवैहै औ अन्य पुरुषतैं होवैहै यह कहनेकूं योग्य नहीं है । काहेतैं एककी असिद्धिके हुये अन्यतरके प्रयोगके असंभवतैं । ऐसैं ~~गदगद~~ हेतुकूं कहैहैं ॥

१०५८ वृक्ष औ पुरुषके अन्य वैधर्म्य (विरुद्ध धर्मवान्-पनै)कूं कहैहैं ॥ इहां कांडतैंबी प्ररोहवाला होवैहै । यह अपि शब्दका अर्थ है ॥

१०५९ वैशब्द प्रसिद्धिका द्योतक है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

ये वनस्पतिका मरिके फेर धानातैबी साक्षात्
 संभव होवै है ॥ ५ ॥ जब मूलकरि वा धाना
 (बीज) करि सहित वृक्षकूं उखाडदालें तब फेर
 आयके नहीं होवै है । तातें तुमकूं सर्वहीं जग-
 त्के मूलकूं पूंछताहूं कि:-मर्त्य जब मृत्युकरि
 वृक्षण होवै । तब किस मूलतें प्ररोहकूं पा-
 वताहै? ॥६॥ ननु^{१०६३} सो जब जात (जन्म्या)हीं
 है ऐसैं मानतेहो? तब इहां क्या पूंछनेकूं यो-
 ग्य है इति कहिये जातें आगे जन्मकूं पावनेवा-
 लेका संभव पूंछनेकूं योग्य होवैहै । जात (ज-
 न्मकूं प्राप्तभये)का नहीं । यह (मनुष्य) तो
 जातहीं है । यातें इस विषयविषै प्रश्नहीं बनता

१०६० “ अंजसा (अनायाससैं) ” इत्यादि वाक्यके अ-
 र्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

१०६१ तथापि कैसें वैधर्म्य है ? यह आशंका करिके ।
 कहैहैं ॥

१०६२ ननु पुरुषकीबी फेरी उत्पत्ति मति होहू ? यह
 आशंका करिके । पूर्व उक्तकूं निगमन करैहैं ॥

१०६३ अब प्रतिवादी स्वभाववादकूं उठावता है ॥ इहां
 इतिशब्द प्रश्नकी समाप्तिअर्थ है ॥

१०६४ ताहीकूं स्पष्ट करैहै ॥

नहीं? इस प्रकार जो स्वभाववादी (चार्वाका-
 दि) कहै । सो वने^{१०६५} नहीं:—तब क्या कि । मृ-
 तहुया फेरबी जन्मकूं पावताहीं है । अ^{३०६६}न्यथा
 अरुताभ्यागम (नहीं किये कर्मतैं फलकी प्रा-
 सि) औ कृतनाश (इस जन्मविषै किये कर्मके
 फलके अभाव)के प्रसंगतैं ॥ ॥ यातैं तुमकूं^{१०६७}
 पूंछताहूं कि:—इस मृतभये पुरुषकूं फेर कौन
 जन्म देता है? ॥ ताकूं ब्राह्मण नहीं जानतेभये ।
 जिसतैं मृतपुरुष फेर प्ररोहकूं पावताहै । सो ज-
 र्ग^{१०६८}त्का मूल ब्राह्मणोंनैं जान्या नहीं है । यातैं
 ब्रह्मिष्ठ होनेतैं याज्ञवल्क्यनैं गौवां लेलै औ ब्रा-
 ह्मण जीतलिये ॥ आ^{३०६९}ख्यायिका समाप्तभयी ॥ ॥
 जो ज^{१०७०}र्गत्का मूल है जिस शब्दकरि साक्षात्

१०६५ अव सिद्धांती भागकरि उत्तरकूं कहैहैं ॥

१०६६ स्वभाववादविषै दोषकूं कहैहैं ॥

१०६७ स्वभाववादके असंभव हुये फलितकूं कहैहैं ॥

१०६८ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

१०६९ याज्ञवल्क्यकी ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य श्रेष्ठताके सिद्ध
 भये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां:—आख्यायिका समाप्त भयी
 कहिये ब्राह्मण सर्व यथायोग्य जातेभये । यह अर्थ है ॥

१०७० विज्ञानादि वाक्यकूं उठावते हैं ॥

ब्रह्म व्यपदेश करियेहै । जिसकूं राज्ञाण्ड्य
ब्राह्मणनकूं पूंछतेभये । तातैं तिसरूपकरि श्रुति
हमारे (मुमुक्षुनके) अर्थ कहैहैः—ब्रह्म विज्ञा-

न (^{१०७१}विज्ञप्ति)रूप है औ सो आनंदरूप है ।

कहिये विषयके विज्ञानकी न्यांई दुःखकरि अ-
नुविद्ध (संबद्ध) नहीं किंतु प्रसन्न । शिव ।

^{१०७३}अतुल । ^{१०७४}अनायास । ^{१०७५}नित्यतृप्त । ^{१०७६}एकरस है । य-
ह अर्थ है ॥ सो उभयविशेषणवाला ब्रह्म क्या
हैः—राति कहिये रातिकूं (धनका) [यह अर्थ

१०७१ विज्ञान शब्दकी करणादि विषयताकूं निवारते हैं ॥

१०७२ आनंद विशेषणके कृत्यकूं दिखावते हैं ॥ इहां प्रसन्न कहिये दुःखके हेतु काम क्रोधादिकसैं संबंहरहित । शिव कहिये कामादिकके कारण अज्ञानसैंबी संबंशून्य ॥

१०७३ सातिशयताके किये दुःखसैं रहितपनैकूं कहैहैं ॥

१०७४ साधन साध्यताके दुःखसैं रहितताकूं कहैहैं ॥

१०७५ दुःखकी निवृत्तिमात्र सुख है । इस नैयायिकके पक्षकूं निषेध करैहैं ॥

१०७६ आनंद ज्ञान है । ऐसैं ब्रह्मविषै आकारके भेदकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०७७ “फलवालेकी उपपत्तितैं” इस न्यायकरि ब्रह्मकूं जगत्की मूलता कहैहैं ॥

है ॥ इहां षष्ठीके अर्थ प्रथमा है] । तिनका दाता जो कर्मका कर्ता यजमान । ताका परअयन (परागति) है । कर्मफलका प्रदाता होनेतैं ॥

^{१०७८} किंवा तीन एषणातैं व्युत्थानकरिके तिसीहीं ब्रह्मविषै कर्मकूं न करताहुया जो स्थित होवैहै सो तिष्ठमान है औ जो तिस ब्रह्मकूं जानताहै सो तद्वित् है । तिस तिष्ठमान औ तद्वित् (ब्रह्मवित्) का परायण हैइति [॥ ७ ॥ २८ ॥]

इहां यह विचार करियेहै:—आनंद शब्द लोकविषै सुखवाची प्रसिद्ध है औ इहां “आनंद ब्रह्म है ” ऐसैं ब्रह्मका विशेषण होनेकरि आनंदशब्द सुनियेहै औ अर्न्थ श्रुतिविषै

१०७८ “ ब्रह्मविषै सम्यक् स्थितहुया अमृतभावकूं पावता है ” इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके । याहीके ऐसैं उक्त नित्य वृत्तपनैकूं उपदेश करैहैं ॥ इहां अक्षरके व्याख्यानकी समाप्तिके अर्थ इति शब्द है ॥

१०७९ सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म । विद्या अरु अविद्याकरि बंध मोक्षका विषय है । ऐसैं कहा ॥ अब ब्रह्मानंदके विचारकूं अवतार देतेहुये अविगीत (निर्विवाद) अर्थकूं कहैहैं ॥

१०८० तथापि प्रकृत वाक्यविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

१०८१ केवल इहांहीं आनंदशब्द ब्रह्मके विशेषणरूप अर्थवाला होनेकरि नहीं सुन्या । किंतु तैत्तिरीयक आदिक-

ब्रह्मका विशेषण होनेकरि आनंद शब्द सुनिये है । “आनंद ब्रह्म है ऐसैं जानना । ब्रह्मके आनंदकूं जाननेवाला । जो यह आकाशविषै आनंद है । जोई भूमा है सोई सुख है ऐसैं । औ यह परमानंद है” इत्यादिक श्रुतियां हैं ॥ औ

१०८३

संवेद्य (सम्यक् जानने योग्य) सुखविषै आनंद शब्द प्रसिद्ध है औ ब्रह्मानंद जब संवेद्य होवै तब ये आनंद शब्द । ब्रह्मविषै युक्त होवैं ॥ ॥ ॥ ननु श्रुतिके प्रामाण्यतैं संवेद्य आनंदस्वरूपहीं ब्रह्म है । तिसविषै विचारनेकूं योग्य क्या

विषैबी सुन्या है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां ब्रह्मका विशेषण होनेकरि आनंदशब्द सुनिये है ऐसैं संबन्ध है ॥

१०८२ अन्य श्रुतिनकूंहीं उदाहरण करैहैं ॥ इहां:—इत्यादिक श्रुतियां हैं । यह शेष है ॥

१०८३ तथापि कैसैं विचारकी सिद्धि है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—लोक प्रसिद्धितैं औ अद्वैतश्रुतितैं ब्रह्मविषै आनंद संवेद्य है वा असंवेद्य है । यह विचार कर्त्तव्य है ॥

१०८४ अभय ठिकाने फलकूं दिखावै हैं ॥ इहां यह भाव है:—अन्यथा लोक वेदविषै शब्दार्थके भेदतैं “ अविशिष्ट तो वाक्यार्थ है ” इस न्यायका विरोध होवैगा । फेर असंवेद्यताके हुये अद्वैत श्रुति अविरुद्ध होवैगी ॥

१०८५ विचारके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करैहै ॥

है? यह शंका बनै नहीं:—काहेतैं विरुद्ध श्रुति-
 वाक्यनके दर्शनतैं कहिये तुह्यारा कथन संत्यै है
 आनंद शब्द ब्रह्मविषै सुनियेहै औ एकताके
 हुये विज्ञानका प्रतिषेध सुनियेहै:—“जहाँ तो
 इस (ज्ञानी)कूं सर्व आत्माहीं होताभया । त-
 हां किसकरि किसकूं देखै । किसकरि किसकूं
 जानै ॥ ताकूं किसकरि जानै । जहां अन्य दे-
 खता नहीं अन्य जानता नहीं । प्राज्ञरूप आ-
 त्माके साथि आलिंगित हुया किंचित्त्वी बाह्य-
 कूं नहीं जानताहै ” इत्यादि विरुद्ध श्रुतिवाक्य-
 नके दर्शनतैं । तिसकरि विचार कर्त्तव्य है ।
 तातैं वेदवाक्यार्थके निर्णय अर्थ विचार करने-
 कूं युक्त है औ मोक्षवादीनकी विप्रतिपत्तितैं ॥ ॥

१०८६ विरुद्ध श्रुति अर्थके निर्णय अर्थ विचारकी कर्त्त-
 व्यताकूं दिखावे हैं ॥

१०८७ संग्रहवाक्यकूं विवरण करैहैं ॥

१०८८ एकताके हुये विज्ञानके प्रतिषेधकी श्रुतिकूंहीं उ-
 दाहरण करैहैं ॥ इहां:—इत्यादि श्रवण है । यह शेष है ॥

१०८९ फलितकूं कहैहैं ॥

१०९० श्रुतिनकी विप्रतिपत्तितैं विचारकी कर्त्तव्यताकूं
 उपसंहार करैहैं ॥

१०९१ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

सांख्य औ वैशेषिकरूप जे मोक्षवादी हैं । वे मोक्षविषै संवेद्य (जानने योग्य) सुख नहीं है । इस प्रकारसैं निश्चयकूं प्राप्तभयेहैं औ अन्य निरतिशयसुख स्वसंवेद्य है ऐसैं निश्चयकूं प्राप्त-
 भयेहैं ॥ ^{१०९३}तिनमें प्रथम क्या युक्त है:—आनंदादिकके श्रवणतैं (विज्ञान आनंद ब्रह्म है इस श्रुतितैं) मोक्षविषै सुख जो है सो संवेद्य है । यह युक्त है ॥ काहेतैं “ हंसैताहुया क्रीडा करताहुया रममाण है । सो जब पितृलोककी कामनावाला होवैहै । सो सर्वज्ञ है सर्ववित् है । सर्व कामोंकूं सम्यक् भोगताहै ” इत्यादि श्रुतिनतैं ॥ ॥ ^{१०९४}ननु एकताके हुये कारकविभा-

१०९२ ताही विप्रतिपत्तिकूं विवरण करैहैं ॥

१०९३ विचारपूर्वक पूर्वपक्षकूं प्रतिवादी ग्रहण करैहै ॥ इहां:—आनंदादिकके श्रवणतैं “विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है” इस श्रुतितैं मोक्षविषै सुख संवेद्य (जानने योग्य) है । यह युक्त है । ऐसैं संबंध है ॥

१०९४ तहांहीं अन्य वाक्यनकूं उदाहरण करैहैं ॥

१०९५ पूर्वपक्षके प्रति सिद्धांती आक्षेप करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मोक्षविषै जब सुखका ज्ञान अंगीकार करिये है । तब सो अनेक कारकोंकरि साध्य कहना होवैगा । क्रियारूप होनेतैं । पाक आदिककी न्यांई औ सर्वकी एकतारूप मोक्षविषै कारक विभागके अभावतैं सुखका ज्ञान नहीं होवैहै ॥

गके अभावतैं विज्ञानका असंभव है औ क्रिया^{३०९६} अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं औ विज्ञानकूं क्रिया^{३०९७} होनेतैं? यह दोष बनै नहीं:—काहेतैं शब्दके प्रामाण्यतैं आनंदविषै विज्ञान होवैगा कहिये “विज्ञान आनंद है” इत्यादिक आनंद-स्वरूपकी असंवेद्यताविषै अघटित वचन हैं । ऐसैं हम कहते हैं ॥ ॥ ननु^{३०९९} वचनकरिबी अ-

१०९६ जन्यकूं कारकोंकी अपेक्षाके हुयेबी सुखज्ञानकूं अजन्य होनेतैं ताकी अपेक्षा नहीं है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जो क्रिया है । सो अनेक कारकोंकरि साध्य है । इस व्याप्तितैं । गमन आदिकविषै अवगत ताके ज्ञानकूंबी धातुके अर्थकरि क्रियारूप होनेतैं अनेक कारकोंकरि साध्यता सिद्धहीं है ॥

१०९७ श्रुतिकी प्रमाणताकूं आश्रयकरि पूर्ववादी परिहार करैहैं ॥

१०९८ ताहीकूं पूर्ववादी स्पष्ट करैहैं ॥

१०९९ अद्वय ब्रह्मविषै श्रुतिकी प्रमाणतातैं उक्त आनंदके ज्ञानके प्रति सिद्धांती आक्षेप करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अद्वैत श्रुतिके विरोधतैं ब्रह्मविषै विज्ञानरूप क्रिया अरु कारकोंके विभागकी अपेक्षा नहीं संभवै है । जातैं “विज्ञान आनंद है” इत्यादि वचन । प्रमाणके विरोधकरि ब्रह्मविषै विज्ञानरूप क्रियाकूं नहीं उत्पादन करैहैं । तिन (वचनों) कूं ज्ञापक होनेतैं औ ज्ञापककूं अविरोधकी अपेक्षावाला होनेतैं । अन्यथा अतिप्रसंगतैं ॥

मिकी शीतता औ उदककी उष्णता नहीं करि-
 येहीं है । वचनोंकूं ज्ञापक होनेतैं औ देशांतर-^{११००}
 विषे “अग्नि शीत है” ऐसैं वा अगम्य देशांतर-
 विषे “उदक उष्ण है” ऐसैं जनावनेकूं शक्य न-
 हीं होवैहै ? यह कथन बनै नहीं:—काहेतैं प्रत्य-
 गात्माविषे आनंदविज्ञानके दर्शनतैं कहिये “वि-
 ज्ञान आनंद है” इत्यादि वचनोंकी “अग्नि शीत
 है” इत्यादि वाक्यकी न्यांई प्रत्यक्षादि प्रमाण-
 सैं विरुद्ध अर्थकी प्रतिपादकता नहीं है । अवि-^{११०३}

११०० ननु लौकिक ज्ञानकूं क्रियारूपताके हुयेबी मो-
 क्षविषे जो सुखका ज्ञान है । सो क्रियाहीं नहीं होवैहै ।
 यातैं तहां विज्ञानादि वाक्यका अद्वैत श्रुतिसैं विरोध नहीं
 है ? यह आशंका करिके । सिद्धांती कहैहैं ॥ इहां यह भाव
 है:—पय (जल) अरु पावक (पवित्र)की सर्वत्र एकरूप-
 ताकी न्यांई विज्ञानकीबी लोक अरु वेदविषे ऐकरूपताहीं है ॥

११०१ प्रमाणांतरके विरोधतैं आत्माविषे आनंदके ज्ञा-
 नका सद्भावहीं निषेध करिये है वा ताका क्रियापना नि-
 राकरण करिये है ? ये दो विकल्प हैं । तिनमें प्रथमपक्षकूं
 सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

११०२ ताहीकूं सिद्धांती स्पष्ट करैहैं ॥

११०३ सुखके ज्ञानके गुणभावके अंगीकारतैं क्रियाभा-

रुद्धार्थता तो अनुभव करियेहै । मैं सुखी हूँ^{११०४} ।
 ऐसैं सुखात्मक आत्माकूं आपहीं जानताहै ।
 तातैं^{११०५} अविरुद्धार्थता अत्यंत प्रत्यक्ष है । तातैं^{११०६}
 आनंदकूं ब्रह्म विज्ञान स्वरूप हुया आपहीं जा-
 नताहै ॥ तैसैं^{११०७} हुये “हसताहुया क्रीडताहुया र-
 ममाण है” इत्यादिक पूर्वोक्त आनंदकी प्रति-
 वका निराकरण हमकूं इष्टहीं है । ऐसैं मानिके पूर्ववादी
 कहैहै ॥

११०४ अनुभवकूंहीं पूर्ववादी आकारकरि दिखावै है ॥

११०५ ननु तथापि श्रुतिनका विरोध होवैगा ? यह
 आशंका करिके । सो (श्रुति)बी प्रत्यक्ष प्रमाणके अनुसार-
 करि लेजानेकूं योग्य है । इस आशयकरि पूर्ववादी कहैहै ॥
 इहां यह अर्थ है:—आत्माविषै आनंदके ज्ञानके क्रियाभावके
 अनंगीकारतैं कारकभेदकी अपेक्षाके अभावतैं औ गुणभावके
 पक्षविषै आगमकूं प्रत्यक्षका अनुसारी होनेतैं । विरोधी आ-
 गमकूं ताके अनुसारकरि लेजानेकूं योग्य होनेतैं । अविरुद्ध
 होनेतैं याकी बहुलतातैं । यह आशय है औ अविरुद्धार्थता
 विज्ञानादि श्रुतिकी है । यह शेष है ॥

११०६ ननु गुणगुणीभावविषैबी अद्वैत श्रुति लेजानेकूं
 शक्य नहीं है ? यह आशंका करिके । स्ववेद्यता (आपकरि
 आपके जाननेकी योग्यता)के पक्षकूं आश्रय करिके पूर्ववादी
 कहैहै ॥

११०७ जिस किस प्रकारकरि ब्रह्ममें आनंदकी वेद्यता-
 विषै श्रुतिनकी अनुसारिता है । ऐसैं पूर्ववादी कहैहै ॥

पादक श्रुतियां समंजस होवैंगी? सो कैर्धन ब-
नै नहीं:—काहेतैं मोक्षविषै कार्य अरु करणके
अभाव हुये विज्ञानके असंभवतैं । जातैं शरी-
रिकां वियोग आत्यंतिक मोक्ष है औ शरीरके
अभाव हुये आश्रयके अभावतैं करणोंका असं-
भव होवैगा औ तातैं कार्यकरणके अभावके हो-
नेतैं विज्ञानका असंभव है औ देहादिकके अ-
भावके होते विज्ञानकी उत्पत्तिके हुये सर्वकूं
कार्यकरणके ग्रहणकी व्यर्थताका प्रसंग हो-
वैगा औ एकताके विरोधतैं ॥ औ परब्रह्म जब

११०८ ब्रह्मविषै आनंद वेद्य है । इसप्रकारसैं पूर्वपक्षके
किये हुये । अब सिद्धांतकूं कहैहैं ॥

११०९ आगंतुक वा अनागंतुक ज्ञान मुक्तिविषै आनं-
दकूं विषय करैहै ? ये दो विकल्प हैं । तिनमें प्रथम पक्ष बनै
नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

१११० अनुपपत्तिकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

११११ ननु कार्यकरणके अभाव हुयेबी मोक्षविषै ब्रह्मा-
नंदका ज्ञान उपजेगा । जातैं संसारविषै हेतुकी अपेक्षा है ?
यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१११२ द्वितीय पक्षके प्रति दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ
है:—जातैं ब्रह्म स्वरूपज्ञानकरिहीं वेद्य आनंदरूप होनेकूं
उत्साह करता नहीं । काहेतैं विषय अरु विषयीकी एकताके
विरोधतैं औ तातैं अनागंतुक (ब्रह्मरूप)बी ज्ञान मुक्तिविषै
आनंदकूं नहीं विषय करैहै ॥

१११३ किंवा:—ब्रह्म वा मुक्त वा संसारी । ब्रह्मानंदकूं

आनंदात्मक आत्माकूं नित्य विज्ञानरूप होनेतैं

१११४ १११५

नित्यहीं जानैगा तव तहां संसारीबी संसारतैं वि-
निर्मुक्त हुया स्वाभाव्य (ब्रह्म)कूं प्राप्त होवैगा ।

जैलाशयविषै डारे उदकांजलिकी न्यांई आनं-
दात्मक ब्रह्मके विज्ञानअर्थ पृथक्भावकरि न-
हीं स्थित होवैहै । तब मुक्तहुया आनंदस्वरूप
आत्माकूं जानताहै । इसप्रकारका यह वाक्य

विषय करैगा ? ये तीन विकल्प हैं । तिनमें आद्यपक्षकूं अ-
नुवाद करैहैं ॥

१११४ तिस (आद्य) पक्षविषै ब्रह्म स्वरूपानंदकूं नहीं
जानता है । काहेतैं तिसके साथि एकतातैं । एक ठिकाने वि-
षयविषयीभावके असंभवकूं उक्त होनेतैं । इसरीतिसैं दूषण
देते हैं ॥

१११५ संसारीबी ब्रह्मानंदकूं विषय नहीं करैहै । सो
(संसारी) निश्चयकरि संसारके अनिवृत्त हुये आपकूं सं-
सारी जानताहुया ब्रह्मानंदकूं जाननेकूं परिपूर्ण नहीं होवैहै ।
संसारके निवृत्त हुये तो तिसतैं विनिर्मुक्त ब्रह्मके स्वभावकूं
प्राप्त हुया तिसके आनंदकूं ताकी न्यांईहीं विषय करनेकूं
योग्य नहीं है । इसरीतिसैं तृतीयपक्षके प्रति जबाब देतेहैं ॥

१११६ द्वितीयपक्षविषै । मुक्त पुरुषबी ब्रह्मतैं भिन्न है
वा अभिन्न है ? ऐसैं विकल्प करिके । अभेदपक्षकूं अनुवाद
करैहैं ॥

१११७ ब्रह्मसैं अभिन्न मुक्तके ब्रह्मानंदके विषयीकरणकूं
उक्त न्यायकरि निषेध करैहैं ॥

व्यर्थ होवैगा ॥ औ ^{१११}जैब अन्य हुया मुक्त पुरुष में आनंद^{११२}स्वरूपहूँ ऐसैं ब्रह्मानंदरूप प्रत्यगात्माकूं जानताहै । ^{११२०}तैब एकताका विरोध होवैगा औ तिसप्रकार हुये सर्व श्रुतिनका विरोध होवैगा औ ^{११२१}तृतीय (भेदाभेदरूप) कल्पना ही संभवै है ॥ किंवा अन्यवी दूषण है । सो क्या किः—ब्रह्मकूं निरंतर आत्मानंदके विरोध हुये विज्ञान अरु अविज्ञानकी कल्पना व्यर्थ होवैगी कहिये ^{११२३}जैब निरंतर आत्मानंदकूं विरोध करनेवाला ब्रह्मका विज्ञान होवै तब सोई ब्रह्म स्वभाव है । यातैं आत्मानंदकूं जानताहै यह

१११८ भेदपक्षकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां ब्रह्मानंदरूप प्रत्यगात्माकूं । ऐसैं संबंध है ॥

१११९ वेदनके प्रकारकूं आकारकरि दिखावै हैं ॥

११२० “ तत्त्वमसि ” आदिक श्रुतिके विरोधकरि भेदपक्षकूं निराकरण करैहैं ॥

११२१ ननु मुक्तपुरुष । ब्रह्मतैं भिन्न वा अभिन्न होह । भिन्नाभिन्न तो होवैगा ? यह आशंका करिके इहां यह अर्थ हैः—सर्वत्र भेदाभेदवादकूं दूषित

११२२ ब्रह्मके स्वरूपानंदकी अवेद्यताविषै अन

कहैहैं ॥

११२३ ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥

कल्पना अघटित होवैगी ॥ जातें अंतर्दृष्टि-
के प्रसंग हुये कल्पनाकूं अर्थवान्पना होवैहै ।
जैसें आपकूं औ परकूं जानताहै ऐसें । ब्रह्म
आदिकविषै आसक्त मनवाले पुरुषकूं निरंतर-
ताकरि ज्ञान अरु अज्ञानकी कल्पनाका अर्थवा-
न्पना नहीं है ॥ औ जब विच्छिन्न जैसें होवै
तैसें आत्माकूं जानताहै ? ऐसें कहै । तब वि-
ज्ञानकूं आत्मविज्ञानके छिद्र हुये अन्य विषय-

११२४ तव आख्यात प्रयोगकूं कर्त्तारूप अर्थवान्पना
कैसें होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—देवदत्त
जातें अबुद्धिपूर्वकारितारूप अवस्थाविषै आपकूं औ अन्यकूं
विवेचन करिके । नहीं जानता है । अन्य नहीं । ऐसें उभय
प्रकारताके देखनेतें तहां आख्यात प्रयोग जुडता है ॥ ऐसें
ब्रह्मविषै अज्ञानका प्रसंग नहीं है । नित्यज्ञान स्वभाववाला
होनेतें । तिसप्रकार हुये तहां आख्यात प्रयोग अर्थवान्
नहीं है ॥

११२५ ब्रह्मविषै आख्यात प्रयोगकी व्यर्थताकूं दृष्टांतकरि
स्पष्ट करैहैं ॥

११२६ प्रत्यगात्माविषै नित्यज्ञानताकी असिद्धिकूं पूर्व-
वादी शंका करैहै ॥

११२७ विच्छिन्न जैसें होवै तैसें । इस क्रियाविशेषणकूं
सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—आत्माके वि-
ज्ञानका छिद्र कहिये अंतराल (असद्भावकी अवस्था) है ।

